

# अथर्ववेद- [ भाग तीसरा ]

‘ गृह स्था श्र म ’

## विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भूमिका	१	विवाह-प्रकरण	५१
पवित्र गृहस्थाश्रम ( कां ६, सू १२२ )	११	वैदिक विवाहका स्वरूप	५१
पवित्र गृहस्थाश्रम	१२	प्रथम सूक्त	५१
कुलवधू-सूक्त ( कां १ सू १४ )	१३	सौ और भूमि	५१
कुलवधू-सूक्त	१४	सोम	५१
पहला प्रस्ताव	१४	बरातका रथ	५०
प्रस्तावका अनुमोदन	१४	इदम	५३
बरकी परीक्षा	१५	पुराना और नया संबन्ध	५३
पक्षिके गुणवर्ग	१५	गृहस्थाश्रमका आदर्श	५५
बधू-परीक्षा	१५	माइनोंको धन और वस्त्रदान	५६
कन्याके गुणवर्ग	१६	पुरत सीका पक्ष न पहले	५१
सगनीका समय	१६	कन्याका गुण	५६
सिरकी सत्तावध	१६	सम्पन्नहारले धन कमाने	५७
मानिके पञ्चाह विवाह	१६	गौरक्षा	५७
कन्याके लिये घर ( कां ६, सू ८२ )	१७	सक्त मांस	५७
कन्याके लिये घर	१७	तेजसी बगो	५७
विवाहका मंगल कार्य ( कां २, सू ३६ )	१८	घोड़ी हप्का	५०
विवाहका मंगल कार्य	२०	घोड़ी कैसी हो ?	६०
बरकी योग्यता	२०	गृहस्थीका साधन	६०
बधूकी योग्यता	२०	विवाहका सूत काटना	६०
विवाहके पञ्चाह	२१	पाणिग्रहण	६१
ऐश्वर्यकी शोका	२१	केशोंकी सुन्दरता	६२
पुरतका स्थान	२२	सोटीका नक्षत्र न लाने	६३
पक्षिके लिये धन	२२	मालपर रथ	६४
विवाह ( कां ६, सू ६० )	२३	द्वितीय सूक्तका विचार	६५
विवाह-प्रकरण ( कां १४, सू १ )	२४	विवाहका समय	६६
विवाह-प्रकरण ( कां, १४, सू २ )	२७	बन्धुके बन्धन	६६
		अनु दूर हो	६६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विवाहमें ईश्वरका हाथ	६७	एकताका बल	१०
गन्नाधान	६७	सौभाग्य वर्धन-सूक्त (का १, सू १८)	८९
पतिके घरमें पत्नीका स्वरहाथ	६७	सौभाग्य-वर्धन-सूक्त	९०
दरिद्रताको दूर करो	६८	कुलक्षण और सुलक्षण	९०
भद्रोंका समस्कार	६८	वाणीसे कुलक्षणको इयना	९१
गुप्त बात	७०	वाणीसे प्रेरणा	९१
बधूका वस्त्र	७०	हाथों और पावोंका दर्द	९१
गृहस्थियोंके घर	७०	सौभाग्यके लिये	९१
छिपोंका बनावटा नष्ट	७१	सन्तानका कल्याण	९१
गौणोंका पक्ष	७२	सौभाग्य-वर्धन (का ६, सू १३९)	९४
बाहरीकी परिव्रता	७३	सहस्रवर्णी औषधि	९३
शुद्धि साधन	७३	वेदके सांपको काटना और चोटना	९३
मानीर्वाह	७४	सौभाग्यको वडाओ (का ७, सू १६)	९३
पति और पत्नीका मेल (का २, सू ३०)	७५	वातोंकी पीडा (का ६, सू १४०)	९३
पति और पत्नीका मेल	७६	केशवर्धक ओषधि (का ६, सू १३६)	९४
राशिनी देव	७६	केशवर्धक ओषधि (का ६, सू १३७)	९४
विवाहका समय	७६	केशवर्धक ओषधि (का ६, सू २१)	९५
विष्कण्ड घर्षाव	७६	अरुधति औषधि (का ६, सू ५९)	९६
कादरी पत्रि-पत्नी	७७	अरुधति	९६
धर्मगर्वा स्थान	७७	वातीनरण (का ६, सू ७२)	९७
आल साव बर्ताव	७७	स्त्री-पुरुषकी वृद्धि (का ६, सू ७८)	९७
दम्पतिका परस्पर प्रेम (का ६, सू ८९)	७८	गृहस्थाकी पुष्टि	९८
स्त्री और पुरुषका प्रेम	७९	स्त्री-चिकित्सा (का ७, सू ३५)	९८
पतिपत्नीका परस्पर प्रेम (का ७, सू ३६)	७९	स्त्री-चिकित्सा	९९
पतिपत्नीका परस्पर प्रेम (का ७, सू ३८)	८०	उत्तम गृहिणी स्त्री (का ४, सू ३८)	९९
एक विचारसे रहना (का ६, सू ७३)	८१	उत्तम गृहिणी स्त्री	१०१
संघटना	८२	दम्पतीका समावेश	१०१
परस्पर प्रेम (का ६, सू ८०)	८२	आ कैसी हो ?	१०१
एकताका मंत्र	८२	अप्यसा	१०१
परस्पर प्रेम (का ६, सू १०२)	८३	रक्षितस्नान	१०३
प्रेमका आकर्षण	८३	स्त्री-रक्षा	१०३
सपत्ननाराक वरणमणि (का १०, सू ३)	८३	स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा (का ५, सू १७)	१०४
पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे (का ७, सू ३७)	८७	स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा	१०७
उन्नतिशील दिशा (का ३, सू २६)	८७	स्त्री-पातिव्रत्यकी रक्षा	१०७
सामनस्य (का ६, सू ७४)	८८	गृहस्थ और वारा	१०७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
काम (का १, सू २)	१००	पुस्तक और चैत्र	१४३
काय	१११	मुख-प्रसूति-सूक्त (का १, सू ११)	१४३
सकलदाकि	१११	मुख-प्रसूति-सूक्त	१४५
कामका कवच	११६	प्रसूति प्रकल	१४५
कामाशिका शमन (का ३, सू २१)	११७	ईशपति	१४५
कामाशिका शमन	११७	देवोका गर्भो विकास	१४५
कामाशिका स्वरूप	११९	गर्भवती स्त्री	१४५
काम और इच्छा	१२०	गर्भ	१४६
कामको साइका	१२१	मुख-प्रसूति के लिये सादेश	१४६
न दूषतेदान	१२१	साइकी साइका	१४६
इन्द्रका रूप	१२१	सूचना	१४६
कामसाधिका ज्ञान	१२१	रक्तसाव दद करना (का १, सू १७)	१४७
कामका बाण (का ३, सू २५)	१२३	रक्तसाव दद करना	१४७
कामका बाण	१२५	बाण और रक्तसाव	१४७
विषयवर्णनामी भक्त	१२५	दुर्गावर्णनामी स्त्री	१४८
कामका बाण	१२६	विषयके वक्ष	१४८
पतिवर्णनामी एकमत	१२६	रक्तसाव दद करनेकी औपधि (का ३, सू ४४)	१४८
भक्तवर्णनामी गुण	१२७	रक्तसाव और दातारो	१४९
गुरुद्वय धर्म	१२८	गुरुकी विद्या	१४९
वीर पुत्रकी उत्पत्ति (का ३, सू २३)	१२८	नवजात बालक (का ६, सू ११०)	१४९
वीर पुत्रकी उत्पत्ति	१२९	सप्तमका मुख (का ७, सू १११)	१५०
वीर पुत्रका मसव	१२९	घरके बालक (का ७, सू ८१)	१५०
गर्भधारणा (का ५, सू २५)	१३०	घरके दो बालक	१५०
गर्भकी सुरक्षितता	१३१	जन्म स्त्री घर	१५०
गर्भधारणा (का ६, सू १७)	१३२	जन्म शक्तिसे खेलनेवाले बालक	१५०
गर्भदोष-निवारण (का ८, सू ६)	१३३	स्वस्थिके चरना	१५०
गर्भदोष-निवारण	१३८	विमिश्रण	१५१
प्रसूतिके दोष	१३८	जन्मको प्रकार देना	१५१
मन्त्रोंका गायन	१४०	कर्मका भाग	१५१
मन्त्रोंके शक्त	१४०	एक ही	१५३
मन्त्रोंके स्थान	१४१	दुष्टका नाश	१५३
शैवधर्मिकोंके नाम	१४१	दिन मोहन	१५३
शैव धर्म	१४१	मुहन (का ६, सू ६८)	१५३
विषयके गुण	१४१	मेखला वधन (का ६, सू १३३)	१५४
पुस्तक (का ६, सू ११)	१४२	मेखला वधन	१५५
पुस्तक	१४२	कविबद्धा	१५५
विषयसे पुत्रकी उत्पत्ति	१४२	कामको वापस भेजो (का ६, सू १३०)	१५६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कामको वापस भेजो ( कां. ६, सू. १३१ )	१५७	वशावर्ती गाय	१९३
कामको वापस भेजो ( कां. ६, सू. १३२ )	१५८	गाय	१९३
कंकणका धारण ( कां. ६, सू. ८१ )	१५९	गौका उत्सव	१९३
कंकण धारण	१६०	ब्राह्मणकी गौ ( कां. १२, सू. ५ )	१९४
मरतापितृकी सेवा करो (कां. ६, सू. १२०)	१६०	ब्राह्मणकी गौ	२००
धन और सद्व्युक्तिकी प्रार्थना ( कां. ७, सू. १७ )	१६१	गौका महत्त्व	२००
गृह-निर्माण ( कां. ३, सू. १२ )	१६२	ब्राह्मण क्यों गायना करते हैं ?	२००
गृह-निर्माण	१६४	दासका अधिकारी ब्राह्मण	२००
घरकी बनावट	१६४	गौकी रक्षा	२०१
घर बनाने योग्य स्थान	१६४	घोबर और मृत्र	२०१
घर कैसे बनावना ज्ञेय ?	१६४	कामिकी मात्रा	२०१
संमानका स्थान	१६४	ब्राह्मणकी गौ ( कां. ५, सू. १८ )	२०२
प्रसन्नताका स्थान	१६५	शतौदना गौ ( कां. १०, सू. ९ )	२०१
धीरतासे युक्त धन	१६५	शतौदना गौ	२०८
अतिथि सरकर	१६५	गौ	२०८
देवों द्वारा निर्मित घर	१६६	गौत्र विश्वरूप ( कां. ९, सू. ७ )	२०९
देवोंकी सहायता	१६६	गौका माहात्म्य	२११
गृह-निर्माण ( कां. ९, सू. ३ )	१६६	वैल ( कां. ९, सू. ४ )	२११
गृह-निर्माण	१७१	वैल	२१६
घरकी प्रसन्नता	१७१	वैलकी महिला	२१६
घरकी शोभा ( कां. ६, सू. १०६ )	१७३	गौशाला ( कां. ३, सू. १४ )	२१९
रमणीय घर ( कां. ७, सू. ६० )	१७४	गौ-संवर्धन	२२०
गाय ( कां. ७, सू. ८२ )	१७५	गायकी पालना ( कां. ७, सू. ७५ )	२२१
गाय ( कां. ७, सू. २१ )	१७७	गौको समर्थ बनाना ( कां. ७, सू. १०४ )	२२१
गौ	१७८	गौ पर विन्धु ( कां. ६, सू. १४१ )	२२२
गौका सुंदर काव्य	१७८	गौ सुधार ( कां. ६, सू. ७० )	२२२
गौ घरकी शोभा है	१७८	गौ-रस ( कां. २, सू. २६ )	२२३
इष्टि देवताकी गौ	१७९	गौ-रस	२२४
गौ ही धन, बल और मज्जा है	१७९	वसुधावृत	२२४
यज्ञके लिये गौ	१७९	भक्षण और वापस भाना	२२४
अव्यय गौ	१८०	दूध और पोषक रस	२२५
उत्तम पाल और दक्षिण बलवान	१८०	गाय और यज्ञ ( कां. ७, सू. ७३ )	२२६
गौको पालना	१८०	गाय और यज्ञ	२२८
घरका गाय ( कां. १२, सू. ४ )	१८१	गौ-रक्षा	२२८
वशावर्ती गाय ( कां. १०, सू. १० )	१८९	पंचौदन यज्ञ ( कां. ९, सू. ५ )	२३०
		पंचौदन अन्न	२३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
प्रज्ञाकी पुष्टि (का ७, सू १९)	२४५	अपनी रक्षा (का ७, सू ३१)	२४७
खेतीसे अन्न (का ७, सू १९)	२४५	हुष्ट स्वप्न (का ६, सू ४५)	२४८
अन्नकी घृष्टि (का ६, सू १४२)	२४६	हुष्ट स्वप्न	२४८
अन्न (का ६, सू ७१)	२४६	पानी पिचार	२४८
अन्न	२४७	हुष्ट स्वप्न (का ६, सू ४६)	२४९
अनेक प्रकारका अन्न	२४७	हुष्ट स्वप्न	२४९
घनके चार भाग	२४७	हुष्ट स्वप्न यमका हुष्ट	२४९
अन्नभाग (का ६, सू ११६)	२४८	हुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय	२६१
प्रज्ञाकी संमति	२४८	(का ७, सू १००)	
घान्धकी सुरक्षा (का ६, सू ५०)	२४९	हुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय	२६१
घान्ध नाशक जीव	२४९	(का ७, सू १०१)	
खानपान (का ७, सू ७२)	२५०	अन्न (का ७, सू ३०)	२६०
खानपान	२५०	मधुविद्या और गोमहिमा (का ९, सू १)	२६२
भोजनका समय	२५०	मधुविद्या और गोमहिमा	२६७
ओषधिरसका पान (का ६, सू १६)	२५१	सत मधु	२६७
रसपान	२५२	मधुका अन्न	२६७
अन्नरहित होना (का ६, सू ११७)	२५२	वनिधि स्तकार (का ९, सू ६)	२६७
अन्नरहित होना (का ६, सू ११८)	२५३	अतिथि आर	२७४
अन्नरहित होना (का ६, सू ११९)	२५४	आज्ञाणको कष्ट (का ५, सू १९)	२७४
निष्पाप होनेकी मार्गता (का ७, सू ३४)	२५५	आज्ञाणको कष्ट	२७६
कल्याण (का ७, सू २८)	२५६	हारीको कष्ट	२७६
विपत्तिको हटाना (का ७, सू २३)	२५६	अन्तेविकी कष्ट बात	२७६
भाग्यकी प्राप्ति (का ६, सू १२९)	२५७	इज्जत	२७६
		पशुको ज्ञीय बनाना (का ६, सू १३८)	२७७





अथर्ववेद -

भाग तीसरा

## गृहस्थाश्रम

### भूमिका

इस पुस्तकमें अथर्ववेदके गृहस्थाश्रम विषयक १५ सूक्तोंका समावेश है, इन सूक्तोंमें करीब करीब ११००से अधिक मंत्र हैं।

‘गृहस्थाश्रम’ शब्दों का अर्थ होता है। महाश्रम-आश्रममें विद्या प्राप्त की जाती है, इस कारण इस महाश्रम-आश्रममें अर्थार्जन नहीं हो सकता। कमसे कम २५ वर्ष तककी आयु इस आश्रममें खती जाती है।

‘वानप्रस्थ और संन्यास’ ये दो आश्रम भी अर्थार्जनके लिए नहीं हैं। इस तरह आयुके तीन आश्रम—महाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीन आश्रमोंमें घनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कारण ये तीनों आश्रम गृहस्थाश्रमपर ही साधित रहते हैं इस विषयमें मनुस्मृतिमें कहा है—

यथा धातुं समाधित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाधित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ १४ ॥

यस्मात् अयोऽप्याश्रमिणो दानेनाश्रमे पान्त्वहम्।

गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मान्नयेष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥

स संघर्षः प्रपत्नेन स्वर्गो व्यसृज्य हृच्छता।

सुखं येदेच्छता नित्यं योऽघातो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥

१ (अथर्व. शिर्षा. गृ. भा. ३)

सर्वेषामपि श्रैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।

गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः सं प्रीतेतान् विभक्तिं हि ॥ १७ ॥

यथा तदीन्द्राः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १८ ॥

सेनापत्ये च राज्ये च दण्डनेतृत्वमेव च।

सर्वलोकाधिपत्यं च पेशादप्यभिर्हति ॥ १९ ॥

(मनुस्मृति)

“जिस तरह बाणों का आश्रय करके सब प्राणी जीवित रहते हैं, उसी तरह गृहस्थाश्रमका आश्रय करके सब अन्य आश्रम जीवित रहते हैं। पृथि्वी महाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमोंको प्राप्त तथा भ्रष्ट देकर प्रतिदिन गृहस्थी आश्रय देकर सुशिक्षित बनता है, इस कारण गृहस्थाश्रमो श्रेष्ठ है। इसलिये शिकारों अथवा स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा है, तथा जो इस जगत्में सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसे गृहस्थाश्रमका पक्षपूर्वक पालन करना चाहिये। निर्बलोंने इस गृहस्थाश्रमका पालन नहीं हो सकता। वेद और स्मृतिके व्यवधानुसार इन सब आश्रमोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि वह गृहस्थी अथवा शांति का भरण-पोषण

करता है। जिस तरह नदी और नद समुद्रमें जाकर सुरक्षित होते हैं, उसी तरह सब अल्प आधम गृहस्थाध्यायके आधारासे सुरक्षित होते हैं। सेनापतिका कार्य, राज्यन्यायकारका कार्य, न्यायदानका कार्य, सब लोकोंके आधिपत्यके सब कार्य वेद-स्वी साक्ष जाननेवाला गृहस्थी ही कर सकता है।"

इस तरह गृहस्थ आधमका महान् स्मृतिप्रयोगमें समन किया है। सचमुच गृहस्थाध्याय ही सब राष्ट्रीयजीवनका आधार है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ गृहस्थाध्यायके विषयोंमें वेदमन्त्रोंमें क्या कहा है, यह अवश्य देखना चाहिये। यह देखनेके लिये ही इस तीसरे खण्डकी रचना की है, इसमें अथर्ववेदके इस विषयके मंत्र संग्रहित हैं और इसमें मन्त्रोंका पुरातन्य की स्पष्टीकरणके द्वारा बताया है। वेद कीकी किसी उच्च अवस्थामें रहना चाहता है, यह वेदके निम्न मन्त्रोंसे स्पष्ट होता है—

सम्राज्ञी अथर्वदे भय सम्राज्ञी अथर्वानां भव ।

नानादृरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अथि देवपु ॥

( अ. १०८५।४६ )

सम्राज्येयि अथर्वेषु सम्राज्युत देवपु

नानादृरि सम्राज्येयि सम्राज्युत अथर्वानां ॥

( अथर्व. १४।१।३४ )

' हे स्त्री ! तू अन्न, साध, नन्द, देव आदिकोंके साथ सुसाराधमें जाकर सम्राज्ञी जैसी रह । ' रानी जैसे राजमहलमें आनन्दसे रहती है, उसतयह तू रानी बनकर अधिकारके साथ बड़ी रह । कोई भी दासीमात्रसे हीन अवस्थामें न रहे, अपितु उच्च अधिकारसे सुसाराधमें रहे, यह इन मन्त्रोंका तात्पर्य है । और देखिये—

अथर्वचक्षुरपतिभ्येयि

शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।

वीरसुद्वृकामा स्योना

शं नो भय द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ( अ. १०८५।४७ )

अथर्वचक्षुरपतिभ्यो स्योना

शम्मा सुशेना सुयमा गृहेभ्यः ।

वीरसुद्वृकामा सं त्वयै-

धिर्वामदि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अदेवृष्यपतिभ्यैयि

शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजापती वीरसुद्वृकामा

स्योनेममग्नि गार्हपत्यं सापय ॥ १८ ॥ ( अथर्व. १४।२ )

' हे स्त्री ! तू ( अ-घोर-चक्षुः ) अपनी दृष्टि दूर न रख, ( अ-पतिभ्यो ) पतिके कष्ट न दे, ( पशुभ्यः शिवा ) घरके पशुओंका कल्याण करनेवाली बन, तथा ( सुमनाः सुवर्चाः ) उत्तम मनवाली तथा उत्तम सैन-द्विनी हो कर रह, ( वीर-सूः ) वीर पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली हो, ( देवृकामा ) परम पतिके भाई हों, ऐसी इच्छा करनेवाली हो, ( स्योना ) सुख देनेवाली हो, ( नः द्विपदे चतुष्पदे शं भय ) हमारे दो पाववालों और चार पाँव वालोंके लिये मानन्द देनेवाली हो । ( शम्मा सुशेना ) सुखदात्री तथा पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली हो, ( गृहेभ्यः सुयमा ) घरवालोंके लिये उत्तम नियमोंसे चलनेवाली बन कर रह, ( प्रजापती ) प्रजा उत्पन्न करनेवाली होकर इस गार्हपत्य अग्निके उपसर्गना कर । '

इसतरह स्त्रीको घरकी सम्राज्ञी वेद बनाता है और देखिये—

हह प्रियं प्रजया ते समुभ्यतां

अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

एना पत्या तन्वं सं सृजस्वा-

धामिनी विद्वधमा यदायि ॥ ( अ. १०८५।४८ )

एना पत्या तन्वं सं सृजस्वा-

य जिर्विदिद्वधमा यदायि । ( अथर्व १४।३।२१ )

' अपनी प्रजासे यहां ठेका प्यार हो, इस रीतिसे हमें गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये जाग्रत रह, इस पतिके साथ सुखपूर्वक रह और यज्ञमें अपने पतिके साथ भाग ले । ' तथा—

मा विद्वर परिपन्थिनी य आसीदन्ति दम्पती ।

सुगेभिः दुर्गमतीनां भय द्रान्त्यरातयः ॥

( अ. १४।१।२१ अ. १०८५।४९ )

जो शत्रु इनके पास-रहते हो, ये इन पति पत्नीकी न जानें, ये दम्पती सुगम मार्गसे कठिन कार्यको करते रहें और शत्रु इनसे दूर भाग जायें । तथा—

मा नः प्रजां जनयतु प्रजापति-

राज्यरसाय सममपत्यर्पमा ।

अदुर्मपलीः पतिछोक्त्वा विश

शं नो भय द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

इमां त्वमिन्द्र मीदधः सुपुत्रां सुभगां वृणु ।

दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं वृधि ॥

( अ. १०८५।४९।५० )

' प्रजाका पालक ईश्वर इस स्त्रीमें प्रजा उत्पन्न करे ।



अर्धमा वृद्धावस्था तक इसको छे काय सर्वात् यह दीर्घायु हो । पतिके घर आकर यह अग्रज करनेवाली बने । इंधाद और चतुष्पार्थके लिये यह स्त्री कल्याण करनेवाली बने । हे इन्द्र ! इस स्त्रीके उत्तम पुत्र हों, ऐसा कर । यह स्त्री सीमापसे युक्त हो । हे स्त्री ! भरे इस पुत्र उत्पन्न हों और पश्चात् पतिके ग्यारहवां मान । '

वेदमें इस पुत्र या इस संतान उत्पन्न करनेकी मर्यादा कही है । पर माहाण-ग्रंथोंमें ' अष्टपुत्रा ' पदसे आठ पुत्र उत्पन्न करनेकी मर्यादा बताई है । वेदके समयमें और माहाण के समयमें इतका परिवर्तन संततिनियमनके विषयमें हुआ है । आत को सकार सन्ततिनियमन करनेवालोंकी सहायता कर रही है । इतका समयमें परिवर्तन हो गया है । वैदिक कालमें वस पुत्रोंकी इष्टज पति और पत्नी करते थे, माहाण कालमें यह इष्टा आठ पुत्रोंकी रह गई और आत संतति-नियमन एक आवश्यकता बन गया । अस्तु । और देखिये—

इरिय स्तं मा वि दीर्घं विश्वमायुर्व्यञ्जुतम् ।

कीकृन्ती पुत्रैर्ममृभिः मोदमानौ स्ये गृहे ॥

( अ. १०८५४२ )

मोदमानौ स्वस्तवी । ( अ. १०११२२ )

' यहीं रहो, ( मा वि दीर्घ ) कभी विमर्क न होओ । ईश्वरें आयुका भोग करो । अपने घरमें आनंदके साथ पुत्रों और पौत्रोंके साथ सेजते हुए आनंदते रहो ।

यहां ( मा वि दीर्घ ) विमर्क न होओ, ऐसा कहा है । विवाह-विच्छेदका इसतरह वेद निषेध करता है । जो सदा सौ वर्षोंतक अपने पुत्र वीर्यसे सेजते और आनन्द करते हुए अपने घरमें रहें । कभी विमर्क न होओ ।

विवाहका विच्छेद नहीं करना चाहिये । अपने घरमें आनन्दते पुत्रों और पौत्रोंके साथ रहो । यह वेदकी आज्ञा है ।

स्त्रियां कैसी हैं ?

दियां कैसी हैं इस विषयमें वेद कहता है कि—

शुक्राः पूताः योषितो यश्चिषा इमाः

ग्रहाणां हस्तेषु प्रपृच्छस्व साव्यायामि ॥

( अ. ६१२२१५ )

' शुक्र पवित्र और पूजनीय वेली ये स्त्रियां हैं । इनकी शान्तिमें हाथमें धृक् धृक् देता हूं । ' शिवकी कन्या-दान करना हो, वे जानी हों, बजानी न हों, तथा वे दियं

विचारसे शुद्ध हों, पवित्र भावन करनेवाली हो, और सदा-चारी होनेके कारण पूजनीय हों । विचार, उच्चार और भाषण में वे निर्दोष हों ।

ग्रहावर्षेण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

( अ. ११५११८ )

कन्या, कन्या-गृहगुलमें रहकर विधुषी होती थी । इधर श्रद्धा भी गृहगुलमें रहकर विद्या होत था । ऐसे क्षेत्तोंका ( युवानं पतिं विन्दते ) कारणमें विवाह होता था । स्त्री भी घरकी होती थी और घर भी युवा होता था । दोनों कारण और विधायुक्त होते थे । इसलिये विवाहके मंत्र वे मान्यार्थक समझते थे ।

' धर्म-जय-काम-मोक्ष ' ये चार पुरपार्थ हैं । धर्मका आचरण महावर्षाधर्ममें शुरू होता है । तदनन्तर ' जय ' को धनको प्राप्त करना होता है । धन प्राप्त करके ' काम ' सर्वात् विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना होता है । इसलिये चतुर्विध पुरुषार्थोंमें ' जय ' को पहिले रखा और ' काम ' को उसके पश्चात् रखा है । धनहीनसे गृहस्थ-धर्मका पालन ठीकतरह नहीं हो सकता है, इसलिये कहा है कि—

अग्ने सद्य कुमारीं भागमेष्टु । ( अथर्व २१६११ )

' अपने साथ कुमारीके पास जायें और उसको अपनीके रूपमें प्राप्त करें । ' स्त्रीका और आचरणोंके पोषण करनेका भार कुपपर आता है । इसलिये विवाह प्राप्त करनेके पश्चात् पुत्र धन प्राप्त करें और पश्चात् विवाहका विचार करें । विवाहके पश्चात्—

भगव्य जुष्टा इयं सारी

पत्या अधिराघयन्ती सं प्रिया अस्तु ॥

( अथर्व २१६१४ )

' देवर्षको प्राप्त हुई यह स्त्री, पतिते शिरोध न करती हुई पतिके शिप हो । ' विवाहके पूर्व यह स्त्रीकी गिला मिलनी चाहिये, कि यह पतिके घर किस तरह रहे । आश्रम स्वतंत्र विचार बढाये जाते हैं । स्वतंत्र विचार अथर्व चाहिये, विचारोंकी गुलामी नहीं चाहिये, परंतु यह स्वतंत्रता पैदा नहीं चाहिये, कि जो पतिव्रतीमें शिरोध पैदा करें । इसलिये कहा है कि—

पतिं गत्वा शुभया वि राजतु

युवाय युवानां मदीयि मयापि । ( अथर्व २१६११ )

‘यह भी पतिके घर जाकर उत्तम वैश्वर्य प्राप्त बने, पुत्रोंको उत्तम करके रानी जैसी निराशरी रहे।’ यहाँ ‘महिषी भवति’ यह पद मुख्य है। सद्योपनी या रानी जैसी यह भी पतिके घर निराशरी रहे। यही यह योग्यता है। राष्ट्रका सर्वधन करनेका कार्य क्षियोंका है। क्षिया संतान उत्पन्न करती हैं, जिससे राष्ट्र बढता रहता है। जिस राष्ट्रमें बचल पुरष ही पुरष हों, यह राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। प्रजापति वृद्धि करना क्षियोंका ही कार्य है। इसलिये क्षियोंको रानीके समान धरमें रखना चाहिये, ऐसा वेद कहता है। पतिके घर शापी हुई भी क्या क्या इच्छा करे, इस विषयमें कहा है—

भाद्रासना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रायिम् ।

(अपर्व १४।१।१२)

यही पतिके घर (सौ-मनसं) उत्तम मन और उत्तम विचारोंसे साथ रहे, (प्रजां) उत्तम संतान होनेकी इच्छा करे, मेरे द्वारा उत्तम संतान उत्पन्न हों ऐसा विचार मनमें धारण करे, उत्तम भाग्य और वैश्वर्य प्राप्त हो ऐसी इच्छा भी करे। धरने व्यवहार ऐसे करे कि जिससे वह धरकी रानी हो ऐसा देखने वालोंको पता लगे।

परपुः अनुमता भूया सं महस्य समृताय कम् ।  
(अपर्व १४।१।१२)

‘धरमें यही पतिके अनुकूल व्यवहार करती रहे। और अमरत्व और आनन्द प्राप्त करनेके लिये प्रयास करे।’ अनुपु और आनन्द प्राप्त करना चाहिये। समृत्तत्वका जय दीर्घ-जीवन और आनन्दका कार्य मलका कामिपूर्ण सुख है, यह तो उस समय प्राप्त हो सकता है कि जिस समय धरमें पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली पत्नी हो और पत्नीके अनुकूल आचरण करनेवाला पति हो। धरमें परस्पर अनुकूल व्यवहार हो, तो आनन्द और शान्ति स्थापित हो सकती है। मान-धर्मों प्रतियोग तो होते ही रहेंगे, पर उनकी घटावा नहीं चाहिये, मर्दादमें रचना चाहिये, उससे धरमें कामिमुख बढ सकता है।

### क्षियां सूत काते

धरमें पुरसको समय क्षियां सूत काते और बनवा बनावे-देवीः अष्टान्तु तन्निरे अमितः

अन्तान् भददन्त भययन् ।

सं ध्ययन्तु आयुधमती

इदं मासः परि धन्यः ॥ (अपर्व १४।१।१५)

‘देवियां धरमें पुरसको समय सूत काते। ताका माया-

तुनें, कपड़ेके सन्तोंको ठीक करे। तुनें, मिलकर धुनेका कार्य उत्तम रीतिसे करें। दीर्घ आयु प्राप्त करती हुई भी इस कपड़े-को पहने।’

पत्नीका बना हुआ कपड़ा पुत्र पहने। इस तरहके कपड़े पहनतेसे धुनेवाली पत्नीका कारण हर समय होगा और इस कारण उस पतिके मनमें अपनी पत्नीके लक्षधमें कितना प्रेम रहेगा, इसका विचार पात्रक कर सकते हैं। ‘‘ अपनी पत्नी-का बनाया हुआ कपड़ा मैं पहन रहा हूँ, ’’ यह कल्पना ही कितना आनन्द देनेवाली है, इसका विचार करतेसे पता लग सकता है कि, यही तो शुद्धसाधनमें प्राप्त होनेवाला आनन्द है। हर एक शुद्धसीको यह आनन्द प्राप्त हो और इससे शुद्धसी लोग सुख प्राप्त करें, यही वेदका आदेश है।

### निष्कपट व्यवहार

क्षीपुरवका परस्पर व्यवहार निष्कपट होना चाहिये। इस विषयमें वेदका कहना है—

यत् अन्तरं तत् वाह्यम् । यत् बाह्यं तत् अन्तरम् ।  
(अपर्व १४।१।१४)

‘जैसा मनमें हो वैसा ही बाह्यका व्यवहार हो और जैसा बाह्यका व्यवहार हो वैसा ही मनमें हो।’ किसी तरहका छान या कपट इन दोनोंके व्यवहारमें न हो। कितना बड़ा आदर्श धरने शुद्धिस्वर्णोंके सामने रखा है। इससे ही जीवन समृद्ध-रूप और आनन्दमय हो सकता है।

### परस्पर प्रेम

पुनरीका-पति-पत्नीका-परस्पर प्रेम हो। वे एक दूसरे-को चाहें, कभी उनमें परस्पर विरोध न हो, इस विषयमें वेदका है—

यद्यः शुद्धं लिङ्गं सप्रमत्तं परिपश्यते ।  
यथा परि प्यजस्य मां यथा मां  
कामिनी शतः यथा मन्त्राध्यायः सतः ॥

(अपर्व १४।१।१५)

‘जिस तरह पृथ्वी के पत्तों तक छिपट जाती है, इसी तरह है यही ! तू मुझसे छिपट जा, मेरी इच्छा करनेवाली हो और मुझसे दूर जानेवाली न बन।’

यह दोनोंका आन्तरिक प्रेम है। इसी प्रेमके कारण यह शुद्धसाधन ही शुद्धीका सर्वप्रथम मन जाया है। इस प्रेम-धुलके मास होनेपर दोनोंकी आयु भी बढ़ती है। रोग भी मनेके सामर्थ्य बढ जतेसे दूर होते हैं, जीवनमें रस भाग

हे और सब प्रकारसे बालक अनुमर्षमें जाता है। तथा और देखिये—

अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इथो सहासति ।

( अथर्व. ७।३६।१ )

‘ हे धी ! अपने हृदयमें मुझे रख, हम दोनोंके मन तथा ही परस्पर मिले रहें । ’ दोनोंके मनमें परस्पर प्रेम-भाव रहे, कभी भी विरोध उत्पन्न न हो । कभीके हृदयमें यदि वाग्व्यवहारे और पत्रिके हृदयमें फाटी रहे । इस तरह दोनों अन्तःकरणसे एक जैसे होकर रहें ।

## केश शिष्योका सौंदर्य है

शिष्योका सौंदर्य केशोंमें बढता है । इसलिये शिष्योको उचित है कि ये अपने केशोंका संरक्षण करे—

वेदा नमो ह्य धर्म्यन्तां त्रीण्योः ते अस्तिताः पतिः ।

( अथर्व. ६।१३७।३ )

‘ तेरे सिरपर वेदा जैसे बड़े जैसे धाम बढती है और वे बात श्रेष्ठ न हों, काहे ही रहें । ’ केशोंमें अपने बालोंका संरक्षण करना चाहिये । इस कार्यके छिद्र वनस्पतिवा भी हैं । वेदावर्धक-औषधिका वर्णन इस प्रकार है—

देवी वैध्यामपि जाता पृथिव्यामस्योपधे ।

तां त्या नितलि केसोभ्यो रंहणाय खनामसि ॥

( अथर्व. ६।१३६।१ )

‘ हे औषधि ! तू दिव्य गुणोंसे युक्त पृथिवी पर उगलती है, हे धीमे प्रेम्नेवाणी औषधि ! केशोंको बचाना और सुरक्षित बनानेके लिये हम तुझे लोहते हैं । ’

इस औषधिके रखने बात बढते हैं, दृढ़ते नहीं, लम्बे और कांचे रहते हैं और छुटार सीसते हैं ।

इस औषधिका नाम वहाँ ‘ नितलि ’ दिया है । यह कौनसी वनस्पति है, इसको शोध करना चाहिये । इससे को लाभ होते हैं, वे इस नामसे स्पष्ट रीतिसे मिले हैं । यदि इस वनस्पतिकी ओज्ज्वी जाय, तो बहुतसेलोगोंका लाभ हो सकता है ।

सूक्त ६।५९ में कान्धको, जीवन्त के नाम भी पाये हैं ।

## रश्मिस्नान

कौनो रश्मिस्नान करनेकी भी सलाह देय दीया है । रश्मि-स्नानका कार्य सूर्य-किरणोंका स्नान है । सूर्यके किरणोंके स्नानसे सर्व्व आरोग्य प्राप्त होता है, देखिये—

सूर्यस्य रश्मिन् अनु याः सञ्चरन्ति

मरीचीर्वा या अनुसञ्चरन्ति ॥ ( अ. ७।३६।५ )

‘ सूर्यकी किरणोंमें अनुकूलतासे तथा चरनेवाली अथवा सर्व्व-प्रकारमें अनुकूलतासे गुमनेवाली शिवा हो । ’

‘ सूर्य आत्मा अन्तः तस्मिन् यः च ’

( अ. १।१।५।१; वा. य. ७।४३ )

‘ सर्व्व स्नाकर जंगमकी बातमा है । ’ इतना सामर्थ्य सूर्यमें है, सूर्य-प्रकाशसे यह सामर्थ्य अनुसंधान प्राप्त होता है । जो धी या पुरुष सूर्य-प्रकाशमें भग्न करते हैं, वे हम सामर्थ्यको प्राप्त करते हैं । शीघ्रता प्राप्तमें यह रश्मिस्नान उपयोगी होता है । इसलिये शिवा अथवा रश्मिस्नान कर, शिष्योका कार्य संगत उत्पन्न करना है, यह राष्ट्रशासक लिये सर्व्वत महत्त्वका कार्य है, इसलिये शिष्योकी सुरक्षा बनाने चाहिये । इस विषयमें वेदका यह आदेश है—

कर्त्तव्यं यस्मां ह्य रश्मि वातिन । ( अ. ७।३६।५ )

‘ कर्त्तव्य-शक्तिसे युक्त पृथिवी वहाँ हम प्राप्तमें सुरक्षा कर । ’ पृथ्वीमें कर्त्तव्य-शक्ति रहे, ऐसी रखरी सुरक्षा वेनी चाहिये और उसकी सुरक्षा भी होनी चाहिये ।

## सौके पातिव्रत्यकी सुरक्षा

धीरे पातिव्रत्यकी हर तरहसे सुरक्षा होनी चाहिये । राष्ट्रीय कार्योंमें यह कर्त्तव्य गुणवत्ता उत्तमरीय है । हम सम्बन्धमें वेदका कहना देना है—

देवा या पत्न्यो अथदन्त पूर्ण

मत्त मृषयस्त्वमथ ये निरेदुः ।

धीमा जायत आश्रयस्यापनीता

तुष्यो दधाति परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

ये गर्वा अवपद्यन्ते जगद् पक्षापनुद्यन्ते ।

अथ ये शक्तन्ते मिथो मृष्यजगता हिनोति तान् ॥ ७ ॥

( अ. ५।१० )

‘ इस सम्बन्धमें ऐश्वर्य्य रहित गौणता करना है, जो सब क्षति तर करनेके लिये बैठने है, वे भी वैपरी कहने हैं कि, जानी की अगार् सारी धी अवातक होती है, जो परम श्रेष्ठत्वमें भी स्वका करिने है । जो गर्व गिरावे जानि है, जहाँ अन्धेपत्तने जानी बागको प्राप्त होने है, जहाँ वीर आत्ममें ही लड़ने फिरने हैं, अगार् गर्व प्रकटकी धी उन सबका नाश करती है । ’

दिली की धी अगार् जाय कर्त्तव्य उस कीद रश्मि-

प्रत्येका नाम किंवा जप, तो वह पातिव्रत्यका नाम सब राहूका घात करता है, ऐसा डेवेजि तथा ऋषियोंके कहा है। जिस राष्ट्रमें ऐसी स्त्रियोंकी दशा होती है, वहा गर्भघात होते हैं, प्राणियोंकी हत्या होती है, आपसमें पीर लड़ते और अपना नाम करते हैं, इसलिये सोमके कष्ट उन सबका नाम करते हैं। इसलिये सोम पातिव्रत्यकी सुरक्षाकी जानी चाहिये।

राष्ट्र अन्ध जो प्रजाजन रहते हैं वे राष्ट्रमें सुरक्षित रहें, उनका नाम न हो, ऐसा यदि डरता हो, तो राष्ट्रमें स्त्रियोंके पारिव्रत्यका स्थान अक्षय होना चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंका पारिव्रत्य जहा सुरक्षित नहीं रहता, वहा भय पातें सुरक्षित रहेंगी ऐसा समझना भ्रम है।

### कामविकारसे अपना बचाव

हस अगमै 'काम' देवता है कि जो अनेक पाप करता है। इस विकारसे ही जगत्में स्त्रियोंका अपहरण होता रहा है। इस कामके विषयमें कहा है—

सप्तलहर्न कामं कामं हविषा शिषामि ।

( अथर्व १।१।१ )

'सप्तलहर्न' नाम करनेवाले ब्रह्मण कामको मैं घरसे शिक्षित करता हूँ।' अर्थात् यज्ञके त्यागभावसे ही कामको संयममें रखा जा सकता है। यह काम बड़ा आरक है। इससे बचावदेवता कवच शान है, इस विषयमें कहा है—

यत् ते काम शर्म शिषकथं

उद्धु ग्राह धर्म विततं

अनतिर्याधयं दृष्टम् । ( अथर्व १।१।१६ )

'कामका एक उत्तम कवच है, जो शीघ्र केन्द्रमें उत्तम रक्षा करता है। यह कवच पहनकर अनुन्व (अन्-मति-र्याधयं) शत्रुसे श्रावसे बचा रहता है। यह कवच (ग्राह धर्म) शान्तकी कवच है।' इस कवच को बाहर शान्ति अपने ज्ञानसे अपनी सुरक्षा करता हुआ कामके हस्तोंमें अपना बचाव करता है और सुरक्षित रहता है।

अर्थात् ज्ञानसे सुरक्षित हुआ अनुन्व कामको अपने वशमें रक्ता है, जिससे उसका बचाव होता है। इस कारण स्त्री-पुरुषोंको प्रथम मायुमें उत्तम शान देना चाहिये, ताकि ज्ञानके कवचसे उनका काम बाह्य शत्रुओंसे उत्तम बचाव हो सके। ऐसे ज्ञान कवचको पहननेवाले पुरुष यदि राष्ट्रमें हों, तो स्त्रियोंके पारिव्रत्यका बचाव उत्तम रीतिसे हो सकता है और जहाँ स्त्रियोंके पारिव्रत्यका बचाव होता है, वह राष्ट्र एक उत्तम व अक्ष राष्ट्र बन सकता है।

### पत्नीके गुण

जिन शुभगुणोंके कारण पत्नी श्रेष्ठ समझी जाती है, वे शुभ गुण ये हैं—

मृदुः निमन्युः केवली मियवादिनी अनुग्रता ।

( अथर्व ३।२।५४ )

१. मृदुः— स्त्री सान्त्व समाजवादी हो।

२. निमन्युः— स्त्री मोघ करनेवाली न हो।

३. मियवादिनी— स्त्री मिय बोझनेवाली हो।

४. अनुग्रता— स्त्री पतिके अनुग्रह कार्य करनेवाली हो।

५. केवली— स्त्री केवल अपने पतिकी ही बगल रहने-वाली हो।

६. बचा— पतिके वशमें रहनेवाली स्त्री हो।

( अथर्व ३।२।५६ )

७. चित्तं उपायसि— पतिके चित्तके साथ अपना चित्त लगावनेवाली स्त्री हो। ( अथर्व ३।२।५५ )

८. कर्तौ अस्तः— पति जो कर्म करे, उसमें सहायता देने-वाली स्त्री हो। ( अथर्व ३।२।५७ )

९. अकतुः— पतिके विरुद्ध कोई कर्म करनेवाली स्त्री न हो। ( अथर्व ३।२।५८ )

इन शुभगुणोंसे युक्त धर्मवाली स्त्री गृहस्थाध्यायको उत्तम रीतिसे बहाली बचानेके लिये स्त्रीके अन्तर ऐसे शुभ गुण होने चाहिये। स्त्री और पुरुष एक विचारवाले हों तभी यह गृह-स्थाध्याय सुव्यवस्थित हो सकता है। वेदों इस गृहस्थाध्यायको सुसंपूर्ण करने लिये कितना उत्तम उपदेश दिया है।

### वीर पुत्रकी उत्पत्ति

पुत्रका नाम देवमें 'वीर' तथा कन्याका नाम 'वीरा' अथवा 'सुवीरा' है। पुत्र नैता हो, इस विषयमें ऋग्वेद-७।५४ ब्रह्मण्य व्यासमें आने योग्य है—

जिष्णु रयेष्टाः समेधो युषाऽस्य धजयानस्य  
वीरो जायताम् ( या जु ११।१९ )

'विजयवीर्य, रथमें बैठनेवाला, सभामें सम्मान पाने योग्य, सक्षम नैता कार्यकर्ता पुत्र इस यज्ञज्ञानके हो। इस यज्ञमें वीरपुत्र चाहिये, यह माङ्गलशा स्पष्ट है। इसी इष्टाको इस मैथने और स्पष्ट रीतिसे प्रकट किया है—

आ ते योनिं गर्भं धतु युमान् याम ह्येषुचिम् ।  
आ वीरोऽथ जायतां पुत्रस्ते दशमासम् ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु ज्ञात्यताम् ।  
भयासि पुत्राणां माता जातानां जनयात्र यान् ॥ ३ ॥  
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यः मुग्धं शं असह्य  
शं उ तस्मै त्वं भव ॥ ५ ॥ ( अमर्ष ३१२३ )

' हे स्त्री ! जैसे तरकसमें घाल रहता है, वैसे ही पुत्र तेरे गर्भमें रहे । तेरा पुत्र वीर बने और वह दुर्जनों भासमें उत्पन्न हो, अर्थात् उसकी याद उत्तम रीतिसे हो और परस्पर उसका भय हो । हे स्त्री ! पुत्रको उत्पन्न कर और उस पुत्रके परचाप भी तुझे पुत्र ही हो । इस तरह वृद्ध अनेक पुत्रोंकी माता बन । तुझसे उम्मे हुए पुत्र हों और भविष्यमें होनेवाले भी हुए ही हों । हे स्त्री ! इस तरह वृद्ध पुत्रको प्राप्त हो, वह पुत्र तुझे सुख देवे और वृद्ध उस पुत्रको सुख देनेवाली बन । '

इस तरह पुत्र होनेकी इच्छा वेदमें वर्तमान है । घरमें पुत्र होना चाहिये, जिससे सुख चलता रहे और कुलकी वृद्धि होती रहे ।

यहाँ 'याग इष्टुर्भिः' के पद भवनीय हैं । सरस्वती याग रहता है, वह याग समुक्तों मारनेके लिये ही होता है । उसी प्रकार वह पुत्र दुष्टोंकी बिलनेवाला बने, शूरवीर बने वह इसका प्रत्यय है । 'वीर' का अर्थ भी ऐसा ही प्रस्तावित है । 'वीर्यपति अभिमान' दुष्टोंकी जो दूर करता है उसको वीर कहते हैं । पुत्र ऐसा वीर दूर प्रभावी बली हो, वह वेदका कइया है ।

### गर्भक्षोपका निवारण

छोमें गर्भ रहता है, तब माताप्रकारके रोग उस गर्भा-घाघमें होते हैं, उन सब दोषोंकी दूर करना चाहिये और निर्दोष पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सं  
प्रवतोषां पृणोति अस्याः तं नाशय ॥ १९ ॥  
दे अन्नः जातान् मारयन्ति स्मृतिरा अनुसरेते ॥ २० ॥  
अप्रजास्त्यं मार्तवत्सं रोदं अर्धं आकष्यं प्रतिमुञ्च ॥ २१ ॥  
( अमर्ष ४१६ )

' जो स्त्रीको मरनेवाले बालकोंकी माता बनाता है, अर्थात् जिस कृमिके कारण स्त्रीके पुत्र सम्पत्ते ही मर जाते हैं, उन रोग कृमियोंकी दूर करो । सेवान न होना, गर्भमें ही सेवानका मर जाना मरना उत्पन्न होते ही मर जाना आदि दोष निवृत्ति होते हैं, वे रोग या वे रोगके कृमि स्त्रीके प्रसूति-पूहले दूर हो जाय । अर्थात् वे रोग कृमि स्त्रीके गर्भाशयमें न जाय तथा प्रसूतिपूहले भी न रहे । '

अर्थात् स्त्रीको इन रोगकृमियोंसे कोई हानि न पहुँचे और हर स्त्री सुसन्ताववाली हो और वह सगृह्य भी उत्तम बलशाली और वीर और दूर बने । इस विषयमें और भी अधिक विचार देने का है—

शर्मो अथर्वण आरुहः तत्र पुंसयनं दृढम् ।  
तद् धि पुत्रस्य चेदनं तद् स्त्रीषु आमरामसि ॥ १ ॥  
पुंसि धि रेतो भवति तत् स्त्रियां अनु पिच्यते ।  
तद् धि पुत्रस्य चेदनं तत् प्रजापतिः अत्रवीत् ॥ २ ॥  
स्त्रीष्वयमन्यत्र दधत् पुमांस उ दधत् इह ॥ ३ ॥  
( अ. १११ )

' जमी (सैवर) के वृक्षपर उगे हुए अन्नार्थ (पीपल) को औषधिविषयमें सेवन करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, पुत्र मासिका वह उत्तम साधन है, वह औषध स्त्रीको वैनी चाहिये । पुरुरका वीर्य छोमें साँचा जाता है, उससे पुत्रकी मासि होती है, ऐसा प्रजापतिने कहा है । यहाँ हमारे घरमें पुत्र ही उत्पन्न हों, एडकीं उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो । '

जमी वृक्षपर उगे हुए अन्नार्थ (पीपल) वृक्षका पत्र लग अर्थात् जड़, छिलका, पत्ते, त्वर, पुर मासिका पूर्ण स्त्रीको दिया जाय, तो पुत्र न होनेवाली स्त्रीमें भी पुत्र उत्पन्न होते हैं । यह पुत्र उत्पन्न करनेवाली औषध कहा कही है । रक्षा स्त्री पर इस औषधका प्रयोग करने ईश्वरता योग्य है ।

इस मंत्रका दूसरा भी एक अर्थ है । ( शर्मो ) शान्त और सेवकशील स्त्रीका सम्बन्ध (अभ्य-न्य) पौष्टि तैत्तरीयवेदान्त पुत्रके साथ हो गो उस छोड़ पुरुर सदान होगी है । यहाँ स्त्री ( शर्मो ) अर्थात् सेवकशील हो और पुरुर (अभ्य-न्य) पौष्टिसे समान वीर्यवाद हो ऐसा कहा है । स्त्री-पुरुरोको यह बात ध्यानमें रखने योग्य है । ध्यायनादि करके पुरुर पौष्टिसे समान वीर्यवाद बने, तथा स्त्री सेवकशील बने । इस पर पुत्र ही उन दोनोंके सम्बन्धसे होते हैं ।

### पूर्य-चन्द्र जैसे बालक

घरमें बालक सुखे अथवा चन्द्र जैसे हो । लड़िये माताका यह विचारणीय है । इसमें सूर्य और चन्द्र जैसे पुत्र हों और वे घरमें सेवते रहें, ऐसी इच्छा वेदने प्रकटकी है, देखिये—

पूर्यापर चरतो मायर्पतां  
शिवा बीटन्तो परि यातोऽर्पयम् ।

## विध्वान्यो भुपता विधये

अथर्ववेदो विद्वधज्जायसे नच. ॥ ( अ. ५।८१-१ )

‘ ये दो सालक सूर्य और चन्द्र सेठते हैं और जिकिते भागे पीठे चलते रहते हैं और वे अमण करते हुए समुद्र-तक पहुचने हैं । इनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और दूसरा अतुलोंको घनाता हुआ न्यब भी नया नया बनता जाता है ।

अर्थात् इन दो सालकोंमें एक संपूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा अतुलोंका निर्माण करता है । ऐसे सूर्य चन्द्र जैसे पुत्र परपरमें उत्पन्न होने चाहिये । ऐसी इच्छा पति और पत्नी अपने अपने धारण करें, यह बोध यहां मिलता है ।

## मैखला-भंजन

कमरको कलनेके लिये कमरबध बाधा जाना है । कमरको कलनेसे शक्ति घटती है और रोगी कमर रखनेसे रोगरूप उत्पन्न होता है । इसलिये वैदिक-संस्कारोंमें ‘ मैखला-धधन ’ का विधान है । कोई पुत्र रोगीकमरबधता न हो, सब कटिबद्ध हो का तैयार हो और बीरता दिखानेके लिये तैयार रहे, इसलिये कहा है—

वीर्यमी भव मेखले । ( अ. ५।१११-२ )

मेखला कमर पर बांधनेसे शत्रुके बीरोंको भारीसे शक्ति नश्वरमें लाता है । तथा और देखिये—

यां त्वा पूर्वं भूतवृत्तः श्रपयः परिषेधोरे ।

सा त्व परि व्यजस्य मां दीर्घायुताय मेखले ॥

( अथर्व. ५।१११-५ )

‘ हे मेखले ! जिस दुष्टकी भूतकालके वराधन करनेवाले क्रियेवैति बाधा था, वह तु मेरी दीर्घायुके लिये मेरे शरीर पर लिपटी रहे । ’

मनुष्य मेखलाधधनसे दीर्घायु प्राप्त करके प्राचीन विद्वान् क्रियाओंकी तरह उच्चम प्रभावी आचरणको अपना सकता है ।

मेखलाधधन कटिबद्धता बताता है । हरएक कार्य करनेके लिये कटिबद्धता रहनी चाहिये, जिससे उत्साहपूर्वक कार्य हो सके । बीरता बहानेके लिये मेखलाधधन सर्वोत्तम आवश्यक है । इसलिये कहा है—

अथवा तपसा धमेण मेखलया सिनमि

( अ. ५।१११-१३ )

‘ ज्ञान, तप-उपन्यास करनेकी शक्ति, परिश्रम कर-

नेका सामर्थ्य और कटिबद्धता इन सबसे मैं युक्त हूँ । ’ इतने गुण सत्त्वमें होने चाहिये । ज्ञान और विज्ञान मनुष्यके लिए सर्वोत्तम आवश्यक हैं, ज्ञान मन शान्तिके लिये और विज्ञान वैदिक सुन्योपभोगिके लिये । शक्ति-उत्पन्न, शान्ति-लाभ, तप-परामय इन इच्छाका सहन करके भी अपना कर्तव्य करना चाहिये, अन्न करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और कमर कमनी चाहिये । यह सब तरजोंको तैयार रहनेकी सूचना है । कुछ भी दो सदा कर्तव्य करनेके लिये निश्च रहना चाहिये । वह इसका तात्पर्य है ।

गृहस्थीको अपना-अपना घर बना कर उसमें रहना चाहिये । घर कैसा हो इस विषयका विचार अथर्ववेद शास्त्र १ सूच १२ में किया है । इस सूत्रमें घरका पर्याप्त करनेवाले के पद हैं, जो घरका यथायोग्य पर्याप्त कर रहे हैं, इसलिये इन पदोंका ही यही विचार करते हैं—

१ अम्बावती— ( शाला )— अपने घरमें घोड़े हो । बाहर जाने जानेके लिये घोड़े ही उपयोगी हैं । ( मंत्र २ )

२ गोमती— घरमें गाँवें हों । गौका दूध पुरिका उत्तम साधन है । गौ और बैल ये दोनों उपयोगी पशु हैं । गाव दूध देती है और बैल खेती करके धान्य देता है । ( मंत्र १ )

३ पयस्यती— घरमें भरपूर दूध हो ।

४ धृतयती— घरमें भरपूर पी हो ।

५ धृत उत्तमाणा— घर पी देनेवाला हो । ( मंत्र १ )

६ ऊर्जस्यती— घरमें विपुल मज्जा हो । ( मंत्र १ )

७ धरणी, ८ धृतिधान्या— घरमें पर्याप्त धान्य हो ।

९ वरिधुताः कुम्भ— घरमें मंढे राहवसे भरा पका हो । ( मंत्र ७ )

१० दृज कलदी— खीरले और कलत घरमें हों । ( मंत्र ७ )

११ धृतस्य कुम्भ— पीले भरा हुआ पका घरमें हो । ( मंत्र ८ )

१२ मयकमा यक्ष्मनाशिनी. आप.— निरोग और रोगोंको दूर करनेवाला जल घरमें हो । ( मंत्र ९ )

घरमें ये वस्तुएँ रहने चाहिये । जिससे घरके लोग इष्ट-पुष्ट तथा निरोग रह सकें । आनन्दन गायका भी और दूध मिलना सुख हो गया है । इससे पोषक ग्राह्य वस्तु नहीं मिल पा रही । गायका दूध, दही, घाघ, मक्खन, तथा पीले घरमें जहाँ धने भरे होकर, वहाँ भात पात्र भर भी नहीं

मिल पा रहा है। इस समस्याका केवल एक ही हल है कि लोग अपना ध्यान मोक्ष करनेके कार्यमें लगावे।

### अविधि-संस्कार

वेदोंमें विधान है कि अविधि संस्कार भी की जायते करना चाहिये—

पूर्ण नारि प्र धर कुम्भे पतं  
पृतस्य धारां भ्रमृतेन संभृताम् ।  
इमां पातन् भ्रमृतेना समदधि  
हृष्टापूर्तं अभि रक्षत्येनाम् ॥ ( अ. ३।२।२८ )

‘ हे गृहपति ! अविधियोंको एरोसनेके लिये बीजा बघा ले जाओ, और अविधियोंको जितना चाहिये उतना दो, कंगूही न करो । ’ इस प्रकारका दान घरकी ओमा बढाया है । घरका महत्व सुरक्षित रहता है ।

घरमें अविधि जाये तो उस विद्वान् अविधिका संस्कार करना चाहिये । गृहस्वीका यह कर्तव्य ही है, विद्वान् पुरुष संस्कार करनेके लिये, संवत्सरा करकेके लिये, देसोदार करनेके लिये भ्रमण करते हैं । उनका आदर संस्कार, आश्रय पान आदिका मन्मथ गृहस्थी पुरुषोंको ही करना चाहिये ।

गृहस्थियोंके आश्रयसे ही वे उपवेशक जीवित रह सकते हैं और राष्ट्रके उद्धारका कार्य कर सकते हैं । यदि गृहस्थी लोगोंने इनकी आज्ञा तथा अन्य प्रक्रमकी सहायता न की, तो उनका गुजरा किम तरह हो सकता है, और यदि उनका गुजरा ठीक तरह नहीं हुआ, तो वे अपना कार्य भी किस तरह कर सकते हैं ? अतः इसका धार गृहस्थियोंको ही सहन करना चाहिये ।

गृहस्थीको ही हल राष्ट्र संवर्धनका वास्तव करना चाहिये । नहीं तो वे उपदेशक कहा जाय । इस कारण गृहस्थपर यह भार है ।

### गौत्रोंका संरक्षण

घरमें गौत्रोंका संरक्षण होना चाहिये । ‘ गौत्रं ’ घरकी ओमा बढाती है और उनका उपयोग भी घरवालोंको है—

गावः । सूर्यं कुरां चित् मेदयथ ।  
अधीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ ॥ ( अ. ३।२।३४ )

‘ हे सौते ! तुम इस अनुष्णको हृष्टपुष्ट बना देती हो और निस्तेजको सतेज बनाती हो । ’ यह गौत्रोंका गुण है तो घरके गलबोंके लिये बडा सहायक है ।

२ ( अर्थ. भा. ३ गृ. द्विती )

( गावः ) सूर्यवत्ते रुशन्तीः ।

सुप्रपाणे शुद्धा अयः नियन्ति । ( अ. ३।२।३५ )

‘ यौवं उत्तम वाम्भ सार्धं और उत्तम जलस्थानमें शुद्ध जल पीवें । ’ इस प्रकार गौत्रोंका वास्तव घर-घरमें होना चाहिये । आज यौवं सभी जाती हैं । वेदमें गौ, विल और पर्वतको ‘ वाम्भ ’ बर्णात् अवश्य कहा है । जिसका वध नहीं होना चाहिये उसका ही वध हो रहा है, इससे हमारे आत्मिकी हानि इतनी हो रही है कि जो किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकती ।

अतः, गोरालय, गृहस्थाल आदि बहुत उपदेश इसके पश्चात् हैं । वे सब मन्वीय हैं । अथ बात भारी है अण-रहित होनेकी, ॥ अथ देखिये—

### अनगरहित होना

अनगरहित होनेके विषयमें वेदमें बडा उत्तम उपदेश है । यह देखिये—

अमृणा अस्मिन् अमृणा परस्मिन्  
मृतीये लोके अमृणाः स्याम ।  
ये देयमानाः पितृयाणाश्च लोकाः  
सर्वान् पथो अमृणाः मर सिन्धेम् ॥

( अ. ३।३।३६ )

‘ इस लोकमें हम अनगरहित हो, परलोकमें अनगरहित होकर रहें, मृतीय लोकमें भी हम अनगरहित होकर रहें, तो देवमान और पितृमान मर्त्य हैं उनसे हम अनगरहित होकर जायें । ’

इस तरह उक्त होनेके संक्षेपमें कहा है । यह विषय अनेक गृहस्थोंको ध्यानमें धारण करने योग्य है । अनगरहित होना यह अनेक गृहस्थोंके लिये आवश्यक है । क्योंकि मर्त्यों रहनेसे अनेक आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है । इसलिये अनगरहित होना हरवक्त लिये उचित है ।

### विपत्तिको हटाना

अज एक विपत्ति है ॥ घरकी अनेक विपत्तिया इस विषयमें हैं । हरएक विपत्तिको दूर करना आवश्यक है । इन विपत्तियोंको हटानेके विषयमें यह मंत्र अत्यंत विचार करने योग्य है—

दौष्यन्त्यं दौर्भाग्यं रक्षो अभ्यं अरुध्यः ।  
तुर्भाग्योः सर्वा दुर्वाचः ॥ अस्मन्नाशयामसि ॥

( अ. ३।३।३७ )

‘दुष्ट स्वप्न, दुःखमय जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विकासमें होनेवाली बाधाएँ, निर्धनता, बुरे चमत् बोलनेका स्वभाव, सब प्रकारके दुष्ट भाग्य करनेका अभ्यास ये सब विपत्तियाँ हमसे दूर हों।’

ये सब विपत्तियाँ हैं। इनसे कष्ट होते हैं, इसलिये इन विपत्तियोंको दूर करना चाहिये और भाग्य प्राप्त करना चाहिये।

तेन ॥॥ भगिनं कृणु

अथ द्रान्स्वरातयः । ( अ १।११।३ )

‘मुझे भाग्यशर कर, सब आवृत्तियाँ मुझसे दूर हों।’ यह इच्छा हर एक गृहस्थीमें रहती चाहिये। और इसके लिये उसके प्रयत्न होने चाहिये। अपनी सुरक्षा करनी चाहिये। गृहस्थीके विचार हों, कि—

यो नो द्वेष्टि अधरः सस्पदीष्ट  
यं उ द्विष्यः तं उ प्राणो जहातु ॥ ( अ १।१२।१ )

‘जो अनेका हम सबसे द्वेष करता है वह नीचे गिर जाय, तथा जिस अनेको हम सब द्वेष करते हैं उसके प्राण उसको छोड़कर चले जाय।’ अर्थात् बह मर जाय।

अपनी सुरक्षा करनेके लिये जो यत्न होना चाहिये उसमें बहुत सव्गालोंकी सुरक्षा हो और दुष्टोंकी अस्पृशिता रहे, ऐसा यत्न करना चाहिये।

इसप्रकार गृहस्थाश्रमके उपदेश—वराह मंत्र इस सङ्गमें आये हैं। इनका संक्षिप्त सा परिचय इस भूमिकामें देनेका हमने प्रयत्न किया। इस सङ्गमें सभी सूक्त मन्त्रोंय व आचरणीय हैं।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
सम्पादक—स्वाध्याय मण्डल





अथ षष्ठेऽध्याये

भाग तीसरा

गृहस्थाश्रम

षष्ठिश्च गृहस्थाश्रम

कांड ६, सूक्त १२२

(कृषि- गृह- देवता- विष्णुजी ।)

ॐ एवं मागं परि ददामि विद्वान्विषयकर्मप्रथमुजा आस्य ।

असामिदं च जरासः परस्ताद्विद्वान् तन्मुमुनु सं तरेष

॥ १ ॥

ततं तन्मुमुनेके तरन्ति येषां दुष्टं पिप्पुमार्यतेन ।

अमुन्मयेके ददवः प्रयच्छन्तो दातुं चेन्मिदं नस्त स्वयं एव

॥ २ ॥

अर्थ— १ ( विष्णुकर्मन् ) दे समस्त जगत्के रचयिता ! २ ( अतस्य प्रथमजाः ) सत्य विष्णुका पहिला प्रवर्गक है, इस जातिकी ( विद्वान् ) जातका हुका मैं ( एवं मागं परि ददामि ) इस अपने आपको तेरे लिये पूरी तरहसे देता हूँ । ३ जरासः परस्तात् अस्माभिः दत्तं अविच्छिन्नं तन्तुं ) मुझसे पछात् भी अपने हास दिये हुए विच्छेदरहित वस्तुके धृतसे इन ( तन्तु संतरेष ) निश्चयपूर्वक तन्तुबुनावके साथ पुनःसे पार हो जायें ॥ १ ॥

( येषां आयतेन पिप्पु दत्तं ) जिनके मानते पितृवर्गके देव कृष्णाय पुत्र जन्म है, ( एके ततं तन्तुं तन्तु तरन्ति ) ऐसे कई लोग इस केले हुए वस्तुवर्गके तन्तुबुन रहकर दुःखसे पार हो जाते हैं । ( एके अमुन्मु ) कई दूसरे वस्तुवर्गसे रहित होकर भी ( ददवः ) दान देते हैं, वे ( प्रयच्छन्तः च इत् दातुं शिष्यान् ) दान देते हुए यदि देनेके लिये समर्थ हुए, तो ( सः स्वयं ददवः ) वह स्वयं ही हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— दे जगत्के रचयिता प्रभो ! तू ही सत्यवर्गका पहिला प्रवर्गक है, यद मैं जानता हूँ, इसलिये मैं अपने आपको तेरे लिये समर्पित करता हूँ । इस समर्पणसे जो अविच्छिन्न पद बनना, उसकी सहायतासे मैं दुःखके पार हो जाऊँ ॥ १ ॥

इस पदके आशयसे ही कई लोग पुनःसे पार हुए हैं । जिनका हृदय पैदल पद पुमाना होता है, वे पंथवाते हीन होनेपर भी और कठिन समय आनेपर भी उस पदको आपस कर देते हैं । ऐसे लोग जहाँ होते हैं वहाँ लगभग हो जाता है ॥ २ ॥

अन्वारभेशामनुसंरभेशामेतं लोकं अर्हानाः सचन्ते ।

यद्वां पूर्वं परिविष्टमद्यौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेयाम्

॥ ३ ॥

यज्ञं यन्तं मनसा ब्रह्मन्ब्रह्मन्मारोहामि तपसा सप्तोनिः ।

उपहृता अग्रे जससः परस्तात्तृतीये नाके सप्तमार्दं मदेम

॥ ४ ॥

शुद्धाः पूता योषिता यज्ञिषा इमा ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।

यस्कांम इदमभिपिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुतान्स ददातु तर्मे

॥ ५ ॥

अर्थ— हे ( दम्पती ) श्रीपुरुषो ! तुम दोनों (अनुसारमेधां) परस्पर अनुकूल रहकर शुभ कार्यका प्रारंभ करो तथा (अनुसंरभेशां) परस्पर अनुकूलताके साथ प्रगति करो । (एतं लोकं अर्हानाः सचन्ते) इस गृहस्थाश्रमरूपी लोकको श्रद्धा धारण करनेवाले ही प्राप्त होते हैं । (यत् अग्रे परिविष्टं यं पूर्वं) जो पश्चिमारा तिरह हुआ हुआ तुम दोनोंका परिपक्व कष्ट हो (तस्य गुप्तये सश्रयेयां) उसको रक्षाके लिये तुम परस्पर एक दूसरेकी सहायता करो ॥ ३ ॥

(तपसा यन्तं पृहन्तं यज्ञं) तपसे करनेवाले बड़े पशुकी घेड़ियार (सप्तोनिः मनसा अनु मारोहामि) समान स्थानमें उत्पन्न हुआ मैं अनुकूलताके साथ मनसे चढ़ता हूँ । हे भग्न ! (जससः परस्तात् उपहृताः) हजारेके पहिले बुराये हुए हम (तृतीये नाके सप्तमार्दं मदेम) पृथीय स्थान अर्थात् स्वर्ग भूमिमें साप साय रहकर पुत्रको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

(इमाः यज्ञिषा शुद्धाः पूताः योषिताः) इन एन, इन्द्र और पवित्र स्त्रियोंको मैं (ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि) शान्तिके हाथोंमें धृक् धृक् अर्पण करता हूँ । (यद् यत्कांमः इदं यः अभिपिञ्चामि) मैं जिस काम-वास्ते इस रीतिसे तुमको अभिपिषण करता हूँ, (सा) महत्यान् इन्द्राः) बड़े बड़े प्रभु (मे तात् ददातु) मुझे वह देवे ॥ ५ ॥

आचार्य— हे श्रीपुरुषो ! तुम दोनों इस गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर शुभ कार्य करते रहो और उन्नतिके लिये प्रयत्न करो । इस गृहस्थाश्रममें ब्रह्मावद् लोग ही सुखपूर्वक रहते हैं । ओ इसमें परिपक्व हुआ हो और जो पूर्ण हुआ हो, उसकी रक्षा करनेके लिये तुम दोनों प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

जो बड़ा तपसे होता है, उसीमें मन रसकर उसको पूर्ण करना योग्य है । इस प्रकार शुभनेत्रक कर्म करनेसे उच्च स्वांश प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ये पवित्र और शुद्ध कन्याएँ हैं, इनको शान्तिके हाथमें धृक् धृक् अर्पण करता हूँ । जिस कामवास्ते मैं यह पद करता हूँ वह मेरी कामना धरत हो ॥ ५ ॥

## पवित्र गृहस्थाश्रम ।

गृहस्थाश्रमको सत्य पवित्र बनाकर उससे आनंद प्राप्त करनेके विषयमें इस सूक्तमें बहुतसे आशेष उपदेश हैं—

(१) सपूर्ण अगर्वा निमोदा प्रभु ही सत्यविषयोंका पहिला अवर्तक है, ऐसा मानकर उसके लिये शुभ कर्म करना, उससे लिये चढ़ करना और जो कुछ करना हो वह उसकी भातिके लिये ही करना चाहिये । इस प्रकारके शुभ करनेसे करने के फल का अर्थ होता है ।

(२) इस प्रकारके पत्रों ही मनुष्यका बेधवार हो सकता है, दूसरा कोई भाग नहीं है ।

(३) जैसे अपना किया हुआ कर्मा बढ़ा करना चाहिये, उसी प्रकार विदुषितामहोंका किया हुआ कर्मा भी उत्तारना चाहिये । जहाँ लोग कठिनाई की अवस्थाओं भी इस प्रकार जग धास कर देते हैं और ब्यवे नहीं, वही देन स्वर्ग प्राप्त है ।

( ४ ) गृहस्थाश्रममें कीचुरर मिलकर रहें और सदा शुभ कर्म करें, क्योंकि शुभ कर्मोंसे ही भेद लोक प्राप्त होते हैं ।

( ५ ) जो परिपूर्ण हुआ है, उसको रखा करनी चाहिये और उसको देखकर अन्यकी परिपक्वताको प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये ।

( ६ ) सब यज्ञ अपने ही होते हैं । इस प्रकारके यज्ञ करनेका विचार मनमें सदा करना चाहिये ।

( ७ ) यदि कोई वृद्धावस्थातक इस प्रकारके शुभ कर्म करता रहे, तो उस उत्तम स्वर्गप्राप्तका आनन्द प्राप्त हो

सकता है ।

( ८ ) गृहस्थाश्रम करना हो तो वधिव और युव दोनों साथ करना चाहिये ।

( ९ ) शक्ति भी शानी मनुष्यके हाथमें समर्पित करना चाहिये । इस प्रकार पवित्र स्त्री और शानी पुरुषसे जो गृह-स्थाश्रम बनता है, वह विशेष सुख देनेवाला होता है ।

( १० ) ऐसे उत्तम गृहस्थाश्रममें रहनेवाला मनुष्य ही अपनी कर्मगतश्रेष्ठोंके द्वाराकर मार्ग प्राप्त कर सकता है । प्रभु उसीको सिद्धि देता है ।

## कुलधू-सूक्त

कां. १, सूक्त १४,

( अग्नि - भव्यविरा । देवता - वसुदेव यज्ञो वा । )

भगमस्या यच्च आदिप्यधि वृक्षादिषु सजम् । महादुम् इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वस्ताम् ॥ १ ॥  
एषा तं राजन्कन्यां वधूनि धूयतां यम । सा मातृप्येषां गृहेऽथो आतुर्यो पितुः ॥ २ ॥  
एषा तं कुलया राजन्तामं ते परि दक्षसि । ज्योक् पितृष्वस्ताम् वा शीर्ष्याः समोप्यात् ॥ ३ ॥

मार्थ—( वृक्षात् अभि सजं इव ) वृक्षके पूर्वोक्ति जिस प्रकार माता वनकर चारण करते हैं, उसी प्रकार ( अस्याः भगं पर्वः आदिपि ) इस कन्याके देवर्ष और तेजको मैं धारण करता हूँ । ( महादुम् इव ) बड़े पर्वतके पर्वतके समान वह कन्या ( पितृषु ज्योक् आस्तां ) मातापिताके घर बहुत समयतक स्थित रहे ॥ १ ॥

हे ( यम राजन् ) विषयवाचन करनेवाले स्वामिन् । ( एषा कन्या ) वह कन्या ( ते धूयः ) ठीक यज्ञ होकर ( निधूयतां ) व्यवहार करे । ( अथो ) अथवा ( सा मातुः आतुः ) वह माताके, भाईके ( अथो पितुः ) किंवा पिताके ( गृहे दप्यताम् ) घरमें रहे ॥ २ ॥

हे ( राजन् ) हे स्वामिन् । ( एषा ) वह कन्या ( ते कुल-या ) ठीक कुलका पावन करनेवाली है । ( तां ) उसको हम ( उ ते परिदक्षसि ) तेरे लिये देते हैं । ( वा शीर्ष्याः समोप्यात् ) वह अथवा घरसे सिरतक न सजानी जाने ( ज्योक् ) तबतक वह कन्या ( पितृषु आस्तां ) मातापिताके घरमें निवास करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—गृहसे पूरु और धके निकाल कर जैसे माता वनकर जोना रहती हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज मैं स्वीकार करता हूँ और उससे अपने माताको सजाता हूँ । जिस प्रकार बड़ी जटलाका पर्वत अपने ही आश्रयपर स्थिर रहता है, उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निबर होकर बहुत समयतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥

हे विषयवाचक पति ! यह हमारी कन्या ठीक यज्ञ होकर निवसपूर्वक व्यवहार करे । जिस समय वह ठीक घर न रहे उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥

हे पति ! यह हमारी कन्या ठीक कुलका पावन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पित करते हैं । तबतक इसका सिर सजानेका समय न आवे तबतक वह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥

असितस्य ते ब्रह्मणा कुर्यात्स्य गपस्य च । अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नद्यामि ते भगो ॥ ४ ॥

अर्थ— (असितस्य) कपन रहित, (कुर्यात्स्य) दृढ (च) और (गपस्य) प्राण साधन करनेवाले (ते) तुम (ब्रह्मणा) ज्ञानके साथ मैं [जामयः अंतः कोश इव] क्षिप्य अपनी विद्यारीकी जैसे बोधती है उसी प्रकार [ते भगो अपि नद्यामि] मेरे वैश्वदेवे वाचना हूँ ॥ ४ ॥

भारतार्थ— यथरहित, दृढ और मायोको स्वाधीन करनेवाले मेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध मैं करता हूँ । जिस प्रकार क्षिप्री अपने जेवर सङ्कलमें सुरक्षित रखती है, उसी प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

## कुलवधू-सूक्त

### पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें पाठ मत्र है । बाहे भ्रममें भावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको परित्यक्त करता है और उस तेजको स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका कथक अतिस्पष्ट है—

‘गृहजनस्त्रिगोसे पते पूष्ट और भोगिषा ऐकर लोत माला बनते हैं, और उस मालाके गलेमें धारण करते हैं । उसी प्रकार तब कन्या सुगन्धित पूरोंकी वेक है, इसके पूर और पते ( सुगन्धमल और हलपत्र ) अथवा इसका सौंदर्य और तेज ऐकर उससे मैं सुशोभित होना चाहता हूँ । अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाध्याय करनेकी इच्छा करता हूँ । जैसे पर्वत अपने विद्यात जाघातपर रहता है, उसी प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुख आघात-पर रहे । अर्थात् मातापिताओंके सुनिश्चय पान्तर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे ( पतिक ) घर जायगी ।’

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें भावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज परसद करता है और उसके साथ विद्या करनेकी इच्छा प्रकट करता करता है । अर्थात् भावी पति कन्याके माता पिताके पास जाकर कन्याकी वाचना करता है । और साथ यह भी कहता है कि, कन्या सन्तानका मातापिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय बाहेतक कन्या मातापिताके घर रहे, तबपश्चात् मेरे घर आवे । योग्य समयको अर्थात् भावी पति नृवीच मन्त्रों की जायगी ।

इस मन्त्रके विचारसे पता चलता है कि पुरुष अपनी सह-धर्मचारिणीको परसद करता है । पुरष अपनी पत्निके अनुसार कन्याको चुनता है और अपनी इच्छा कन्याके मातापिताके

सामने प्रकट करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्तावका विचार करते हैं और भावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं ।

इस सूक्तसे यह स्पष्ट नहीं होता कि कन्याको भी अपने पतिके विषयमें परसदी नारसदगीका विचार प्रदर्शित करने का अधिकार है या नहीं । प्रस्ताव होनेपर भी कन्याका मातापिताके घरमें देरतक निवास करना यह [पितृषु कन्या भ्योक् आस्तां] क्या बता है कि, यह प्रस्ताव कन्याके रोवेदकनके पूरे ही कन्याके मातापिताके सामने रखा जाता है । नास्तिक जिसको ‘भगनी’ कहते हैं, उसके समान ही यह बात दोसरी है । इस सूक्तमें कन्याका एक भी कथन नहीं है, बल्कि भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही कथन है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि निजका पतिको है ।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम (ते तां परि दद्यासि) तेरे छिये इस कन्याका समर्पण करते हैं । यह संप्रदाय स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परसद है । मन्त्रमें दो बार भाषा है कि ‘कन्या पिता माता जघना भाईके घरमें रहे’ अथवा भागे जाकर हम कह सकते हैं कि, विद्या होनेपर यह पतिके घर रहे । परन्तु यह कभी स्वतन्त्रवासे न रहे ।

जिस प्रकार कृष्णका आधार उसकी जड़ें हैं, मध्या पर्व-का आधार उसकी अति विस्तृत हृदिपाद है, उसी प्रकार कन्याका पदरा आधार मातापिता अथवा भाई है, और पश्चात्का आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी कन्याका आधार फीको केना उचित नहीं है ।

### प्रस्तावका अनुमोदन ।

प्रथम मंत्रमें कथित भावी पतिके प्रस्तावको सुननेके

पश्चात् कन्याके माता पिता विचार करते भारी पड़िते कहते हैं; कि—

‘हे नियमसे भ्रष्टदेवासे स्वाभिन् ! यह कन्या तेरे साथ नियमपूर्वक व्यवहार करे। इससे पूर्व यह माता पिताजयवा भाईके घरमें रहे ॥ हे स्वाभिन् ! यह कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये हम तेरे लिये इसको प्रदान करते हैं। यह तबतक मातापिताके घर रहे, जबतक इसके सिर सजनेका समय न आया ॥ तु भयनरहित, द्रष्टा और प्राणवृत्तिसे युक्त है, इसलिये तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध हम जोड़ देते हैं। जैसे बिपा अपने जेवर ईदूकमें सुरक्षित रखती हैं, उसी प्रकार इसके साथ ठेरा भाग्य सुरक्षित रहे।’

यह तीन मंत्रोंका तात्पर्य है, यह बहुत ही विचार करने-योग्य है। इन मंत्रोंमें बरके गुण भी बताए हैं। जो इस प्रकार हैं—

### बरकी परीक्षा।

इस सूक्तमें पत्रिके गुण धर्म बताये हैं, वे क्या प्रथम देखने योग्य हैं—

१ यमः— धर्मनियमोंका पालन करनेवाला, धर्मनियमोंके अनुकूल अपना आचरण रखनेवाला।

२ राजन्— राजा (रज्जयति)। अपनी धर्मपत्नीका रंजन करनेवाला। राजा राजका अर्थ ‘प्रकृष्टिका रंजन करने-वाला’ है। चूड़स्पर्धामें धर्मपत्नी ही पुरुषकी प्रकृष्टि है। उस धर्मपत्नीका सरोर बढ़ानेवाला पति ही राजा है।

३ असितः— (अ-सितः अशुद्धः) कंधनरहित; अपौरुषित्वका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है। गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं है।

४ कदपः— (पदपः) देसकेवाला। अपनी परिस्थितिके उत्तम दीक्षिते जाननेवाला और अपने कर्तव्यकी ठीक प्रकार समझनेवाला।

५ रायः— (प्राणवल्लुक्तः) प्राणवासावधि चोगता-जनद्रासा तिसरे अपने प्राणोंका मल बहावा है।

६ द्रष्टृणा युक्तः— ज्ञानसे युक्त। ज्ञानी।

ये छ. शब्द इस सूक्तमें पत्रिके गुणधर्म बता रहे हैं।

### पत्रिके गुणधर्म।

धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करना, धर्मपत्नीको संतुष्ट रखना, स्वाधीनताके लिये पतन करना, अपनी परिस्थितिकी ठीक प्रकार जानना, योगादि साधनद्वारा अपनी दीर्घ-आयु भीतोगता तथा कुटुम्बका संरक्षण करना, तथा ज्ञान बढ़ाना, ये गुण पत्रिकी योग्यता प्रदर्शित कर रहे हैं।

अपनी कन्याके लिये वर दूटना हो, तो उसे उक्त छ गुणोंकी कछौड़ी पर कस करके ॥ उसे पसंद करना चाहिये। जिसका आचरण धर्मानुकूल हो, जो धर्मपत्नीके साथ प्रेम-पूर्ण धर्मव्यवहार करनेवाला हो, जो स्वाधीनताके लिये प्रयत्नशील हो, जो अपनी अवस्थाको व्यननेवाला और तदनुकूल कार्य व्यवहार करनेवाला हो, जो बलवान् तथा भीरोर हो और स्वास्थ्य रक्षा कर सकता हो, तथा जो ज्ञानवान् और प्रबुद्ध हो, उस वरको ही अपनी कन्या प्रदान करनी चाहिये।

जो धर्मानुकूल आचरण नहीं करता, जो किसीके साथ प्रेममय व्यवहार नहीं करता, जो स्वाधीनतामें रहता है, जो अपनी अवस्थाके प्रतिशुद्ध आचरण करता है, जो निर्धन और रोगी हो, तथा जो ज्ञानी न हो, उसके किसी भी अवस्थामें अपनी कन्याके लिये वर रूपमें पसंद नहीं करना चाहिये। अब वरके गुणोंका विचार करते हैं।

### वर-परीक्षा।

इस सूक्तमें वर-परीक्षाके निम्नलिखित मंत्र भाग हैं—

१ कन्या— (कन्यमदीया) कन्या देखी हो, कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो। रूप, श्रेष्ठ, अवयवोंकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब धर्म ‘कन्या’ इस शब्दमें निहित हैं।

२ वधू— (वधूते पतिगृहं)— जो पतिरे घर आकर रहना पसंद करती है। जो पत्रिके वरको ही अपना सखा घर मानती है।

३ कुलपा— कुलका पालन करनेवाली। पितृके तथा पत्रिके कुलसे अर्थात्प्राप्तका पालन करनेवाली। जो अपने ससुरारसे दोनों कुलोंका धरा बढ़ाती है।

४ ते (पत्युः) भगम्— धर्मपत्नी देखी होनी चाहिये, कि जो पत्रिका भग्य बढ़ावे। जिससे पत्रिके धन्यता अनुभव हो।

५ पितृषु आस्ताम्— कन्या विवाहके पूर्व अपना आगतकालमें मातापिता सबका आई दूतके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिरे घर रहनेवाली हो। किसी अन्यके घर आकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये।

६ वृक्षस्तु शम्भु— वृक्षकी पुष्पमालाके समान कन्या हो, पितृके कुलकी वृक्षको पुष्पमालारूप कन्या सुगंधित करे।

ये छ मंत्रभाग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं।

### कन्या के गुणधर्म ।

कन्या सुस्थ तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रह-नेवाली हो, दोनों कुलोंका दम अपने सद्व्यवहारसे बढ़ानेवाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली, जीवनके पूर्व पितृके घरमें तथा जीवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुण्यमालासे समाप्त अपने कुलकी शोभा बढ़ानेवाली हो । इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसको ही पसन्द करना चाहिये ।

जो पीकी, निस्तेज, दुर्मुखी, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुराचारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा नैयवृत्त हो, यह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है ।

### मंगनीका समय ।

इस सूत्रसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका शास्त्र कोई प्रमाण नहीं देता है । 'कन्या सिर लगानेके समयतक भागके घर रहे' इस सूत्रीय मन्त्रके अन्तर्गत ऐसा प्रतीत होता है, कि मंगनीका समय अतुल्यपतिके कुछ ही वर्ष पूर्व अथवा अधिक अथवा एक दो वर्ष पूर्व ही है । व धारि बधूपरीक्षाके सो छह मास कम बताये हैं, उन स्थानोंके स्पष्टता स्पष्ट होनेके लिये जीवन दशाकी प्रासंगिकता अवश्य आवश्यकता है । 'पतिके घर जानेकी कस्या' जिस समय कन्या कन्याके मनमें आती है यह अवस्था मंगनीकी प्रतीति होती है । ये छ मास अन्धी, सुखी, प्रसन्न, कन्याकी अवस्था बता रहे हैं । इन मासोंसे कन्याकी मंगनीकी भावना निश्चय हो सकती है ।

मादी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्णक लक्षणोंका खूब विचार करके मादी पतिके मतानुसार स्वीकार या अस्वीकार करें । इस सूत्रमें बरके मातापिताओं तथा कन्याको अपना मत देनेके अधिकारका कोई भी उल्लेख नहीं है ।

### सिरकी सजावट ।

सूत्रीय मन्त्रमें कहा है 'ज्योष् पितृव्यासात्ता वा दीर्घ्यं समोन्म्यात् ।' (देवक मातापिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिर लगानेका समय न आये ।) यहाँ एक बात कहना आवश्यक है, कि जिस समय की कृतमयी होती है, उस समय उसको 'पुण्यवती' भी कहते हैं । पुण्यवतीका अर्थ कुलसे अपने भाग्यकी सज्जति योग्य । प्रथम रामोद्देश, प्रथम अतुल्यपति अथवा प्रथम पुण्यवती होते हैं । उसको पूर्णोद्देश सज्जति प्रथा विशेषतः उसका सिर

पूर्वसे सज्जनेकी प्रथा भारतवर्षमें इस समयमें भी है । मूसर और मद्रसकी जोर तो प्रथम प्रसंगके लिये सिरको सज्जनेके पूरा इस पुण्यवती कीकी सजावटके लिये लाये जाते हैं । वहाँमें भी कई जातियोंमें यह प्रथा है । अन्य जातियोंमें कम है, परन्तु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस अतुल्यपतिके समर्थके लिये विशेष है । यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है । एक तो अनायासक कारण और दूसरा उसाहके अभावके कारण यह रिवाज कम होता जा रहा है । प्रतीति यह इस प्रसंगके लिये लाने और लानेके भी फूल सजाते हैं और पुण्यवती कीके चतुर्थ दिनमें उसका शिव सजाते हैं । जिस प्रसंगमें पूषट निकलनेका रिवाज है, उन मातृमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा समझ है, परन्तु सच्ची बात क्या है ज्ञान ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि पूषटकी प्रथा अवैदिक है, पर आन यह समाजमें सुन गई है ।

### मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूत्रके देखतेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाहका समय बहुत दूरका नहीं है । प्रथम मन्त्रमें बरसे पहला प्रमाण अर्थात् मंगनीका प्रमाण हुआ है । और द्वितीय तथा सूत्रीय मन्त्रमें ही कन्याके अर्पणका विषय आ गया है । देखिये—

१ एषा कन्या ते यधू. निधूयताम्— यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर व्यवहार करे । तथा—

२ एषा [कन्या] ते कुलपा, ता उ ते परि-दक्षसि— यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भय अपि नृह्यामि— तेरा भाग्य [इस कन्याके साथ] भाग्यदा है, क्योंकि इससे मैं भय न हो ।

ये मंत्रमात्र स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीके स्वीकार कर लेनेके पश्चात् हीन ही विवाहका समय आताहै । यद्यपि इसमें समयका साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी, [२] कन्या दानकी समय, [३] सिर लगानेके समयतक अर्थात् पुण्यवती होनेतक कन्याके पितृपरमेश्वर निवासका विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनीके पश्चात् विवाह होनेके बाद अतुल्यपति और पुण्यवती होनेके अनन्तर कन्याका पतिके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है । यह विषय अतुल्यपति सूत्रके साथ सम्बन्धित है, इसलिये इस विवाहप्रकरणके सूत्र, यहाँ यहाँ आयेगे, यहाँ यहाँ इससे साथ सम्बन्ध देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा ।

## कन्याके लिये वर

कां. ६, सूक्त ८२

( ऋषि - सग । देवता - इन्द्र । )

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृद्धो वृज्वे वासवस्य श्रुतकृतोः ॥ १ ॥

येन सूर्या सावित्रीमश्विनोदतुः पृथा । तेन मारुतवीर्यो ज्ञायामा बहतादिति ॥ २ ॥

यस्तेऽङ्गुष्ठो मुदामो युद्धमिन्द्र हिरण्यवः । तेना जनीयते ज्ञायामा मया घेहि शचीपते ॥ ३ ॥

अर्थ— ( आगच्छत ) आनेवाले, ( आगतस्य ) आगे हुए और ( ज्ञायत ) भति समीप आनेवाले ( वृज्वे वासवस्य श्रुतकृतो इन्द्रस्य ) शत्रुका नाम करनेवाले, धनवाले और सैकड़ा कर्म करनेवाले इन्द्रका ( नाम गृह्णामि ) नाम मैं लेता हूँ और ( घन्ये ) पसंद करता हूँ ॥ १ ॥

( येन पृथा ) जिस मार्गसे ( अश्विना ) अश्विदेवोंने ( सूर्या सावित्री कहतु ) सूर्यप्रभा सावित्रीका विवाह किया, ( तेन ) उसी मार्गसे ( ज्ञायामा बहतादिति ) मार्गको प्राप्त कर वेला ( मया मा अग्रणीत् ) आगे निकले कहा है ॥ २ ॥

हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( य ते हिरण्यव यमुदाम इन्द्र अङ्गुष्ठ ) जो तेरा मुकुटका धन देनेवाला यज्ञ बहुत है हे ( शचीपते ) शक्तिसे सामी इन्द्र ! ( तेन जनीयते मया ) उस बहुतसे शक्ति इच्छा करनेवाले मुझे ( ज्ञायामा घेहि ) मार्ग दे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— पहिले ही इच्छा करके मेरे पास आया हुआ, शत्रुपर विजय करनेवाला धनवादा, सैकड़ों अक्षय कर्म करनेवाला जो शूरवीर है उसीको मैं अपनी पुत्रीके लिये करके रूपमें पसंद करता हूँ ॥ १ ॥

जिस प्रकार अश्विदेवोंने सूर्यप्रभाका विवाह किया उसी प्रकार धनवादा बहुत पिला 'इस बन्धुको स्वीकार कीजिये' ऐसा कहकर मुझे विवाह करनेके लिय कहता है ॥ २ ॥

हे मनो ! मेरे पास जो धनकी प्राप्ति करनेवाला जो उत्तम शक्त है, उसके बलसे पराजित इच्छा करनेवाले मुझ वरको मार्ग प्राप्त हो ॥ ३ ॥

## कन्याके लिये वर

कन्याके लिये वर निम्नलिखित गुणोंका विचार करके पसंद किया जाये—

( १ ) जनीयते— वर वेला हो कि जिसके मर्मों धर्मपत्नीको प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई हो ।

( म० ३ )

( २ ) आगच्छत — कन्याक पिताके पास जानेकी इच्छा करनेवाला । ( म० १ )

( ३ ) आगतस्य— कन्याक पिताक पास पहुँचनेवाला । ( म० १ )

३ ( अथर्व भा १ पृ हिन्दी )

( ४ ) ज्ञायत — कन्याके पिताके पास पहुँचा हुआ । ( म० १ )

ये तीनों शब्द वरको उत्कृष्ट इच्छा भंगते हैं । आगच्छत कन्याका पिता वरको हृदयके लिए एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है । यह प्रथा संवैरिक मवील होती है । वरका पिता मरवा यधू वरको पोटक लिये प्रसन्न व कर सविशु वर ही अपनी योग्यता सिद्ध करे और वरको मंगले व लिये वरक पिताके पास चले । यह बात हम चार शब्दों से व्यक्त होती है । वरमें कौनस गुण होने चाहिये, इसका विचार इस तरह किया है—

- (५) वासप.— वसु अर्थात् धन प्राप्त करनेवाला । साथ होगा है, अर्थात् कन्याका मोल लेना या पतिके लिये धन देना आदि शयें न हों, वरके गुणोंका विचार मुख्य हो । (म० १)
- (६) शतक्रतु.— शैलको उत्तम पुत्रार्थ करनेवाला । पर भी मन्त्रों बड़ी समझे कि मैं अपने शीर्ष और शीर्षके धन कमाऊंगा और जब मैं धन कमाऊंगा और मेरा शीर्ष प्रकट होगा तब मेरा विवाह हो ही जायगा । (म० २)
- (७) धृष्टम.— शत्रुका नाश करके विजय प्राप्त करनेमें समर्थ । इस सूक्तमें जो, वरकी पक्षद्वीके और विवाह विषयके अन्व विचार कहे हैं वे बड़े उत्तम हैं ।
- (८) इन्द्र — शत्रुका नाश करनेवाला शूरवीर । विना शीर्षशीर्षके वैदिक विवाह होना असम्भव है, ऐसा इस सूक्तके विचारसे स्पष्ट सिद्ध होता है । वरको उचित है कि वह अपने विवाहका विचार करनेके पूर्व धन कमावे । 'धी, भी धी' यह नियम ध्यानों रखना चाहिये, बुद्धिका विकास करके धनको प्राप्त करनेके पश्चात् शीर्षकी मांसिका विकार करने लाना चाहिये । इन सूक्तोंसे मननसे ज्ञात होता है कि आश्रम प्रवर्धित ब्राह्मणवादा सर्वथा अनुचित हैं, और वेद ऐसे विवाहोंका समर्थन नहीं करता ।

## विवाहका मंगल कार्य

कां. २, सूक्त ३६

(अग्नि-पत्निदेव. । देवता-धर्मियोमी ।)

आ नो अग्ने सुमतिं सौमित्रो ममेक्षुमां कुमारीं सुह नो भवेन ।

जुष्टा धरेषु समनेषु धृष्टगुरुषु पत्या सौमित्रा वस्तुस्यै

॥ १ ॥

सौमित्रं प्रहृष्टं प्रहृष्टमर्पय्या संमृतं भगम् । धातुर्देवस्य सत्येन कृषोमि पतिवेदेनम्

॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( भगवत् सुह ) धनके साथ ( स-भल. ) उत्तम वर वर ( इमां न. न। सुमतिं कुमारीं ) इस हमारी उत्तम सुखियाली कुमारी कन्याको ( आ ममेक्षु ) प्रसन्न करे । और ( अस्त्यै पत्या सौमित्रा वस्तु ) इस कन्याको भी पतिके साथ सौमित्र्य प्राप्त होवे । क्योंकि यह कन्या ( धरेषु जुष्टा, समनेषु यन्तु ) केष्टोंमें प्रिय और उत्तम मनवालोंमें मनोरम है ॥ १ ॥

( सौमित्रं ) सौमित्र और ( धातुर्देवस्य ) प्रहृष्टों द्वारा सेवित, तथा ( अर्पय्या समृत भग ) भेष्ट मनवालोंसे हर्षा लिये हुए इस धनको ( धातु- देवस्य सत्येन ) चातक देवके साथ निवसते ( पति-वेदेन कृषोमि ) केवल पतिके द्वारा प्राप्त होनेक योग्य बनाया ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— जिसने धन प्राप्त किया है, ऐसा उत्तम विद्वान् वर पति इस हमारी सुखिमली कुमारीको प्राप्त होवे । यह हमारी कन्या केष्टोंको प्रिय और उत्तम मनवालोंमें सुंदर है, इसलिये इस कन्याको इस पतिके साथ उत्तम सुख प्राप्त होवे ॥ १ ॥

सौमित्रा, इमा और भेष्ट मन द्वारा संगृहीत और सत्यमार्गसे प्राप्त किया हुआ यह धन देवके पतिके लिये है ॥ २ ॥



दुयमने नारी पति विदेष्ट सोमो हि राजा सुमगा कृणोति ।

सुत्राना पुत्रान्महिषी भवति यत्वा पति सुमगा वि राजतु

॥ ३ ॥

यथाखुरो मध्वंधाकरेण प्रियो मृगाणां सुपदा यभूय ।

एवा मगस्य जुष्टयमस्तु नारी संविद्या पत्न्याविरोधयन्ती

॥ ४ ॥

मगस्य नावृषा रोह पूर्णानुपदस्वतीम् । तयोपप्रतार्य यो वरः प्रतिकाम्यः

॥ ५ ॥

आ क्रन्दय धनपते वरमाधनसं कुरु । सर्वं प्रदक्षिणं कुरु यो वरः प्रतिकाम्यः

॥ ६ ॥

हुदं हिरण्यं गुल्युत्तरयसौख्ये अधो मगाः । एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तये

॥ ७ ॥

आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः । त्वमस्यै चेतोपदे

॥ ८ ॥

अर्थ— हे भो ! ( इयं नारी पति विदेष्ट ) यह भी पतिसे प्रसन्न करे । ( हि सोमः राजा सुमगा कृणोति ) क्योंकि सोमराजा इसको सोमापवली कहता है । यह ( पुत्रान् सुदाना महिषी भवति ) पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई परकी रानी होवे । यह ( सुमगा पति यत्वा विराजतु ) सोमापवली पतिसे प्राप्त करने सोमिष्ठ हो ॥ ३ ॥

हे ( मध्वन्धु ) इन्द्र ! ( यथा यय आतराः ) जैसे यह गुहा ( मृगाणां प्रियः सुपदा यभूय ) पशुओंके लिये प्रिय और निज बोध है ( एया ) ऐसी ही ( यत्वा य-विरोधयन्ती ) पतिसे विरोध करने वाली हुई और ( मगस्य जुष्टा इयं नारी ) देवर्षिसे सेवित हुई यह भी पतिसे लिये ( सं प्रिया ) उच्चम प्रिय ( भस्तु ) होवे ॥ ४ ॥

हे भी ! ( पूर्णा अनुपदस्वती ) पूर्ण और न दृष्टेयवती ( भगस्य नयति आरोह ) ऐश्वर्यकी इतनी गौरावर चढ़ और ( तया उपप्रतार्य ) उसके उसके पास चढ़ कर लो कि ( यः वरः प्रतिकाम्यः ) जो वर तेरी कामनासे योग्य है ॥ ५ ॥

हे धनपते ! ( वरं व्याग्रन्दय ) अपने घरको बुझा और ( आ-वनसं कुरु ) अपने मनके अनुकूल वाञ्छाकार कर ( या वरः प्रतिकाम्यः ) जो वर तेरी कामनासे योग्य है ( सर्वं प्रदक्षिणं कुरु ) उसे सब धन दे ॥ ६ ॥

( हुदं गुल्युत्तरयसौख्ये ) यह उच्चम सुख है, ( अर्थ श्रीशुभः ) यह वैश्व है और ( अधो मगाः ) यह धन है । ( एते त्वं पतिकामाय देत्तये ) ये सब तुझे पतिकी कामनाके लिये नीचे दे दामन लिये ( पतिभ्यः धनुः ) पतिको देते हैं ॥ ७ ॥

( सविता ते आ नयतु ) सविता तुझे प्रेरणा दे ( यः पतिकाम्यः पतिः ) जो कामना करने योग्य पति है वह ( नयतु ) तुझे ले जावे । हे भीषणे ! ( त्वं अस्मै घेहि ) तू हमें धामन कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह भी पतिकी प्राप्त करे, परमेश्वर इसे सुखी बनावे; यह भी धर्म रानीके सामान बनकर पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई सुखी होकर सोमिष्ठ होवे ॥ ३ ॥

यह भी पतिसे कभी विरोध न करे और देवर्षिसे सोमिष्ठ होखे हुई सबको प्रिय होवे ॥ ४ ॥

श्री इन्द्र गृहस्थाधम रुपी पूर्ण और सुख नीति पर चढ़े और अपने प्रिय पतिसे साथ सम्यक्का समुद्र पार करे ॥ ५ ॥ जो वर अपने मनके अनुकूल हो उस वरको बुझाकर उमने साथ अपने मनके अनुकूल वाञ्छाकार करके उमने साथ सामान पूर्वक व्यवहार करे ॥ ६ ॥

यह उच्चम सुख है, यह साथ और वैश्व है, और यह धन है । यह सब पतिको देते हैं इन्द्रिये कि तुझे पति प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

सविता तुझे मार्ग बतावे, देहा पति तेरी कामनाके अनुकूल चला हुआ तुझे उच्चम मार्गसे ले चले । भीषणियोंके सुखको इष्टि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

## विवाहका मंगल कार्य

### वरकी योग्यता

विवाहका कार्य बहुत मंगलमय है, इसलिये उसके सचपके जो जो कर्तव्य हैं, वे भी मंगल माननासे कतने उचित हैं। विवाहके मंगल कार्योंमें वर और वधूया सबसे प्रधान स्थान होता है। इसलिये इनके विषयमें इस सूचके आदेश प्रथम देखेंगे। वरके विषयमें इस सूचकमें निम्न लिखित बातें बड़ी हैं—

१ सम्भल,— (सं + भलः) उत्तम प्रकार स्वास्थान देनेवाला। (मं १) जो किसी भी विषयका उत्तम प्रविवादक बन सकता है। विशेष विद्वान्।

यह शब्द वरकी विद्वत्ता बता रहा है। वर विद्वान् हो, शास्त्रज्ञ जाना हो, चतुर और सम्मान्य विद्वान् हो। केवल विद्वत्ता ही पर्याप्त नहीं है, भगिनु कुटुम्ब योग्यके लिये काय शक्य धन कमानेवाला भी उसे होना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

२ भगैः सह कुमार्यं आगमेत्— इनके साथ भाकर कन्याको प्राप्त करो। धन प्राप्त न होनेकी अवस्थामें विवाह न करे, क्योंकि विवाह होनेके पश्चात् परिवार बटेगा, इसलिये उसके पोषण करनेकी योग्यता इसमें अवश्य होनी चाहिये।

३ पतिः सयत्नु— पति अपनी धर्मपत्नीको सम्भाले चले। धर्म नीतिरूप मार्गमें चलावे, परंतु साथ साथ बड़ (प्रति-काम्य) पालाकी मनोकांक्षाओंके अनुबद्ध भी रहे। इसका तात्पर्य यह है कि पति अपनी धर्मपत्नीक साथ साथ कारणसे कभी झगडा न करे, धर्मपत्नीपर श्रेय करे, परंतु उसकी सच्चे धर्म मार्गपर चलायेका चल करे। (मं ४)

इस सूचकमें इतने आदेश पठिक लिये दिये हैं। इससे पूर्व विवाह विषयक कई सूक्त आ चुके हैं, उनमें पतिवै गुण धर्म और कर्म बताये हैं, उनके साथ इस सूचके आदेशोंका विचार करना चाहिये।

### वधूकी योग्यता

वधूक विषयमें बहुतसे उपदेश इस सूचकमें कहे हैं, जो पारिवारिक लगनमें रहनेवालोंके ह्रास अवश्य मनन करने योग्य हैं।

१ कुमारी— कुमार और कुमारी वे शब्द बड़े महत्व पूर्ण हैं। पूर्ण मल्लयको स्थिर रखनेका भाव सूचित करने वाले ये शब्द हैं। तरुण स्त्री पुरुषोंमें होनेवाले विकारी मान

विकले मनमें उत्पन्न नहीं हुए, उनको 'कुमार' कहते हैं। यह शब्द अस्वस्थ स्थिर मल्लयध धारण करनेवालेका घोटक है। अतएव मनमें कुमार भाव रहना है, तबतक धीरदोष उत्पन्न होता ही नहीं। इस प्रथम मन्त्रमें 'कुमारी' शब्द आया है, जो कन्याका बोध कराता है। कन्या ऐसी हो कि जो कुमारी हो अर्थात् पुरुष विषयक काम विकार संबंधी चक्षु भाव जिसके मनमें किंचिद् भी उत्पन्न न हुए हो। वर विवाहके लिये योग्य कुमारीका वर्णन किया है। छोटी मायुमें विमल करनेकी पद्धतिकी मानना अनुमत है, क्योंकि इससे पूर्व बताया ही है कि 'पण्डित इच्छा करने वाली स्त्रीका विवाह है।' [ देवो का २ सू १० ] इसलिये इस सूचकमें छोटी मायुमें विवाहके विधान करनेकी संभावना नहीं है। इस कारण यहाका 'कुमारी' शब्द ऐसी कन्याका बोध कराता है कि जो युवकीसी हो, पण्डित इच्छा तो करती हो, परंतु मनेके चक्षु विकारोंसे पूर्णतया अविरत हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि येदकी दृष्टिसे कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये और विवाहक पूर्व उनमें मन कैसे पवित्र रहने चाहिये। (मं १)

२ सुमतिः— कन्या उत्तम मतिवाली हो, उत्तम मुक्ति वाली हो, जिसके मनपर सुस्तर पड़े हुए हों। (मं १)

३ समनेषु वरेषु शुद्धा यस्तु— उत्तम मनवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुंदर कन्या ही। समवाले विचार मनमें रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुंदर कन्या हो। समवाले विचार मनमें रखनेवाले, विषम मानना मनमें न रखनेवाले श्रेष्ठ लोगोंमें आकर विद्याका मनन करनेवाली और अपने स्वीकृते काव्य मनोहर और पतिशुद्ध विद्यावाली कन्या हो। 'श्रेष्ठता लाने योग्य' (वरेषु शुद्धा) शब्दोंसे कन्याका धार्मिक दृष्टिसे पवित्र्य बोधित होता है। कन्या ऐसी हो कि जिसका वाचरण साधा वाण्य मनसे कभी दूरा नहीं हुआ हो। शुद्ध भाषासे संपन्न हो और साथ साथ मनोरम तथा दार्शनिक भी हो। कन्यामें ऐसी बर्ण, इस प्रकारकी शिक्षा उनको मिलनी चाहिये। (मं १)

इस रीतिसे कन्याके शुद्धाचारक विषयमें वेदका आदेश है। कुमार और कुमारीकांशोंको पवित्र रखकर उनको विवाह संबंधसे जोडना वेदको आशय है। इसलिये विवाहके पूर्व

कुमार और पुमारिकाओंका इस प्रकारका खेल, कि जो बनी-  
तिरे मार्गमें उनको ले जानेवाला हो, वेदको बनीए नहीं है ।

## विवाहके पञ्चात्

विवाह होनेके पञ्चात्, स्त्रीपुरोहित परस्पर वर्तमानके विपक्ष-  
में भी इस रूपमें अश्रित उत्तम उपदेश हैं—

भगव्य जुष्टा इयं नारी,

पत्या अधिराधयन्ती,

संप्रिया अस्तु ॥ ( मं० ४ )

‘ देशर्पको प्राप्त हुई हुई यह स्त्री, पतिसे विरोध न करती  
हुई, पतिको भक्त प्रिय हो । ’ विवाह होनेके पञ्चात् स्त्री  
अधिक देशर्वमें जाती है, इसलिये यह मंत्र स्तुति करता है,  
कि विरोध भाव और देशर्वमें संतुष्टिके कारण यह स्त्री  
उत्तम न हो, अपितु पतिसे साथ प्रेमसे रहे और पतिसे  
कभी विरोध न करे । घनद्वमें आकर पतिपर भगवान् कभी  
न करे, अपितु ऐसा आचरण करे कि जिसमें दोनोंका प्रेम  
दिन प्रतिदिन बढ़ता जाय । तथा—

सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिश्राम्यः । ( मं० ५ )

‘ जो पूजा करता है, वह अपने कामका रूप या—पतिकी  
प्रदक्षिणा करके हो करे । ’ प्रदक्षिणा करनेका आशय है सम्मान  
करना, आदर प्रदर्शित करना, सत्कार करना । जो कुछ करना  
हो, उसे पतिका साकार करते हुए ही करना चाहिये । पत्नी-  
का ‘ प्रति-काम ’ पति ही होता है । अपने मनके भद्रको  
( काम ) दृष्टा होती है, उसका जो बाधा स्वरूप होता है  
उसको ‘ प्रति काम ’ कहते हैं । अपना रूप होता है और  
पतिमें जो दिखाने देता है उसको ‘ प्रतिकृप ’ कहते हैं,  
ऐसकी दूसरी प्रति करनेका नाम ‘ प्रति श्रेष्ठ ’ है । इसी  
प्रकार स्त्रीके मनके भद्रके कामका ‘ प्रतिकाम ’ पति है ।  
पत्नी अपने पतिको अपना ‘ प्रतिश्राम ’ समझे और उनका  
साकार करते हुए कार्य करे । तथा—

पत्या अस्त्ये लीभाय्यं अस्तु । ( मं० ३ )

‘ पतिसे इसको शोभा प्राप्त हो ’ स्त्री की शोभा पतिही  
है । पतिविरहित स्त्री शोमारहित होती है । अतः घन-  
पत्नी मनमें समझे कि उसकी संपूर्ण शोभा पतिके कारण ॥  
है और उस कारण मनसे पतिका सदा सत्कार करे । तथा—

पतिं गत्वा शुभगा विराजतु

पुशान् सुधाना महिषी भवति । ( मं० ३ )

‘ यह स्त्री पतिको प्राप्त करके देखनेमें विराजती रहे और  
उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई बरकी शानी बने । ’ यहां

पतिको प्राप्त करके पतिसे साथ रहना, पतिसे देखनेसे अपने  
आपको देशर्वयती सम्पन्नता, पुत्रोंको उत्पन्न करना और  
पत्नी स्वामिनी बनना स्त्रीका कर्तव्य बताया है । कई निमित्त  
जिहां संतान उत्पन्न करनेके कर्तव्यसे परावृत्त होती हैं । यह  
योग्य नहीं है । स्त्रीकी बरीयत रचनाही इस कर्तव्यकी सुचना  
देती है कि वह संतानकी माँ बने, सुसंतति, सुख संतान  
उत्पन्न करना विवाहित स्त्रीका कर्तव्य ही है । अति उत्तम  
संतति निर्माण करने योग्य अपना शरीरव्यास्य रखनेमें  
जिहां प्रथमसे ही दक्षित हो । जो जिहां पहलेसे अपने  
काम्यका विचार नहीं करती, वे भागे सतानोपाय कर-  
नेमें असमर्थ हो जाती हैं । इसलिये स्त्रियोंके स्वास्थ्यका  
विचार प्रारम्भसे ही करना चाहिये ।

## देशर्वकी नौका

मन्त्रमन्त्रमें श्रुत्याश्रयको देशर्वकी नौकाकी उरमा  
री है । यह उरमा बड़ी शोभाग्रह है—

पूर्वा अनुप-दृश्यतीं भगव्य नाथं आनोत ।

यः प्रतिश्राम्यः वरः, तया उप प्रनारय ॥

( मं० ५ )

‘ यह सब प्रकारसे परिपूर्ण और बनी न दृष्टेवाली  
देशर्वकी नौका है, उसका चढ़ और जो तेरा पति है उसकी  
इस नौकाके आश्रयते दूरी किन्ती पर ले जा । ’ यह श्रु-  
त्याश्रय रूपी नौका है, जिसपर पति-पत्नी वस्तुतः, हृष्ट  
ही सवार होते हैं, परंतु बरकी सदाश्री होनेके कारण इस  
नौका ही नौका चल्नेवाली इस मंथने कहा है । यह नौका  
बड़ा भली सम्मान देनेके विधा है और साथ साथ स्त्री  
हृष्टमें बड़ा भारी अधिकार भी दिया है । वास्तविक पर  
मुहिणी ही है, ईश्वरी पर पर बड़ी है । इसी प्रकार स्त्री  
होनेके ही श्रुत्याश्रय हीता है और कोई न होनेके श्रुत्या-  
श्रय नहीं रहता । इसलिये श्रुत्याश्रयमें स्त्रीका सदा  
विधेय ही है । इस हेतुसे इस मंत्रमें स्त्रीको उदरप कर  
कहा है कि इस श्रुत्याश्रय रूपी नौकापर स्त्री चढ़े और  
इस नौकाको ऐसे दंगले चलावे कि वह नौका करने दृष्ट-  
नेके स्थानपर स्थित पदुषे और मार्गमें कोई कष्ट न हो ।  
इसी प्रकार स्त्रीके अधिकारके नियमों निम्नलिखित मंत्र-  
आम देखने योग्य है—

घनपते ! वरं आग्रन्द्य । आभनानं कृणु । ( मं० ६ )

‘ हे श्रुत्याश्रयको संपूर्ण पत्नी व्याप्ति ! अपने पतिसे  
जुलकर उसकी अपने मनके अनुकूल कर । ’ यह अधिकार

हैं गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट थीया। यह भी गृहस्थाश्रमके संपूर्ण ऐश्वर्यकी स्वामिनी है और यदि पति हीनसामर्थ्यपर चलने लगे, तो उसको सम्मार्गपर रोकना उसको अधिकार है।

### पुरुषका स्थान

जब स्त्रीको गृहस्थाश्रममें इतना अधिकार प्राप्त है, तब, पुरुषका स्थान गृहस्थाश्रममें कहाँ है, इसका भी विचार करना यहा आवश्यक है—

य। प्रतिकाम्यः पतिः नयतु । (म. ८)

‘कामनाके अनुकूल पति (गृहस्थाध्याय) पलावे’ अर्थात् गृहस्थाश्रमका रथ चलावे। स्त्रीको सम्मार्गपर चलावे, गृहस्थाश्रममें यदि कुछ दुरिष्टा हो, तो उनको दूर करे, गृहस्थवस्थाको दोषमुक्त रहने न दे। यह पुरुष—

सविता ते मा नयतु । (म. ८)

‘सूर्य समान स्त्रीको लाने।’ यह पति घरमें सूर्यके समान है। जिस प्रकार सूर्य अपनी महामाताका संचालक है, उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रमका सूर्य-पति-संपूर्ण गृहस्थाश्रमका चालक है। यह पत्नीको साथ लेकर संपूर्ण गृहस्थाश्रमको चलावे। यहाँ यह धारणीय है कि गृहस्थाश्रम न केवल पतिसे ही हो सकता और न ही केवल स्त्रीसे ही, यह जो दोनोंके द्वारा चलाया जाता है। इसीलिए इस सूत्रमें स्त्रीको भी कहा है कि वह गृहस्थाश्रम चलावे और पुरुषको भी पैदा ही कहा है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि, दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम चलावें। दोनोंका समान अधिकार होनेसे दोनोंका समान भाड़ा दी है। अब गृहस्थाश्रमके ही पुरुष अपने अपने अधिकारोंको समझ कर मिष्ट श्रुत्कर समाजतया अपने कार्यका बोझ उठावें और जालंदसे इस संसारपात्राको पूर्ण करें। तथा—

सोमो हि राजा सुभगां कृणोति । (म. ३)

‘सोम राजा इस स्त्रीको ऐश्वर्य युक्त करता है।’ यह पति घरमें राजाके समान है। पत्नीको महारानी हस्तसे पूर्ण कहा ही है। जब पत्नी रानी है, तब पतिके राजा होनेमें कोई शका ही नहीं है। ये राजा-रानी एक मयसे इस गृहस्थाश्रमका राज्य चलावें। परस्पर निरोध न होने दे। एक दूसरेके महापक बनकर उन्नति करते जायें।

इस वेगसे वेदने पतिका स्थान गृहस्थाश्रममें निश्चित किया है। दोनोंको उचित स्थान दिया गया है।

### पतिके लिये धन।

पत्नीकी ओरसे मकवा बंधूके घरसे कुछ धन वरको दिया जाता है। दहेजके रूपमें यह धन बंधूके घरसे वरके पास आता है, इस विषयमें सहम मंत्र कहा स्पष्ट है—

इदं पुन्यलु हिरण्य, अयं औषः, अयो भगः,  
एते त्वा पतिभ्यः भवुः ॥ (म. ७)

‘यह सुवर्ण सुवर्ण है, ये गौर्ष और बैल हैं, यह सब पतिको दिया जाता है।’ यहा सम्मानके लिये पति सम्पत्तिपक्षमें प्रयुक्त हुआ है। दिवाहेके मंगल कार्यमें पतिका ही विशेष सम्मान होना उचित है। यहा कारण रहे कि यद्यपि यह दहेज स्त्रीके घरसे पतिके घर आता है, तथापि यह धन दुस्रागसे कमाया नहीं होना चाहिये। इस विषयमें द्वितीय मंत्र देखिये—

सोममुष्ट, दद्यादुष्ट, अयम्या सभृत भगम् ।

धातुदेवस्य सत्येन पतिपेधं कृणोमि ॥ (म. ९)

‘सौम्यवृत्तिते, ज्ञानसे और धैर्य भरो वृत्तिते प्राप्त और हकट्टा किया हुआ धन विधाता ईश्वरकी सत्यनिहासे पतिको प्राप्त होने योग्य कराया है।’

‘सोम, द्रव्य और अर्घ्य’ ये तीन शब्द क्रमशः ‘सौम्य वृत्ति, विद्या-ज्ञान और धैर्य मन’ के योग्य हैं। ‘अर्घ्य + मन’ का अर्थमन्त्रवा है, जो धैर्य मनवासेका श्रोतक है। जिसका अर्थ उक्त है यह अर्घ्यमा कहा जाता है। द्रव्य शब्द ज्ञान और विद्याका यथक प्रतिद है, सोम शब्द सौम्यताका श्रोतक है। ये तीन शब्द सात और धैर्य विद्यासे सुसह्य भरोवृत्तिते वाचक हैं। इस भरोवृत्तिते कमाया हुआ, समर्पित किया हुआ और चलाया हुआ धन परमेश्वर विप्रयक सत्यनिहासे साथ पतिको समर्पित किया जाना चाहिये। अथवा इस प्रकार प्राप्त किया हुआ धन पतिको समर्पित करना चाहिये। हीनवृत्तिते हकट्टा किया हुआ धन पतिकी नहीं देना चाहिये। यहा कन्या विराज को कि जो धन पतिको दहेजके रूपमें दिया जाता है, वह किस रीतिते कमाया हुआ है। हीनवृत्तिते कमाया धन पतिके घरमें हीनता उत्पन्न करेगा। इसलिये सावधानीसे और विचारसे दहेजका धन पतिको देना चाहिये। जो दिया जाय वह पवित्र विचारसे कमाया हुआ हो और पवित्र विचारके साथ दिया जाय।

यहा इस विवाहके मंत्र का कार्यका विचार इस सूत्र में दर्शाया है।

## विवाह

कां. ६, सूक्त ६०

( ऋषि - अथर्वी । वेद- अथर्वमा । )

अयमा यात्पर्यमा पुरस्ताद्विपितस्तुषः । अस्या इच्छन्नुपै पतिंमृत जायामजानये ॥ १ ॥

अथमद्विपर्यममन्न्यासां समनं यती । अहो न्वर्पिमन्नस्या अन्थाः समनमार्थति ॥ २ ॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता दामुत सूर्यम् । धातास्या अमुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ—( अर्थ विपितस्तुषः अयमा ) यह प्रसन्ननीय सूर्य ( अथर्व अमुवै ) इस कन्याके लिये ( पतिं इच्छन् ) पतिकी इच्छा करता हुआ ( उत अजानये जायाम् ) और अज्ञात पुराणों के लिये अज्ञात इच्छा करता हुआ ( पुरस्तात् आयति ) सामने जाता है ॥ १ ॥

हे ( अयमम् ) सूर्य ! ( अन्थासां समनं यती ) अन्य कन्याओंके सम्मानको अपना विवाहस्वयं होनेवाले सम्मानित उसमें जानेवाली ( सूर्यं अथमम् ) वह भी बहुत बक गई है ( हे ( अहो अयमम् ) सूर्य ! इसलिये ( अस्या ) समनं अन्थाः तु आयति ) इसके विवाह सम्मानके दूसरी कन्याएं भी आएं ॥ २ ॥

( धाता पृथिवीं दाधार ) परमेश्वरने पृथ्वीको धारण किया है ( उत धाता सूर्यं द्यां ) और वही सूर्यने सूर्यको और सुलोको धारण किया है । इसलिये वही ( धाता ) देव ( अथर्व अमुवै ) इस कन्याके लिये ( प्रतिकाम्य पतिं दधातु ) उसकी इच्छाके अनुसार पतिको देवे ॥ ३ ॥

मायार्थ—सूर्य उरूपको प्राप्त होकर अन्नको जाता है । इस कारण कन्या और पुत्रकी आयु बढ़ती है । और जैसे जैसे आयु बढ़ती है उसीसे अनुसन्ध कीपुराणमें विधानोंकी प्राप्ति करनेकी इच्छा भी प्रदीप्त होती जाती है ॥ १ ॥

कन्याएं जिस समय दूसरी कन्याके विवाहसेत्कारमें जाती हैं, उस समय उनके मनमें अपने विवाहका विचार उत्पन्न होता है और उनकी दृष्ट प्रकाशका कह होता है । इसलिये कन्याके मनमें इस विचारके उत्पन्न होने पर उस कन्याका विवाह कर देना चाहिये ॥ २ ॥

सूर्यने पृथ्वी सूर्य और सुलोको पञ्चास्यान धारण किया है, इसलिये वह नि मनेह इस कन्याके लिये अनुसन्ध पति भी दे सकता है ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें निम्नलिखित बातें कही हैं—( १ ) जिसए आयुमें पुरुषमें स्त्रीके, और स्त्रीमें पुरुषकी इच्छा होती है । इसके पश्चात् विवाहका समय होता है । ( २ ) विवाहादि संस्कारोंमें संमिश्रित होनेसे कन्याओंमें विवाहविरहक आहुरता उत्पन्न होती है । यह समय कन्याके विवाहका है । ( ३ ) पत्नी पतिकी इच्छा करनेवाली और पति ( अनुकाम ) पत्नीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला होनेपर दोनोंका विवाह हो । विपरीत अवस्थामें कदापि न हो ।



## विष्वाह-प्रकरण

कां. १४, सूक्त १

( अग्नि-सूर्याश्रयित्री । देवता-आत्मा । )

सत्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौः । अस्तेनादित्यास्तितृणन्ति दिवि सोमो अग्निं श्रितः ॥ १ ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही । अथो नक्षत्राणामेवामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्वते पविशान्पसंषिपन्पोषिषिम् । सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥

यथा सोमं प्रविशन्ति तत् मा प्यावते पुनः । वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( सत्येन भूमेः उत्तमिता ) सत्येन भूमिको ऊंचा उन्नत और ( सूर्येण द्यौः उत्तमिता ) सूर्येन ध्रुवोक्तो उन्नत, ( अस्तेनादित्याः तितृणन्ति ) अस्तेके कारण आदित्य स्थिर हैं, और ( सोमः दिवि अग्निं श्रितः ) सोम ध्रुवोक्तें आश्रित है ॥ १ ॥

( सोमेन आदित्याः बलिनः ) सोमके कारण आदित्य बलवान् हुए । तथा ( सोमेन पृथिवी मही ) सोमके कारण ही पृथ्वी बनी हुई । ( अथो एषां नक्षत्राणां उपस्थे ) और इन नक्षत्रोंके पास ( सोमः आहितः ) सोमको रखा गया ॥ २ ॥

( यत् ओषधिं संषिपन्ति ) जब सोम नामक औषधिको पीसते हैं, तब ( पविशान् सोमं मन्वते ) सोमपान करनेवाला सोमरसको सम्मान करता है । ( ब्रह्माणः यं सोमं विदुः ) सभी लोग जिसको सोम समझते हैं । ( तस्य पार्थिवः न अश्नाति ) उसका भक्षण कोई पृथ्वीपर रहनेवाला मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

हे ( सोम ) सोम ! ( यत् त्वा प्रविशन्ति ) जब तुझे पीते हैं, ( ततः पुनः आप्यायसे ) इसके पश्चात् पुनः पृथ्वीको प्राण करता है । ( वायुः सोमस्य रक्षिता ) वायु सोमका रक्षक है, और ( समानां आकृति मासः ) वर्षोंकी आकृति महीना ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सत्यसे मानुषीका उद्धार दिना जाता है, सूर्यके प्रकाशसे आकाश तेजस्वी होता है, तारुताके कारण आदित्य अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं और सोम ध्रुवोक्तके प्रकाशसे आश्रय लेकर रहा है । ( इसी प्रकार ये पृथ्वी पर, सूर्यप्रकाश, सरिता और ध्रुवोक्त सर्वाथ स्वर्गके आधारसे अपना जीवनप्रभ पलायें ) ॥ १ ॥

सोमके कारण आदित्यमें बल गया और पृथ्वीमें विश्रान्त हुआ है, और नक्षत्रोंमें भी सोम ही पैदा गया रहा है । इसी तरह ये पृथ्वी पर सोम आदि पशुपति भक्षण कर अपने बल, महत्ता और तेजस्वी बृद्धि करें ॥ २ ॥

जब पशुमें सोमका रस निकालने लगते हैं, तब सोमरस पीनेवाला निम्न सबको होता है । परंतु जिसको शरीरगत सोम समझते हैं, वह निम्न ही है, कोई साधारण मनुष्य उसका रस नहीं पी सकता । ( ये पृथ्वी पर उसी सोमरसको पीनेके लिए पुरुषार्थ करें ) ॥ ३ ॥

यह सोम पिने जानें वाद भी पृथ्वीको प्राण होता है । यह नष्ट नहीं होता । क्योंकि प्राण ही इसका रक्षक है । जैसे प्रसवे आनेवाले महीनासे वर्ष बनता है, ( उसी तरह नये पशु आनेसे सोम बड़ी पूर्ववत् हरीभरी हो जाता है, ऐसे ही पृथ्वी पर सांसारिक भ्रष्टा आनेपर हवासा न हो, अविश्रुतिपुण्य उत्साहसे अपना जीवन व्यतीत करें ) ॥ ४ ॥

अच्छिद्विधानैर्गुपितो पार्थिवः सोम रक्षितः । आष्ठाभिच्छृण्वन्तिष्ठसि न वै ज्ञास्यति पार्थिवः ॥५॥  
 चिर्तिरा उपवर्हेण चक्षुरा अम्यर्जनम् । घौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सर्वा पतिम् ॥ ६ ॥  
 रैम्यासीदनुदेयी नारायसी न्योचनी । सूर्याया मुद्रमिद्धासो गार्धयेति परिष्कृता ॥ ७ ॥  
 स्तोमा आसन्प्रतिषयः कुरीरं छन्द ओपशः । सूर्याया अक्षिना वराधिरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥  
 सोमो वधूपुरमवदुक्षिनास्तामुमा वरा । सूर्या यत्पत्ये धंसन्ती मनेसा सविताददात् ॥ ९ ॥

अर्थ— हे सोम ! ( आष्ठाभिच्छृण्वन्तिष्ठसि ) आष्ठाभिनेते सुरक्षित और ( पार्थिवः रक्षितः ) बनेंते रक्षित हुआ हुआ न ( घ्राणं इत् शृण्वन् तिष्ठसि ) इन सब निष्क्रमणवाले पराधीन राज्य मुद्रा हुआ विषा रहता है । ( पार्थिवः ते न ज्ञास्यति ) कोई मन्त्रलोका निवासी वेरा भक्षण नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

( यत् सूर्या पति अयात् ) जब सूर्या अपने पतिके पास गयी, तब ( विधिः उपवर्हेण आः ) संकल्प लक्षित हुआ, ( यक्षु अभि अम्यर्ज आः ) आँख अजन बना गया ( घौः भूमिः कोशः आसीत् ) धी और पृथिवी सज्जना बने ॥ ६ ॥

( रैमो अनुदेयी आसीत् ) रैमी आपा विदार्—गान बनी, ( नारायसी न्योचनी ) नारायसी मंत्र स्वगतका गान बना । ( सूर्याया वासः मुद्र इत् ) सूर्याका वक्ष बहुत कल्याणकारी है । वह सूर्या ( गार्धया परिष्कृता पति ) गार्धयासे सुसोभित होकर चली है ॥ ७ ॥

( स्तोमाः प्रतिषयः आसन् ) स्तुतिके मंत्र भव बने, ( कुरीरं छन्दः ओपशः ) इतिर नामक छन्द उसके सिरके भूषण बने । ( अभिना सूर्याया वरी ) दोनों अधिदेव सूर्याके साथी थे और ( अग्निः पुरोगवः आसीत् ) अग्निदेव अग्रणी था ॥ ८ ॥

( यत् सविता मनसा शंसन्ती सूर्या पत्ये अयात् ) जब सविताने मनसे ( अपने पत्नीकी ) हजुते जाने-बाड़ी सूर्याकी पतिके हाथमें दिया, उस समय ( सोमः वधूपुरः अमयत् ) सोम बधूपुरी इच्छा करनेवाला था, ( उमो अभिनी वरी आस्ता ) दोनों अधिदेव साथी थे ॥ ९ ॥

भाषार्थ— सोम सब प्रकारसे सदा सुरक्षित है, आंतरिक और बाह्य सब साधनोंसे वह सुरक्षित हुआ है । इस सुरक्षित हुए दिव्य सोमका भक्षण कोई साधारण मनुज नहीं कर सकता । ( ये वधूपुर इसी तरह अपने आपको सुरक्षित रखें और अपने आपको किसीका भक्ष्य होने न दें ) ॥ ५ ॥

जब वधूपुरके पर गयी है, सब उसका मन्त्री उसका पत्निया और आँख हैं अजन होता है, ( यर्षात् बाध साधन उसके मुखके बाध गयी होते, उसके मनके भाव ही उसको मुख होते हैं ) जानो उसके लिये वह सब आकाशका मन्त्राद्य सज्जनेके सामान प्रतीत होता है, क्योंकि पत्निया घर ही उसको सब सुख देनेवाला होता है ॥ ६ ॥

वेदमंत्रोंसे उस बधूपुरी सिगृहसे विदार् होती है और उसी प्रकार मंत्रोंसे ही उसका पतिगृहमें स्वागत होता है । मंत्रोंद्वारा पुनः हुआ पतिके घरका वक्ष उस बधूपुरा कल्याण करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पतिके घरके पास ही बधूपुरे लिये गोंध और वेदमंत्र ही उसके भूषण होने हैं । जो बधूपुरी मंगनीके लिये जाने हैं, वे मानो अधिदेव होने हैं । और जो पतिके बाधोत्तरके लिये जाया है, वह सबका मन्त्राद्य अधिदेव ही है ॥ ८ ॥

जो घर है वह मानो सोम है, मंगनी करनेवाले अधिनीदेव हैं और बधूपुर दिया सूर्य है, जो अपनी पुत्रीको बरके हाथमें देता है । वधूपुरी पतिके विषयमें अपने प्रसन्नके भाव रखती है । ( वधूपुरकी परीरिपति ऐसी होनी चाहिये ) ॥ ९ ॥

मनो अस्या अने आसीद् और/सीदुत च्छदिः । शुक्रान्नं नृणां वास्तां यदयत्सूर्या पतिम् ॥ १० ॥  
 ऋभूमाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावेताम् । आत्रेते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चरात् ॥ ११ ॥  
 शुचीं ते चक्रे यात्या व्यानो अल आहतः । अनो मनस्यं सूर्याशेहस्पयती पतिम् ॥ १२ ॥  
 सूर्यायां बहनुः प्रागां त्वाविता यस्वास्तुवत् । मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्यु ह्रते ॥ १३ ॥  
 यदग्निना पृच्छमानावयाते त्रिचक्रेण बहनुं सूर्यायाः । वरैकं चक्रं वामासीत्त्रिदृष्टार्थं तस्यतु ॥ १४ ॥

अर्थ— ( यत् सूर्या पतिं अयात् ) जब सूर्य पतिके पास गयी, तब (अस्याः मनः अनः आसीत्) इसका मन रथ बना (उत योः छदिः आसीत्) और शुक्रों उस रथका छद अर्थात् ऊपरका भाग बना । और (शुक्रौ मनःप्राप्तौ आस्तां) इस रथमें दो पथवान् बैठ जाते थे ॥ १० ॥

( ऋभू—सामाभ्यां अभिहितौ ते गावौ ) ऋग्वेद और सामवेदके मन्त्रोद्गात प्रेरित हुए हुए तथा सूर्यों दोनों के (सामनो देतां) शासिते चले । (आत्रे ते चक्रे आस्तां) दोनों काज धरे रथके दो चक्र बने । (दिवि पन्थाः चरात्) शुक्रोंमें वेरा मार्ग पर और भ्रमर रूप समस्त संसार था ॥ ११ ॥

(ते यात्याः चक्रे शुचीं) धरे जानेके रथके दोनों चक्र शुद्ध थे । (अनो व्यानः आहतः) उसके अक्षरें स्थानपर व्याप्त सामक प्राप्त था । (पतिं प्रपत्ती सूर्यां) पतिके पास जानेवाली सूर्या इस रथके (मनः—मयं आ पोहत्) मनोमय रथ पर बसी ॥ १२ ॥

(दे सयिता वयास्तुवत्) जिसकी सविकाने सेवा था, वह (सूर्यायाः बहनुः प्रागात्) सूर्याका दहेतु भागे भेद दिया गया है । (मघासु गावः हन्यन्ते) मघा नक्षत्रमें गोएँ भेटी जाती हैं । और (फल्गुनीषु द्युह्रते) फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह होता है ॥ १३ ॥

हे (अभिनी) नक्षत्रों ! (यत् सूर्यायाः बहनुं) सूर्याका दहेतु लेकर (पृच्छमानौ त्रिचक्रेण अपातं) तुम दोनों पृष्ठते हुए तीन चक्रोंवाले रथमें चले, तब (यो वरैकं चक्रं) तुम्हारा एक चक्र (क आसीत्) कहां था, और तुम दोनों (देष्टव्यं तस्यतु) दर्शानेके लिये कहां दहरे थे ? ॥ १४ ॥

भाषार्थ— जब वधू अपने पतिके घर जाये तब वह रथमें बैठकर जाये । उसमें दो उत्तम बैल (या घोड़े) जोड़े गए हों । यथासंभव वे उत्तम और तेजस्वी हों । (यस्तुतः वधूका मन ही पद रथ है, बाहर रथकी अपेक्षा वधूका मन ही ऐसा चाहिये कि जिसमें वे रथ आदि वाद्य आदिकर कल्पवत्से ही पूर्ण हों) ॥ १० ॥

इस वधूके रथके वाहक वेदमेंत्री द्वारा चढ़ाये जाय, साथ साथ सामवेद मंत्रोंका गायन होता रहे । यह वधू इसलिये गृहप्राप्त्यारम्भ करानेके लिये पतिके घर जाती है, कि इसका स्वर्गका मार्ग सुगम हो अर्थात् पतिपत्नी मिलकर ऐसा आचरण करें कि जिससे उनको सहज स्वर्ग प्राप्त हो जाय ॥ ११ ॥

यह वधू पतिके घर जाते समय जिस मनोमय रथपर बैठती है, उसके चक्र शुद्ध हों । (यहा चात्तलकी शुद्धता और मनोरथोंकी दक्षिणता वधू प्राप्त्य के लिये आवश्यक होती है) ॥ १२ ॥

वधूका पिता वरको लक्षण करनेके लिये गौक्षी दहेतु पक्षि वरके स्थानपर पहुँचाये । तब पक्षि वहा पहुँचे और पश्चात् विवाह हो । मघा नक्षत्रमें गोएँ भेटी जायें, और फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह हो ॥ १३ ॥

वधूकी ओरसे जो दहेतु वरके पास के जाता हो, वह कोई दो सज्जन (यहा दो अभिनी देव) अपने रथमें बैठकर से जायें । पूछ पूछ कर टीक वरके स्थानपर पहुँच जायें । वे ही वधूके रथको वरके स्थानका मार्ग दर्शानेवाले होनेके कारण विली योग्य स्थानपर उतरें ॥ १४ ॥



यदयति शुभस्पती वरेयं सूर्यामृतं । विषं देवा अनु तद्धामजानन्पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥  
 द्वे तं चक्रे ध्वं ब्रह्माणं ऋतुया विदुः । अथैकं चक्रे यदुहा तदद्वैतव्य इद्विदुः ॥ १६ ॥  
 अर्यमणं यजामहे सुवन्धुं पतिवेदनम् । ऊर्गच्छामि वन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामृतः ॥ १७ ॥  
 प्रेतो मुञ्चामि नामृतः । सुवन्धुममृतस्कारम् । यथेयमिन्द्र मोदस्व । सुपूषा सुमगासति ॥ १८ ॥  
 प्र स्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशायेन त्वाऽवध्रास्तस्यैता सुशेवाः ।  
 ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं तं अस्तु सहस्रमलायै ॥ १९ ॥

अर्थ— हे (शुभस्पती) शुभ वरनेकले यमिनी ! तुम दोनों (यत् वरेयं सूर्या उप मयातं) जब पतिने द्वारा वरण करने योग्य सूर्योके समीप मये, तब (यां तत् विष्वे देवा अन्यजानन्) तुम्हारा यह कर्म सब देवोंमें पसंद किया था, तथा (पुत्रः पितरं पूषा अवृणीत) जिस प्रकार पुत्र पिताको स्वीकार करता है, उसी प्रकार अपने तुम्हें स्वीकार किया ॥ १५ ॥

हे (सूर्य) सूर्य ! (ते द्वे चक्रे ब्रह्माणः ऋतुया विदुः) वे दोनों चक्रोंकी ज्ञानी लोग ऋतुके अनुसार जानते हैं । (अथ यत् एकं चक्रं मुहा) और जो एक चक्र मुह है, (तत् अद्वैतव्यः इत् विदुः) उसको निवेद जानी ही जान सकते हैं ॥ १६ ॥

(सुवन्धुं पतिवेदनं) उत्तम वन्धुबन्धनोंसे युक्त, पतिका ज्ञान देवोंके तथा (अर्यमणं यजामहे) भेद मनवाने अनुष्णका इस स्तकार करते हैं । (उर्गच्छामि वन्धनात् इय) कष्टवेधों जैसे वेधोंके बन्धनसे जलग किया जाता है, उस प्रकार (इताः प्र मुञ्चामि) इस विधुवृत्तसे तुम मुक्त हो जाओगे । (न अमृतः) परंतु पतिवृत्तसे नहीं, यथात् पतिवृत्तसे जोड़ता है ॥ १७ ॥

(इताः प्र मुञ्चामि न अमृतः) यहां [पितृकुल] से तुम मुक्त करा है, परंतु यहां (पतिकुल) से नहीं । (अमृतः सुपदां करं) यहां तो मैं उत्तम प्रकार कायता है । हे (मोदस्वः इन्द्र) राजा इन्द्र ! (यथा इयं) जिससे यह वर (सुपूषा सुमगा अस्ति) वरम पुत्रवादी और उत्तम भाग्यसे युक्त होये ॥ १८ ॥

(येन त्वा सुशेवाः सविता अवध्रात्) जिससे तुम सेवा करने योग्य सविताने थाया ॥ । (स्वा वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चामि) उस वरुणके पाशसे तुम में मुक्त करा है । (ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके) सदाचारोंके परम और सफल बर्णों लोकमें (सह-संभलायि ते) पतिके सहवर्तमान तुम (स्योनं अस्तु) सुख होये ॥ १९ ॥

भाषार्थ— वरुणी औरतें मंगनी करनेवाले (योनौ अश्विनोक्त्यार) दो वेष बध्ने पिताके पाम कम्पाकी मंगनी करनेके लिये जायें, अन्य सब लोग उनको संभति देंगे । जैसे पुत्र पिताका आदरके साथ स्वागत करता है, वैसे ही उन मंगनी करनेके लिये भाये दुर्भोका स्वागत करूँका पिता करे ॥ १५ ॥

सूर्यो नामक सविताही पुत्री तीन चक्रोंवाले इक्ष्वर वैदिकर अपने पतिके घर गई थी । इसी तरह वधू अपने वैदिकर पतिके घर जाये । रथके गवाह और मुख चक्रोंके जानी लोग जानें ॥ १६ ॥

छेद मनवाने वन्धुबन्धनोंसे युक्त सम्जनही बरका पता दें । वरका पाता किसी हीन अनुष्णसे कभी न किया जाय । जैसे परम करने बंधनसे मुक्त होजा है, उर्गच्छामि वधू अपने पतिवृत्तसे बंधना बंधन छोड़ देवे, परंतु पतिवृत्तसे बध्ना संबंध कभी न छूटे ॥ १७ ॥

वधूका संबंध पतिवृत्तसे छूटे, परंतु पतिके कुलसे न छूटे । पतिवृत्तसे संबंध भुल होवे । परमेश्वर इस वधूको पति-कुलमें उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम भाग्यसे युक्त करे ॥ १८ ॥

विवाह होते ही कम्पा वरुणके कष्टमोक्षे मुक्त होजा है । सविता देवों ही कम्पाको वरुणके धर्ममार्गमें बाँगा होता है । कम्पाका विवाह होते ही वह पतिके घर सदाचारों और सफल करनेवालोंके घरमें बहूकती है । पतिका या वधूको धर्म-मिशा देवेवाला करे ॥ १९ ॥

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याग्निनी त्वा प्र बहतां रथेन ।

गृहान्मन्त्रं गृहपन्तनी यथासौ वशिनी त्वं विदथमा वदासि

॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजापै ते समृन्धतामसिन्हादे गार्हपत्याय जागृहि ।

एता पत्या तन्वै सं स्पृशस्वाव जिर्विदथमा वदासि

॥ २१ ॥

इद्वेव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्रुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नष्टभिर्भोदमानौ स्वस्तकौ

॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि पातोऽर्जवम् ।

विश्वान्यो सुर्वमा विचष्टे प्रातूर्न्यो विदधन्जायसे नवः

॥ २३ ॥

अर्थ— ( भगः त्वा हस्तगृह्या इतः नयतु ) भग तुझे हाथ पकड़कर यहाँसे ले जाये, आगे ( अग्निनी स्वा रथेन प्र बहतां ) अग्निदेव तुझे रथमें पिछलाकर पहुँचावे । अपने पछि ( गृहान् मन्त्रं ) प्राचीन । ( यथा त्वं गृहपत्नी यशिनौ भवः ) यहाँ वृ पत्नी स्वामिनी और सबको वशमें रखनेवाली हो । यहाँ ( त्वं विदथं आयदासि ) वृ उद्यम मानकी बातें कर ॥ २० ॥

( इह ते प्रजापै मिथं समृन्धतां ) यहाँ भेरे संतापके द्विजों के बीच बुद्धि हो, ( असिन्हादे गार्हपत्याय जागृहि ) जिस घरमें गृहस्थधर्मके लिये वृ आगती रह । ( एता गत्या तन्वै संस्पृशस्वा ) इस पक्षिसे साथ अपने शरीरका स्पर्श कर ( मय जिर्विः ) और बूढ़ होनेपर वृ ( विदथं जा यदासि ) उद्यम उपदेश कर ॥ २१ ॥

( इह पय स्तं ) यहाँ रहो । ( मा वि यौष्टं ) कभी विपुक्त न हो । ( पुत्रैः नष्टभिः क्रीडन्तौ ) पुत्रों और नाति-पोंसे खेलते हुए ( भोदमानौ स्वस्तकौ ) आनन्दित होकर अपने घरबारसे युक्त होते हुए ( विश्वं आयुः व्यपश्रुतं ) पूर्ण आयुका भोग करो ॥ २२ ॥

( एतौ शिशू क्रीडन्तौ ) वे दोनों बालक खेलते हुए ( मायया पूर्वापरं चरतः ) शक्तिसे अगि पीछे चलते हैं और ( अयं परि यातः ) समुद्रतक आगम करते हुए पहुँचते हैं । ( अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे ) इनमेंसे एक सब भुवनोंकी प्रकाशित करण है और ( अन्यः प्रातूर्न्यो विदधत् नवः आपते ) दूसरा कलुषोंकी वनाया हुआ स्वर्ग भी नया नया बनवा है ॥ २३ ॥

भावार्थ— वृका हाथ पकड़कर मायका देव उसको पहिले चलाये, बादमें अग्निदेव रथमें पिछलाकर विगाहसे पश्चात् इतकी पक्षिसे घर पहुँचावे, इस तरह वृ पक्षिसे घर पहुँचे । यहाँ पक्षिसे प्राची स्वामिनी और सबको अपने घरमें रखनेवाली होकर रहे । देखो श्री ही योग्य प्रसन्नमें उद्यम संमति दे सकनी है ॥ २० ॥

इस धर्मपत्नीके संताप उद्यम सुखमें रहे । यह धर्मपत्नी कथवा गृहस्थाधम उद्यम रीतिसे चलावे और अपने पक्षिके साथ सुखसे रहे । अब इस तरह धर्ममार्गसे गृहस्थाधम चलाती हुई यह श्री वृज हो, तब यह योग्य संमति देने योग्य हो ॥ २१ ॥

श्री पुरुष अपने ही घरमें रहें, कभी विपुक्त न हों । अपने बालबच्चोंके साथ खेलें, अपने घरमें आनंद मगार्य और धर्मोत्तम गृहस्थाधम चलाने हुए संपूर्ण आयुका उपभोग लें ॥ २२ ॥

इन गृहस्थियोंके प्रत्येक छेटी यद्यो जाबुझके अपनी शक्तिसे खेलते रहते हैं बड़े होकर समुद्रतक दुर्यार्थ करते हुए चले । एकसे सब जगत्को प्रकाशित किया, वो दूसरा कलुषे अनुकार मनीषा नवीन होकर उदयको प्राप्त हो । कर्मात् गृहस्थियोंके पुत्र अपने दुर्यार्थसे जगत्को प्रकाशित करें ॥ २३ ॥

नवीनवो भवसि जायमानोऽहो वैतुरुपसामेष्पग्रम् ।

सागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्त्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः

॥ २४ ॥

परा देहि शामुर्ण्यं ब्रह्मभ्यो वि मञ्जा वसु । कृत्यैषा पद्वतीं सूत्वा ज्ञाया विंशते पतिम्

॥ २५ ॥

नीललोहितं मधवि कृत्वासुक्तिर्ष्यज्यते । रथन्ते अस्या ज्ञातव्यः पतिर्वन्धेषु रथ्यते

॥ २६ ॥

अस्तीला तनूर्भवति रुद्रासी पापयामुया । पतिर्यद्वधोऽत्र चांससः स्वमर्द्धमभ्युणुते

॥ २७ ॥

आश्रसनं विघ्नसनमथो अभिविकर्तनम् । सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मेत शुभमति ॥ २८ ॥

अर्थ— (जायमानः नवः नवः भवसि) प्रथम होता हुआ नया नया होता है । (अहो वैतुः उपरसी अग्रं पयि) दिनोंको बतानेवाला और उषाओंके अग्र भागमें होता है । (आयन् देवेभ्यः सागं विदधासि) माता हुआ है क्योंकि शिवे विभाग समर्थन करता है । तथा वे ऋद्धा ' (दीर्घं आयुः प्र तिरेसे ) व दीर्घ आयु देता है ॥ २४ ॥

(शामुर्ण्यं परा देहि) यह वस्त्र वस्त्र दान कर । (ब्रह्मभ्यः यस्तु विभज) ब्रह्मणोंकी धन है । तब (पदा पद्वती कृत्वा ज्ञाया भूत्वा) यह पाँचवाली हुत्वा भर्ता विनाशक स्वभाववाली की (पतिं पिशते) पतिने पाप भागी है ॥ २५ ॥

(नीललोहितं भवति) नीला और रक्त होता है, मोचयुक्त होता है तब (पृथ्वास्तिति ज्यज्यते) विनाशकी इष्टता बरती है, (अस्या ज्ञातव्यः पश्यते) उसके जतिरे अनुप्य बरते है पर (पतिः पश्येत्तु पश्यते) पति बन्धनमें बाँध दिया जाता है ॥ २६ ॥

(यत् पश्यः पाससः) जब छोटे बचने (पति स्वं अंगं अग्निं ऊर्णते) पति बचने शरीरको आच्छादित करता है, तब (अमुया पापया) इस पापी शीतिसे (रुद्रासी तनूः) सुन्दर शरीरके होनेपर भी वह (अस्तीला भवति) शोभाहित होता है ॥ २७ ॥

(आश्रसनं विघ्नसनं) शरीरको, शिरसे तथा (अथो अभिविकर्तनं) सजीवर रहनेवाले वस्त्रमें (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्यके रूपको देख । (उत तानि ब्रह्मा शुभमति) इन वस्त्रोंको ब्राह्मण तेजस्वी करता है ॥ २८ ॥

भाषार्थ— गृहस्थी लोग नये नये उसाइसे वस्त्रधारण करते हुए उषाओंको आच्छादित करनेवाले सूर्यसे ससान वस्त्रें सांग्रहीत करें । यशमें देवीका भाग उनके समर्थन करें और वस्त्रमय जीवन व्यतीत करते हुए सूर्य सूर्य आयुका उपयोग करें ॥ २४ ॥

विवाहके समय उत्तम उत्तम वस्त्र विद्वान् ब्राह्मणोंको दाव शिवे अग्नि, और उनके धन भी बाँटा जाये । (ये ब्राह्मण वस्त्रोंको सुशिक्षा दें) यदि वस्त्रोंके उत्तम शिक्षा न मिली तो वह वस्त्र पतिने वर अवेष्टा करके यथ कृष्ण विनाश कर सकती है । (वस्त्रोंके अयमोचरणसे कुलका नाश होता है) ॥ २५ ॥

[पतिकलमें वस्त्र यदि अयमोचरण करने लगे, तो] तब बलाया होता है, उस दुराचारी वस्त्रोंकी विनाशक बुद्धि बड जाती है, उसके पिताके संबंधी लोग जमा हो जाते हैं, और इस प्रकार विधवा पति बन्धनमें बसता है । [इसप्रति वस्त्रोंको सुशिक्षा देनी चाहिये] ॥ २६ ॥

श्रीका वस्त्र दुराचारी न पहने । यदि किसीने पहना तो उससे पतिका तेजस्वी शरीर भी शोभा रहितमा हो जाता है ॥ २७ ॥

एक वस्त्र पारीवाला होता है, दूसरा दुपट्टाके जैसा चमकदार होता है, तीसरा ओढ़नेका वस्त्र होता है । इन वस्त्रोंमें वस्त्रोंके रूपको सुंदरता बडाई जाये । इन वस्त्रोंके सम्बन्धका योग्य ज्ञान ब्राह्मण गृहस्थियोंको देवे, जिनमें वस्त्रोंके दोर दूर हो जायें ॥ २८ ॥

तृष्टमेवत्कटुकमपाष्ठवद्विषवैतदचवे । सूर्यो यो ब्रह्मा वेद स इद्राध्वंमर्हति ॥ २९ ॥  
स इच्छत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमहलम् । प्रायश्चित्तिं यो अच्येति येन जाया न रिभ्यति ॥ ३० ॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धपुतं वदन्तावृताघेषु ।

ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारुं संमत्तो वंदतु वार्चमेताम् ॥ ३१ ॥

इहेदंसाय न पुरो गमायेमं गावः प्रजया वर्षयाय ।

श्रुमं यतीहस्रियाः सोमवर्चसो विधे देवाः क्रुद्धि वो मनांसि ॥ ३२ ॥

इमं गावः प्रजया सं विंशत्यायं देवानां न मिनाति भागम् ।

अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता संविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अर्थ— ( यत्तत् सृष्टं ) यह क्या उत्पन्न करनेवाला है, ( कटुकं ) यह कड़वा है, ( अपाष्ठयात् विषयत् ) पर  
गुणित और यह विषयुक अन्न है, मत् ( यत्तत् यस्मै न ) यह जानेके योग्य नहीं है । ( यः ब्रह्मा सूर्यो वेद ) जो  
माझण सूर्यको इस तरह सिखाता है, ( सः इत् वाप्ययं अर्हति ) वह नि सौदे वपुकी ओरसे यज्ञ देने योग्य है ॥ २९ ॥  
( यः प्रायश्चित्तिं अच्येति ) जो प्रायश्चित्त प्रकार अर्थात् चित्त कुछ करनेका मन्त्रधन कराता है, ( येन जाया  
न रिभ्यति ) जिससे पत्नी नष्ट नहीं होती ( यः इत् ) वह निश्चयसे ( तत् समृद्धपुतं स्योनं ) घालः हरति ) उस  
मंगल और सुखकर वस्त्रको ले सकता है ॥ ३० ॥

( युवं भूत-उद्येपु फलं यद्वन्ती ) तुम दोनों साथ व्यवहारमें रह कर साथ बीघते हुए ( समृद्धं भगं संभरतं )  
समृद्धिपुत्र भाग प्राप्त करो । हे ब्रह्मणस्पते ! ( पतिं अस्यै रोचय ) पतिके विषयमें इस स्त्रीके मनमें रचि उत्पन्न कर ।  
( संमत्ताः पतां वार्चं चारुं यदातु ) पति इस बाणीको सुन्दरगले बोले ॥ ३१ ॥

हे ( गावः ) गौवो ! ( इह इत् असाध ) तुम नहीं रहो । ( परः न वामाध ) दूर मत जाओ । ( इमं प्रजया  
वर्षयाय ) इस वपुकी उत्पन्न संततिसे साथ बढाओ । हे ( उश्रियाः ) गौवो ! ( श्रुमं यतीः सोमवर्चसः ) श्रुमकी  
प्राप्त करनेवाली और चन्द्रके समान तेजस्वितासे युक्त होवो । ( विधे देवाः यः मनांसि इह क्रुद्धि ) सब देव तुम्हारे  
मनोको यहाँ स्थिर कर ॥ ३२ ॥

हे ( गावः ) गौवो ! ( इमं प्रजया सं विंशत्यायं ) इससे घरमें अपनी संतानसे साथ प्रवेश करो । ( अयं श्रेयानां  
भागं न मिनाति ) यह पतमान देवीके भागका लोप नहीं करता है । ( पूषा सर्वे मरुतः ) पूषा और सब मरुत ( धाता  
संविता ) विधाता और स्रष्टा । ( अस्मै अस्मै वः यः यः सुवाति ) इसी अनुषङ्गे जिनके तुमको उत्पन्न करते हैं ॥ ३३ ॥

आयार्थ— एक अन्न वृत्ताकी बजनेशाना, दूसरा कड़वा, तीसरा सखा दुग्ध और चौथा विषयुक होता है । इस  
प्रकारके अन्न गृहस्थिधारेके गन्धेदेव्य भवते हैं । इस तरह की शिक्षा देनेवाले माझणको वपुकी ओरसे यज्ञ दिये जावे ॥ २९ ॥  
जो माझण चित्त सुद्ध करनेका ज्ञान जानता है, जिन ज्ञानके प्राप्त होनेसे धर्म विमर्शनी नहीं, इस प्रकारकी शिक्षा  
देनेवाले अन्धायक माझणको ही मंगल और सुन्दर वस्त्र देना योग्य है और ऐसा माझण ही बहिरा दान लेये ॥ ३० ॥

गृहस्थी कीपुत्रन रचि व्यवहार करें, मद्रा सत्य बोलें, और धर्मपति बनावें । पत्नीके मनमें पतिसे शिरपमें बड़ा  
आदरभाव रहे और पति भी सुन्दर और मधुर व्यवहार करे ॥ ३१ ॥

गृहस्थीके घरमें गौरे रहें, इसीमें गौरे भाग न जाये । गौरे बछड़े देखी रहें । उनकी संख्या बदे । गौरे भुक्कभावदर्शी  
और तेजयुक्त हों और गौरे की घरवाणीपर प्रीति करें ॥ ३२ ॥

गौरे अपने बहिराके साथ धर्ममें प्रवेश करें । गृहस्थ देवपुत्र प्रतिदिन करें, कमी खजना लेय न हो । सब देव हम  
गृहस्थीके घरमें गौरीकी संख्या बढ़ावें ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा अजयः सन्तु पन्थानो वेमिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।

सं भगेन समर्थम्या सं धाता संजत वचसा

॥ ३४ ॥

युच्च वचो अक्षेपु सुराया च यदाहितम् । यद्गोष्मिन्ना वर्चस्तेनेमा वचसावतम्

॥ ३५ ॥

येन महानम्या जघनमश्मिन्ना येन वा सुरा । येनाक्षा अम्यपिन्यन्त तेनेमा वचसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयेदुस्त्वन्तयं विप्रास ईदते अचुरेषु ।

अया नृपान्मधुमतीरपो दा यागिरिन्द्रो वाबूचे वीर्पावाच

॥ ३७ ॥

इदमहे रुद्राग्नं ग्रामं तनूदृपिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदंवामि

॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्रपनीर्हरन्त्वर्चोर्घ्नीरुदंयन्त्वापः

अर्पुम्यो अमि पर्येतु पूषन्प्रतीक्षन्ते शशुरो देवरां

॥ ३९ ॥

अर्थ— ( येमि नः सखायः वरेयं यन्ति ) जिससे हमारे सब मित्र कन्धारे पर पहुँचते हैं । ( पन्थानः अनृक्षराः अजयः सन्तु ) वे सब मार्ग काटकरहित और सरल हो, ( धाता भगेन अर्थम्या वचसा सं सं सं संजतु ) विधाता, भाग और अर्थमा तेजसे इसे संयुक्त करें ॥ ३४ ॥

हे ( अग्निमी ) भविष्ये ! ( यत् वचः अक्षेपु ) तो तेज आलोमें है और ( यत् सु-रायां आहितं ) जो तेज संपरिमें होता है, ( यत् च धर्मः गोपु ) जो तेज भोगमें है, ( तेन वचसा इमां आवतं ) उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

हे ( अग्निमी ) भविष्ये ! ( येन महानम्याः जघनं ) जिससे बड़ी गीका जघन मर्धार, निचला दुग्धाशयका भाग, ( येन वा सुरा ) जिससे संरपि, ( येन यक्षा अभ्यपिच्यन्त ) जिससे आलें भरकर रहती हैं ( तेन वचसा इमां आवतं ) उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

( यः अन्तु अन्तः अनिध्मः दीदयत ) जो जलमें इन्धनके बिना चमकता है, ( यं विप्रास-अभ्यरेषु ईदते ) जिसकी शानी लोग मजमें सज्जित करते हैं और ( याभिः वीर्पावाच इन्द्रः वाबूचे ) जिससे वीर्यावा इन्द्र पकता है, हे ( अयां नृपात् ) मधुमतीः अपः दाः ) प्रलोक के गिरानेवाले देव । ऐसा मधुर तेज हमें दे ॥ ३७ ॥

( इदं वहं तनूदृपि रराग्नं ग्रामं अगोहामि ) यह मैं शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले विनाशक रोगको दूर करता हूँ और ( यः भद्रः रोचनः तं उदंवामि ) जो कल्याणमय तेज है, उसको धारण करता हूँ ॥ ३८ ॥

( ब्राह्मणाः अस्यै स्रपतीः आपः आहरन्तु ) ब्राह्मण लोग इस वधूके विषे स्नानका जल ले आवें । ( शश्वी-रायाः आपः उदंयन्तु ) वीरका भाग न करनेवाला जल ले लें । ( अर्थम्याः अमि पर्येतु ) वह अर्थमाती भूमि की प्रदक्षिणा करे । हे ( पूषन् ) पूषा ! ( श्वशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते ) समुद्र और देवर इस वधूकी प्रतीक्षा करें ॥ ३९ ॥

भावार्थ— वरके तथा वधूके घर आनेके मार्ग काटकरहित और सरल हो । घरमेंबर हन गृहस्थियोंको तेजस्वी करके समृद्ध करे ॥ ३४ ॥

जो तेज आलोमें, वेषधर्म और भोगमें होता है, उस तेजसे वह वधू युक्त हो । यह ही तेजस्विनी हो ॥ ३५ ॥

जिस तेजसे गीका दुग्धाशय तेजस्वी हुआ है, जो तेज वेषधर्म और आभ्यमें होता है, उस तेजसे वह वधू युक्त होने और यह ही धर्मोत्तरणमें सुरक्षित रहे ॥ ३६ ॥

जलोमें इन्धनके बिना चमकनेवाला तेज है, जलमें द्विजोक्त ज्ञानका तेज है, और जलमें मधुरता है और वीर भी है । इन तेज, ज्ञान, मधुरता और वीरसे ये गृहस्थी युक्त हों । इन्द्र इन्द्रकि आधिपत्यसे सबसे महान् हुआ है ॥ ३७ ॥

शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले रोगकीबीँकी दूर करके जिससे शरीर बीरोगी और आनन्दप्रसन्न होता हो उन गुणोंको धारण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण होता घटारें कि यह जल स्नान करनेयोग्य है, वह जर मीरकाका नास करके बरकमानेवाला है । वधूवर श्रेष्ठ भग धारण करने अधिकारी प्रदक्षिणा करें । श्रेष्ठ गुणवाली वधू की प्रतीक्षा पतिगृहमें समुद्र और देवर करें ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शम्भुं सन्त्वापः । शं मेधिर्भवतु शं युगस्य तर्धं ।

शं तु आपः । अतपवित्रा मवन्तु शम्भुं पत्यां तन्वंशं सं स्पृशस्व

॥ ४० ॥

शे रथस्य खेडनेसः । शे युगस्यं अतकतो । अपालाभिन्दु त्रिष्वन्ताकुणोः सूर्यत्वचम्

॥ ४१ ॥

आशासना सौमनसे प्रजा सौभाग्यं रथिम् । पत्युर्नुव्रत भूत्वा सं नक्षत्रामृताप कम्

॥ ४२ ॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषां । एवा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्ते परेत्य

॥ ४३ ॥

सम्राज्येधि इवशूरेषु सम्राज्युत देवेषु । ननान्दुः सम्राज्येधि सम्राज्युत शुश्रवाः

॥ ४४ ॥

या अहन्तस्त्रयन्त्याश्च तस्मिन्ने या देवीरन्तां अमितोऽर्द्धदन्त ।

तास्व्यां जुरसे सं व्यपन्त्यायुष्मतोदे परि भरस्व वासः

॥ ४५ ॥

अर्थ— ( ते हिरण्यं शं ) तेरे लिये सुवर्ण कल्याणकारी हो, ( ४ आपः शं सन्तु ) और जल सुखकर हो, ( मेधिः शं भवतु ) गौ बाण्डेका स्वयं सुखदायी हो । तथा ( युगस्य तर्धं शं ) तुझे का छिद्र सुखकर हो, ( ते अतपवित्राः भावः शं भवन्तु ) तेरे लिये सौ प्रकाशसे पवित्रता करनेवाला जल सुखदायी हो । ( पत्यां तन्वंशं सं स्पृशस्व ) पतिके साथ अपने मरीजका रथमें उतारम रीतिसे कर ॥ ४० ॥

हे ( शतकतो इन्द्र ) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( रथस्य शे ) रथके छिद्रमें, ( अनसः शे ) गार्गीके छिद्रमें और ( युगस्य शे ) तुझे के छिद्रमें ( अपालाभिः त्रिः पूत्या ) अयोम्य रीतिसे पाखी हुईं कुक्कुटकी तीन बार पवित्र करके उसे ( सूर्यत्वचं अहृणोः ) सूर्यके समान तेजस्वी रचाले सुक तुने किया ॥ ४१ ॥

( सौमनसे प्रजा सौभाग्यं रथिं आशासना ) उत्तम मन, संजान, सौभाग्य और भवकी भाशा करनेवाली हो ( पत्युः अनुव्रता भूत्वा ) पतिके अनुव्रत मान्वाग करनेवाली होकर ( अमृताय कं सं नक्षत्रस्य ) अमरत्वके लिये अपनी तरह सिद्ध हो ॥ ४२ ॥

( यथा वृषा सिन्धुः ) जिस प्रकार बछावकी समुद्र ( गर्दीनां साम्राज्यं सुषुवे ) गार्गीका साम्राज्य पछाला है, ( एव त्वं पत्युः अस्ते परेत्य ) उसी प्रकार तू पतिके घर पहुँचकर ( साम्राज्येधि पथि ) सम्राज्ञी होकर बड़ा ॥ ४३ ॥

( श्वशूरेषु सम्राज्येधि पथि ) ससुरोमें स्वामिनी होकर रह । ( उत देवेषु सम्राज्येधि ) देवोंमें भी महाराणीके समान आदरसे रह । ( समान्तुः सम्राज्येधि ) मनवके साथ भी राजीके समान रह और ( उत श्वद्वन्त्याः सम्राज्ञी ) सामनेके साथ भी सम्राज्ञी कीके समान होकर रह ॥ ४४ ॥

( याः देवीः अहन्तस् ) जिन देवियोंने स्वयं मृत कला है, ( याः ता अवपन् ) तिन्होंने मुनः है, ( याः च तस्मिन्ने ) जो ताका तावती हैं, ( याः च अमितः अन्तान् ददन्त ) और जो पारों मोरके अन्तिम भागोंको दीक्षरखती हैं, ( ताः त्वा जरसे सं व्यपन्तु ) वे तुझे वृद्धावस्थातक रहनेके लिये बुँबें । ४ ( आयुष्मती इदं वासः परि घास्व ) वीर्ये आयुवासी होकर इस वस्त्रको धारण कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ— सुवर्ण, जल, गौका बाँधनस्वयं, जुरके मान आदि सब कर्तव्यके कल्याण करनेवाले हैं । जल तो सौ प्रकाशसे पवित्रता करनेवाला है । गृहस्थके घरमें धर्मपत्नी पतिके साथ दिव्य लगाकर रहे ॥ ४० ॥

गृहस्थ तथा स्त्री अपनी तीन प्रकारकी सुदृष्टा शत्रुको हराते कराते सूर्यके समान तेजस्वी बनकर यहां बिराजे ॥ ४१ ॥

गृहस्थके घरमें स्त्री उत्तम मन, संजान, सौभाग्य व धवकी धृष्ट्या करती हुई, पतिके अनुव्रत कर्म करती हुई, अमरत्व प्राप्तिके श्रेष्ठ सुखदायी मार्ग पर चले ॥ ४२ ॥

जैसे महासागर नदिमोका सघाट है, उसी प्रकार पतिके घर पहुँचकर वह बंधू गृहस्थको सम्राट् और अपनेको उसकी साम्राज्ञी बनाकर व्यवहार करे ॥ ४३ ॥

समुद्र, देवर, मनु और सास आदि सबके साथ राजीके समान वर्तव को और सबको मुल देवे ॥ ४४ ॥

घरमें देवियों मृत काय, कपडा बुँबें, तावा तावें, कपड़ेके अन्तिम भाग दीक्ष करें । ऐसा उत्तम कपडा पुँने कि जो वृद्धावस्थातक स्थान देवे । स्त्री दीर्घायु बनकर इस कपड़ेमें रहने ॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नेपन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीक्षुर्नरे ।

यामं पितृभ्यो य इदं संमीतिरे मयः जनये पतिव्रजे ॥ ४६ ॥

स्योनं ध्रुवं प्रजापतिं धारयामि तेऽङ्गमानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।

तमा तिष्ठानुमायां सुवर्चां वीर्ये त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दर्शयाम् ।

तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णतु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।

अग्निः सुमगां जातवेंद्राः एते पत्नीं जरदंष्टि कृणोतु ॥ ४९ ॥

अर्थ— ( जायं यदस्ति ) जीवित मनुष्यकी विद्या पर लोग होते हैं, ( अध्वरं विनयन्ति ) पण्डितों कापसे जाते हैं, ( नरः दीर्घां प्रसितिं मनु दीभ्यः ) मनुष्य दीर्घ मार्गका विचार करते हैं, ( ये पितृभ्यः इदं यामं समीतिरे ) जो पिता अपने मातापिताके लिये यह सुन्दर कार्य करते हैं, ये ही अपने ( पतिभ्यः मयः जनये पतिव्रजे ) पति-पति लिये सुखदायी होती है जो स्त्रीको आर्तिमान करता है ॥ ४६ ॥

( देव्याः पृथिव्याः उपस्थे ) पृथ्वी देवीके पास ( ते प्रजापति स्योनं ध्रुवं अङ्गमानं धारयामि ) ऐसी संतानके लिये सुखदायी और पत्थर जैसे स्थिर आधारको स्थापित करता हूँ ( तं आतिष्ठ ) उत्तर दक्षिण १४, ( अनुमायां ) आर्तिदित हो, ( सुवर्चां ) उत्तम तेजसे युक्त हो । और ( सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु ) सविता ऐसी आयु देवी करे ॥ ४७ ॥

( येन अग्निः ) जिस वरदण्डसे अग्निसे ( अस्याः भूम्याः दर्शयाम् हस्तं जग्राह ) इस धूमिका हाथों हाथ मड़ल करिष्या, ( तेन ते हस्तं गृह्णामि ) उसी वरदण्डसे वेरा हाथ में पकड़ता हूँ, ( मा व्यथिष्ठाः ) दुःखी मत हो, ( मया सह प्रजया च धनेन च ) मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

( सविता देवः ते हस्तं गृह्णतु ) सविता देव वेरा पालिग्रहण करे । ( राजा सोमो सुप्रजसं कृणोतु ) राजा सोम ऐसे उत्तम सम्पन्नपुत्र करे । ( जातवेंद्राः अग्निः पत्ये सुमगां पत्नीं जरदंष्टि कृणोतु ) अग्निदेव अग्नि पतिके लिये सौभाग्यपुत्र कीको बृहन्नस्त्राटक जानिवाली करे ॥ ४९ ॥

आवाध— विज्ञाईपर मनुष्य रोया करते हैं । परंतु यह क्या वषयि विद्वत्कुलसे विद्या होती है, वषायि पतिके घरमें गृहपण्ड करनेके लिये जा रही है, अतः इस गृहस्थाश्रममें दीर्घ आर्णका सोम विचार करें और न सोयें । विद्वत्घरके लोगोंने तो यह सुलका दिन है, क्योंकि यह वषुके यज्ञका आरंभ है । यह वषु पतिके मुख देखी है और पति इसको आर्तिमानसे मुख देण है । परस्पर सुखवृद्धि करना ही गृहस्थका कर्तव्य है ॥ ४६ ॥

इस मन्त्रपर वेरा संगम सुलपूर्वक दोर्घकाळक रहे, इसलिये यह पत्थरका आधार स्थापित करता हूँ । इसपर चट, आर्तिदित और तेजस्वी हो । इस तरह गृहस्थाश्रममें सुख रहनेसे ऐसी आयु दीर्घ हो ॥ ४७ ॥

जैसे अग्नि और मृमिका संबंध है, वैसे ही संबंधके लिये मैं इस वषुका पालिग्रहण करता हूँ । वषुके कष्ट न हो । यह वषु मेरे साथ प्रजा, धन और ऐश्वर्यसे युक्त हो ॥ ४८ ॥

सविता जैसे तेजस्वी बनकर पति स्त्रीका पालिग्रहण करे, और सोम जैसे कलाकुश होकर भाररथीमें संतान उत्पन्न करे । पतिपत्नी मिलकर दोनों इस गृहस्थाश्रममें बृहन्नस्त्राटक जाननकुल रहें ॥ ४९ ॥

गृहामि ते सौमगृत्वाय हस्तं मया पत्न्या ज्वरदृष्टिर्व्यासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्महं त्वादृगर्हिपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीत् । पत्नी त्वयसि धर्मेषाऽहं गृहपतिस्त्वं

॥ ५१ ॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् गृहस्पतिः । मया पत्न्या प्रजावति सं जीवं श्रद्धः वृत्तम्

॥ ५२ ॥

त्वष्टा चासो व्यदिधाच्छुभे कं गृहस्पतेः प्रथिषा कर्त्तव्याम् ।

तेनेमां नारीं सविता मर्मश्च सूर्यामिव परि धर्ता प्रजया

॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी धावापृथिवी मातरिषा मिश्रवर्णम् । ममो अग्निनोमा ।

गृहस्पतिर्मरुतो मरु सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु

॥ ५४ ॥

अर्थ— (ते हस्तं सौमगृत्वाय गृहामि) तेरा हाथ मैं सौभाग्यके लिये पकड़ा हूँ । (मया पत्न्या ज्वरदृष्टिः अस्ति) जिससे तू मुझ पतिके साथ गृहत्वस्थावक जीनेवाली होकर रह । (भगः अर्यमा सविता पुरंधिः देवाः) भग, अर्यमा, सविता, पुरंधि और सब देवोंने (त्वा मह्यं गर्हपत्याय अस्तु) तुमको मेरे हाथमें गृहस्थाभ्युपनिषद् के लिये दिया है ॥ ५० ॥

(भगो ते हस्तं अग्रहीत्) भगने तेरा हाथ पकड़ा है, (सविता हस्तं अग्रहीत्) सविताने तेरा हाथ पकड़ा है, (स्य धर्मेषा पत्नी अस्ति) तू धर्मसे मेरी पत्नी है, और (अहं त्वं गृहपतिः) मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

(इयं मम पोष्या अस्तु) यह स्त्री मेरे द्वारा पोषणकरनेयोग्य हो । (गृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात्) गृहस्पतिने तुझे मुझको दिया है । हे (प्रजावति) संतानवाली स्त्री ! (मया पत्न्या श्रद्धः दातुं संजीव्य) मुझ पतिके साथ तू सौ वर्षवक जीवित रह ॥ ५२ ॥

(त्वष्टा धासः) त्वष्टाने यह वक्त्र (शुभे कं) कल्याण और सुखके लिये (गृहस्पतेः कर्त्तव्यां प्रथिषा) गृहस्पति और कविपति आशीर्वादके साथ (व्यदिधाच्छुभे) कल्याण है । (तेन इमां नारीं) वसते इस स्त्रीको (सविता भग) सविता और भग (सूर्या इयं) सूर्यके समान (प्रजया परिधत्तां) उत्तम संतानके साथ संपुक्त करें ॥ ५३ ॥

(इन्द्राग्नी) इन्द्र, अग्नि, (धावापृथिवी) धुविक, भूमि, (मातरिषा) मातृ, मित्र, पक्ष्य भग, (उमौ अग्निनी) दोनों अग्निनीकुमार, गृहस्पति, मरुत, मरु, सोम ये सब (इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु) इस स्त्रीको संतानके साथ बढ़ावें ॥ ५४ ॥

भाष्यार्थ— हे स्त्री ! मैं पति तेरा पाणिग्रहण सौभाग्यवर्धनके लिये करता हूँ । मुझ पतिके साथ तू गृहत्वस्थावक रह । सब देवोंने तुमको गृहस्थाभ्युपनिषद् के लिये मेरे हाथमें सौंपा है ॥ ५० ॥

भग अर्थात् भद्रवान् होकर और सविता वैसा समर्थ और तेजस्वी होकर तेरा पाणिग्रहण मैं करता हूँ । पत्नसे तू धर्मके अनुसार मेरी धर्मपत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

यह धर्मपत्नी मेरी (पतिके) द्वारा पोषणके योग्य है । परमेश्वरने यह कल्याण मेरे हाथमें दी है । वहाँ मेरे धर्ममें यह वर सन्तानोंके पुत्र होकर मुझ पतिके साथ सौ वर्षवक कालवसते रहे ॥ ५२ ॥

इस कारिगरे द्वारा इसने लिये बताया यह वक्त्र है, नारी आश्विनोने इसको आशीर्वाद दिया है । तू धर्मपत्नी इसको पढ़ने और ईश्वरी कृपासे उत्तम संतानोंके पुत्र होने ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नादि सब देवी पतिधर्मा इस नारीको उत्तम संतानोंके साथ बढ़ावें ॥ ५४ ॥



बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशान् अकल्पयत् ।

तेनेषामभिक्षिता नारी पत्युः सं शोभयामसि

॥ ५५ ॥

इदं तद्रूपं यदवस्तु योषां जायां विज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।

तामन्वतिभ्युः सखिमिर्नवगवैः क इमान्विशन्ति चवर्त पाशान्

॥ ५६ ॥

अहं वि श्यामि मयि रूपमेस्या वेददित्यमुन्मनसा कुलार्पम् ।

न श्लेषमयि मनसोदमुन्ये स्वयं श्रध्नानो वरुणस्य पाशान्

॥ ५७ ॥

म त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाश्रयनात्सविता सुखेवां ।

उक्तं लोकं सुगतम् पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहर्षत्यै वधु

॥ ५८ ॥

अर्थ— ( बृहस्पतिः प्रथमः ) बृहस्पतिने सबसे प्रथम ( सूर्यायाः शीर्षे केशान् अकल्पयत् ) सूर्योदितिरन कोणको बराया । ( तेन ) उसी तरह ( अभिनी ) दे अधिको कुमाते । हम ( इमां नारीं यसे सं शोभयामसि ) इस बीकी पतिके लिये सुशोभित करे ॥ ५५ ॥

( यत् योषा भवस्तु, तत् रूपं इदं ) जो वधु बीने कारण दिया उससे कारण उसका वह रूप है । ( प्रमत्ता चरन्ती जायां जिज्ञासे ) मनसे भ्रमण करनेवाकी बीको मैं जानना हूँ ( नवगवैः सखिमिः तां अन्वतिभ्युः ) पशों और भविष्योके साथ उसका मैं अनुसरण करता हूँ । ( कः इमान् विशन्ति चवर्त ) बीन जानो इन पाशोंको काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

( मनसा कुलार्प पश्यन् ) मनसे अपने कुलकी बृद्धिकी वैज्जता हुआ ( अहं ) मैं ( अस्याः रूपं मयि विप्यामि ) इस रूपको रूपकी अपने मनपर स्थापित करता हूँ, वह भी ( इत् वेदत् ) मेरे मनके व्यवहारकी जाने । मैं ( मनसा श्लेष उवमुन्ये ) मनसे भी इस वधुके साथ बीकीका व्यवहार छोड़ देता हूँ, और उससे प्यारी करते छोड़ भी बीन ( न मयि ) नहीं लाइगा । और ( इत्यं ) मैं त्वयं ( वरुणस्य पाशान् अश्रयनात् ) वरुणके पाशोंको शिथिल करता हूँ ॥ ५७ ॥

वै ( वधु ) बी ! ( येन सुतोयाः सविता त्वा अश्रयन् ) जिससे वेदा करनेयोग्य सविताने तुझे बांध दिया था, ( त्वा वरुणस्य पाशात् प्रमुञ्चामि ) उस वरुणके पाशसे मैं तुझे मुक्त करता हूँ । ( तुभ्यं सहर्षत्यै ) तुम सह-चर्मपातिनीके लिये ( अत्र उक्तं लोकं सुगमं पन्थां कृणोमि ) यहाँ विस्तृत स्वाग और उचित रासमयोग्य मार्ग बनाता हूँ ॥ ५८ ॥

भाषार्थ— कन्याके तिरहर उसका वात हों और वह नारी पतिकी मासिके लिये सुशोभित हो ॥ ५५ ॥

बीका उसका वधु कारण करनेसे जो रूप बनता है, वही देखनेयोग्य है । मनका आकषटन कैसा है, वही बीके विषयसे देखना चाहिये । पति यज्ञकर्मोंमें चर्मपातीकी अपने साथ लड़ रहे । विषयोंके पाशोंको बीन विद्वान् काट सकता है । ॥ ५६ ॥

मैं इन बन्धनोंको तोड़ता हूँ । इस मेरी चर्मपातीका रूप केवल मेरे लिये है । इसके बन्धकी रीतिज्ञा करते ही मैंने वह जान लिया है । मैं जो भोग करूँ वह इस वधुको बताकर ही करूँ, क्योंकि बनका भोग मैं नहीं करूँ । मैं वरुणके पाशोंको शिथिल करता हुआ मनके बलसे मुक्त होऊँ ॥ ५७ ॥

सविताने तुझे इस समवतक जिन पाशोंसे बांध रखा था, उन वरुणके पाशोंको मैं तोड़ता हूँ । तुम अपनी सुयोग्य चर्मपातीके लिये यहाँ विस्तृत शोक है और उचितका मार्ग भी सुगम है ॥ ५८ ॥

उद्यच्छन्मप रक्षो हनायेमां नारीं सुकृते दधात ।

धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेदु भगो राजां पुर यतु प्रजानन्

॥ ५९ ॥

भगस्ततश्च चतुरः पादान्मर्मस्ततश्च चत्वार्युष्मत्तानि ।

त्वष्टा विपेश मध्यतोऽनु वर्धन्तसा नो अस्तु सुमङ्गली

॥ ६० ॥

सुकिन्नुक बहत्तुं विभरुपं हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रम् ।

आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो बहत्तुं कृणु त्वम्

॥ ६१ ॥

अम्नातृष्नीं वरुणापंगुष्मीं बृहस्पते । इन्द्रातिर्षीं पुत्रिणीं मासमभ्यं सवितर्वह

॥ ६२ ॥

मा हिसिष्टं कुमार्यै१ स्यूने देवकृते पयि । शास्ताया देव्या द्वारं स्योनं कृणो पशूपयम् ॥ ६३ ॥

अर्थ— ( उद् यच्छन्मप ) अपने शत्रुओं को डर डलाओ । ( रक्षः भयः हनाय ) शत्रुओं को मारो । ( इमां नारीं सुकृते दधात ) इस स्त्री को शुभ कर्मों से रक्षाओ । ( विपश्चित् धाता अस्मै पतिं विवेदु ) ज्ञानी विपश्चित्ने इसके लिये पति प्राप्त कराया है । ( भगः राजा प्रजानन् पुर यतु ) राजा भग जानका हुआ मारो बडे ॥ ५९ ॥

( भगः चतुर पादान् ततश्च ) मगने चार पावों को बनाया, उनपर ( भगः चत्वारि उष्मत्तानि ततश्च ) मगने चार कमलों को बनाया । ( त्वष्टा मध्यतः वर्धन् अतु विपेश ) त्वष्टा ने मध्यमें कमलपत्रों को बनाया । ( सा मा सुमङ्गली अस्तु ) वह कन्या हमारे लिये उज्ज्वल मंगल करनेवाली हो ॥ ६० ॥

हे ( सूर्ये ) सूर्ये ! ( सुकिन्नुक विभरुपं हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रं बहत्तु आरोह ) वज्रम उष्णोंसे पुनः, मनेक रूपवाले सोनेके रंगके समान चमकनेवाले, उत्तम देहमेंसे पुनः और उत्तम चर्मोंसे पुनः इस रथपर चढ़ । ( अमृतस्य लोकं आरोह ) अमृतके लोकपर चढ़ । ( त्व बहत्तुं पतिभ्यः स्योनं कृणु ) हे इस रथको पतिवर्गके लिये सुलभायी कर ॥ ६१ ॥

हे ( वरुण बृहस्पते इन्द्र सवितः ) देवो ! ( अम्नातृष्नीं ) भार्येका वध न करनेवाली, ( अपंगुष्मीं, अप तिर्षीं, पुत्रिणीं मासमभ्यं भा बह ) वज्रका वध न करनेवाली, पतिरा नाश न करनेवाली और पुत्र उत्पन्न करनेवाली इस बधूको हमारे लिये प्राप्त कराओ ॥ ६२ ॥

हे ( स्यूने ) देवी ! ( देवकृते पयि ) देवोंके बनाये माँगर करनेवाले ( कुमार्यै मा हिसिष्टं ) इस कुमारों बधूकी हिंसा न करो । ( देव्या शास्तायाः द्वारं पशूपयं स्योनं कृणुम् ) बरह्म देववाले द्वारमें मनुष्यों आनेके मार्गको इस सुलभा करि ॥ ६३ ॥

भाषार्थ— इस धर्मपत्नीको कष्ट देनेवाले शत्रुओंका नाश करनेके लिये तुम लोग क्षमियाए सदा सुसज्जित रहो । सूर्य, वृक्ष, आकाश, पुण्ड्रजर्मने, लज्जको, ज्ञाती, त्रिजगत्तरी, योगतिथि, वृक्षको, वरु, पति, पाद, पुत्र, दे, पत्नी, भी, पशु, चतुर, पुत्र, विवाहमें मगनामी हुआ या ॥ ५९ ॥

मगने पाँचोंके चार बाधुपण और तृतीयापर भक्षण करनेके चार वृत्त बनाये और कमाने धारण करनेवाले कमलपत्र बनाया है । इनको धारण करने यह स्त्री उत्तम मंगलमयी बने ॥ ६० ॥

यह बधू उत्तम बुरोंसे पुनः, सुदृढ़, सोनेके कमानसे सुजोडित और उत्तम चक्रवाले रथपर चक्रकर भयंकर पशूके मार्ग का चले । यह धर्मपत्नी का विवाहमंगल पतिके धरावालेके लिये मस्तकारक होवे ॥ ६१ ॥

यह स्त्री पतिके घरमें पतिके माँ, पशु आदिओंको सुल देवे । पतिको सुल देवे । पुत्रोंको उत्पन्न करे । और मरका भाग्यद करनेवाली बने ॥ ६२ ॥

मह बधू देवोंके मार्गसे या रही है अथ इसको किसी तरह कष्ट न हो । इससे पतिके घरका मार्ग और इससे पतिके घरका द्वार इससे लिये सुलभायी होवे ॥ ६३ ॥

मन्त्रापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।

अनाध्यायां देवपुरां प्रपद्ये श्रिया स्योना पतिलोके वि राज

॥ ६४ ॥

[ २ ]

ह्रस्वमग्रे पर्यबहन्सूयां चहत्तुना सह । स नः पतिभ्यो ज्ञायां दा अग्रे ब्रजया सह ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमगिरदादायुषा सह वचैसा । दीर्घायुरस्याः यः पतिर्जीवाति श्रद्धः शतम् ॥ २ ॥

सोमस्य ज्ञायाः प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददुष्ये । रविं च पुत्रावादादग्निर्महामयो हुमास् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अथ पूर्व भक्तता मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यतां ) आगे, पीछे, अन्तमें, बीचमें, अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म अर्थात् ईश्वरार्पणात् मंत्रोंका प्रयोग किया करो । हे बधू ! हे ( अनाध्यायां देवपुरां प्रपद्ये ) व्याधिरहित देवमगरीको प्राप्त होकर ( पतिलोके श्रिया स्योना वि राज ) अपने पतिके म्यानमें कल्याणकारी और सुख देनेवाली होकर प्रकटित हो ॥ ६४ ॥

[ २ ]

हे अग्रे ! ( अग्रे ह्रस्व ) आरम्भमें मेरे लिये ( चहत्तुना सह सूयां पर्यबहन् ) पहलेसे काय सूयाँके ले जाने के । ( तां ) वह द ( नः पतिभ्यः ) हम सब पतिवृत्तोंके ( ब्रजया सह जायां दा ) सत्कृतकृत्य पत्नीको प्रदान कर ॥ १ ॥

( आयुषा प्रपद्या सह ) दीर्घायु और तेजके साथ ( अग्निः पत्नी पुनः अदात् ) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदान किया । ( अस्याः यः पतिः ) इसका जो पति है, वह ( दीर्घायुः शतम्, शतं जीवाति ) दीर्घायु बनकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥

( प्रथमं सोमस्य ज्ञाया ) यह सबसे प्रथम सोमकी बी है, ( ते अपरः पति गन्धर्वः ) ठेरा दूसरा पति गन्धर्व है । ( ते तृतीयः पतिः अग्निः ) ठेरा तीसरा पति अग्नि है और ( ते तुरीयः मनुष्यजाः ) ठेरा चतुर्थ पति मानव है ॥ ३ ॥

जिसको ( सोमः गन्धर्वाय ददत् ) सोमने गन्धर्वको दी और ( गन्धर्वः अग्नये ददत् ) गन्धर्वने अग्निको दी, ( अथो हुमां ) और बादमें इती कन्याको तथा ( रविं च पुत्रान् च अग्निः मृत्यो अदात् ) धन और पुत्रोंको अग्निने मुझे प्रदान किया ॥ ४ ॥

भाषार्थ— इस बधूके चारों ओर शूल और ईश्वरार्पणाका वायुमण्डल हो । व्याधिरहित रहित रहिते घरकर देवमगरीको यह बधू प्राप्त हो । पतिके घरमें सुखयुक्त और कल्याणयुक्त बनकर यह विराजे ॥ ६४ ॥

[ २ ]

इदं पतिके घर मेजनेके पूर्व कन्या प्रथम अग्निकी उपसना करती है, जिसने उस कन्याको पहिले पर सुन और उषम सत्कृत प्राप्त हो ॥ १ ॥

अग्नि की उपसना अर्थात् यज्ञ अथवा हुवन करनेमें होय आहुत्य, और गारीरिक कर्मान् प्राप्त होती है । कन्याका पति भी इस हुवनमें दीर्घजीवी अर्थात् ज्ञायु हो सकता है ॥ २ ॥

सोम, गन्धर्व और अग्नि ये बधूजनेमें कन्याके तीन पति हैं । और पञ्चाङ्ग यम कन्याका विवाह मनुष्यों माघ होगा ॥ ३ ॥

सोम गन्धर्वको देता है, गन्धर्व अग्निके हाथों सारथ्य करता है और अग्नि पुत्रोपसदनानिच माघ मनुष्यके स्वार्थान् इस कन्याको करता है ॥ ४ ॥

॥ वायमन्तसुमतिर्वीजिनीवसु न्यभिना हस्तु कामा अरंसत ।

अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया र्वर्ष्यगो दुषां अशीमहि

॥ ५ ॥

॥ मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्त्रिम् ।

सुगं तीर्षं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामर्षं दुर्मतिं हवम्

॥ ६ ॥

या ओषधयो या नद्योऽत्र यानि क्षेत्राणि या वना । तास्तुवां वधु प्रजावर्ती वस्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

एवं पन्थां प्ररुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् । यस्मिन्वातो न रिष्येत्पश्येथां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

अर्थ— ( वां सुमतिः अगान् ) आपको उत्तम मति प्राप्त हुई है । हे ( याजिनीयसु अभिना ) वध और वनयुक्त अभिनी देवो ! ( कामाः हस्तु नि अरंसत ) हमारी शुभ इच्छाएं हृदयोंमें विपर हो गई हैं । हे ( शुभस्पती ) शुभके पाकको ! ( मिथुना गोपा अभूतं ) शुभ होनेो इन्द्रियोंके पाकक बनो । ( र्वर्ष्यगो प्रियाः दुषां अशीमहि ) आर्य मनवाले तथा श्रेष्ठ देवोंके मित्र होकर हम उत्तम वरोंको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

( सा मन्दसाना ) वह भगवन्दिता रहनेवाली श्री ( शिवेन मनसा ) शुभ भावनायुक्त मनसे ( सर्ववीरं वचस्यं रयिं धेहि ) सर्व वीरोंसे सुख प्रशंसनीय वचनको धारण करे । हे ( शुभस्पती ) शुभके पाकको ! हमारे लिये ( तीर्षं सुगं ) वैदिक स्थान सुगम हो, ( सुप्रपाणं ) गुरु वीरके स्थान उत्तम हो, तथा ( पथिष्ठामर्षं ) मार्गमें एकादश बाजरेवाले हस्तम जैसे ( दुर्मतिं ) कुछ बुद्धिबोध सधुको ( हवम् ) मार कर बुर करो ॥ ६ ॥

हे वधु ! ( याः ओषधयः ) जो औषधियां, ( याः नद्यः ) जो नदियां, ( यानि क्षेत्राणि ) जो क्षेत्र, और ( या वना ) जो वन हैं ( ताः ) वे सब पदार्थ ( प्रजावर्ती तथा वस्ये ) संतानपुत्र वृक्षको पतिके लिये ( रक्षसः रक्षन्तु ) राक्षसोंसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

( यस्मिन् वातो न रिष्यति ) जिसमें वातका नाश नहीं होता और ( अग्नेर्यं वसु विन्दते ) हस्तोंकी सवेला जहां वन अधिक मिलता है । ( इमं पन्थां आरुक्षाम ) देखे इस मार्गसे हम चले, यह ( सुगं स्वस्तिवाहनं ) सुगम और गाड़ीके लिये भी सुकर है ॥ ८ ॥

भाषार्थ— उत्तम देवोंके आधिपत्यमें कृपाको उत्तम बुद्धि प्राप्त होगी है । वचस्यं वचसे हृदयमें कामको स्थान मिलता है । इस समय अभिनी देव इस वधुवरीके रक्षक होते हैं । इस समय अपना मन केन्द्र विचारोंसे युक्त करके अपने वरोंमें सबको प्राप्त करना उचित है ॥ ५ ॥

अपने पतिके वरमें आत्मासे रहनेवाली धर्मपत्नी अपने मनमें शुभसंकेत धारण करे और वातमारपुत्र संतान और प्रतीता योग्य धनकी स्वामिनी बने । इस दंपतीके मार्ग सुगम हों, इनको पथीस स्थानप्राप्त प्राप्त हो, और इनके वचनिके मार्ग निष्कण्टक हों और कुछ बुद्धि इनसे बुर हो ॥ ६ ॥

औषधियां, नदियां, क्षेत्र, स्थान, वन आदि सब स्वार्थमें मंगलोंवाली और वनिके वर जानेवाली हस्त श्रीकी रक्षा हो, अर्थात् कोई राक्षस इनको नुकल न पहुँचावे ॥ ७ ॥

जो मार्ग सुगम और निर्वेध हो उससे जाये वधो । और इस मार्गसे जानो कि जिसमें उत्तम विद्याके साधन मिलते हैं ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत यथाशिया दंपती वाममभ्रुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽपि तस्युः ।

स्योनास्ते अस्य वध्वै मयन्तु या हिंसिष्वर्द्धतुमुद्यमानम् ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वदन्तं यस्मा यन्ति जनां अनु । पुनस्तान्पक्षिणा देवा नपन्तु यत् आगताः ॥ १० ॥

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेन दुर्गमतीतामर्ष द्रान्त्वरारिषः ॥ ११ ॥

सं काश्यामि वदन्तं ब्रह्मणा गृहस्थेरेषु यक्षुषा मित्रियेषु ।

पर्याणदं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्याः सविता तत्कृणोतु ॥ १२ ॥

शिवो नारीयमस्तुमार्गभिमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।

वामर्यमा भगो अभिनोमा प्रजापतिः प्रजया वर्षयन्तु ॥ १३ ॥

अर्थ— ६ (नरः) मनुजो ! (मे इदं सुशृणुत) मेरा यह भाव्य सुनो । (यथा आशिया) जिस भागीवारीसे (दम्पती वामे भस्त्रुतः) ये नर और वधू सुखको प्राप्त होते हैं । (एषु वानस्पत्येषु) इन वनोंमें (ये गन्धर्वाः देवीः अप्सरसाः अपि तस्युः) जो गन्धर्व और अप्सराएं हैं, (ते अस्य वध्वै स्योनाः मयन्तु) वे इन वधूके लिये सुखदायी हों और (उद्यमानं वदन्तं मा हिंसिषुः) देखते हैं जिनके इस स्वका क्या न करें ॥ ९ ॥

(ये यस्माः जनां अनु) जो लोग मनुजोंके सम्बन्धमें (यध्वः चन्द्रं वदन्तं यन्ति) वधूके वेगवत् बड़ेबड़े स्वके पास पहुंचते हैं, (तान् आगताः यक्षिणः देवाः) उन लोगोंको यहां लाने हुए स्वके देव (यतः आगताः पुनः मयन्तु) वहलते जाते हैं, जिन्हें वही ले जायें ॥ १० ॥

(ये परिपन्थिनः आसीदन्ति) जो लुटेरे भ्रमण प्राप्त हों, वे (दम्पती मा विदन्) इस पतिपरनीको न जाने । ये वधूर (सुगेन दुर्गं भतीतां) सुगमगते कठिन प्रसंगसे पार हो जायें । और इनके (अप्यतपः अप द्रान्तु) बहुत दूर भाग जायें ॥ ११ ॥

(वदन्तं) वधूके वदेजयुक्त स्वको (गृहैः ब्रह्मणा भगोरेण मित्रियेषु यक्षुषा) अपने औरके घरवाले लोग ब्रह्म-पूर्वक शांत और मित्रताकी भाँतिसे देखें, मैं (सं काश्यामि) इनको प्रकाशित करता हूँ । (यत् विश्वरूपं पर्याणदं अस्ति) जो विश्व रूपवाला और कष्टा हुआ स्व है, उसको (सविता पतिभ्याः स्योनं कृणोतु) ईश्वर पतिके लिये सुखदायी बनावे ॥ १२ ॥

(इयं शिया नारी अस्ति आगन्) यह कन्याकास्त्रीकी भी पतिके घर जायगी है । (धाता अस्यै इमे लोकं विदेश) ईश्वरने इसे पतिलोकका मार्ग दिखाया है । (वामर्यमा भगः उमा अभिनोमा प्रजापतिः) ये सब देव (तां प्रजया वर्षयन्तु) उसको प्रजाके साथ बढ़ावें ॥ १३ ॥

साधार्थ— सब लोग इस योगवाको सुनें, कि वे विवाहित क्षत्रिय इस संसारमें सुखपूर्वक रहें । वनवासी तथा ग्रामवासी कोई भी इनको दुःख न दें । वे दूसरी जगह जायें, तो भी इनको किसी प्रकार दुःख न हो ॥ ९ ॥

वनतमुद्रासें जानेसे जो लोग संसर्गके काममें होते हैं, और वधूको मार्गमें भी जो रोग होने संभव हैं, वे सब रोग यहाँ दूर हों ॥ १० ॥

भ्रातृपर जो लुटेरे हों, उनसे इस दम्पतीको कष्ट न हों, वे पतिव्रती सुगमगता कठिन प्रसंगोंके पार हो जायें । और इनके सब शत्रु दूर हों ॥ ११ ॥

जब वदेजका स्व या पत्नीका अधिक घर जानेका स्व मार्गसे चले, तब दोनों औरके घरवाले उस कन्याको प्रेमकी और मित्रतासे देखें । जो भी कुछ मित्रिय रीतिवृत्तसे बदारी हों, वे सब ईश्वरकी कृपासे इस पतिव्रतीके लिये सुखदायी बनें ॥ १२ ॥

यह सुखभाववाली भी पतिके घर जाती है, क्योंकि विधातने वही स्थाव इसके लिये निर्दिष्ट किया था । सब देव इसको उत्तम संसार दें ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्पुर्वरा नारीयमानु नर्या नरो वपतु वीजमस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयतु सृष्ट्याम्भो विभ्रती दुग्धमृषमस्तु रेतः ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुसिन्धे सरस्वति । सिनीवालि प्र जायतां भगव्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

उद्रे ऊर्मिः शम्वा इन्वापो योवत्राणि भुञ्जत । मादुष्कृतौ ज्येनसावध्यावष्टुनमारताम् ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिमो स्योना शम्मा सुष्टेवा सुयमा गृहेभ्यः ।

धीरसुदेवृकांमा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्पमाना ॥ १७ ॥

अदेवृध्न्यपतिघ्नीहेधि क्षिषा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावर्ता धीरसुदेवृकांमा स्योनेममहि मादेषत्वं सपर्य ॥ १८ ॥

अर्थ—( आत्मन्वती ऊर्वरा इत्येवमारी आगन् ) आश्रितक वस्तुसे युक्त तथा सुदुग्ध उत्पन्न करनेवाली यह नारी पतिसे पर आगई है । ( नरः तस्यां अस्यां वीजं वपतु ) हे भगवन् ! उस स्त्रीमें बीज बोधो, बीजका जापान करो । ( सा वः ) यह तुम्हारे लिये ( भगवन्स्य दुग्धं रेतः ) विभ्रती ) बीजपात्र पुरपका बीजं भागान् करती हुई ( यक्ष्मणाभ्यः प्रजां जनयतु ) अपने गर्भाशयसे संतान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे स्त्री ! १ ( प्रति तिष्ठ ) वहाँ प्रतिष्ठित हो, २ ( विराट् असि ) विशेष वेतस्त्रिणी है । तैरा पति ( इह विष्णुः इव ) यह विष्णुसे समान है । ३ ( सरस्वति, सिनीवालि ) क्षिषा और नक्षत्रसे युक्त देवी । इति ( प्रजायतां ) संतान हो और यह ( भगव्य सुमतां ) मायके देवकी सुमतिमें रहे ॥ १५ ॥

( पः ऊर्मिः शम्वाः उर्व हन्तु ) मायकी छहर शान्तिक्ष-विषादादयः बंध करे । १ ( आपः ) उत्तम कर्म करनेवाले भगवन् ! ( योवत्राणि भुञ्जत ) तुमको छोड़ दो । ( अदुष्कृतौ ज्येनसौ अपज्यौ ) दुष्ट कर्म न करनेवाले, मादौते छोड़े हुए दोनों वैर ( अशुनं मा आरतां ) अशुभको मात न हों ॥ १६ ॥

हे वधू ! ( गृहेभ्यः ) अपने पतिके लिये ( अघोरचक्षुः अपतिभी स्योना ) भूत प्रीति न करनेवाली, पतिकी हत्या न करनेवाली, सुयमाणि ( शम्मा सुष्टेवा सुयमा ) उत्पलकालिनी, सेवा करने योग्य, सुनिष्कर्मोक्ते चलेवाली, ( धीरसुः देवृकांमा ) धीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, देवकी इच्छा पूर्ण करनेवाली और ( सुमनस्पमाना ) उत्तम अन्तःकरणसे युक्त ( त्वया पथिषीमहि ) तुमसे हम संबन्ध हों ॥ १७ ॥

( अदेवृमी अपतिमी ) देवका मात न करनेवाली, पतिका वध न करनेवाली, ( पशुभ्यः क्षिषा ) पशुओंका हिंस्र करनेवाली, ( सुयमा सुवर्चाः ) उत्तम निष्कर्मोक्ते चलेवाली और उत्तम वेतसे युक्त, ( प्रजायतां धीरसुः ) संतान युक्त, धीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, ( देवृकामा स्योना ) धर्मसे देव रहे ऐसी कामना करनेवाली, सुलक्ष्मिणी २ ( हमं मादेषत्वं अस्मि सपर्य ) इस मादेषत्वं अस्मि पूरा कर ॥ १८ ॥

भाषार्थ—यह स्त्री आश्रितक वस्तुसे युक्त है और पुत्र उत्पन्न होनेकी शक्तिसे युक्त है अर्थात् यह वेत्ता नहीं है । पति इस स्त्रीसे अपने बीजका भागदान करता है और अशुभ यह स्त्री उस स्त्रीको प्रारण करती हुई अपने गर्भाशयसे संतानोत्पत्ति करती है ॥ १४ ॥

स्त्री अपने पतिगृहमें प्रविष्टाको मात हो, जो धरती सप्रज्यो है, उसका पति देव है और यह उसकी देवी है । हम पतिव्रतीको उत्तम संतान प्राप्त हो और ये दोनों उत्तम बुद्धि प्राप्त करें ॥ १५ ॥

प्रशस्ते सब शाश्वतका भग हो, अर्थात् मनको कष्ट प्रतीत हो, उस समय चाहते बिल छोड़ दिन् जायें और उनको उत्तम स्थानोंमें सुरक्षित रखा जाय ॥ १६ ॥

यह स्त्री पतिसे धर्म आकर आत्मन्वसे रहे, आत्मे क्रोधयुक्त न करे, पतिकी हितकरिणी बने, धर्मनिष्कर्मोक्ता पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी संतानोंको धीरवादी शिक्षा देवे, देव आदिको संतुष्ट रखे, अशुभकरणमें शुभ भाग रखे । ऐसी स्त्रीसे घर सुखवत् होता है ॥ १७ ॥

स्त्री पतिगृहमें आकर देव और पतिका हित करे, पशुओंका पालन उत्तम रीतिसे करे, धर्म निष्कर्मोक्ते अनुयाय बने, वेतस्त्रिणी बने, अपनी संतानोंको धीरवादी शिक्षा दे और नशिमी हवनहस्त उपलब्ध करे ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठतः किमिच्छन्तीदमाणां अहं त्वेदे अमिभूः स्वाहृष्टात् ।

शून्यैषी निर्मले याज्ञगन्धोर्चिष्माराते प्र पत मेह रंसाः ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमस्त्यैत्पूर्वमग्निं नृपूरियम् । अथा सरस्वत्ये नारि पितृभ्यश्च नमस्कृत ॥ २० ॥

शर्म वमैतदा ईराभ्यै नार्षी उपस्तर्ने । सिनीवालि प्र जायतां मगस्य सुमतावधत् ॥ २१ ॥

ये चत्वरजं न्यस्त्यथ चर्म चोपस्तृणीयन् । यदा रोहतु सुप्रजा सा कन्या विन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

उपे दृणीहि चत्वरजमग्निं चर्मणि रोहिते । तत्रौषविश्वं सुप्रजा कुममग्निं संपर्यतु ॥ २३ ॥

अर्थ— हे (निर्मले) दरिद्रे ! (उत् तिष्ठ) उठ और कह कि ( किं इच्छन्ती ) तु क्या चाहती हुई (इष्टे आशाः) यहाँ आई है । (अहं अमिभूः) मैं तेरा पतामक करनेवाला (स्वाहृष्टात् तया इडे) अपने पाते लुके भागाता हूँ । (या शून्य-प्री) जो घरको शून्य करनेकी इच्छा करती हुई (याज्ञगन्धाः) यहाँ आई है, हे (न-राते) शत्रुजल दरिद्रे ! (उत्तिष्ठ) यहाँसे उठ और (प्र पत) दूर भाग जा । (इह मा रंसाः) तु यहाँ मत रन ॥ १९ ॥

(यदा इयं पदूः) जब यह स्त्री (गार्हपत्ये अग्निं पूर्वं अतर्पयत्) गार्हपत्य अग्निको पहिले पूजा करे (अथा) तत्पश्चात् हे (नारि) स्त्री ! तु (सरस्वत्यै पितृभ्यः च नमस्कृत) सरस्वतीके और पिताको नमन कर ॥ २० ॥

(अस्त्यै नार्षी) इस स्त्रीके (उपस्तरे यतश्च शर्म यर्म) बिछानेके लिये यह सुख और संरक्षण (आहृत्) लेना । हे (सिनी-वालि) अह दूनेवाली स्त्री ! (प्र जायतां) यह स्त्री उत्तम रीतिसे संवत्स उत्पन्न करे और (मगस्य सुमतौ भसत्) भगवान्की उत्तम मतिमें रहे ॥ २१ ॥

(ये चत्वरजं न्यस्त्यथ) जो चट्टाई भीषे बिछाते हैं (च चर्मं उपस्तृणीयन्) और चर्म ऊपर बिछाते हैं । (या कन्या पतिं विन्दते) जो कन्या पतिको प्राप्त करती है, वह (सुप्रजा तत् आरोहत्) उत्तम संवत्स उत्पन्न करनेवाली स्त्रीका उत्तर चले ॥ २२ ॥

(यस्त्येन उपस्तृणीहि) पहिले चट्टाई फैलाओ, फिर (अग्निं चर्मणि रोहिते) सुपचर्मके ऊपर (तत्र सुप्रजा उपविश्य) सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली यह स्त्री बैठकर (इमं अग्निं संपर्यतु) इस अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

भावार्थ— स्त्री पतिगृहमें भास्वर देवर और पत्निका शिव करे, पशुजनोंका पालन उत्तम रीतिसे करे, प्रदीपपत्नीके अनुसार चले, तेजस्विनी बने, अपनी संवत्सोंको बीरवाकी शिक्षा दे और अग्निको हवनहस्त उपासना करे ॥ १९ ॥

गृहपत्नीके घरमें दरिद्रता न रहे । गृहस्थ अपने प्रयत्नसे दायिब दूर करे । जो घर पुत्रप्राप्ते शून्य होगा है, उसमें दायिब रहता है । अतः प्रयत्नद्वारा दरिद्रताको दूर करना चाहिये ॥ १९ ॥

स्त्री पतिपरमे प्रतिदिन सबसे पहिले गार्हपत्याग्निकी हवनहस्ता उपासना करे, पश्चात् विष्वादेवीकी और पश्चात् पितृ-रीकी पूजा करे ॥ २० ॥

पति अपनी स्त्रीके लिये हस्तक प्रकारसे सुख देवे, और उसकी उत्तम रक्षा करे । जहाँ स्त्री उत्तम भाग सेवन करके उत्तम संवत्स उत्पन्न करे और ऐसा भाग्यजन करे कि ईश्वरका धार्मीकी इत्से प्राप्त हो ॥ २१ ॥

पहिले पालकी चट्टाई बिछाई जावे, उत्तरपर कुष्माण्णि बिछाया जावे । जो पतिको प्राप्त करती है, वह सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली स्त्री इस विद्योत्तर चले ॥ २२ ॥

पहिले चट्टाई फैलाओ, उत्तरपर चर्म बिछा दो, यहाँ उत्तम संवत्स उत्पन्न करनेवाली स्त्री बैठकर अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

आ रौह चमोपं सीदुष्टिष्वेव देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।

इह प्रजां जनय पत्ये अस्य सुज्यैष्ठ्यो भवत्पुत्रस्त एषः

॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थानानारूपाः पश्यन्ते ज्ञायमानाः ।

सुमहृग्व्युप सीद्रेमभमि संपत्नीं प्रति भूषेह देवान्

॥ २५ ॥

सुमहृगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय भूमः । स्योना शुश्रू प्र गृहान्विशेमान् ॥ २६ ॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः । स्योनास्य सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टावैषां भव ॥ २७ ॥

सुमहृलीरिषं वृष्टिमां सुमेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दुष्टा दीर्घायैर्विपरेतन

॥ २८ ॥

अर्थ— (चर्म आरोह) इस चर्मपर वह, (अग्नि उप आसीद्) अग्निसे समीप बैठ । (पत्यः पत्यः सर्वाः रक्षांसि हन्ति) वह देव सब राक्षसोंका नाश करता है । (इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय) यहाँ इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर । (ते पत्यः पुत्रः सुज्यैष्ठ्यः भवत्) तेरा यह पुत्र उत्तम भेद बने ॥ २४ ॥

(अस्याः मातुः उपस्थात्) इस माताके पास (जापमानाः मातारूपाः पश्यन्) पि तिष्ठन्तां) उपस्थ होके-पासे अनेक प्रकारके पशु हो । (सुमहृगली संपत्नीं इमं अग्निं उपसीद्) उत्तम भेदक कामनावाली और उत्तम पतिके साथ रहनेवाली वह भी इस अग्निमें उपस्थाना करे और (इह देवान् प्रतिभूष) यहाँ देवोंकी सेवा करे और सोमा पशवे ॥ २५ ॥

इ वधु<sup>१</sup> (सुमहृगली) उत्तम भेदक जानूएगा धारण करनेवाली (गृहाणां प्रतरणी) घरोंको घुलते दूर करनेवाली (पत्ये सुशेवा) पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली (श्वशुराय भूमः) शशुरको सुख देनेवाली, (श्रद्धयै स्योना) सासको मानव देनेवाली (इमान् गृहान् प्रविशत) इन भागमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

इ वधु<sup>१</sup> (श्वशुरेभ्यः स्योना भव) शशुरोंके लिये सुख देनेवाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति और घरके लिये दितकारणी हो, (अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) इस सब प्रजासमूहको सुखदायिनी हो और इस प्रकार (स्योना पत्यां पुष्टाय भव) सुखदायक होकर इन सबकी शुद्धि के लिये हो ॥ २७ ॥

(इयं सुमहृगली वधुः) यह मन्त्रशुद्ध वधु है । (सं येत, इमां पश्यत) एकट्ठे होना और इसको देखो । (अस्यै सोमाय वत्सा) इसको सोमायका आशीर्वाद देकर (दीर्घायै वि परेतन) दुष्ट भागको दूर करने का भाव ज्ञातो ॥ २८ ॥

भाष्यार्थ— उक्त चर्मपर वह, आगिमें पूजा कर । यह अग्निविष सब कुछ राक्षसोंका नाश करता है । इस संसारमें अपने पतिके लिये संतान उत्पन्न कर । यह पुत्र, अग्निमें पुत्र उत्तम भेद बने ॥ २४ ॥

उप यह भी माता होगी, तब उसके साथ विविध ईश्वरवाले गौ आदि पशु रहेंगे । वह भी उत्तम भेदक धारणाकी कामना करके अग्निमें उपस्थाना करे और देवोंको सुमृदित करे ॥ २५ ॥

उत्तम भेदक कामनावाली, गृहवालोंको ॥ लते घुलनेवाली, पतिकी सेवा करनेवाली, शशुरको सुख देनेवाली, सासका दित करनेवाली की अपने घरमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

यह भी शशुरोंका दित करे, पतिको सुख दे, सब घरवालोंका दित करे और सबको ॥ रखे ॥ २७ ॥

यह भार्गव एकट्ठे होकर यहाँ आये और इस वधूका दीर्घ करे । यह वधू बहुत सम्मान करनेवाली है । सब दे इस वधूको सुभागीवाद देकर, इसके जो दुष्ट भाग हैं, उनको दूर करने का भाव अपने घर आये ॥ २८ ॥



या दुर्हादीं युवतयो वाग्नेह वरतीरपि । बर्षो न्यस्यै सं वृत्तायास्वं विपरेतन ॥ २९ ॥  
 रुक्मप्रस्तरणं वृक्षं विधां रूपाणि बिभ्रतम् । आरोहत्सूर्यां सावित्री बृहते सौमगाय कम् ॥ ३० ॥  
 आ रोह तस्यै सुमनस्यमानेह प्रजां ज्ञेय पत्यै अस्मै ।  
 इन्द्राणीव सुबुधा सुधमाना ज्योतिरग्रा उपसः प्रविं जागरासि ॥ ३१ ॥  
 देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्तश्चन्त त्वन्स्तिबुभिः ।  
 सूर्येवं नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावन्तां पत्या सं मनेह ॥ ३२ ॥  
 उत्तिष्ठेते विधावसो नमस्तेहामहे स्वा ।  
 जामिमिच्छ पितृपदं न्यक्तां स ते मागो जुनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

अर्थ— ( या दुर्हादिः युवतयः ) जो हुए दृढवचारी स्त्रिया हैं और ( या च इह जरतीः अपि ) जो बड़ा बुढ़  
 क्षिण हैं, ये ( अस्मै नु ययः सं दत्त ) इसको निष्पत्यार्थक देन देंगे, ( अथ अस्तं विपरेतम् ) और अपने घरको  
 वापस जावें ॥ २९ ॥

( रुक्मप्रस्तरणं ) सोनेके सिंघोलेसे युक्त ( विष्वा रूपाणि बिभ्रतं ) अनेक सुन्दर सजावटोंको धारण करनेवाली  
 ( कं वृक्षं ) झुलदायक रूपर ( सूर्या सावित्री बृहते सौमगाय आरोहत् ) सूर्या सावित्री बड़े सौभाग्यकी प्राप्तिके  
 लिये चढ़ी ॥ ३० ॥

( सुमनस्यमाना तस्यै आरोह ) मनमें उत्तम भाव धारण करती हुई थी विलम्बपर चले । ( इह अस्मै पत्यै  
 प्रजां ज्ञेय ) वृक्ष इस पतिके लिये सजान डालन कर । ( इन्द्राणीव सुबुधा ) इन्द्राणीव समान उत्तम ज्ञानवाली  
 होकर ( ज्योतिः अग्राः उपसः बुध्यमाना ) सूर्यको ज्योतिके पहले आनेवाली रूपाओंके एवं ही ( प्रति जागरासि )  
 निद्रा छोड़कर उठ ॥ ३१ ॥

( अग्रे देवाः पत्नीः नि अपद्यन्त ) पूर्व समयमें देव भी अपनी स्त्रियोंके साथ सोते थे । ( तस्य तनुभिः सं  
 अस्तुशान्त ) अपने शरीरोंसे स्त्रियोंके शरीरको स्पर्श करते थे । इसी प्रकार दे ( नारि ) की ' द ( इह ) इस सत्तामें  
 ( सूर्या इव ) सूर्यमानके समान ( महित्वा विष्वरूपा ) महावस्त्र अनेक रूपवाली होकर ( प्रजावन्तां पत्या संमय )  
 प्रजायुक्त होकर पतिके साथ सजान डालन कर ॥ ३२ ॥

हे ( विधावसो ) सब बनसे युक्त नर ! ( इत उत्तिष्ठ ) यहासे उठ, ( स्वा नमस्ता ईदामहे ) तेरी गमस्कारोंसे  
 पूजा करते हैं । ( पितृपदं पत्नीं जामि इच्छ ) पिताके पदों रहनेवाली सुलोभित स्त्रीको तू मात करनेको इच्छा कर ।  
 ( सः ते मागः ) मात तेरा भाग दे । ( तस्य जुनुषा विद्धि ) उसका जन्मसे ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भाषार्थ— जो हुए दृढवचारी और बूढ़ी स्त्रियां हैं, ये भी सब स्त्रियां इस वयुको अपना देन करनेपर अपने घरको  
 जावें ॥ २९ ॥

जिसपर सोनेके कलाबल्लके कामवाले गहरे लगे हुए हैं और विविध हुनारोंसे जिसकी पोशा बर्बाद गई है, ऐसे सुन्दर  
 रूपर यह वयु चढ़े और पतिके घर प्राप्त होकर यहाँ सौभाग्य प्राप्त करे ॥ ३० ॥

यह भी मनमें उत्तम भाव धारण करती हुई विलम्बपर चले, और शरीरके लिये उत्तम सजान निर्माण करे । उत्तम  
 ज्ञान संपादन करके उपकारके पूर्व ज्ञानकर निद्रासे विवृच होकर चले ॥ ३१ ॥

पूर्व समयमें देव भी अपनी धर्मपत्नियोंके साथ सोते रहे, अपने शरीरसे कीके शरीरका आलिंगन करते रहे । इसी प्रकार  
 यह भी अनेक प्रकार अपने स्त्रीको सजावट करती हुई, तब प्रजाविर्माण करनेको इच्छासे पतिके साथ मिलकर रहे ॥ ३२ ॥

हे धनवाले पुरर ! यहासे उठकर यहाँ आ, हम भागका सजान करते हैं । यह वयु इस समयवयु पिताके घर रहती  
 थी, भाव इस वयुको प्राप्त करनेको इच्छा करते हैं, जो वह वाचक भाग हो सकता है । इस भावके वागदे— इस छीने—  
 जन्मसे सवतकका सब पृच्छाई भाव पाहे तो ज्ञान सकते हैं ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

तास्तैर्जनित्रममि ताः परैहि नमस्ते गन्धर्वर्तुनां कृणोमि

॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमस्ते नमो मामाय चक्षुषे च कृण्वः ।

विधावमो ब्रह्मणा ते नमोऽमि जाया अप्सरसः परैहि

॥ ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीकृताम् ।

अगन्तसः देवः परमं सधस्त्वमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः

॥ ३६ ॥

सं पितरावृत्तिव्ये सृजेयां माता पिता च रेतसो भवायः ।

मर्यं इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वायामिह पुण्यतं रयिम्

॥ ३७ ॥

अर्थ— ( हविर्धानं अन्तरा सूर्यं च ) हविर्धान और सूर्यके मन्त्रों ( अप्सरसः सधमादं मदन्ति ) अप्सराएँ साथ साथ मिलाकर मानन्दित होनेवाले कर्मों मानन्दित होती हैं । ( ताः ते जनित्रं ) वह तेरा जन्मस्थान है । ( ताः अमि परैहि ) उनके पास जा । ( गन्धर्वे-स्तुना ते नामः कृणोमि ) गन्धर्वोंके अतुल्यके साथ तुमों में मैं समन करता हूँ ॥ ३४ ॥

( गन्धर्वस्य नमस्ते नमः ) गन्धर्वोंकी शिवजटाओं हम नमस्कार करते हैं । उसकी ( मामाय चक्षुषे च नमः कृण्वः ) तेजस्वी आँखोंके लिये हम समन करते हैं । दे ( विधावमो ) सब धनसे युक्त । ( ते ब्रह्मणा नमः ) इसे हम ज्ञानके साथ समन करते हैं । ( अप्सरसः जाया अमि परैहि ) अप्सरा जैसी शिष्योंके साथ परे ॥ ३५ ॥

( वयं राया सुमनसः स्याम ) हम धनके साथ उत्तम बनवाते हों ( इतः गंधर्वे उद् आयीकृताम् ) पहलिये गन्धर्वोंके धैर्य, स्वीकार करें । ( सा देवः परमं सधस्त्वं अगन् ) वह देव परम भेद स्थानकी प्राप्त हुआ है । ( यत्र आयुः प्रतिरन्तः अगन्म ) जहाँ आयुकी दीर्घ बनके हुए हम पहुँचते हैं ॥ ३६ ॥

दे ( पितरौ ) मातापिताओं । ( भ्रतिव्ये संसृजेयां ) जलकालमें संयुक्त होवें । ( रेतसः माता च पिता च भवायः ) दीर्घके योगसेही तुम माता और पिता बनोगे । ( मर्यं इव योषां अधिरोहय ) मर्त्यके समान इस लीके साथ निकार कर । ( ॥ प्रजां कृण्वायां ) जहाँ संतान उत्पन्न करने और ( रयिं पुण्यतं ) धनको प्राप्त करो मर्याद बढ़ाओ ॥ ३७ ॥

भावार्थ— इस यज्ञस्थानभूमि और सूर्यके बीच अन्तरिक्षों अप्सराएँ ( सूर्य प्रगर्भ ) एक घरमें मानन्दसे रहकर बहुत मानन्द प्राप्त करती हैं । इस प्रकार गृहस्थ अपने घरमें मानन्दसे रहे । शिष्यों की सबकी उत्पत्तिका स्थान है, जहाँ उनमें साथ पुरर रह और अतुल्य अनुसार आदर्शके अतुल्यता हों ॥ ३४ ॥

दूसरेके नमस्कार करकेपर उसको समन करना उचित है, उसकी तेजस्वी आँखोंके साथ अपनी आँखें मिलाकर समन करना उचित है । इस तरह परस्परको जानकर नमस्कार किया जावे । और सुवर्ती कीके साथ पुरर दूर जाकर एकान्त परे ॥ ३५ ॥

मनुष्योंको जैसे जैसे धन मिले, वैसे वैसे यह धनके पुत्र संस्कारोंसे युक्त बने । और वह ईश्वरको माननेवाला हो । वह ईश्वर परम उच्च स्थानपर विराजमान है, जहाँ हम आयुकी दीर्घ करते हुए पहुँच सकते हैं ॥ ३६ ॥

दे की पुररों । तुम अपने दम्पत्यिके बलसे ही साक्षात्पिता बन सकते हो, मर्याद समान उत्पन्न कर सकते हो ( यत्र अतुल्यतामें संयुक्त होवें ) । मर्त्यके समान लीके युक्त होवें, स्थान उत्पन्न करने और धन की प्राप्त करो और बढ़ाओ ॥ ३७ ॥

तां पूर्णं छिवत्तमां मेरयस्व यस्यां वीजं मनुष्याः वर्णन्ति ।  
 या न ऊरु उज्ज्वली विश्रयाति यस्वामुत्तमः प्रहरेम श्रेयः ॥ ३८ ॥  
 आ रोहोऽहमुपं घत्स्व हस्तं परि प्वजस्व जायां सुमनस्यमाचः ।  
 प्रजां कृष्वाथामिह मोदमानो दीर्घं वामासुः सविता कृषोतु ॥ ३९ ॥  
 आ वां प्रजां जेनयतु प्रजापतिहोसावाम्यां समेनवत्तमेषा ।  
 अर्दुमेज्जली पतिलोकमा विज्ञेयं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥  
 देवैर्दत्तं मलेना साकमेतद्वापूषं वासो वृष्णश्च वक्षाम् ।  
 यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इन्द्रहासि तत्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥  
 यं मे दुत्तो ब्रह्ममायं वधुषोर्वापूषं वासो वृष्णश्च वक्षाम् ।  
 युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ वृहस्पते साकमिन्द्रश्च वृक्षम् ॥ ४२ ॥

अर्थ— हे (पूज्य) एसा ! (यस्यां मनुष्याः वर्जिं वर्णन्ति) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं । (तां शिवत्तमां मेरयस्व) उस कल्पागमयी बीजों को मात कर । (या उज्ज्वली नः ऊरु विश्रयाति) यो हृष्टा करती हुई हमारे लिये अपना शरीर देती है । (यस्यां उज्ज्वलाः श्रेयः प्रहरेम) जिसकी कामना करनेवाले हम विपद-सेवक करें ॥ ३८ ॥

(उर्ध्वं भारोह) ऊपरकी ओर चढ़, (हस्तं उप धत्स्व) हाथ लगा । (सुमनस्यमाना जायां परि प्वजस्व) उत्तम मनसे पुष्प होकर बीजों को भाविद्वान कर । (इह मोदमानो प्रजां कृष्वायां) यहाँ भालेद मौलते हुए प्रजाओं को उत्पन्न करो । (सविता वां प्रजां दीर्घं आयुः कृणोतु) सविता नाम दोनोंकी दीर्घ आयु करे ॥ ३९ ॥

(प्रजापतिः वां प्रजां जेनयतु) प्रजापति ईश्वर तुम दोनोंकी संतान उत्पन्न करे । (अयमा ब्रह्मोरावाम्यां सम-मनसु) अयना तुम दोनोंको विवराज सेतुक करे । (अ-नुमनसि इमं पतिलोकं आपविश) ब्रह्मन्भावको न धारण करनेवाली तु को इस पतिस्यानको मात कर । इ (नः द्विपदे चतुष्पदे वां भव) हमारे द्विपद और चतुष्पादके लिये सुखदायी हो ॥ ४० ॥

(देवैः दत्तं देवोद्गाता दत्ता बुधा) मनुष्य साकं) मनुके साथ प्राप्त बुधा (यत्तत् वाधूपं यातः) यह विवाहके समयका वस्त्र (धत्वाः च यत्नं) और वधूका वस्त्र है, यह (यः चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) जो शानी ब्राह्मणको दान करता है । (स इत् तत्पानि रक्षोसि हन्ति) यह निमग्नसे बिलोपर रहनेवाले राक्षसोंका नाश करता है ॥ ४१ ॥

हे (वृहस्पते) वृहस्पति ! और (साकं इन्द्रः च) साथ रहनेवाले इन्द्र ! तुम दोनों (वधूयोः वाधूपं यातः) वधूका विवाहके समयका वस्त्र और (यत्नः च वस्त्रं) जो वधूका वस्त्र है (यं ब्रह्मभारं मे दत्तः) उस ब्राह्मणक भाणको तुम दोनों मुझको देवे हो । (युवं ब्रह्मणे अनुमन्यमानौ ब्रह्मणे दत्तं) तुम दोनों ब्राह्मणको प्रदान करनेकी संमति देनेवाले ब्राह्मणको उत्तम वस्त्र प्रदान करते हो ॥ ४२ ॥

भावार्थ— तुम ईश्वरोंसे युक्त वधूको पुरण प्राप्त करे । मनुष्य उत्तम स्त्रीमें ही बीज बोते हैं । पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे स्त्री मन्त्रा शरीर पुरुषको समर्पण करती है, जिसमें पुरुष बीजोत्पन्न करे ॥ ३८ ॥

पुरण स्त्रीके साथ प्रेमसे मिले, उसका आदरके साथ भाविगन करे, दोनों स्त्रीपुरण जानन्दसे समभाव होयें और सम्मान उत्पन्न करें । इन स्त्रीपुरणोंकी आयु समिधा सति दीर्घ ज्ञाने ॥ ३९ ॥

प्रजापालक ईश्वर इन स्त्रीपुरणोंमें संतान उत्पन्न करे । यही दिन रात इनको प्रेमके साथ इच्छे रखे । यष्टि कोई दुर्गुण न हो और उत्तम गुणगुणवाली स्त्रीही पतिको प्राप्त करे । इस स्त्रीसे घरके सब हिंसाद वस्तुपादका कल्याण हो ॥ ४० ॥

वधूके पद्मनेत्रे लिये लाया गया वस्त्र विद्वान् ब्राह्मणको दान देनेसे दाननस्थानमें उत्पन्न होनेवाले कुंस्कार दूर हो सकने हैं ॥ ४१ ॥

यष्टि पद्मनेत्रेके लिये लाया गया वस्त्र ब्राह्मणकर जाता है । यह अनुमतिपूर्वक ब्राह्मणको दिया जाये ॥ ४२ ॥

स्योनाथोनेरधि सुस्पमानौ हसापुदौ मर्दसा मोर्दमानौ ।

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तरायो जीवावुषसो विमातीः ॥ ४३ ॥

नयं वसानः सुरभिः सुवासा उद्गाता जीव उपसो विमातीः ।

अण्डात्पतन्नीवासाधि विभस्मादेनसस्पर्श

॥ ४४ ॥

शुम्भन्ती द्यावापृथिवी अन्तिगुप्ते महिवते । आपः सप्त सुसुबुद्धेतीस्ता नो मुञ्चन्त्वर्हसः ॥ ४५ ॥

सूर्याधि देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकर्तुं नमः ॥ ४६ ॥

य श्रुते चिदभिभिपः पुरा जजुभ्य आतुदः ।

संधावा संधि मघवा पुरुवसुनिष्कर्ता विहृतं पुनः ॥ ४७ ॥

अर्थ— (हसापुदौ महसा मोर्दमानौ) हस्यविनोद करनेवाले, मर्दणके विचारसे आनंदित होनेवाले (स्योनाथ योनेः अधि सुध्यमानौ) सुखदायक शयनभेदिरसे आनंद करनेवाले, (सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ) उत्तम इंदियों और गौत्रोंसे युक्त, उत्तम पाल पक्षोंवाले, उत्तम घरवाले (जीवौ) दो जीनों अर्थात् श्री और पुरुषो ! तुम दोनों (विमातीः उपसः तरायः) मकाशमय उप-काशवाले दीर्घ आशुष्यक दिनोंको सुखके साथ ढेर आओ ॥ ४३ ॥

मै (नयं वसानाः सुरभिः सुवासाः जीवः) नवीन नक्ष पहनकर हुआ सुगंध धारण करने वाले उत्तम नक्ष पहनने-वाला गीर्वाणों बहुधन (विमातीः उपसः उद्गाता) वेदवादी उप-काशमें रहता हूँ । (अण्डात् पतन्नी इव) अण्डसे निकलनेवाले पक्षीके समान मैं (विभस्मात् एनसः परि अमुक्षि) सब पक्षसे मुक्त होऊँ ॥ ४४ ॥

(द्यावापृथिवी अन्तिगुप्ते महिवते शुम्भन्ती) श्री और पृथिवी ये दोनों लोक समीपसे मुक्त देनेवाले, बड़े निषम पालन करनेवाले, और शोभावाले हैं । (देवीः सप्त धापः सुसुबुः) दिव्य सत्तों शब्दमवाह तक रहे हैं । (ताः अहसः नः मुञ्चन्तु) ये जलमवाह पक्षसे हम सबको बचाए करें ॥ ४५ ॥

(सूर्याधि देवेभ्यः मित्राय वरुणाय च) उवा, अग्नि आदि देव, सूर्य, वरुण तथा (ये भूतस्य प्रचेतसः) जो भूतोंके ज्ञानवाला देव हैं (तेभ्यः इदं नमः अकर्तुं) उनके लिये यह नमस्कार मैं करता हूँ ॥ ४६ ॥

(यः श्रुते अभिभिपः) जो निषकके बिना तथा (चित् जजुभ्यः आतुदः) गर्दनकी हड्डीमें सुराख करनेके बिना (संधि संधावा) जोड़के जोड़नेवाला और (विहृतं पुनः निष्कर्ता) फटे हुएको पुनः ठीक करनेवाला और (पुरुवसुः मघवा) उत्तम वस्त्रों भन देनेवाला कलत्रा ईंधन है ॥ ४७ ॥

भावार्थ— श्रीपुरुष हास्यविनोद करते हुए, आनंद भगते हुए, सुखदायक शयनभेदिरमें सोकर योग्य समयमें जागते हुए, उत्तम गौत्रोंसे युक्त, उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम घरवाले होकर, दीर्घ आशुषे सब दिन आनंदपूर्वक व्यतीत करें ॥ ४३ ॥

मैं उत्तम नक्ष पहनकर, सुगंध धारण करता हुआ, शरीरको सुकोमल करने, ऐसे सद्भावपनसे रहूँ कि जिससे सब प्रकारके पाप दूर हो जायें ॥ ४४ ॥

शुण्डके और पृथ्वी लोक सबको सुख देनेवाले हैं, ये अपने निषमसे खलते हैं । इनके मध्यमें सात प्रवाद जा रहते हैं । ये सबको पारसे बचावें ॥ ४५ ॥

सूर्य, अन्न देव, मित्र, वरुण आदि सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

जो ईंधन मानवी शरीरमें दो हड्डियोंको बिना निषकके और बिना सुराख लिये जोड़ता है, वही सबको जोड़नेवाला है । यह सब दृष्टे हुएकी मरम्मत करता है ॥ ४७ ॥

अपासत्तमं उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।  
निर्दहनी या पृषातस्येऽस्मिन्तां स्थाणावप्या संजामि ॥ ४८ ॥  
यावतीः कृत्या उपवासेने यावन्तो राहो वरुणस्य पाशोः ।  
व्यूद्वयो या असमृद्धयो या अस्मिन्ता स्थाणारधि सादयामि । ॥ ४९ ॥  
या मे प्रियतमा तनूः सा मे विभाय वाससः ।  
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिपाम ॥ ५० ॥  
ये अन्ता यावतीः सिन्धो य ओतवो ये च तन्तवः ।  
वासो यत्पत्नीमिदं तपः स्योनमुषं स्पृश्यात् ॥ ५१ ॥  
उवासी कन्यला इमाः पितृलोकास्वर्गं यतीः । अवं दीक्षामस्तुयत स्वाहा ॥ ५२ ॥

अर्थ— ( यत् नीलं पिशङ्ग उत लोहितं तम् ) जो नील, पीला अथवा काले रंगका मैलावन है, वह ( अस्मात् अप उच्छतु ) हम सबसे दूर होने । ( या निर्दहनी पृषातस्ये अस्मिन् ) जो अलगनेवाली दोरस्थिति इसमें है, ( ता स्थाणी अधि आ सजामि ) उसकी इस स्तम्भमें लगा देता हूँ ॥ ४८ ॥

( यावती कृत्या उपवासेने ) जो हिंसाहल उपवस्त्रमें है, ( यावन्त राहो वरुणस्य पाशो ) मित्रने राजा पशुके पाश हैं, ( या व्यूद्वय या असमृद्धय ) जो दरिद्रता और दुरवस्था है, ( ता अस्मिन् स्थाणी अधि सादयामि ) उन सबको मैं इस स्तम्भमें स्थापित करता हूँ ॥ ४९ ॥

( या मे प्रियतमा तनूः ) जो मेरा प्रियतम शरीर है, ( सा मे वासस विभाय ) वह मेरी सबसे बराबर है। इत्यर्थे हे ( वनस्पते ) वृक्ष ! ( अमे त्व तस्य नीविं कृणुष्व ) पक्षिसे द उसकी श्रेणी बना, जिससे ( वयं मा रिपाम ) हम दुस्ती न हों ॥ ५० ॥

( ये अन्ता यावतीः सिन्धो ) जो शस्त्रों हैं और किनारिया हैं, ( ये ओतवो ये च तन्तवः ) जो बाने हैं और ये धागे हैं, ( यत् वास पत्नीमि उत ) जो वस्त्र भियोंने बना है, ( तां य स्योन उपस्पृश्यात् ) वह हमारे शरीरको सुल देनेवाला बने ॥ ५१ ॥

( उवासी इमा कन्यला ) बालिकी इत्या क्रमेवमयी ये कन्याएँ ( पितृलोकास्वर्गं यती ) पिताक घरसे पक्षिसे वर जाती हुई ( दीक्षा अस्तुत, सु-आहा ) दीक्षाप्रत्यये प्रार्थना करें, वह उत्तम उपवेश है ॥ ५२ ॥

भाषार्थ— जो सय प्रकारका हमारा यज्ञाव है वह हम सबसे पूरी तरह दूर हो जाये । जो दुरवस्था जकनेवाली दोरस्थिति है, वह भी हम सबसे दूर हो ॥ ४८ ॥

जो कुछ हिंसा और धातकतके कृम्य हैं, जो दरिद्रता और दुर स्थितियाँ हैं, ये सबकी सब हमसे दूर हों ॥ ४९ ॥  
मेरा शरीर सुदौल और दृढपुष्ट है । वनधारावसे उसकी कोना घटती है, तथापि जोरकर हम वन धारण करते हैं, जिससे हमें कोई कष्ट न हो ॥ ५० ॥

जो हमारे भी बाने उज्ज्वल वस्त्र बना है, जिसमें सुन्दर किनारियाँ और सातों लगा हुई हैं वह वस्त्र हमें सुल देने वाला हो ॥ ५१ ॥

ये कन्याएँ उपरर होनेक कारण बालिकी कामना करती हैं और पक्षिसे पाल पाईवती हैं । अर्थात् पुरुषधर्मकी दीक्षा स्वीकार करती हैं ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । यचो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । तेबो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । यचो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५६ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । यषो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विधे देवा अंधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि	॥ ५८ ॥
यद्युमि केचिनो जना गृहे तै समनर्तिषु रोदेन कृण्वन्तोऽयम् ।	
अग्निष्ठा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्	॥ ५९ ॥
यद्युपि दुहिता तव विकेदयस्तेदम् गृहे रोदेन कृण्वन्त्ययम् ।	
अग्निष्ठा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्	॥ ६० ॥
यज्जामयो यद्यवतयो गृहे तै समनर्तिषु रोदेन कृण्वन्तीरयम् ।	
अग्निष्ठा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्	॥ ६१ ॥
यचै प्रजायां पशुषु यदा गृहेषु निष्ठितमपकृद्भिर्द्वयं कृतम् ।	
अग्निष्ठा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्	॥ ६२ ॥

अर्थ— ( बृहस्पतिना अवसृष्टां ) बृहस्पतिके द्वारा रची हुई इस दीक्षाको ( विधे देवाः अंधारयन् ) सब देवोंने धारण किया । ( यत् यचः गोषु प्रविष्टं ) जो बक गौत्रोंमें प्रविष्ट हुआ है, ( तेन इमां सं सृजामसि ) उससे इसकी संयुक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

बृहस्पति द्वारा रची हुई इस दीक्षाको सब देवोंने धारण किया । जो ( तेजः ... अवाः ... यहाः ... ययः ... रसः ) तेज, माघ, यश, दूध और रस गौत्रोंमें प्रविष्ट है, उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५४-५८ ॥

( यदि हमे केचिनो जनाः ) यदि ये ऊपे बाक्याले सोप ( ते गृहे समनर्तिषुः ) तेरे घरमें नाचते रहे और ( रोदेन अथ कृण्वन्तः ) रोनेसे पाप करने लगे ॥ ( यदि हयं दुहिता ) यदि यह युवी ( विकेदरी तय गृहे अस्वदय ) बालोंकी खोलकर तेरे घरमें रोती रही और ( रोदेन अथ कृण्वन्ती ) से रोकर पाप करती रही ॥ ( यत् जामयः यत् युधतयः ) जो बहिन और कन्या तेरे घरमें रोती रहीं और रोकर पाप करती रहीं ॥ ( यत् ते प्रजायां पशुषु यत् पा गृहेषु निष्ठितं ) जो बैरी मनुष्य, पशुओंमें और जो तेरे घरमें ( अपकृद्भिः अपं कृतं ) पापियोंने पाप किया है, ( अग्निः सविता च ) अग्नि और सविता ( तस्मात् एनसः त्वा प्रमुञ्चतां ) उस पापसे तुझे बचावे ॥ ५९-६२ ॥

भावार्थ— यह गृहस्थाश्रमकी दीक्षा बृहस्पतिने शुरू की है । जो बल, तेज, माघ, यश, दूध और रस गौत्रोंमें है, वह सब इस गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंको प्राप्त हो ॥ ५३-५८ ॥

जो बालोंवाले सोम, जो कुमारिकर, जो कियं रोये पीछे पाप करती हैं, जो बाल खोलकर चित्ताही है, इस प्रकार जो पाप घरों, रोताहों और पशुओंके संबंधमें हो रहा है, वह सब पाप दूर होवे ॥ ५९-६२ ॥

इयं नार्यपं ब्रूते पूर्यान्वावपन्निका । दीर्घायुस्तु मे पतिर्जीवति श्रद्धां शतम् ॥ ६३ ॥  
 इदमविन्दु सं तुद चक्रवाकेषु दंपती । प्रजयैनौ स्वस्त्यौ विश्वमायुर्वैभ्रुताम् ॥ ६४ ॥  
 यदासुन्यार्मुपधाने यद्वैपधाने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्राग्रावे तां नि दंभसि ॥ ६५ ॥  
 यदुपकृतं यच्छमले विवाहे यद्वै च यत् । तत्समलस्य कृच्छले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥  
 संभले मले सादयित्वा कृच्छले दुरितं वयम् । अभूम यन्निषाः श्रद्धाः प्र ण आयुषि तारिषत् ॥ ६७ ॥  
 कुत्रिमः कण्टकः शतदुन्य एषः । अवास्थाः केशं मलमपं शीर्षणं लिखात् ॥ ६८ ॥  
 अङ्गादुङ्गादुपमस्या अप यक्षं नि दंभसि ।

तन्मा प्रापेत्पुत्रिषो मोक्ष देवान्दिवं मा प्रापदुर्वैभ्रुतारिषम् ।

अपो मा प्राप्नमलंमलदंभे यमं मा प्रापन्निषु सर्वांश्च ॥ ६९ ॥

अर्थ— (इयं नारी पूर्यानि आवपन्निका) वह स्त्री ब्रूते हुए चाम्पकी आहुति देती हुई (उप ब्रूते) जाती है कि (मे पतिः दीर्घायुः सस्तु) मेरा पति दीर्घायु होवे और वह (श्रद्धां शतं जीवति) सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥  
 हे इन्द्र ! (चक्रवाका इयं) चक्रवाक पक्षीके जोड़ेके समान (इमौ दम्पती इह सं तुद) इन पतिपत्नीद्वयोः इस संसारमें मेरित कर । (यतौ सु-अस्त्यौ प्रजया) ये दोनों उत्तम घरवाले होकर संसारके साथ (विश्वं आयुः न्यब्रुतां) सब आयुका उपभोग ले ॥ ६४ ॥

(यत् आसंघां) जो पाप बैम्बर, दुर्सीपर, (यत् उपधाने) जो मिलनेपर, सिरहानेपर, और (यत् वा उप-पासने पुनं) उपरवर किया था, तथा (विवाहे यां कृत्यां चक्रः) विवाहमें मिल दिसक प्रयोगको किया था, (तां आत्मनो नि दंभसि) उसको हम स्वामिने जो कहते हैं ॥ ६५ ॥

(यत् विवाहे यत् च यद्वै च) जो विवाहमें और जो बरानेके स्थानों (दुपकृतं यत् शमले) जो कुछ हृम्य और मलिन कर्म किया (तत् दुरितं संभलस्य कृच्छले मृज्महे) वह पाप हम संभलके कृच्छलमें जो दहे हैं ॥ ६६ ॥

(संभले मले सादयित्वा) संभलमें मल बाहर कर, और (दुरिते केशले) पापको केशलमें रखकर, (ययं यन्निषाः श्रद्धाः अभूम) हम पय करनेवाले हुए हो । यह (नः आयुषि प्र तारिषत्) हमारी आयुओंको दीर्घ बनाये ॥ ६७ ॥

(यः ययः शतदन् कुत्रिमः यैष्टकः) जो यह सैकड़ों शतवत्स कुत्रिम कथा है वह (अस्याः शीर्षणं यद्वयं मले अप अप लिप्तात्) इसके सलकेके मलको दूर करे ॥ ६८ ॥

(ययं अस्याः भंगात् भंगात् ययं) हम हमारे श्लोक संग्रह संग्रहों (अप निदंभसि) दूर करते हैं (तत् पूथिषां मा प्रापत्) वह रोग दुर्वैभ्रु न प्राप्त हो, (उत देवान् मा) और देवोंको भी न प्राप्त हो, (दिषं उय अन्तरिक्षं मा प्रापत्) दुलोक और अन्तरिक्ष लोकको भी न प्राप्त हो । हे जम्भे ! (यत् मलं अपः मा प्रापत्) वह मल मलकों प्राप्त न हो, (यमं सपानं पितृन् च मा प्रापत्) यमके और सब पिताओंको न प्राप्त हो ॥ ६९ ॥

भाषार्थ— ॥॥ नारी चक्रवाक हवन करती हुई ईश्वरसे प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे प्रभो ! पतिपत्नी मिलकर सदा एक विचारले रहे । चक्रवाकपक्षीके जोड़ेके समान आवेदन रहे । उत्तम वाचक बनाकर और उत्तम संगत निर्माण कर संपूर्ण आयु बाँटते व्यतीत करें ॥ ६४ ॥

बैष्टक, गिरहाना, किम्बा, वस्त्र तथा विवाहके विषयमें जो कुछ पाप या पात्रक दोष होते हैं, वे सबके सब माग-कुत्रिले दूर किये जायें ॥ ६५ ॥

विवाहमें और बरानमें जो कुछ पाप या दोष होता है, वह भी विवाहके साथ दूर किया जाये ॥ ६६ ॥

अपने मल और दोष दूरकर हम सब राज्य पतिव्रत और दानरहित तथा दीर्घायु करें ॥ ६७ ॥

कथा लेकर स्त्रीरे भगवत्कथा मल दूर किया जाये और पदोंको स्वच्छता की जाये ॥ ६८ ॥

सं त्वा नक्षामि पर्यसा पृथिव्याः सं त्वा नक्षामि पुषसौषधीनाम् ।

सं त्वा नक्षामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सायाहमस्म्यृक्त्वं घौरुहं पृथिवी त्वम् ।

तामिह सं भवाय प्रजामा ज्ञेयवावहे ॥ ७१ ॥

जनियन्ति नावर्षाः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टास्तु सचेवहि बृहते वार्षसातये ॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदशा इमे बहूतुयार्गमन् । ते अस्त्यै वृचैः संपस्त्यै प्रजामृच्छर्म्मं यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

येदं पूर्वाग्निं च सनापमाना प्रजामस्त्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।

तां बहून्वपमोऽहमस्त्यै पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्येजिषीत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—( त्वा पृथिव्याः पर्यसा संनक्षामि ) तुझे पृथ्वीके चारों ओर घेरने में युक्त करता हूँ । ( त्वा औषधीनां पर्यसा संनक्षामि ) तुझे औषधिवर्गके वैदिक सत्त्वसे युक्त करता हूँ । ( त्वा प्रजया धनेन संनक्षामि ) तुझे प्रजा और धनसे युक्त करता हूँ । ( सा संनद्धा इमे वाजं सनुहि ) यह वृद्धी उनी तुमसे युक्त होकर इस घरको प्राप्त कर ॥ ७० ॥

( अहं अमः अस्मि ) मैं प्राण हूँ और ( सा त्वं ) उचित है । ( साम अहं आह त्वं ) साम में हूँ और क्या तू है, ( घौरुहं पृथिवी त्वं ) तुमके में हूँ और पृथ्वी तू है । ( तौ वृचः संमपाय ) वे इन दोनों वृद्धों को और ( प्रजां आ जमयायहे ) संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

( अग्रयः औ जनियन्ति ) हमारे मातापिता आदि वृद्ध अनुप्य हम दोनों ( वपरी ) को पैदा करते हैं अर्थात् संयुक्त करते हैं, और पार्ष्णे इमे ( सुदानवः पुत्रियन्ति ) दत्ता लोग पुत्रकी कल्पना करते हैं । ( अरिष्टास्तु बृहते वाजसातये सचेवहि ) प्राण रहनेवाले हम दोनों बड़े बलशालिने लिये साथ साथ मिलकर रहें ॥ ७२ ॥

( ये वधूदशाः पितरः ) जो वधूको देखनेकी इच्छा करनेवाले बड़े लोग ( इमे बहून् आगमन् ) इस रथको देखने आये हैं, ( ते अस्त्यै वृचैः संपस्त्यै ) वे इस वधू अर्थात् उत्तम कलीके लिये ( प्रजामृच्छर्म्मं यच्छन्तु ) प्रजा-युक्त वृक्ष प्रदान करें ॥ ७३ ॥

( या दत्तानाममाना पूर्वा इदं आ अगन् ) जो दत्ताके सन्तान अच्छे संवेधसे युक्त रहिड़ी थी इस स्थानपर प्राप्त हुई, यह ( अस्त्यै प्रजां द्रविणं च इह दत्त्वा ) इसके लिये संतान और धन बढ़ा देकर ( तां अगतस्य पन्थां अनु पाहन्तु ) उसको भविष्यकालके मार्गसे सुरक्षित ले जायें । ( इयं विराट् सुप्रजा मति मजिषीत् ) यह वधू वैदिकी और उत्तम प्रजावाली होकर विद्वती होवे ॥ ७४ ॥

माधार्थ— इसी प्रकार खीके शरीरका प्रत्येक भाग स्वस्थ किया जाये, यह मन पृथ्वी, मंडरीश, आकाश, वज्र, वनस्पति आदिके पास न आवे, अपितु ऐसे स्थानपर मछ गाढ़ दिया जाये कि मिलते यह फिर किसीको कष्ट न दे सके ॥ ७५ ॥

खीको पृथ्वी और औरधियेके वैदिक रस्सेसे युक्त किया जाये । उसको धन दिया जाये ताकि उत्तम संतान उत्पन्न हो । खी यज्ञशालिनी होकर घरमें विराजे ॥ ७६ ॥

पुरुष प्राण है और खी रथि है, पुरुष साममान है और खी गंध है । पुरुष सूर्य है और खी पृथ्वी है । ये दोनों मिलकर इस संसारमें रहे और उत्तम संतान उत्पन्न करें ॥ ७७ ॥

अविवाहित खी पुरुष अपने सहधर्मोपरान्धे लिये योग्य पुरुष और योग्य खीकी अपेक्षा करते हैं जो वधूदा दाता होते हैं उनकी ही उत्तम संतान होती है । ये अनुप्य उत्तम बलको प्राप्तिवास्तु करें ॥ ७८ ॥

यह वधूको देखनेके लिये बराबरके समय अनेक खी पुरुष जमा होते हैं । ये सब नववधूको सुरक्षित होनेका शुभ आशीर्वाद देते ॥ ७९ ॥

जैसे बीरमें अनेक भागे होते हैं, वैसे ही गृहस्थाध्याय मिलकर रहनेका आध्यात्म है । गृहस्थाध्यायमें एकट्ठे हुए सब लोग खीको धन और सुरक्षित प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद देकर उसको शुभ मार्गसे चलायें, इस तरह यह खी तेजस्विनी, पत-स्विनी तथा सुरक्षित पुरुष होकर विद्वती होवे ॥ ८० ॥



प्र बुध्यस्व सुपुत्रा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

गृहान्गच्छ गृहपत्नी ययासौ दीर्घे व आयुः सविता कृणोत

॥ ७५ ॥

अर्थ—दे ७५। १ (सुपुत्रा बुध्यमाना) उत्तम शान्तबुद्धि तथा नाश्वर रहकर (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्र बुध्यस्व) सौ वर्षके दोबे जीवनके लिये आशीर्वाद है। (गृहान् गच्छ) अपने पतिके घरको जा, (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्थामिनी जैसी बनकर रह। (सविता ते आयुः दीर्घे कृणोत) सविता तेरी आयु दीर्घ बनावे ॥ ७५ ॥

भाचार्य—जो विदुषी होवे, सबेर प्रातःकाल उठे, सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये शान्तबुद्धिपूर्वक प्रयास करे। अपने पतिके घरमें रहे। अपने घरमें स्थानिनी बनकर विराजि। परमात्मा इसको दीर्घायु करे ॥ ७५ ॥

## विवाह-प्रकरण

### वैदिक विवाहका स्वरूप

#### प्रथम-सूक्त ।

मनुष्यके ह्म चतुर्दश कालमें वैदिक विवाहका स्वरूप और वैदिक विवाह-पद्धति वर्णनी है। प्रथमसूक्ते प्रसंगमें पांच क्षेत्र केवल सामान्य उपदेश देनेवाले हैं। इनमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी और सोम आदिका वर्णन है, परंतु ह्म संग्रहमें इन देवताओंका वर्णन करते हुए विवाहका तथा पतिव्रतीका आदर्श बताया है।

#### धौः और भूमि ।

प्रथमसंग्रहमें भूमिको पत्नीके रूपमें और सूर्य अथवा शुक्रोक्तको पतिके रूपमें बताया गया है। मरणोत्पत्ती माया पृथ्वी है और सबका पिता सूर्य है। यह सब संसार मानो पृथ्वी और सूर्यकी मायाविराजती संसाररूप है। एक ॥ परिवारे ॥ सब है। जितने भी संसारके मनुष्य या पशु-पक्षी हैं, ये सब एक ही परिवारे हैं। संपूर्ण मनुष्योंमें माई-माईका गाता है। पतिका आदर्श सूर्य है या शुक्रोक्त है। शुक्रोक्त यह है जो जगोत्तम, सदा प्रकाशित है। वह सबको प्रकाश देता है। इसी प्रकार पति अपने परिवारको उत्तम ज्ञानका प्रकाश देवे और सब संसारोंको ज्ञानकार करे। इसी तरह भूमि सबकी आधार देती है, फल और लक्ष देकर सबको पालि करती है। इसी तरह माया सब संसारोंको अपने प्रेमका आधार देवे और सबको आनन्द द्वारा योग्य रीतिसे पुष्ट करे। इस तरह विचार करने पर तथा ध्यानाभ्यासके आदर्शका मनन करनेसे भी पुरखेके अथवा पतिव्रतीके

आदर्श सबकी उपदेश इस संग्रहमें स्पष्ट रीतिसे शत हो सकते हैं।

गृहस्थधर्मका आधार सब है, यह बात इस सूक्ते प्रसंगमें ही 'सत्य' शब्द द्वारा बताया है। क्षीणरक्षा प्यवहार सत्यका ही होवे, वसमें अन्नदाय, कष्ट, छल आदि कभी न आवें। इसीसे आदर्श गृहस्थधर्म हो सकता है। दूसरा शब्द 'कृत' है। श्रद्धा अर्थात् सरलता है। सत्य और कृत ये दो ही उच्चतमके नियम हैं। सब धर्मनियमोंका यही सार है।

#### सोम

द्वितीय संग्रहमें 'सोम' के महत्त्वका वर्णन किया है। यह सोम स्वयंमें, पृथ्वीपर और नक्षत्रोंमें भी है। नक्षत्रोंमें जो सोम है वह चन्द्र ही है। यह सब नक्षत्रोंकी प्रोभा है, शरीरके समस्त हस्तकी अवर्तनीय प्रोभा होती है। यह ज्ञानिका आदर्श है। मनुष्य इस ज्ञानिके आदर्शकी तत्वात्ममें धारण करे और ध्यात रहें, शरीर अनाति आदि दुर्गुणोंको दूर रखें। सोम द्वारा यह आदर्श मंथने पवित्र छत्रमें रखा है।

पृथ्वीपर भी 'सोम' है, यहाँ सोमका अर्थ 'वतस्पति तथा मज्ज' है। यह पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों और पशुपक्षियोंकी पालि करता है। पशुपति दोनोंका नाम सोम है, परंतु ये दोनों एक नहीं हैं। सोमके अनेक अर्थ हैं और सोम शब्द द्वारा अनेक पदार्थोंका बोध वेदमें होता है। अतः सर्वत्र सोम छत्रद्वारे एक ही पदार्थका बोध होता अयोग्य है।

आगे तृतीय मण्डक पूर्वार्धमें सोमरसका पान करनेका वर्णन है। यह सोमपान यज्ञमें होता है इसको सय मानते हैं। परंतु इसा मंत्र उतरार्धमें विशेष बर्णन सोमपानका उद्देश है। वहा कहा है कि 'यो सोमपानं मघध्वानी करोते, वह सोमपान कोई अन्य मनुष्य कर नहीं सकता।' यहाका सोमपान मघानदका पान है। यो मघध्वानी ही कर सकता है। यह भी सोम है। यही परमात्मका मल्ल आनंदका रस है। परमात्मको एकरस कहते ही हैं। यही अग्निम और अतिश्रेष्ठ सोमपान है। धर्म मनुष्यको इसी सोमपानक लिये योग्य बनाता है। साधारण मनुष्य इस सोमको नहीं पी सकता, क्योंकि विशेष उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर ही यह सोम पीना संभव है।

परमात्मा मारुतान्द्रसस्य सोमके विचारके साथ साथ वातावरणमें सोमपानही अनेक ओषधिरसक कल्पना में देते वहा बताया है। इनके बीच सब प्रकारके सोम आ जाते हैं। इस प्रकार इस सोमपानका महान्य है। इसका वर्णन वहा करनेका उद्देश्य यह है कि गृहस्थी लोग अपने यज्ञमें सोमपान करें। सर्वाध्यात्मका सोमपानका अर्थ है औपचारिक सोमपान करना। यह सब गृहस्थी करें। गृहस्थियोंका यह भ्रम है। यत्नरहित, चान्चल्य, साकं भाविका सेवन गृहस्थियोंपर परिणतोंमें होता रहे। मास, रवत, कण्डे भाविका सेवन निषिद्ध है। गृहस्थी मात्रा जिस सोमरससे सबकी मुक्ति कर रही है, वह यही धानरसल सोम है।

इसके बजाए ऋषि, मुनि, साधु, सब श्राद्धि अपनी भाष्यात्मिक उन्नति करते हैं परमात्माके आनंदका रसपान करते हैं। यह भी सोमपान ही है। इनकी योग्यता सर्व साधारण गृहस्थियोंके पास नहीं होती। गृहस्थाश्रमका धर्म इस योग्यताको मनुष्योंमें उत्पन्न करता है। अर्थात् गृहस्थाश्रमका पालन उत्तम रीतिसे कर चुकनेपर गृहस्थी धानप्रत्याश्रममें प्रवेश करता है, उस आश्रममें भी अपने धर्मोंका अच्छी तरह पालन करके वह इस सोमपानके योग्य होकर सन्यासाश्रममें प्रविष्ट होता है। गृहस्थाश्रमसे आगे चरकर साध्य होनेवाली यह बात है, यह सुचिद करनेके लिये और गृहस्थियों परकी निर्मोचनी बनावेके उद्देशसे ये सब प्रकारके सोमपान वहा इन मंत्रांमें पठामे हैं।

### बरादका रथ

जागे मंत्र ९ से १२ तक बरादके रथका वर्णन है। यह रथ आध्यात्मिक वर्णन है। यह तो मनुष्य ही काल्पनिक ('अनो मनश्चर्य'। मं १२) तथा 'मनो अस्य जन

आसीत्'। मं १०) रथ है। तथापि यह काल्पनिक रथका वर्णन इसलिये दिया है कि मनुष्य विवाहके समय ऐसे उत्तम रथ बनाने और बराद निकाल और वधूको पलक पर बड़े दस्तरे से ढाँपें। इस बरादके रथके विषयमें इन मंत्रोंका वर्णन देखने योग्य है।

जय (सूर्या पति अयात्) सूर्यको पुत्री अपने पति के घर गई, तब इस प्रकारके सुंदर रथपर वह बैठकर गई थी। इस समय (उपसर्गण। मं ६) उत्तम तक्षिमा रथमें था, क्षिणोने अपनी आर्क्षोमि (आञ्जन) काफल लगाया था, पश्चिम (कोश) धन सायमं ले लिया था। यह धन चाहे आनंद हो वा मुद्रास्पर्श। परंतु वह इसमें अपना होना चाहिये। तब रथ चले लगा तब सप्त होगंते (अनुवेदी। मं ७) अनुकूल आशीर्वाद दिये, सब होगंते वधूकी प्रशंसा (नारायणी) की। इस तरह सब मनुष्य इस मनुकूल धन गया था। उस मंत्रोंमें एक भी मनुष्य इनका प्रतिफल न था। न कोई विशेष करनेवाला था। सब आनन्दप्रसन्न थे और सभी वधूवरका हित पक्षधरसे चाहते थे।

(भद्र वासः) इस समय सूर्याका दक्ष उत्तम था, बहुत ही सुंदर रथ था। वैते सुंदर पक्षोंसे युक्त होकर सब सिपाय वधूके साथ थीं।

इस बरादमें आगे उत्तम गायक थे, वे सुंदर छंदोंमें और मधुर स्वरमें मगल पद्य गाते हुए आगे चल रहे थे। सबसे आगे दो बैध चल रहे, उनके साथ शक्ति मारुतरीक था। इसके प्रकाशमें वह बराद चल रही थी।

शक्ति रथमें वह वधू बैठी थी, उस रथपर सुंदर छत थी, मंदिर जैसा उसका शिखर था, यह छत अर्धसे सुंदर आकाशके ताराव दिशाई देती (यौ छदि,। मं १०) थी। दो नेत किल (शुभरी अमङ्गारी) इस रथमें जोड़े गए थे। यह बराद सोमरे घर चल रही थी। क्योंकि सोम ही इस सूर्याका पति था। सोमने ही इस सूर्याका मंगनी की थी और सोमने साथ इस सूर्याका विवाह दुभा था।

अब सोमने मंगनी की थी, उस समय वहा होनों मंथिनी पुनार देवोंके बैध थे। अर्थात् वैद्योंक सामने यह मंगनी हुई थी। इस मंगनीमें सूर्याक रिताने स्वीकार किया था।

सूर्या यत् पत्ये दसन्ती मनसा सप्रिताददात् ॥

(मं ९)

'सविताने मनसे पतिके विषयमें पूज्यभाज रखनेवाली अपनी पुत्री सूर्याका दान पतिके हाथमें दिया था।' यह महाविवाहका आदर्श वेदने मनुष्योंके सम्मुख रखा है (हस्तों

बधूका पिता अपनी कन्याका दान करता है और उस दान विधिसं कन्या वरको प्राप्त होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गार्हपत्य विवाहका आदर्श वेदको साम्य नहीं है। वर अपने लिये बधूकी मंगरी करता है, बधूका पिता उस मंगरीको स्वीकार करता है, और सुमुहूर्तपर अपनी पुत्रीका दान करता है। इससे स्पष्ट है कि बन्धावर अधिकार पहिले पिताका होता है और इस बन्धावरविधिसं बन्धावरमक पश्चात् दूसर परिका अधिकार हो जाता है। यही स्वतंत्र अर्थात् स्वेच्छाचरित्वा न रहे। या तो यह पिताके अधिकारमें रहे अथवा पतिके भावीक रहे। हम दोनोंकी अनुसंधितियोंमें यह ज्येष्ठ पुत्र, भाई या अन्य भेद पुरुषकी आज्ञामें रहे, परंतु स्वतंत्र न रहे। (अद्वार) दान को होता है वह स्वतंत्रका नहीं हुआ करता। दुरवका दान बन्धी नहीं होता, क्योंकि यह स्वतंत्र है। कन्याकाही दान कहा जाता है।

सूर्या सपिता परये अदात् । ( अथर्व १३१।१।९ )

महं स्वाऽहुर्गाहपत्याय देवा । ( ऋ १०।८५।३९, अथर्व १३१।१।१० )

होती स्थानपर अर्थात् कन्याद्वय और अथर्ववेदमें (अद्वार, बधुः) कन्यादान ही लिया है। मत जो लोग समझते हैं कि वैदिक कालमें कन्या स्वतंत्र थी, यह उनकी भूल है।

न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।

यह स्मृतिविज्ञा अधन वेद समस्त है, जो लोग इस स्मृति-वचनका उपहास करते हैं, वे इस वेदवचनका अधिक मनन करें। कन्या स्वतंत्र न रहें, राज्यनमें मातापिताकी शिक्षामें रहें, विवाहित होनेपर पतिके शिक्षा प्राप्त करे। या कन्याकी वाचना बधूके पिताके वर और पिता (अनुसार अद्वार) अपने मनसे संमति दे। तब विवाह हो। कन्या स्वयं पिताकी अनुमतिके बिना अपना स्वयंवर न करे, स्वयंवर करना भी हो, तो उसका लिये ही (विवाह) समझते हैं। वेदमें स्वयं वरके मत किसी स्थानपर अस्मत्त्व देखनेमें नहीं पाये हैं। इससे प्रतीत होता है कि स्वयंवरकी प्रथा पंडितों नहीं है, बल्कि।

इस तरह बन्धावरपूर्वक विवाह होनेके पश्चात् बधूक अपने पतिके घर जानेका समय आता है। उस समय सुंदर रथ तैयार किया जावे। उसमें गादियों और लकिये हो, रथ सुंदर सजाया जावे। उत्तम भेंट उसमें जोते जायें। उनमें घोड़े भी जोते जा सकते हैं। रथके चक्र भी (शुची) सुंदर रत्न और सजावटसे युक्त हो। इस तरह रथ प्रयाससे

सुंदर और सज्जितमें मनोरम बनाये गए उस सुसज्जित रथपर आरुढ़ होकर बधू अपने पतिके घर जावे।

## दहेज ।

विवाह होनेक पूर्व बधूका पिता घरने दामादक लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार (बहुत) दहेज भेज दे। मंत्र १३ में (गाय) गौशंको दहेजे रूपमें भेजेगा उल्लेख है। गौश ही बड़ा धन है। लक्ष्य धन इससे कम योग्यतामान्य है। गौशके बधूके घरके सब आवातवृत्तोंकी पुष्टि होती है, इसलिये बधूका पिता अपनी कन्याके पतिके उत्तम उत्तम घोड़े देवे और ये गौश विवाहके पूर्व पतिके घर पहुंचे। पश्चात् विवाह होने और कृत्यकाल बधू अपने पतिके घर जावे। मया नक्षत्रके समय दहेज भेज दिया और चन्द्रमा जल चतुर्थी नक्षत्रमें आकर तब विवाह हो। प्राय यह कपसे कम चंद्र दिवसका समय है, शमशानके घर गौश पहुंचे पश्चात् पश्चात् विवाह हो, यह तात्पर्य है। तब बधू अपने पतिके घर चली आयगी, तब उसको अपनी ही परिचित यौन मिलेगी। और गौशको भी अपने परिचयकी स्वागिति मिलेगी परस्पर प्रेम रहेगा। इस तरह यह कन्यादानके पूर्व गौशका दान वैदिक विवाहमें पूरा सुख प्राप्त है।

मंत्र १३ और १५ में कहा है कि बधूके घर दो मनुष्य (अग्निनी) घोड़ोंपर सवार होकर पारपक्षके पास पहुंचेंगे हैं। बाको यह दहेज समर्पित करते हैं। इस तरह हम परस्पर संस्पर्शकारी सार पारिभाषिक लोग समझते और अनुमति देते हैं और सब आधिकारी समझते उत्तम रहती हैं। समझते समय, विवाहके समय और बराबर समय सब पारिवारिक जन, सब पारिभाषिक समझते उपस्थित होते हैं। यह धारा 'बधा' पन्ते सिद्ध होती है। सूर्यदेव और सोमदेव पारिवारिक जन आतिथ्य समझते (देवता) देव हैं। इसी तरह मनुष्योंमें विवाह होनेके समय बधू और वर पश्चात् पारिवारिक तथा आतिथ्य लोक समझते होने चाहिये, यह बात उसी वर्णनसे स्वयंविष्ट है। क्योंकि सूर्यके जैसा विवाह अपनी पुत्री सूर्या का सोमके साथ किया, वैसा ही मातृको अपनी पुत्रियांका करना है। बलुन सूर्यके जो अपनी पुत्री सूर्याका विवाह किया वह एक आन्तरिक बात है। वह वर्णन इसलिये वेदमें किया है कि इसको देखकर लोग अपने विवाह हम विधिये अनुसार करें। वेदका यह स्पष्ट सूचना शिरल चन्द्र-याको प्रकाशित करता है, इस भूत पात्रको देखकर रखा गया है। और विवाहके स्वयंवर सिद्धांत इस आन्तरिक वर्णनमें उत्तम रीतिसे छादित लिये गये हैं।

## पुराणा और नया संबंध ।

मंत्र १० और १८ में वरुणा संबंध पितृकुलसे और पति-कुलसे होनेका उत्तम वर्णन है—

इतः रंधनात् प्रमुञ्चामि, न अमुतः । (मं. १०)

इतः प्रमुञ्चामि न अमुतः, अमुतः सुषदां कर्म ।  
(मं. १८)

इस मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि 'इस पुत्रीको इस पितृकुलमें छुटाते हैं, और पतिकुलके साथ ऐसा सुसंबंध करते हैं कि यह पतिकुलसे कभी न छूट सके।' कन्याका पितृकुलसे छूटना तो आवश्यक ही है, परंतु प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि यह कन्या पतिकुलसे किस प्रकार छूट सकती है, या नहीं? इस प्रश्नके उत्तरमें वेदका यह कथन है कि कन्या पतिकुलसे अपना संबंध नहीं छोड़ सकती। किसी भी अवस्थामें उसका संबंध पतिकुलसे छूटना वैदिक धर्मकी दृष्टिसे असंभव है। उक्त मंत्रोंमें सुस्पष्ट रीतिसे कहा है कि (न अमुतः, अमुतः सुषदां कर्म) नहीं, पतिकुलसे तो उसको उत्तम पक्षी रीतिसे बांधा है। इस सुषदा कर्मका तात्पर्य यह है कि वह पतिकुलसे कभी विमुक्त न होवे। निवोगकी रीतिमें नियुक्त पुरुषके साथ संबंध होनेसे तो पति-कुलका संबंध सुस्पष्ट रहता है और स्तनान तो पूर्व पतिकी ही होती हैं। परंतु पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह तो सर्वथा असंभव है, क्योंकि पुनर्विवाहसे तो पतिकुलका संबंध छूट जाता है। इस कारण वैदिक धर्ममें पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह संभव नहीं है। वैदिकधर्मी द्विजाणियोंमें तो सर्वथा पुनर्विवाह असंभव है।

आश्रमका परिवर्तन (त्याग) या पत्नीत्याग तो निर्विवाद असंभव है। आश्रमक प्रारंभ, अमरीकका अनुकरण करने-वाले कई छोटे भारतीय लोग विवाहित संबंध अद्विक्ततासे तोड़नेके पक्षपाती दीखते हैं। परंतु यह रीति वैदिक धर्मके अनुकूल नहीं है। अथर्ववेदके मंत्रोंमें भी पतिविरहितता या पत्नीपरित्याग संमत नहीं है, किंतु व्याख्याकारोंके अनुसार तो कैसे संभव हो सकता है! पूर्वोक्त मंत्रमें उपमा दी है कि जैसे कोई पक्ष (उच्चारणके रंधनात्) अपने ब्रह्मसे या बेलसे परिपक्व होनेपर बंधनसे छूटता है, वैसे वह कन्या पितृकुलसे संबंधसे विवाहके समय मुक्त हो जाती है। इसका संबंध पतिकुलसे हुआ है और यह संबंध सुषदा कर्मार्थ रहता हो चुका है, वहांसे मुफ्त नहीं हो सकती।

आगे १९ वें मंत्रमें कहा है कि वह कन्या वरुणके पाससे

पितृकुलसे सुसंबंध हुई थी। विवाहके समय ये पादा तोड़ दिये गये हैं। वरुणके पास किसी अन्य कारणसे दूट नहीं सकते। पितृकुलसे संबंध तोड़कर पतिके कुलसे नया संबंध जोड़ दिया है। यह संबंध जो पतिके कुलसे हो गया है, यह (सह-सं-भलायै) इस कुलकी देखभालके लिये है। पतिके कुलके परिवारके साथ इस स्त्रीकी देखभाल होती रहे। अर्थात् कन्या बाल्यमें पितृकुलसे पारंपरिक साथ बांधी गई थी, वरुणदेवके पाससे बांधी गई थी, और वरुणके पास ऐसे होते हैं कि उन्हें तोड़नेका सामर्थ्य किसीके अभाव में नहीं होता। वे वरुणके पास विवाहविधिसे दूट आते हैं, परंतु वही वरुण पतिकुलसे ऐसी बांधी जाती है कि वहांसे आसरा वह अपना संबंध छोड़ नहीं सकती। इस पतिकुलमें रहती हुई—

अतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योतम् ॥

(मं. १९)

'सबसे धरमें और पुण्यधानीके स्थानमें जो गुहा प्राप्त हो सकती है, वह इसको पतिके घर प्राप्त हो।' अर्थात् यह पतिके घरमें रहती हुई सदा मार्गसे चले और पुण्य कर्म करती हुई सुकृत प्राप्त हो। यह स्त्रीका धर्म है। पतिके रहने-तक या पतिके मरनेके पश्चात् भी स्त्रीका वही धर्म है, इस धर्मसे वह पतिव्रत न हो, और इस धर्मका आचरण करती हुई वह सुकृत प्राप्त करे। स्त्रीका स्वर्तन आचार वा स्वेच्छाचार सर्वदा ग्राह्य है। स्त्री न पितृघरमें स्वतंत्र है और न पतिके घरमें ही और न पतिके मरनेके पश्चात् ही यह स्वर्तन हो सकती है।

आश्रमधर्मानों को संक्षिप्त देखने परगले पाहते होते पितृ-कुलसे बांध रखा था (मं. १९), विवाह होनेके समय ये पादा तो दूर गये, परंतु अग्निदेवतासे उसका हाथ पकड़कर बराबरके रखकर पलाया, पश्चात् जब वह पतिके घर आनेके लिये रथमें बैठी, तब अधिनीदेव उसके रथक बने (मं. २०), जबतक वह वरुणके घर नहीं पहुंचती, वहांतक अधिनी देवोंकी रथामें यह रहती है। पश्चात्—

गृहान् गच्छ, गृहपत्नी यथाऽमो धरिणीत्यम् ॥

(मं. २०)

पतिके घरयह जब वरुणपहुंछती है और वहां धरिणी होकर रहती है। यह स्वयं अपनी ईशियां वस्त्रमें रखती है, धरते परिवारकी वस्त्रमें रखती है और स्वयं बड़े लोगोंकी आशामें रहती है। इस तरह यह पतिके घर पहुंचनेके पश्चात् सर्वत्र

करती है। तत्पश्चात् यह विद्वद्गुरु अपने घरवाले पात्रोंसे पानी रखती है। स्वतंत्र नहीं होती। इसके ऊपर प्रथम पिता और माता निगरानी रखते हैं, फिर देवताओंकी नियरानी रहती है, और अन्तमें पतिकी निगरानी होती है। विवाहबद्ध पर-  
संग्रहमें जितनी स्वतंत्रता हो सकती है, उतनी उसे अवश्य है। विद्या, कला, संस्कृति आदिके विकासके लिये जितनी आवश्यक है, उतनी स्वतंत्रता होनी ही चाहिये, पर स्वैच्छा आह्वान विहायकी स्वतंत्रता बेइक्रे लिये अभिमत नहीं है। वैदिक समयमें प्रत्येक कुमारी अपने मातापितासे आवश्यक शिक्षा पाती थी और पक्षर पतिते। स्वतंत्र सैतिते बाल-  
जोंमें रहना और कुमारोंके साथ मिलकर शिक्षा पाना, उत्तम शिक्षाका रूप नहीं है।

### गृहस्थाश्रमका आदर्श

भाग १३-२३ तक गृहस्थाश्रमका सुंदर वर्णन है। प्रत्येक गृहस्थी इस सुखका अधिकारी है। ओ धर्मोत्प्लुष्ट रहे और गृहस्थी धर्मका पाठन करे, वह इस सुखको प्राप्त कर सकता है।

( १ ) अस्मिन् एते गार्हपत्याव जायति । ( म. २१ )

जिस पतिके घरमें अपने गृहस्थ-धर्मका प्राप्ति हुए पालन कर ' अपने गृहस्थ-धर्म पालनमें प्रमाद न कर, वृक्षवाले अपने पतिके घरमें रह और अपना कर्तव्य कर ।

( २ ) इह ते प्रजायै प्रियं समुदयताम् । ( म. २१ )

' इस गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने संतानका प्रिय, सुख और कल्याण करना तेरा मुख्य कर्तव्य है । ' सुसंज्ञान निर्माण करना गृहस्थका धर्म है। गृहस्थधर्मका वह पुण्य और फल है, इसे सुयोग्य बनायेके लिये ओ वान किया जाये, वह योका है। मातापिताके सब संस्कार अंशरूपसे संतानमें आते हैं, अतः मातापितापर वह जिम्मेवारी है कि वे अपनेपर कोई अनुग्रह संस्कार न होने दें। शारीरिक रोग, सुखी आनंद और अन्य दुःसंस्कार संतानमें अंशरूपसे उतरते हैं, अतः मातापिताओंको उचित है कि वे स्वयं परिशुद्ध रहें और पुत्र संज्ञान निर्माण करनेका पालन करें। इस तरह प्रपन्न करनेपर संतान मेंके लिये सुभक्तिकार ही मिलेंगे, और उनकी संज्ञाने क्रमशः सुधारी और सुसंस्कारसंपन्न होती जायेंगी।

( ३ ) एना पत्या तन्यं से स्पृशस्व । ( म. २१ )

' हे पति ! इस पतिके साथ आनेप्रसन्न होकर रह । ' यह सब प्रकारके धर्मोत्प्लुष्ट उपभोग प्राप्त करे । सदा प्रसन्नतासे दिनपरा ग्यतीव करे । पुत्री रहनेसे वैसा पितृपि

दायक भी संज्ञानमें आ जायगा, इसलिये प्राप्त ऐश्वर्यके उप-  
भोगसे पितृकी प्रसन्नता रहे और अन्त करण सदा सुभक्त-  
तिते ही रहे । इस समासमें रहनेका यही मुख्य नियम है ।

( ४ ) अथ जिजिः विदुर्ध आ यदासि । ( म. २१ )

' इस दससे गृहस्थाश्रममें रहते हुए जब तारण्य बड़ा थाय, और बृद्ध अवस्था प्राप्त हो, अर्थात् बहुत अनुभव आ जाय, तब तू अपने अनुभव उपदेशद्वारा दूसरोंको बता । ' इससे पूर्व नहीं । इसके पूर्वका समय ज्ञानग्रहण करनेका है, उपदेश देनेका नहीं । उपदेश देनेका काम अनुभवी पूर्विका ही है। इस समासमें वर्षा अनुभव आनेपर ही अनुग्रह उप-  
देश करे । इसके पूर्व ओ उपदेश करते हैं, उससे लाभकी अपेक्षा हानिकी अधिक सम्भावना हो सकती है ।

( ५ ) इहैव स्तं, मा विपरीतं, विश्वमायुर्व्यवहृत्य

( म. २५ )

' पतिपत्नी इस गृहस्थाश्रममें रहे, उनमें वियोग न हो, पूर्ण आयुकी समाप्ति तक वे हीनो एक विचारते रहे । ' वह है विवादित दुट्टका आदर्श । विवाद होने ही वैवाहिक संबंधको मोड़नेकी वृत्तिया, ओ अनार्य देशोंमें चली जाती है, वह वैदिक विवाहमें सर्वथा नहीं है। वेद ग्राहक हैं कि ओ विवाद एक समय हुआ वह जीवनके अन्ततक स्थिर रहे, उनमें किसी तरह विरोध न लखा हो, गगने होकर उनमें वैवाहिक संबंध न टूटे ।

( ६ ) स्वस्त्यो मोक्षमानी पुनः मनुष्ये । श्रीदन्ती ।

( म. २९ )

' पतिपत्नी उत्तम वरवाले हों, अर्थात्सख हों और पुत्रोंके लवा नातिपोंके साथ सेहतें हुए सुखसे गृहस्थाश्रमका कर्तव्य करते रहें । गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुत्री पितृपि न हों, अतः आनन्दप्रसन्न रखकर सुखके साथ अपने कर्तव्य गृहस्थी लोग करते रहें ।

( ७ ) सूर्यचन्द्रके समान तेजस्वी पुत्र हों ।

( म. २३ )

' जैसे सूर्य और चन्द्र सब जगत्को प्रकाश देनेवाले हैं, वैसे ही गृहस्थीके घरमें उत्तम सेवाकी संज्ञान हों, वे विविध सेतिते ( श्रीदन्ती ) प्रणीत हों, ( मायया चरतः ) कीत-  
न्यके साथ जगत्में अग्रगण्य करें, अर्थात् दुःखवाले कर्म करें, कल्याण हों और विषका भ्रमण करें । अपनी कलाका लक्ष्य विज्ञान करें, चंद्रमा कलापुत्र होगा है, उनको कलापि कहते हैं, उनी प्रकार सूर्यपुत्री मन्त्रि भी कलापि ही

विधि बन । और कटाहुल्लासे अपनी तथा अपने शष्टकी उकति मिट करे । अपनी सवासेको कटा-कटागिरिको शिक्षा दे ।

### ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान

अथ २५ मे ( ब्राह्मणेष्वप्यो वसु विभज्य, शास्त्रस्य च देहि । म २५ ) ब्राह्मणोंको धन दान दो और वस्त्रका दान करो । ब्राह्मणोंको दान करनेकी यह आज्ञा की है । विवाहके समय सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणोंको धन और वस्त्र देना चाहिये । गौ, भूमि आदिका भी दान दिया जाये । यह दान वस्त्रके समान दिया जाये, और इसका आधिक्य परिवारमें वधूके ऊपर होवे । दान देनेकी बात इस प्रकार नच उभूक मनपर प्रतिबिम्बित हो । दान देनेमें बधूका मन न लगकर वैयल भोगमें ही उस बधूका मन रमने लगे, तो यह एक कुदुषका नाश करनेवाली शस्त्री सिद्ध होगी । ज्यों भोगी की पतिके पुत्रका नाश करनेवाली होती है ।

एषा पद्धती एत्या जया पतिं विराते ॥ ( म २५ )

‘यह दो पाववाली विनाशक शक्ती भाव्यरूपसे पतिक पर प्रवेश करती है ।’ जिस स्त्रीके मनमें दान देनेके भाव नहीं भाते, यह भोगी की वैसी ही बात करने शक्ती बनती है । गृहस्थीका भूषण उदार की है । उदारताकी शिक्षा उस वधूको अपने पितारे घरसे मिलनी चाहिये और पतिव्रत धर्म भी मिलनी चाहिये । इसलिये दान देनेका महत्त्व उस स्त्रीके मनपर स्थिर करना चाहिये । गृहस्थीका यह एक विशेष महत्त्वका भाग है ।

जितने दानभाव स्थिर नहीं हुआ, उसके मनमें ( कत्या-मत्तिः ) विनाश करनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है । किसी स्त्रीमें ऐसी भूरा बुद्धि न हो इसलिये दानकी बुद्धि अपने मन्त्रकी चाहिये । यदि ऐसा न होकर स्त्री स्वयंस्वरूप करनेवाली हुई तो अन्तमें पतिकुलका नाश ही होता है—

पृथग्मे मस्याः प्रातयः, पतिर्गन्धेषु वध्यते ।

( म २६ )

‘इसकी जातिमें बल्ह प्रवृत्त होता है, और अन्तमें पिता पति कलहके चक्रमें बाधा जाता है ।’ इसलिये कन्या और धर्ममें प्रारम्भ ही दानकी बुद्धि, परोक्षकार करनेकी बुद्धि स्थिर होनी चाहिये । अपने सुपुत्रका त्याग करके भी सम्पत्तेकी सेवा करनेकी सुबुद्धि स्थिर होनी चाहिये । धर्म सेवा, लग्नमेवा, यदि ऐसा-मात्र मन्त्रमें बंधे और ये दान सेवासे ही मन्त्र द्वेषमात्र कर करे ।

### पुरुष स्त्रीका वस्त्र न पहने

अथ २७ में कहा है कि पुरुष कभी स्त्रीका वस्त्र न पहने । पुरुषका धारीर किनारा भी सुंदर हो, परन्तु स्त्रीका वस्त्र पहनेसे वह अश्लील यत्ना है, तो भावहित हो जाता है ।

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंका वस्त्र आरोग्यकी दृष्टिसे पहने नैक अयोग्य होते हैं । वहा एक स्त्रीका वस्त्र दूसरी स्त्री पहने या न पहने, इस विषयमें भी कुछ नहीं लिखा है । स्त्रीका वस्त्र दुष्य न पहने यह बात बहर स्पष्ट और असेदिग्ध है ।

विधि वस्त्र पहननेमें स्त्रीके रूप विशेष तो भाव्युक्त होते हैं, यह बात म २८ में कही है : ( आशालम् ) धारीरगा वस्त्र, ( विशालम् ) सिरपर ओढ़ने योग्य ओढ़नी, और ( अधिविर्कतम् ) यह सर्दीपार भांडनेका वस्त्र है । स्त्रियोंके पहननेसे ये तीन वस्त्र हैं । इनके विधि रगल्लोके कारण स्त्रियोंके स्वरूपकी सुंदरता बढ़ती है ।

### कन्याका गुरु

कन्याका शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह आज्ञा एक सुवच प्रथ है । आज्ञा तो कन्या और पुत्र एक ही पाठ-शास्त्रमें पढ़ते हैं और उनकी पाठशिक्षा समान होती है । वस्तुतः देखा जाय तो पुरुषों और स्त्रियोंके कार्य इस संसारमें विभिन्न होते हैं, मत एक ही पाठशिक्षा दोनोंके लिये लाभ देनेवाली नहीं हो सकती । आज्ञा स्त्रियोंका पुरुषीकरण और पुन्योगा कीकरण हो रहा है । मिश्रवाचविधिका और सहसिधाका यह दोष है । येदं उपदेशानुसार श्रीगुरुदेवकी पाठशिक्षा भिन्न भिन्न होनी चाहिये । स्त्रियोंको विशेषतः एक आश्रम जर्गल अथ पढ़नेकी शिक्षा उन्नत ज्ञान होना चाहिये । ( एतत् तृष्टं ) यह पदार्थ पुरा उत्पन्न करनेवाला जर्गल विलकारक है, ( एतन् फट्टकं ) यह बट्ट है, ( एतत् अपाष्टवत् विपन्नत् ) यह पदार्थ स्तररूप विगाडनेवाला है, ये पदार्थ पुरेके समान मृग्य एनेवाला है, ( एतद् अन्ते न ) ये पदार्थ अपनेयोग्य नहीं हैं, इन्हीं त्रय विधि पदार्थोंका ज्ञान बन्नागोनी पाठशिक्षामें देना चाहिये । तथा खाने योग्य वाहिन और मारिक पदार्थोंका भी योग्य ज्ञान स्त्रियोंको दिया जाये । स्त्रियोंके ऊपर धार्मिको हलान पाठ-मन्त्राचार रहता है, इसलिये उनको मध्य भोग्य छेद वेध यदि स्त्रायपदार्थोंका उन्नत ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है । उन्म प्रवृत्ती पाठशिक्षा विधेय लिये होनी चाहिये और उनपर जोकार्यका भार मान्यता है, उसे पूर्ण करनेकी योग्यता उन्में उत्पन्न करनी चाहिये ।

जो गुरु इस तरहकी शिक्षा कन्याओंको देता है उसको उस कन्याके विवाहके समय उचित वस्त्र दान देना योग्य है। इसी तरह मंत्र ३० में कहा है कि, जो गुरु (प्रायश्चित्ति अप्येति) चित्तशुद्ध करनेका उपदेश देता है, चित्तके घुरे मार्गसे अन्तेपर उसे धर्ममार्गपर शक्तिका विवेक मिल सद्गुरुकी कृपासे मनमें उत्पन्न होगा है, उस शिक्षकका सम्मान करना चाहिये। उस कन्याके विवाहके समय (सुमेगलं स्योनं चास) उचित मंगल और शुभकच उस ब्राह्मणको अवश्य दिया जाना चाहिये। क्योंकि इसी ज्ञानसे (येन जाया न रिप्यति) उस स्त्रीको विनाश नही होती। यह शिक्षित स्त्री अपने धर्मपथसे हटती हुई सबको आनन्द देती है। यह शिक्षाका मन्त्राव है, ऐसी शिक्षा स्त्रीको देनी चाहिये।

स्त्रीको योग्य शिक्षा यदि न दी गई तो यह पतिव्रतका किस प्रकार नारा करती है, इसका वर्णन य २५-२६ में किया है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंको सुशिक्षा देना अवश्य आवश्यक है। शिक्षा न होनेसे बड़े अनात्मक परिणाम होते हैं।

### सद्व्यवहारसे धन कमाओ

गृहस्थाश्रमसे धनको आवश्यकता सदा रहती है। कोई धर्म धनके बिना नहीं हो सकता। अतः गृहस्थीको धन कमानेकी अथवा आवश्यकता है। यह धन कैसे कमाया जाये, यह एक समस्या गृहरिष्यके सम्मुख सदा रहती है। इसका उत्तर १० वें मंत्रमें दिया है।

(मन्त्र—उद्येमु कृतं यदन्ती) सरल व्यवहारमें सरल भाग्य करो। उसमें उत्कृष्टता न हो। सबसे प्रथम देव व्यवहारमें न जाओ। जो व्यवहार करना हो, वह सरल व्यवहार हो और उसका करनेके समय सरल भावना भी करो। और इस प्रकारके धर्मानुष्ठान सरल व्यवहार करने (समृद्धं भगं संमरतं) बहुत धन प्राप्त करो। अपने लिये जितने धनकी आवश्यकता है उतना धन कमाओ। धर्मानुष्ठान व्यवहार करनेसे ॥ संवेद प्राप्त होगा और समृद्धि भी होगी।

पतिव्रती अपने घरमें प्रेमके साथ रहे। पति (समस्तः प्राय धार्चं यदनु) अपनी धर्मपत्नीके साथ जीता भाग्य बोधे, मंगल भाग्य करे, सुंदर वस्त्र कड़े तथा (अस्यै पति रोचय) इस स्त्रीको पतिके विषयमें बड़ी रुचि हो, बड़ा प्रेम हो। इस तरह दोनों प्रेमके साथ रहें, व्यवहार कर और उत्पत्ति करते रहें।

८ ( म यई भा. १ गृ. विन्दी )

### गौरक्षा

मंत्र ३२ और ३३ में उपदेश है, कि गृहस्थी लोग गौरक्षा करें, गौसे धरकी घोसा हैं, बालकोंकी उन्नति इसीसे होती है। सब प्रकारका बालक गौसेले होगा है, इसलिये गौपालन गृहस्थीका धर्म है।

### सरल मार्ग

सबके चलनेके मार्ग सरल और निष्कण्टक हो, इस विषयमें १४ वें मंत्रका आदेश व्यक्तमें धरने योग्य है—

पन्थानः अनुश्रवाः श्रुतः सन्तु ॥ ( म १४ )

'मार्ग कष्टकरहित और सरल हो।' प्रकाश पटुपत्तन मार्ग, चरने चालने मार्ग, हाथों चले जातेके सब मार्ग निष्कण्टक और सीधे हों। अनुप्राणित सब व्यवहारका मार्ग भी सीधे ही हों। यहाँ 'मार्ग सीधे हों' इस कथनका तात्पर्य केवल इतना ही नहीं है कि जाने जातेके मार्ग सीधे हों, क्योंकि यह मार्ग तो जैसी भूमि होगी वैसा ही बनेगा। परन्तु अनुप्राणित व्यवहारके मार्ग सीधे हो, यह बात विवेकवत्ता बड़ा कड़ी है। बीचमें कटे न बिछाये गये। अत्यन्त सरल और समस्तके व्यवहार देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, अनुप्राणित स्वयं ही अपनी मजिहीनतासे अपने मार्गपर कटे बिछाये हैं और सीधा व्यवहार होनेकी संभारना होनेपर भी देखनेसे व्यवहार करते हैं और इस कारण सुख प्राप्तिके प्रयत्न करते हुए भी सदा दुःख ही प्राप्त करते हैं। इस तरह ये गृहस्थी अपनी उन्नतिके मार्गमें कटे न जाने यह उपदेश वेद यहाँ गृहस्थाश्रमक प्रारम्भमें दे रहा है। सब गृहस्थी इसको अवश्य ध्यानमें रखें। इस प्रकारके सीधे मार्गसे चलनेपर (धाता मयेन धर्चसा स रुजतु) परमेश्वर धन और तेज देगा। यह परमात्मना तो सरल व्यवहार करने-वालोंको यह फल अवश्य ही देगा। हममें शिष्टाका रीति करनेकी आवश्यकता नहीं है। परमेश्वरकी सहायता प्राप्त करनेका मार्ग भी सीधा और निष्कण्टक है। यही धर्ममार्ग है। इससे चलकर सब अनुप्राणित धर्मपथको पटुपत्तन हों। इस प्रकार इस मंत्रका उपदेश बड़ा मनन करने योग्य है और अत्यन्त गृहस्थीको सदा ध्यान रखनेयोग्य है, क्योंकि सबको उन्नति सरल और निष्कण्टक मार्गमें ही होती सम्भव है। उन्नतिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

### तेजस्वी बनो

गृहस्थी तेजस्वी बने, वात्साही बने, कदापि निरुत्साही न हो। गृहस्थीका धर्म उत्साहका है, यह तेजस्वी अनुप्राणित धर्म है इसलिये वेद उपदेश देता ॥ गृहस्थी तेजस्वी बने।

यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि गृहस्त्री तेजस्वी कैसे बने ? उत्तरमें वेद कहता है कि—

यत् सर्वं श्रेष्ठं सुरापाम् (म ३५)

‘ जो श्रेष्ठ खासोंमें अथवा सुखमें पासोंमें होता है और जो मद्यमें होता है ’ यह तेज हन गृहस्थियोंमें आये । यह पढ़कर पात्रक कहेंगे कि यह क्या अनर्थ है ? वेद ऐसा उपदेश क्यों देता है ? क्या वेद इस उपदेशसे गृहस्थियोंको छुआरी और मद्यपी बनाना चाहता है ? कदापि नहीं । वेद तो हन दुर्घटनसे गृहस्थियोंको बचाना चाहता है, परंतु यह तेजस्वी उत्साहका वर्णन है । किन्तु लोगोंमें तेजस्वी उत्साह अत्यधिक होता है ? उत्तरमें छुआरी और मद्यपीमें होता है, ऐसा ही कहना पड़ेगा । कुछ सेलनेके कार्यपर सरकारी प्रतिपक्ष है, छुआरीको राजपुरष पकड़ते हैं और कारागृहमें डालते हैं, न्यायालयोंमें इनको दण्ड दिया जाता है, घरफारे इस छुआरीके विरोधी होते हैं । इष्ट मित्र तथा परिवारके लोग चाहते हैं कि यह कुछ न खेले, इस तरह सब लोग विरोध करते रहते हैं, तथापि छुबेवाग्न चमत्कृत रातों समग्र, अधोपरी, कष्ट सहन करते हुए, छिपते और छिपाते हुए छुबेके घरमें पहुंचता है, न उसको किसीका भय होता है और न भूल प्यास होती है एकमात्र निश्चय पर भट्ट होता है कि मैं तुम्हा खेल्ता । सब जगत्क विपद् होके-पर भी यह अपने निश्चय पर भट्ट रीतिसे स्थिर रहता है, यह इसका निश्चय, प्रयत्न, उत्साह और एकमात्र मन देखने योग्य है । यदि यही तेजस्वी गुण, जो इससे पासोंके सिलमें एते हुए हैं, श्रेष्ठपुरुषार्थमें कर्ममें लग जाय, तो उसका बड़ा फल होनेमें क्या रीति है । अथ वेद कहता है कि जो तेज और उत्साह तथा निश्चय छुआरी लोग अपने सिलमें बसाते हैं, यही तेज और उत्साह गृहस्त्री, मनुष्य अपने गृहस्थधर्म-पालनमें पतन, उन्नत मनोनिष्ठ, उन्नत निश्चय, उनका उत्साह, उन्नत प्रयत्न गृहस्त्री अपने धर्मपालनमें रखें, यह उपदेश यही है ।

मद्यपी भी इसी तरह मद्यपानके समय पर मद्यपानके स्थानपर जाता है और मद्य पीता है, समय टालता नहीं, अपने साथ मित्रोंको भी फिरोता है, यह उदाहरण भी मद्यपीमें होती है । इस मद्यपीमें समयपर यह कार्य करनेका जो मान्यता होती है और अपने साथियोंको फिरोनेकी जो उदात्तता होती है, यह भातुरता गृहस्थियोंमें भी अवश्य रहे । गृहस्त्री अपने कर्तव्य बड़ी भातुरतासे करें और उदात्ततासे दान देते रहें । यह उपदेश गृहस्त्री लोग ले सकते हैं ।

यही सुत और पासोंका उदात्त मंत्र ३६ में पुनः अन्य रीतिसे आया है । उसका भी भाव यही है । इसमें जो उपदेश योग्य है वही ऐसा चाहिये । यह महान्यास लोग कुत्से और चीटियोंसे भी उपदेश देते रहते हैं । जगत्, विद्या और स्वामिनिष्ठाका उपदेश कुत्से और प्रयत्नशीलताका उपदेश चीटियोंसे दिया जाता है । इसके मन्त्र दुर्गोंकी ओर महान्यास लोग देखते नहीं हैं, केवल गुणोंको अपनाते हैं । इसी तरह मद्यपी और छुआरी भी गृहस्थियोंको पूर्ण उपदेश देते हैं । ये उपदेश इनसे गृहस्त्री प्राप्त करें और अपने गृहस्थ धर्मका पालन उत्तम रीतिसे कर सकृतकृत्य बनें ।

पात्रक पूछेंगे कि ये ही उपदेश यहाँ क्यों दिये हैं ? क्या उत्तम उदाहरण जगत्में नहीं मिलेंगे ? उत्तरमें निश्चय है कि मनुष्यकी लज्जता जैसी व्यवस्थाओं होती है वैसे सदाचारमें नहीं होती । प्रायः यही नियम सर्वत्र है । संसारमें रहते हुए मनुष्य परमार्थसाधन कैसे करे ? इसके उत्तरमें स्वामिचारिणी छीट समाग कर ऐसा उदात्त चारित्र्य देते हैं । जैसी स्वामिचारिणी छीट अपने विराहित रहित सब कार्य करते हुई अपने सबमें परपुरुषका ध्यान सदा करती हैं और समय मिलते ही उसके पास जाती जाती हैं, उसी प्रकार संसारी जीव संसारके कार्य करते हुए अपना सब ध्यान परमात्मामें रखें और जो समय मिल जावे उस समय परपुरुष परमात्माकी उपासना करें, यही पर पुरुष किंवा परम पुरुष और उपास्य सबके विषय है । यह अपना चरित्र हीन है तथापि पूर्ण है । ऐसे ही छुआरी और मद्यपीकी उपमा भी पूर्ण है । मनुष्योंकी चाहिये कि वे उनकी कार्य लक्ष्यता अपनेमें लावे और उससे सुयोग्य कार्य करके कृतकृत्य बनें ।

मंत्र ३५ और ३६ में गौर्गोशलाओंमें तेजस्विता प्राप्त करने से स्त्री हुई है, इस तेजस्वितासे सब गृहस्थ पुत्र हों, ऐसा कहा है । ‘ ( गोपु बर्चः । महानध्यास अधत्तं ) ’ इन सम्बोधनोंका गौका दुग्धस्थान बताया है । सधुत्तु गौका दूध भरीय तेजस्वी होता है । भैरवा दूध सुखी लायेवाला है, गौका दूध सुखी इतनेवाला है । अथ सध गृहस्थी और उसके घरमें बालवर्षके गौका ही दूध पीकर तेजस्वी, बर्चस्वी, बोजस्वी, भाग्यमान और पुराणी बने ।

मंत्र ३७ में कहा है कि जहाँमें एक प्रकारका तेज है विसते तेजस्विता, भातुर्य, वीर्य और सामर्थ्य बढ़ता है । गृहस्थ खेले इस अर्थसे वे गुण प्राप्त हो सकते हैं । वेदोंमें अन्धज जन्मी जीवनका एक मात्र साधन बताया है, सोमपात्रक



कहा है, आरोग्यवर्धक भावा है, यही सब भाव्य इस मंत्रमें सरासरूपसे कहा है । गृहस्त्री इसमंत्रको उत्तम मनन करे ।

मंत्र ३८ को सब स्वेगोरे द्वारा मनन करने योग्य मंत्र है ।

[ १ ] स्नान्ते तनुदूर्पि ग्रामं जपोहामि ॥

[ २ ] भद्रः रोचनः तं उदचामि ॥ ( म ३८ )

‘ ( १ ) जो शरीरको क्षीण करेवाला, शरीरमें विष उत्पन्न करनेवाला और शरीरमें धाकर स्थिर रहनेवाला रोग-बीज या दोष है उसको मैं हटाता हूं, और ( २ ) जो शरीरका तेज बढ़ानेवाला और अपना कल्याण करनेवाला है, उसको मैं अपने पास करता हूं । ’ यह विषय तो सब अनुष्ठानोंको सदा सर्वदा ध्यानमें धारण करना चाहिये और इसी प्रकार साधन करना चाहिये । हर एक स्थानमें दोषोंको दूर करना और गुणोंको अपनेमें बसाया योग्य है । उदाहरणार्थ यही एकमात्र उदाहरण है । कृपया अपने घरमें इसी विधमका पाठन करें ।

मंत्र ३९ में कहा है कि ( श्वशुरः देवरात्रिं प्रतीक्षन्ते ) पतिने घरमें धूम्र और देवर बधूके जानेके मार्ग की प्रतीक्षा करते हैं । बपूका स्वागत करनेके लिये सब लोग जगजगत् रहते हैं । यह मंत्र बधू अपने पतिके घर भविष्य हो, यहां पहुँचते ही अन्निकी प्रदक्षिणा बने, अन्निकी मनन करे और पश्चात् श्वशुर भद्रिका दर्शन करे । यदा प्राण्य मंत्रपूत जलसे इस बधूको अभिषेक करे । यह जल बपूके अंदर जो भीरवा ( भवीर्यः ) आयः ) हो, उसको दूर करे । यह मंत्र महत्त्वकी बात है । भाषोंमें भीरवा नहीं होनी चाहिये । भाष्य तो सदा विद्वत् और धैर्यसे श्रेष्ठ होने चाहिये । इसलिये बपू गृहस्वाध्यायमें प्रविष्ट होकर पतिके घर जो प्रथम स्नान करती है, वह स्नान माण्डवों द्वारा वैदर्भत्रसे पवित्र और निर्दोष हुए जलसे करे । जिस मंत्रपवित्र जलसे स्नानसे इस बधूके भीरवा भादि सब दोष दूर हो जाँते वह पवित्र, मंगल और धैर्यवाली बने । ऐसी सुयोग्य गृहस्वामिनी बने कि जो अपनी सखानोंको सुयोग्य उपदेश द्वारा उत्तम भाष्य बनावे ।

पतिके घरने सुवर्ण रत्न भादि आभूषण इस जलबधूके शिष्ट कल्याणकारी हों, गिरनेवाले न हों । यही तो धनसमुच्च-को गिराता है । धनसे उत्पन्न हुआ धर्मक अनुष्ठानकी कपो-गति करता है । इसलिये साधनात्मकी सूचना देवसे लिये यहां कहा है कि सुवर्ण भादि धन बधूकी गिरावट न करे ।

दूसरे धरती क्षिपिके उत्तमोत्तम आभूषण देकर अपने लिये भी वैसे ही आभूषण बनवानेका हठ क्षिपि करती है और पतिको बड़े क्लेश देती है, ऐसा कोई स्त्री न करे और प्राप्त सुवर्णमें ही वह संतुष्ट रहे । सुवर्ण, आभूषण, गाड़ी, घोड़े भादि सुसज्जित सबके सब भोग्यार्थमें आते हैं । भोग्यार्थक कारण घरमें विविध झगड़े होते हैं, अतः कहा है कि इन भोग्यार्थार्थोंसे कोई झगड़े न हों, भवितु ( न भवतु ) पतिके घरमें शान्ति रहे, झगड़े होकर भगति न बने । और पत्नी ( एत्या त्वन् ईं स्पृष्टास्व ) अपने पतिके साथ सुखसे आनन्दप्रसन्न रहे । पतिव्रती ऐसे एक विधातसे हैं कि वह किसी भी कारण विवाद न हो, घरमें भगति न बदे और दोनोंको कीर्तिक सुख प्रयायोग्य प्राप्त हो ।

स्त्रीकी इच्छा

आशास्तावा सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ॥

( म ४२ )

पतिके घर भाषी हुई नरबधू सर्वाङ्ग गृहिणी किस बातकी आशा करती है, अर्थात् क्या चाहती है, यह प्रश्न कोई पूछे तो उसके उत्तरमें भिन्नत्व है कि वह स्त्री ( सौ-मनसं ) अपने घरके सब लोग आनन्दप्रसन्न रहें, झगड़े न हों, घरपरिवार स्वैच्छा श्रेष्ठपूर्वक हो, घरमें उत्तम शान्ति, आनन्द और प्रसन्नताका राज्य रहे, यही इच्छा गृहिणी स्त्री की हो । दूसरी इच्छा यह होनी चाहिये कि, ( प्रजां ) उत्तम सत्ताय उत्पन्न होये, अपनी सत्ताय सुयोग्य बने, अपनी सुसज्जितसे उत्तमका इस दरमारा रहे । तीसरी इच्छा यह होये कि ( सौभाग्यं ) उत्तम भाग्य प्राप्त हो, अपने पतिके घरमें उत्तम भाग्य वर्द्धित होय रहे । चौथी इच्छा विशेषकर उस भाग्यका समर्थन होता है कि जो पतिके कारण पत्नीको और पत्नीके कारण पतिको सुख होता है और जिस सुखके लिये विवाद होय है । यह सौभाग्य अपने घरमें बड़े बड़ी इच्छा पूर्णत्वकी हो । इससे पश्चात् शत्रुये इच्छा यह है कि ( रयिं ) धन प्राप्त हो, अपने पतिके घर क्षिपी प्रकार वृद्धित न रहे । ऐश्वर्य सब सुवर्ण आभूषण भादि सब विस्तृत रहे और इस अर्थसे सबको सुख प्राप्त होगा रहे । धर्मव्रती की पतिके घरमें यही चार प्रकारकी इच्छा हो । यही सबसे प्रथम उत्तम मनकी इच्छा की है, उपाय नैत पतिव्रतीके उत्तम सुखकी इच्छा है, और अन्तमें धनकी इच्छा है । क्योंकि धन सुखका साधन तो है, परन्तु धन धन सु-मन न होनेपर, घरमें सुसंशान न होनेकी भयान्याय, पतिव्रती सौभाग्यकी विचरित्यायें कोई सुख नहीं देता, हमें

विपरीत इन अवस्थाओंमें वह दुःखदायी ही होता है। इस लिये कौनसी आशा प्रथम करनी चाहिये और कौनसी अन्तमें करनी चाहिये, इसका विचार गृहस्थी लोग इस मंत्रके मननसे ज्ञानें।

### श्री कैसी हो ?

( परमुः अनुद्यता ) पतिके अनुकूल रहकर विषमपाठ्य करनेवाली श्री हो। श्री कभी पतिके प्रतिकूल आचरण न करे। इस नियमके अन्तर यद्यपि श्रीके लिये पतिके अनुकूल होनेकी आज्ञा कही है तथापि इससे पति भी श्रीके अनुकूल रहे या भी मान निकलता है। पति कैसा चाहे, वैसा आचरण करे और प्रेमात् वरनी ही पतिके आधीन रहे, यह भाव इस मंत्रका नहीं है। यमोपदेश समान हुआ करता है और वह एकके निर्देशसे दूसरेके लिए भी ऐसा बोध्य है। सात्यक यह है कि तिस्रों प्रकार के पतिके अनुकूल रहे-उर्ध्व प्रकाश जति भी पत्नीके अनुकूल रहे। दोनों परस्पर अनुकूल रहकर एक दूसरेका सुख बढ़ावें और गृहकी स्वरोपाम बनावें। उस परमें ( अमृताय के संमहास्य ) मनुष्य की प्राप्ति हो। धर्मपत्नी और पति ये दोनों अपने साध्य अमृतत्व अर्थात् मोक्षकी नित्य प्राप्ति ध्यानात् रखें। उस अमृतत्वय मोक्षधामकी पहुँचनेका जो मार्ग है उस मार्ग पर सुखसे चढ़नेके लिये इस गृहस्थाधर्मकी सहायता है वह कोई गृहस्थी न भूले। इस बातसे लिये सब गृहस्थी सिद्ध हो। सब व्यवहार में इसी उद्देश्यकी सिद्धि लिये करें। अर्थात् धर्मोपकृत व्यवहार करते हुए मोक्षकी सिद्धि प्राप्त करें। प्रत्येक गृहस्थीका यह कर्तव्य है। प्रत्येक गृहस्थी प्रत्येक व्यवहार करनेके समय स्मरण रखे कि मेरा यह कर्म मोक्षका साधक हो, और कभी याधक न हो प्रत्येक कर्म योग्य रीतिसे करने पर मोक्षके लिये साधक ही सकता है। यदि प्रत्येक कर्म फलवापरीक किया जाय, रोगका त्याग किया जाय, तो सभी कर्म उर्ध्व मोक्षधामकी प्राप्ति करनेमें सहायक हो सकते हैं। फलमोगकी स्वार्थेच्छासे ही मनुष्यकी गिरावट होती है, मत. कहा है कि ( मा. गृ. ४. १५ ) नव एवंपालो, सब प्रकारका लोभ छोड़ दो और बर्ग को इस तरह निर्लोभतासे किया हुआ कर्म मोक्षके मार्गमें सुख देनेवाला होता है। गृहस्थाधर्मसे सभी कर्म सुख देते हुए मोक्षमार्गके साधक हैं।

### गृहस्थीका साम्राज्य

गृहस्थीका घर एक बड़ा भारी साम्राज्य है। साधारण राज्य नहीं है, बड़ा साम्राज्य है। यजमान गृहस्थी स्वयं सम्राट् है। पत्नी उसकी सम्राज्ञी है। वह गृहस्थीको सहायक-

चारिणी उसकी मंत्रणा देनेवाली है, इसमें जो परिवार है वे सब प्रयाज्य है। यौ, घोड़े आदि जो घरके उपयोगी पशु पक्षी हैं, वे भी सब इस साम्राज्यकी प्रजा हैं और इस प्रजाका योग्य पालन करना गृहस्थीका आवश्यक कर्तव्य है। ( साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा । मं. ४३ ) जो बटवान् होगा वही इस साम्राज्यका पालन और संवर्धन कर सकता है। अश्वपका यही कार्य नहीं है। ( वृषा ) जो बटवुफ होगा वही इस गृहस्थाधर्ममें यशस्वी होगा। यशस्वीका ही साम्राज्य हो सकता है। मन्त्रकोंका साम्राज्य नष्ट होगा। यह नियम इस स्थानमें पाठ्य देल सकते हैं।

पति सम्राट् बने और उसकी धर्मपत्नी साम्राज्ञी बने। इसका अर्थ पूर्व अनुसंधानसे यह है कि पति भी बलवान् बने और पत्नी भी बलवाहिनी बने और दोनों मिलकर इस गृहस्थाधर्मके साम्राज्यको योग्य रीतिसे चलायें। ( मेघ ४४ मं ) नवययूसे कहा है कि वह सत्वर, देवर, ननर तथा सात आदि पारिवारिक कर्मोंके साथ योग्य यत्नसे साम्राज्ञी बनकर को, इसका अर्थ यह है कि पतिके घर इस श्रीका यही धर्म रहे कि जो साम्राज्यमें साम्राज्ञीका रहता है। श्रीका अधिकार सत्साधारण है। पूर्व स्थानसे कहा है कि श्री स्वयं नहीं है, या तो वह मातापिताके आधीन रहेगी अथवा पतिके आधीन रहेगी, इस कथनके साथ यह विधान विशेषक नहीं है। क्योंकि कोई सम्राट् या साम्राज्ञी पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती। साम्राज्यके नियमोंसे बंधी होती है। वह साधारण श्रीके समान दृवर उभर ला नहीं सकती। उसके साथ सदा स्त्रीरसक रहते हैं। इस प्रकार साम्राज्ञी परतंत्र होती हुई भी विशेष स्वाधीन होती है। यही बात श्री की भी है। धर्मनियमोंसे बंधी हुई धर्मपत्नी परतंत्र होती हुई भी पूर्ण रीतिसे साम्राज्ञी है। धार्मिक उन्नति करनेके लिये स्वतंत्र है। मनुष्यको अपने बुद्धिधामके मार्ग पर चढ़ना है, यही उसका ध्येय है। इस ध्येयकी सिद्धिके लिये जिदवी स्वीकृतता चाहिये उतनी स्त्रीको देनेका विधान है। इससे जो अधिक स्वातंत्र्य है वह श्रीको गिरादेना कारण बनता है।

### देवियोंका यह काटना

वैदिक धर्मोपुसार सर्वसाधारणतया स्त्रीपुरुषोंका और विशेषकर स्त्रियोंका बरेल व्यवसाय सूत्र काटना और उसका कपड़ा बुनना है। प्रत्येक गृहस्थीके घरकी लक्ष स्त्रियाँ इस सूत्र निर्माणके कर्मको व्यवस्थ करे। ( देवीः अमृतन् । मं. ४५ ) घरकी देवियाँ सूत्र काँटें, जो सूत्र काटती हैं वे ही देवियाँ हैं। ये ही देवियाँ ( तत्तिरे ) याना तातती हैं, सूत्रको रोक करके योग्य रीतिसे तन्ना धानती हैं तथा ( अमिताः

मन्तान् ददन्त) पारो भार्गवो गन्तिमन् यज्ञोक्तो ऋक् करती है। इस तरह सप्त उत्तम रीतिले ऋक् हौनेपर (अव-यन्, संध्ययन्तु) देविता कपडा बुनें, ऋक् तह बुनें, ताक्ष्यको अवरथो कपडा विरेल भ्रमन् साथ बुनें, ताकि (उरसे) वृद्धाश्रमायें, जब कि विरेल भ्रम होना संभव नहीं है, कामसे भाये। (आयुष्मती इदं यासः परि-धास्य) दीधे बाधु प्राप्त करनी हुई यह स्त्री अपने प्रयत्नसे हुना हुआ वस्त्र पहने। यही वस्त्र क्षिणिका और पुरर्षिका मूल्य है। प्रत्येक परिवार इस तरह वस्त्र विषयमें स्वावर्धनी धने। अपने वस्त्रके लिये दूसरोंपर निर्भर रहना सर्वथा असंभव है। यह उपदेश यहां देर दे रहा है। यहां वेदने परिल उद्योग धन्योपर अधिप जोर दिया है। प्रत्येक घर हर तरहसे स्वावर्धनी बने। प्रत्येक गृहस्त्री धरेल उद्योग धन्योपर द्वारा संरक्ष हो। यह वेदके द्वारा बताया गया उपाय अमनु-ष्यको एक सर्वोत्तम उपाय है।

मंत्र १६ में कहा है कि श्री पुण्य अपने दीर्घ जीवनक मालीके (दीर्घां प्रसितिं अनुदीप्युः) स्वात्मने स्वयम्, अपने (पितृभ्यः वामं) मातापिताके लिये सुख देने और श्री पुण्य परस्परको सुख देने हुए आनन्दसे अपना कर्तव्य करें। गृहस्थाश्रमका मार्ग प्रतिदीर्घ है, क्रमसे क्रम मी वर्ष तक इस मार्गपर चलना पड़ता है। सौ वर्ष जल्दवार भी यह धर्ममार्ग समाप्त नहीं होता। इसका संका मार्ग गृहस्थि यौन सामने है। इतने लंबे मार्गपर सुख साध प्रकाश करना चाहिये। इस कारण अपने मातापिताको सुख देना चाहिये। मातापिताका साकार करना एक आवश्यक कर्तव्य है। यदि कोई गृहस्थी अपने मातापिताको देखना नहीं करेगा, तो उसका बालबच्चे भी उसकी देखभाल नहीं करेगा। स्वयं अपने मातापिताको देखभाल करनेसे अपने सौतेलानेकी भी सुयोग शिक्षा मिलनी है, जिससे वे भी अपने माता-पिताका आदरसाकार करनेमें प्रवृत्त होते हैं। सब गृहस्था-श्रम सुखमय करना हो तो दुर्द्ध और बालकोंकी वाग्व्या-उत्तम उत्तम रीतिले होनी चाहिये। गृहस्थाश्रम सुखवृद्धि करनेका यह महातप्य है।

गृहस्थिको उपर सुमन्ता निर्गन्तका बडा भारी भार है। प्रत्येक गृहस्थीको उचित है कि वह (प्रजापये स्थोत्रं ध्रुवं) अपनी सौतेलानेके लिये सुख और स्थोत्र प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। अपनी सब सौतेलानें सुनी हो, और स्थिर हों, सुख हो तथा दीर्घायु धने। सौतेलानी बाधु दीर्घ किस रीतिसे हो सकती है? इससे उत्तम वेदका कहना है कि (सधिता बाधुः

दीर्घं वृणोति। मं ३०) सूर्य ही मनुष्यकी बाधु दीर्घ बनाता है। सूर्यप्रकाशसे मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। मनुष्य सूर्यकिरणोंसे निर्धरे, सूर्यस्नान करे, सूर्यकी उपा-सना करे और अपनी बाधु दीर्घ बनाये।

### पाणिग्रहण

पुरुष श्रीका पाणिग्रहण करता है। यह पाणिग्रहण होते ही श्री पुरुषके बांधव पत्नी और पतिव्रता माता सुख होता है। इस समय पति अपनी पत्नीसे प्रेमसे साथ बातचीत करे और उत्तम बदे—

(१) ते हस्तं गृह्णामि, (२) मा व्यधिषां,

(३) मया प्रजया धनेन सह॥ (मं. ४८)

‘हे पत्नी! तेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, तु मी मत हो और मेरे साथ तथा संगाने और धनार्थ साथसे निवास कर।’ इस तरह प्रेमपूर्ण पति अपनी धर्मपत्नीका साथ भाषण करे। लवण दूखरेके दुखसे जाती है, उसका कोई परिचित यहां नहीं होता है, हमलिये पतिने धरने भोग उभ नररपूत साथ प्रेमका बर्तार करे। पति नररपूत बदे कि ‘दे पत्नी! मैंने तेरा हाथ पकड़ा है, इससे तु समझ कि तुझे मैंने सब अवस्थामें साथ दिया है। हाथ पकड़नेका कार्य साधारण देना है, बात जबतक मैं तु सपत्न तुझे करनेकी कोई जरूरत नहीं। तू यहां सब तरहसे सुरक्षित है। मेरा जो पत है, वह भी तेरा ही भव है। उससे तुझे भी हर तरहका सुख प्राप्त हो सकता है। हम दोनोंकी जो संगाने उत्पन्न होगी उनका संभोगोप वाग्व्या करना हम दोनोंका कार्य है। यदि हम बड़ कार्य करें तो वे सब हमारी सौतेलाने और हमारे सुख हेतु हो सकती हैं। इस तरह दे पत्नी! मेरे साथ रहकर तू इस समाजमें सुखसे रह और हम दोनों गृहस्थधर्मका पालन करते हुए मोक्षके मार्ग पर चले।’ हम दोनों पति और पतिने भोग नररपूत साथ मधुर, विश्व और सुखसागर भाषण करें और उनसे मनमें पतिने धरन विषयमें प्रेम उत्पन्न करे।

यहां जहां वेदमें पाणिग्रहणका विषय भाषा है, वहां वह पति पत्नीका पाणिग्रहण करता है, वेम ही सत्य प्रयोग है।

(१) ते हस्तं गृह्णामि। (अथर्व १३।१।४८, ५०)

(२) ते हस्तं गृह्णामि। (अथर्व १३।१।४९)

(३) ते हस्तं गृह्णामि। (अथर्व १३।१।५१)

(४) ते हस्तं अग्रहीत्। (अथर्व १३।१।५२)

इन स्थानोंमें हाथ पकड़नेवाला पुरुष ही और स्त्रियां हाथ पकड़ा जाता है, वह श्री है। हमने भी गृहस्थाश्रममें

पुरुषकी निगिष्टता है, यह बात स्पष्ट होती है। वेदमें किसी भी न्यायपर की द्वारा पुरुषक हाथ पकड़े जानेका विधान नहीं है, अथिगु संग्रह पुरुष ही स्त्रीका हाथ पकड़ता है। पाणि ग्रहण करनेका अधिकार पुरुषका है, यह इन मंत्रोंसे निश्चित होता है। इमंलिखे मंत्र ४३ में (सिन्धु-नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे) कहा है। एक समुद्र अनेक नदियोंका सम्राट् होता है, अर्थात् एक पति अनेक स्त्रियोंका पाणिग्रहण करता हुआ गृहस्थाध्यायकी बड़े साम्राज्यका सम्राट् होता है। पति ही स्त्रीका पाणिग्रहण करनेवाला है, इस कथनसे भी पत्निका ही मुख्य होना सिद्ध है। स्त्रीका दान पत्निको दिया जाता है, इस विषयके मंत्र भी हमने पूर्वस्थानपर देखें हैं। इन मंत्र बाटोंसे निःसंदेह वैदिक धर्मक द्वारा गृहस्थाध्यायमें पुरुषका मुख्य स्थान है, यह दर्शाया है।

अथैव वीर्ये मंत्रोंमें पाणिग्रहणकर ही विषय है और उन मंत्रोंमें स्त्रीका हाथ पुरुष पकड़ता है ऐसा ही भाव है। क्या भागि विशेष स्पष्ट करके कहा है कि—

॥ धर्मणा पत्नीं वसि, अथ तव गृहपतिः ॥

(म ५१)

इयं मम पौष्पा, महा त्वा प्रजापतिः अदात् ॥

(म ५२)

'पुरुषकी स्त्री धर्मसे पाली है, और पति स्त्रीका गृहपालक है। यह स्त्री पति द्वारा पौष्पाके योग्य है, क्योंकि हम पतिके अधिकारमें प्रजापतिने इस स्त्रीको सौंप दिया है।

स्त्रीके पौष्पकत्व भार पतिके ऊपर है, यह बात इस मंत्रसे स्पष्ट है। पति पत्नीका पालनपोषण करे। पालन-पौष्पकका विचार पत्नी न करे। पौष्पककी सामग्रीके घरसे अनेक वस्त्रादि पत्नी उस सामग्रीका योग्य विनिमय करके सबको घनार्थक अन्न भाग पहुँचावे।

सुपुत्र निर्माण करनेमें देवताओंकी सहायता प्राप्त होती चाहिये। यह सहायता इस स्त्रीको प्राप्त हो, इस प्रकारका भारीनाद मंत्र ५३ आर ५४ में है। इन्द्र, अग्नि आदि सब देवता इस स्त्रीको अपना नेत्र अर्पण करें और इस स्त्रीके अन्दर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और ऐसे सुगन्धानोंक साथ यह स्त्री उन्नत होती रहे।

### केशोंकी सुंदरता

शिरपर (शीर्षे) केशान् व्यवस्यस्यत्) परीधरने बड़े बड़े बेल बनाने हैं। विशेषतः स्त्रीके शिरकी शोभा केशोंकी सुगन्धवत्तासे बढ़ती है। (तेन इमां नारीं पत्ये सशोभयामसि) मन्त्र पतिके लिये सुंदर स्त्रियोंके योग्य स्त्री

शिरकी सजावट करे और अपने शिरकी शोभा बढ़ावे। स्त्री अपने शिरपरके बालोंका सुगन्धवत्ता हमें और शोभाके लिये सजावट करे।

(मनुसा चरन्ती जायां जिज्ञासे) मनसे जाहजहत खीन फैला है यह जानना चाहिये। केवल बाह्य जाहजहत द्वारा किसीकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। मन फैला है, विचार कैसे है, मनसे किम शक्य विचार करनी है, मंत्रों विसरक मानन करनी है, यह देखना चाहिये। जो मनसे शुद्ध है, उसे ही शुद्ध समझना चाहिये। अतः मनको शुद्ध रखनेके लिये जो जिज्ञा देनी योग्य है वही देनी चाहिये। स्त्री हो ॥ पुरुष, उनके मन शुद्ध रखनेयोग्य पाठविधि बनानी चाहिये।

(योया यत् अवस्त, तत् रूपं) स्त्री जो वस्त्र परिधान करती है, उससे उसका रूप शोभामान होता है। अर्थात् स्त्रीको इस प्रकारके वस्त्र परिधान करनेके लिये देने चाहिये ॥ जिससे उसकी सुन्दरता बढ़े। वही स्त्रीसावित्रीका उदाहरण वाक्य देखें। सत्यसमपदमें कितने विविध रूपके वस्त्र वह सूर्यपुत्री सत्या पहनती है और अपने रूपकी शोभा बढ़ाती है। पति अपनी स्त्रिके अनुसार स्त्रियोंको उत्तम वस्त्र पहनावे। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो प्रतिदिन नये नये वस्त्र पहने, परंतु जो वस्त्र पहने वे ऐसे सुगन्धविषयक हैं कि उनसे उस स्त्रीकी शोभा बढ़े। पत्नी देवी की है और परधरमे इस गृहस्थाभिनीकी अगल वस्त्र भूषणोंसे पूजा होती रहे और वह पूजा परके न्यायीकी आर्थिक अनुकूलताके अनुसार होती रहे।

(नयस्यै, सरिभिः तां अन्यातिप्ये) गिनमें भी गौरी अर्थात् सब ईश्वरोंका समर्पण किया जाता है, उन यशोंक साथ और जो हमारे मित्रजन उन यशोंमें भाग लेते हैं उनके साथ यज्ञमय जीवन बनाकर उस धर्मके साथ में सब व्यवहार करता है। अर्थात् मैं स्वयं और मेरी धर्मपत्नी दोनों मिलकर अपना सब जीवन हम यज्ञरूप बनाते हैं। जो जो कर्म हम करते हैं वह यज्ञरूप करते हैं। इससे हम दोनों यज्ञरूप बनेंगे और अन्तमें हमारे यज्ञमें ब्रह्मरूप परमेश्वर प्रसन्न होगा और हम श्रृङ्खल बनेंगे।

(यिद्रान् पाशान् विचयन्त) जो पुरुष विद्रान् दोहरा अपने पाशोंको कटें और बंधनो मुक्त हों। सब प्रयत्न बंधनसे मुक्त होकर लिये होने चाहिये। अनुपम अनेक प्रकारके प्रयोगमें निष्पत्ति पसता है, और स्वयं अपने लिये बंधन निर्मोक्त करता है और उन बंधनमें बंध जाता है। ये सब

बंधन का देने चाहिये और मुक्त होना चाहिये। यह मुक्त होनेका ज्ञान जिसको होता है उसीकी ज्ञानी मधवा विद्वान् कहते हैं। मनुष्य-स्त्री वा पुरुष-द्वय मुक्तिकी विद्याको प्राप्त करें और उसकी सहायतासे मुक्त हो जाय।

प्रत्येक मनुष्य कहे कि (अहं विद्यामि) मैं ये सब बंधन तोड़ता हूँ, मैं बंधनसे मुक्त होनेका प्रयत्न करता हूँ। क्योंकि मनुष्य-जन्मकी सार्थकता बंधनमुक्त होनेमें ही है। मनुष्यका जन्म ही इस कार्यके लिये है। ये सब बंधन मनुष्य को बंधते हैं मनुष्य कहा है कि (मनसः कुलाय पददत्त वेदम्) मनसा वह जोसला है वह बात मनुष्य देखे और मनद्वारा उन्नत हुए वे सब बंधन हैं, ऐसा जने। यदि मनुष्यको इस बातका ज्ञान होना कि (मन एव मनुष्याणां कारण बंधमोक्षयोः) मन ही मनुष्योंके बंधन मधवा मोक्षका कारण है, तो वह मनुष्य कभी बंधनोंमें नहीं पड़ेगा। साधारण मनुष्योंको ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बंधन बाध कारणोंसे हैं, परंतु यस्तुतः वह भ्रम है। बाध कारण मनुष्यको बंधनोंसे डालनेमें असमर्थ है। मनुष्यका मन ही अपने बंधन पैदा करता है और उसमें स्वयं बंधन है और मनुष्यको फंसता है। इसलिये बंधनसे मुक्त होने वाले मनुष्यको उचित है कि वह अपने मनको ज्ञानसे मुक्त करे और उस छद्म मनसे वह अपने सब बाध काट देवे। निश्चय यह है कि (मनसा उत्तु मनुष्ये) अपने मनसे ही मनुष्य उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। मनुष्य अपने मनसे बंधनोंमें बाधा जाता है और अपने मनसे ही बंधनोत्तरे मुक्त होता है। इसी लिये मनुष्यके मनमें है। इसी लिये प्रत्येक मनुष्यके मनमें होती हुई भी मनुष्य अपने भाग्यकी असमर्थ मानता है और सहायताकी याचना करता रहता है। परंतु यदि वह स्वयं अपने कार्योत्तरे बंधनमें पड़ा है तो वह अपने ही कार्योत्तरे बंधनोंकी तोड़ना मुक्त भी हो सकता है। जहाँ तक मुक्त होनेकी शक्ति इसके अन्दर है। अतः कहा कि (स्वयं ध्यात्वा) 'स्वयं मैं अपने भाग्यको शिथिल करता हूँ।' तुम्हारे भाग्यको दूसरा कोई शिथिल कर नहीं सकता। यदि तुम अपने बंधनोंको तोड़ना चाहते हो तो तुम ही तोड़ सकते हो, यदि बंधनमें ही पड़े रहना चाहते हो तो वैसा भी हो सकता है। जो तुम्हारे मनमें होगा वही पड़ा हो सकता है। तुम ही अपने बंधनका और तुम अपने भाग्यका हो। दूसरा तुम्हें कुछ देता है वह बड़ा भागी भ्रम है। यह बात जैसे वैदिकक मुक्तियों सत्य है वैसे सामाजिक और राष्ट्रीय मुक्तियों भी सत्य है। अतः सब ही

पुरुषोंको उचित है कि वे अपने बंधन शिथिल करनेका स्वयं प्रयत्न करें और प्रयत्न करके स्वयं मुक्त हो। यदि प्रयत्न किया जाय तो यह सिद्ध हो सकता है।

### चोरीका अन्त न खाओ

इस योग्यताको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो यह नियम करना चाहिये कि (न स्तेय आग्नि) मैं चोरीका अन्त नहीं खाऊँ। वाज अधिकार जनसत्ता जो भय खाती है वह चोरीका होता है, जिसपर दूसरेका अधिकार होता है। यदि हम उसको भक्षण करें तो वह चोरी है। वह चोरी घरमें भी होनी और समाजमें भी होनी। यदि कोई पदार्थ घरमें बाता है और वह सब मनुष्योंको न बदले हुए भक्षण ही उसको खाता है तो वह चोरीका अन्त खाता है। अपने प्राणमें जो भय उत्पन्न होता है वह भयमक सब लोगोके लिये होता है। यदि प्राणमें कोई लोभनी अपने प्राण भक्षणसमूह अधिक किया और इस कारण प्राणमें कोई लोभ भूलने लगे, तो निःसन्देह अधिक संग्रह करनेवाले चोरीका अन्त ही खाएंगे। वह सब विचार करके तुम्हारे लिये निश्चय करना चाहिये कि हम चोरीका अन्त खाते हैं वा यज्ञका अन्त खाते हैं। मनुष्यको उचित है कि वह यज्ञोपनिषद् का पालन और पवित्र बने। जो मनुष्य यज्ञ न करके स्वयं अपने लिये ही पकता है वह चोर है। मनुष्य जाहको जो शिक्षा मिलनी चाहिये, वह वह है।

येन त्वा भवन्मात्, पाशात् त्वा प्रमुञ्चामि ॥

(मं ५८)

'जिस बंधनसे तुझे बाध रहा था, उस बंधनसे तुझे मैं मुक्त करता हूँ।' यह बचन पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है, और उसको विहाय देता है कि मेरी सहायतासे तू भय (अथ लोक) विस्तृत लोकको प्राप्त हुई है, मेरे लिये विस्तृत कर्मभूमि प्राप्त हुई है और (अथ तुभ्यं तुमं पदं) तुम्हारे लिये पद प्राप्त हुआ है। इस मार्गसे तू जायगी तो तेरा कल्याण होगा। वह गृहस्थाश्रम एक व्यक्ति विस्तृत कर्मभूमि है, पुरुषार्थ मनुष्य यही पुरुषार्थ करके अपना भाग बना सकता है। यही अनेक मार्ग है परंतु सत्य मार्गपर ही मनुष्यको चला चाहिये। अस्तु। पतिको उचित है कि वह अपनी स्त्रीको मुक्तिदा देवे, उसको सौख्य मार्गसे चले और स्वयं वीर्य मोक्षके लिये जो जो पुरुषार्थ करने आवश्यक हैं वे सब कार्य करे। पुरुषपर यह द्योती भाती क्रियेवती है। पुरुष की शक्ति मुक्त रखे और अपनी स्त्रीको भी मुक्तिदा प्रदत्त करे।

स्त्रीके योग्य अथवा अव्योम्य आचरणका उत्तरदायिण पुरोषका है। स्त्रीतिथ्याका सब भार पुरोषपर है यदि स्त्री विद्याहीन है, तो उसका दोष पुरोषपर है। यही अगले ५९ वे मंत्रमें कहा है—

( इमा नारीं सुपुते दधात । म ५९ ) इस स्त्रीको पुण्यभागमें चलाओ, इससे पुण्यकर्म हो ऐसी व्यवस्था करो यदि स्त्र/पुरा व्यवहार करते हैं, तो उसका दोष पुरोषपर ही जाना है। पुण्यका यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीको अपने कर्तव्यका आवश्यक ज्ञान करा दे और स्त्रीको धर्मशील बना दे। ( धाता अस्ये पतिं विधेद् ) घरमेंबैठे इस स्त्रीके लिये पति प्राप्त करा दिया है, अब वह पति ( रक्षः अव हन्ताय ) इसके भन्तरके राक्षसी मानोंका नाश करे। पति स्त्रीको ऐसी सुशिक्षा देवे कि जिससे स्त्रीके भन्तरकी सब आसुरी वृत्तियां दूर हों और उसमें ऐसी वृत्तियां स्थिर हो जायें और वह सबसुख 'वैवी' बने। इस स्त्रीको ( उत्त यच्छुष्य ) उच्च बनातेके लिये अपने आपको समस्त रखो, रीतिार रखो, अपने ललाच ऊपर उठाओ, इसका उत्तम रक्षण करो, इसको उत्तम धर्मेतिथिमें रखो। जिस प्रयत्नसे स्त्रीकी सभी उन्नति हो सकती है वे सब प्रयत्न करो। स्त्रीकी उन्नतिका मार छोड़नेमें विष्णुकुलपर और विवाह होनेमें पश्चात् पतिकुलपर है। इसकी उन्नति करनेके लिये ही ( धाता पतिं विधेद् ) ईश्वरने इसको पति प्रदान किया है, अतः पतिका कर्तव्य है कि वह अपनी धर्मपत्नीका सर्वोन्नीत उन्नतिके लिये बल करे।

( सा सुमंगली भस्तु । म ६० ) यह स्त्री उत्तम मंगल करनेवाली बने, मंगलकी मूर्ति बने, उस स्त्रीके कारण परका और कुलका मंगल हो, इस स्त्रीकी मंगलमूर्ति देखकर सब लोग आनंदित हों। इसकी उन्नतिके लिये सब देवताएँ ( भग, धाता, रक्षः आदि ) सहायता दें।

### वरातका रथ

वरातके रथका वर्णन पुन मंत्र ६१ में है। यह रथ उत्तम ( सु-विष्णुके ) पूरोंसे सुकोरमित किया जावे, तथा उत्तम दूर लाल दुपोंसे सजाया जावे।

( विभ्य-रूपं ) अनेक प्रकारको सजावट उसपर की जावे, 'हिरण्य-यणैः' सुवर्णके रंगका यह रथ हो, उत्तम चक्र-उत्तम हो, सुवर्तुत् सुचक्रः ) उत्तम झालें लगी हों और उमारे चक्र उत्तम हो। इस तरहका मज्जासजाया रथ ( वाहत्तुं ) वरातके काममें लाया जावे। यह वरात पतिपर चहुँपे और बहाव रथालकी ( अमृतमय जोके लघु )

अमर लोक, सुखपूर्व स्थान बनावे। धर्मपत्नी अपने पतिपर चर चहुँपकर बहावका मुख बढावे। ( अ-ध्रातृ-ग्री ) बर्हिषाका नाश न करनेवाली, ( अ-पशु-घ्नी ) पशुओंका पातन करनेवाली, ( अ-पाति-घ्नी ) पतिका पातनपोषण करनेवाली, पतिके कष्ट न देनेवाली, ( पुमिणा ) संतानसे युक्त, ऐसी स्त्री पतिके घर इस रथसे जाए। यह स्त्री ( देवपुते पति ) देवोंके द्वारा बनाये गए सन्मानसे जाना चाहती है, अब इसका विवाह हुआ है, इस कारण ( कुमार्य मा हिंमिष्टं ) इस समयतक तुमारी रही हुई वह नववधू है। इसको बहाव पतिके घरमें किसी प्रकारका कष्ट न हो। ( पशू-रथं स्योमं कृणमः ) इस वधूका मार्ग हम सुखदायक करते हैं। इसका चञ्चलता जो देवमार्ग है वह इस वधूके लिये मुजुदायी हो, ऐसा प्रर्थन हम करते हैं। ( शालायाः द्वारं स्योमं कृणमः ) इस स्त्रीके लिये गृहप्रवेशके समय पतिके घरका द्वार हम सुखमय बनाते हैं। इस स्त्रीकी पति-गृहमें उत्तम सुख प्राप्त हो और वह अपनी उन्नति धर्माव्यव र्तिसे प्राप्त बने, निर्विघ्नतासे वह ऐसी उत्कर्षको प्राप्त हो।

इस स्त्रीको ( अपर पूर्व मन्थतः प्रज्ञ युज्यतां । म ६४ ) भाग्ये, पंडित, योगमें और सब ओरसे ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञानसे ही सबका उन्नति होती है। यहां 'प्रज्ञ' शब्दके अर्थ 'ईश्वर, अथ, वेदज्ञान, पशु, शक्ति, तप, धर्म पवित्रता, प्रज्ञाचर्य, धन, शब्द' ये हैं। स्त्री पतिघरमें जाई जावे यहां ये वराच उपस्थित हों, इनसे विमुक्तता कभी न होने पावे। यह धर्मपत्नी ( अनारण्यार्धा देवपुरा प्रपद्य ) प्यापि रहित दिव्य नगरीको अर्धांग पतिसे स्थानको प्रज्ञ होकर, पतिगृहमें शौररहित रहकर, मीरताताके साथ अपना सब व्यवहार करे ( शिषा स्योना पतिलोके विराज ) दुग्ध-मगलमयी गृहदेवता होकर पतिके स्थानमें विराजती रहे। यह स्त्री पतिके घरमें शोभा बढावे, सुलकी रुचि करे और बहाव मंगलका हेतु बने।

यहातक प्रथम सूत्रके अर्थोंका विचार किया। अब हम द्वितीय सूत्रका विचार करते हैं—

### द्वितीय सूत्रका विचार

द्वितीय सूत्रमें भी विचारका ही विचार है। पहिले चार मंत्रोंमें कुमारिकाके चार पति होनेका उल्लेख है। इस विषयमें हम कह सकते बड़ा है—

सोमस्य जाया प्रथमे गवर्षस्तेऽपरः पतिः ।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुतिरस्ते अनुच्यताः ॥

‘कुमारिकाया पतिरा पति सोमः, दूसरा पति गंधर्वः, तीसरा अग्नि और चौथा मनुष्य-योनिसे उत्पन्न (अर्थात् मनुष्य) होगा है।’ यहा चौथापने पार पतिने होनेका उहेल है। अश्वेद्वेने यह मंत्र इस प्रकार है—

सोमः प्रथमो विधिदे गन्धर्वो विविद उच्चरः ।

तृतीयो अग्निदे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

( अश्वेद्वे १०८५४० )

इस मंत्रका अर्थ वैसा ही है जैसा ऊपर दिया है। ऋषि कन्याको सोमने पहिले प्राप्त किया, फिर दूसरी पार गन्धर्वने इस कन्याको पनोकपने स्वीकार किया, तीसरा पति अग्नि हुआ और चतुर्थे मानव हुआ। इस मंत्रमें चतुर्थे पतिको ‘मनुष्य’ कहा है। इस बातसे ही पूर्वके पति मनुष्य योनिसे नहीं हैं इसकी सिद्धि होती है। अतः यद्यपि इस मंत्रमें पार पतिवोंका उल्लेख है, तथापि वह मंत्र नियोग अथवा बहुपत्निकी सिद्धि करता है ऐसा मानना असंगत है। क्योंकि इस बातकी सिद्धिके लिये तीनों पति भी ‘मनुष्य-ज’ होने चाहिये। परा स्वयं मंत्रमें कहा है कि पहिले तीस पति मनुष्यन नहीं हैं, केवल चतुर्थे पति ही मनुष्य है। इस कारण इससे नियोग अथवा पुनर्विवाह सिद्ध होना असंभव है।

चतुर्थे मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि सोमने यह कन्या चतुर्थके पास दी, गंधर्वने अग्निके सुपुत्र को और अग्निने मानवी पतिके हाथमें दी। इसलिये पहिले तीनों पति द्वैवी पतिके केन्द्र हैं यह सिद्ध है। मातापितरके पार रहती हुई कन्या बाप्य बरस्वामि इन देवताओंके भावीन रहती है किंवा इनका प्रभाव उसपर रहता है। जब विवाह होम होता है, तब वह ह्यनामि इस कन्याको मानवी पतिके हाथमें देती है।

कई विद्वान् भी इस मंत्रपर ऐसी विचित्र कल्पना कर बैठे हैं, कि प्रत्येकाने विवाह होनेके पूर्व कन्याको सोम, गंधर्व और अग्नि संज्ञक जातिवोंके पुरषोंके पास रक्ता जाता था और उपश्रान्त वह कन्या उनकी अनुमतिसे मानवको प्राप्त होती थी ॥ सचमुच ऋषि कल्पना मिथ्या और हास्यास्पद है। इस कल्पनासे तो स्वभिचार ही चर्म सिद्ध होता है। परन्तु हमें अभी तक सोम और अग्नि नामके कोई जाति भी, इस विषयमें प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। अतः यह कल्पना निराधार एवं असंगत है।

इसके अतिरिक्त सत्य वैदिक धर्मप्रणेतोंकी हत्या स्वातंत्र्य भी नहीं दिया है। इस प्रकार अन्य पुरषोंके पास जाकर रहनेके लिये उसको समर्थ ही नहीं है। वेदने किसी

भी अन्य स्थानमें इस तरह विवाहके पूर्व हीन पति होनेका भिर्वास भी नहीं है, अब यह भयानक कल्पना कसत है। क्योंकि मंत्रमें स्पष्ट है कि मनुष्योंसे पूर्वके ये तीनों पति मनुष्य हैं अर्थात् दैवत हैं। देवताओंका स्वामित्व किसी भी प्रकार दोषमय नहीं हो सकता। जैसे कोई भक्त अपने उपास्य देवको भक्त समर्पण करके पश्चात् वह भक्त स्वयं भक्षण करता है, ठाने उचित भक्षणका दोष नहीं होता, क्योंकि वह भक्त समर्पण एक भावनाकी बात है। इसी तरह मातापिता कन्याके वात्सल्यवश समर्थ कि अपने कन्या इस भयम सोमदेवताके प्रभारमें है, पश्चात् वह गंधर्व देवताक प्रभारमें होगी, तदनंतर वह अग्निदेवताके प्रभारमें होगी और उपश्रान्त वह मानवी पतिके आधीन होगी। कुमारिका जीवन इस प्रकार देवतामय होना चाहिये। देवताओंके समीप होविका अर्थ पवित्राचरणका होना है। यदि कोई मनुष्य राजाक समीप किंचित् काल रहेगा, तो वह उस समय अधिक पवित्र रहेगा, इसी तरह जब यह कन्या इन देवोंके पास रहेगी तो उसको पवित्रता अधिक होनेसे कोई संदेह ही नहीं है। देवता सर्वत्र होते हैं। अपना पाप उनसे उबारना अनसमर्थ है, इस सब कथनका तात्पर्य यह है कि ये तीनों द्वैवी पति देवत्व मनोभावनाके बलवद्भूत हैं। चतुर्थे मानवी पति ही सच्चा पति है। अर्थात् इस मंत्रपर जो अनेक पतिका कल्पना की जाती है, वह निराधार है।

## विवाहका समय

अगले दो मंत्रोंसे विवाहके समय बधू और बरकी भाव्य किन्ती होती चाहिये, अर्थात् किन्ती अलुमें विवाह हो, इसका निर्णय हो सकता है। (सुमतिः आगन्। मं ५) इस मंत्रभाष्यसे यह ज्ञात होता है कि उत्तर बुद्धिके प्राप्त होनेके बाद ही विवाह हो, अथवा कहा चाहिये कि बुद्धिके पवित्रत्व हो जाने पर ही विवाह हो। इससे विवाहके उत्तरात् बुद्धिपर होनेकी बात सिद्ध होती है। उक्तम विधा प्राप्त होने पर विवाहका विचार करना चाहिये। (हस्तु क्रामाः अस्सु। यं ५) बुद्धिके प्राप्त होनेसे अपना स्याद जमाया हो। इसी युवा अवस्था प्राप्त हुई हो, तब विवाह करना चाहिये। बुद्धिके प्राप्त होनेसे भी उत्पन्न होना चाहिये। (वाजिनी उत्सु) अतः और वनसे युक्त होना चाहिये। तत्पश्चात् विवाह हो। विवाह प्राप्त होनेके पश्चात् पत्न प्राप्त करके ज्ञानमि विवाहका विचार करना चाहिये। (गिधुता शुभस्पती योधा अमृत) साथ साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले, उक्तम पाठक संरक्षक जब हों, तब विवाहका विचार करें। (शर्य-

म्यः = अयं-मनः ) भाव्य अर्थात् श्रेष्ठमनवाले बध्नुवर हों,  
तब विवाहका समय होया ।

विवाहके समय स्त्री भी ( मन्दस्त्राना । सं. १ ) आनन्द-  
प्रसन्न, आनन्दित चित्तवाली, ( शिघ्रेन मनसा ) शुभ मन-  
वाली, स्वभावपूर्ण विचारसे युक्त हों । ( सर्ववीरं वचस्य  
रयि ) सब प्रकारके वीरताके भाव उसमें हो, उच्च मनस्त्व  
उसमें हो और हर तरहकी शोभा यह धारण करे और  
( दुर्मति हतं ) दुष्ट बुद्धिका नाश करे । इस तरह स्त्रीकी  
योग्यताके विषयमें निर्देश हमें मिलते हैं ।

शर्धात् विवाहके समय स्त्री और पुरुष विद्या, धन, वस्त्र,  
भुविचार आदि गुणोंसे युक्त होने चाहिये । कुटुम्बका सब  
भार सिरपर लेनेकी शक्ति इनमें होनी चाहिये । इस निर्देशका  
विचार करनेपर पता चलता है कि बध्नुवर युवावस्थामें ही विवाह  
करें, क्योंकि बादकल्पनमें उनकी विवाह न हो । वैवाहिक  
मंत्रोंका कार्य और मंत्रोंका प्रतिज्ञाकार भाव समझने योग्य  
बुद्धिवाले बध्नुवर हों । वैदिक मंत्रोंमें मातापिताका अधिकार  
कुमार-कुमारीकाभोपर पड़े है, तथा कन्यादान भी वेदमें  
कहा है । इससे कुमार-कुमारीका स्वर्णवर वेदको अभीष्ट  
नहीं है यह बात सिद्ध होती है । स्वर्णवरका उत्तर वेदमें  
किसी स्थानपर स्पष्टतया नहीं है । और कन्यादान-वद्विधिमें  
स्वर्णवरका स्थान मिलना असंभव है । जहाँ स्वर्णवर दो वहाँ  
कन्याका दान कैसे हो सकता है ? कन्यादानकी प्रथा वैदिक  
होनेके कारण मातापिताका अधिकार कुमार कुमारीपर है  
और इस कारण मातापिताकी अनुमतिसे ही वैदिक विवाह  
हो सकता है । अतः जो समझते हैं कि वेदमें पुरोषोपनीके  
समस्त स्वर्णवरकी रीति है और जो स्वर्णवरकी वैदिक विवाह  
कहाते हैं और जो 'प्रथम दर्शनसे ही प्रेम' होनेकी संभावना  
वैदिक विवाहमें मानते हैं, वे सब वैदिक धर्मके उल्लेख हैं ।  
अस्तु । इस तरह वैदिक विवाहमें कुमार कुमारीकाभोका  
धुवा और मुमनस्क होना सिद्ध है, तथापि मातापिताकी  
समति भी उसकी ही प्रकृत है यह बात विशेषतया ध्यानमें  
धारण करनी चाहिये ।

अतः मंत्र ७ से ९ तक तत्रविवाहित बध्नुवरोंको आसी-  
पाई दिया है । राजस, दुष्ट, दुस्तरातिमेंसे बध्नुकी रक्षाकी  
प्राप्तना सातवें मंत्रमें है । सब भाग्य बध्नुके लिये सुरक्षित  
होनेका आशीर्वाद अष्टम मंत्रमें है । और नवम मंत्रमें यह इच्छा  
प्रकट की है कि बध्नुवरोंको मंत्रके, अथवा, देवीआदि सुख-  
दायक हों और इन बध्नुवरोंकी कोई हिरा न करे ।

## यधुसे यक्ष्मनाश्च

दसम मंत्रमें यधुसे यक्ष्मरोगके नाश होनेका संदेश सभी  
काम्यमयी पाथीसे दिया है । उसका विचार किंपित् रिनेत्र  
विचारके साथ करना उचित है ।

ये वध्वश्चन्द्रं यदहं यदमा यन्ति जनां अनु ।

पुनस्तान् यक्षिया देया नयन्तु यत् भागताः ॥

( म. १० )

'जो ( यक्ष्मा ) यक्ष्म रोग ( जनान् अनु यन्ति )  
मनुष्योंके साथ साथ चलते हैं, वे ( यध्वः चन्द्रं यदहं )  
बध्नुके चेहरेकी बराबरे इसके साथ यदि आ गये हों, तो  
( तान् ) उन यक्ष्म रोगियोंको ( यक्षियाः देयाः नयन्तु )  
यक्ष्मके देव दूर ले जायें, अपना बध्नु या घरके साथ आने न  
दें । ' यक्ष्मके देव अग्नि, वनस्ति आदि हैं, मिलसे यह होता  
है और यक्ष्ममें त्रिणका नामनिर्देश हुआ करता है । वे सब  
देव मनुष्योंके साथ भागे यक्ष्म रोगियोंको दूर करें । इस मंत्रके  
मनसे यह बात सिद्ध होती है कि जहाँ मनुष्योंकी भीड़  
होती है वहाँ रोगी मनुष्योंके साथ यक्ष्मादि रोगके बीजोंका  
भाव संभव है । बराबरमें जहाँ सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं  
वहाँ किसीकी बीमरोग रोग है इसका श्राव होना भी असंभव  
है । अतः ऐसे बीमरोगके प्रसंगमें स्वर्णजन्म रोगकी बाधा होनेकी  
संभावना होती है, इसलिये ऐसे प्रसंगमें बध्नु अपने घरके  
ऐसे यक्ष्मोंका सामन करना योग्य है । जहाँ जहाँ बराबर जैसे  
बध्नु मनुष्योंके समाज जमा होते हैं वहाँ वहाँ यही नियम  
ध्यानमें रखना योग्य है ।

## अथ दूर हों

व्याख्यान मंत्रमें बध्नुको दूर करनेका उपदेश है । ऐसे मंत्रमें  
व्याधिरूप बध्नुको दूर करनेका उपाय कहा और इस मंत्रमें  
मानवी बध्नुको दूर करनेकी सूचना दी है । ( परिस्थितः  
मय स्थितः ) दुष्ट स्थितिमें अनेकपक्षे दुस्तराति इस स्थितिमें  
प्राप्त हों । दुस्तराति अनेक मलोमय बलाकर मनुष्यको घेरता  
देते हैं, छायते हैं, बसाते हैं, दूधते हैं और अपना मलमल  
माखते हैं । अतः ऐसे दुष्टोके संक्षेपसे अनविश्वहित बध्नुवर  
तथा अन्य लोग भी दूर रहें । यह सर्व सामान्य उपदेश है ।  
( शरातयः अप द्रान्तु ) गन्तु दूर भाग जायें, मनुष्य  
मनुष्य जो इस नरविश्वहित स्त्रीपुरुषोंको बराबरके इच्छुक  
हों वे दूर हों । इनसे ये रोग विमुक्ति रहें । तथा ये स्त्री  
पुरुष ( सुगेन सुयौ अतीता । सं. ११ ) सुलपूर्वक सभी  
भटिन प्राणोंसे मुक्त हो जायें ।



बारहवें मंत्रमें मार्चना है कि 'सबका उत्पत्तिकर्ता सविता देव इस सब विषयके रूपको इस प्रतिपत्तीके लिये मुखदायक बनाये ।' मर्याद यह सब विषय इस रूपको मुख देवे, इससे दुःख न होवे । यदा पाठक स्मरण करें कि जगत् के सब पदार्थ मुखदायक भी हो सकते हैं और दुःखदायक भी हो सकते हैं । अपने व्यवहारपर ही मुख या दुःखकी प्राप्ति सब दायित्व है । अतः वृत्तर ऐसे धार्मिक अनुविष्मसि व्यवहार करें कि जिससे उनको सदा सुख होता रहे और दुःख न बढ़ाये न हो ।

### विवाहमें ईश्वरका हाथ

तेरहवें मंत्रमें ( धाता इमे लोक अस्य विदेरा । मं १३ ) विवाहमें यह शक्तिका स्वरूप इस रूपके लिये निर्दिष्ट किया है, ऐसा कहा है । इसका सरल भासण यह है कि जब भी या पुरुष उत्पन्न होता है, तब उसके लिये विवाहकी योजना विधाताद्वारा निश्चित होती है । विधाताके संदेशको लेकर जो चलते हैं, उनसे लिये प्रभावोपय प्रमेपत्नी मिलती है । जो स्वयं अपना भाग्य भोगते हैं, वे कष्ट भोगी हैं । जो ब्रह्मचर्य आश्रम पावते हैं उनका यह हेतु भी ईश्वरीय कृपासे ही सिद्ध होता है । जो विवाहेष्टुक होता है उनको दक्षिण है कि वे अपना आचार्य धर्मेष्टुक करें, उत्तम अनुविष्मका पाठन करें और समस्त प्रतीक्षा करें । विधाताके निमपातुसार सुयोग्य रूपके साथ व्यवहार संभव होगा । धर्मेष्टुक संयमपूर्वक प्रती मनुष्यका सब योगक्षेम ईश्वरीय विममानुसार चलता है । जिसका परम सिद्धा प्रकाम सदा-पक सदा होता है उनको किसी बातकी न्यूनता नहीं होती ।

( इयं शिवा नारी अस्तु आगन् ) यह शुभ आचार वाली की पतिके घर आयी है । यह शुभ आचारवाली ही ऐसी ही धर्मात्मा पुरुषको प्राप्त होती है और उसका गृहस्था भ्रम मुखपूर्वक चलानेमें सहायक होती है । धर्मेष्टकीका शुभ आचारवाली मिलना एक आयुका लक्षण है और यह धर्माचारसे ही सिद्ध होता है ।

( देवा प्रजया वर्धयन्तु । मं १३ ) सब देव इस देवतीको उत्तम सत्त्वानके साथ बढ़ावें, सुसंयति दें, अन्य सब प्रकारका भाग्य देवे और हर एक सुख इस देवतीको मिले । यह सब ईश्वर भवितव्य ही प्राप्त होता है । विधाताकी कृपासे ही यह होता है ।

### गर्भाधान ।

विवाहक पश्चात् गर्भाधान प्रकरणा जल्दा स्वाभाविक और प्रसन्न हो । उस समयका निर्देश १४ वें मंत्रमें है ।

( आत्मन्यती उर्वरा नारी ) भाविक भव्याली, सुपुत्र या सुसत्त्वान उत्पन्न करनेवाली होनेसे कठिन प्रसन्नमें जिसका धैर्य नष्ट नहीं होता, ऐसी की होवे । ' उर्वरा ' शब्द उत्पन्न करनेमें यदा है । जिसप्रकार मृत्ति उत्तम उत्पन्न होती है, उसी प्रकार की भी उत्तम इष्टपुत्र सुमतिवृत्त संतति उत्पन्न करनेवाली हो । रोगी संतति उत्पन्न न हो । जैसा वायुर्वेदमें कहा है वैसा आचरण कोपुत्र करने, जो उत्तम संतति हो सकती है ।

( सत्या नरो धीम वपत ) ऐसी सुगुणी वृत्तवाली, आत्मवृत्तवाली उत्तम सत्त्वान उत्पन्न करनेमें समर्थ धीमें ही पुरुष गर्भाधान करे । किसी अन्य स्थानमें धीर्मेका निक्षेप न करे । धर्मेष्टकीको छोड़कर किसी अन्य स्थानमें धीर्मेका वास करना सर्वथा अव्यय, अव्यय और अव्ययकारण है । वृष ( वृषभ ) बेलके समान धीर्मेवान् हो । वृषभ वृषभ वे शब्द धीर्मेवर्तक हैं । धीर्मेवान् सुगुणी पुरुष ही गर्भाधान करे । होवी, वृत्तवाली, निर्वादि पुरुष गर्भाधान करेगा जो उससे सत्त्वान भी वैसी ही धीम और धीम होगी । अथ यह सावधानता आवश्यक है ।

और अपने पतिके घर ( विराट् ) विशेष तेजस्वी होकर अपने सब व्यवहार करे, ( सरस्वती ) विवाहेही की मूर्ति बनकर रहे अर्थात् शिष्टी कृष्णाने योग्य शान पायी बने । ( सिनीवाली ) विविध सत्त्वान पाल रख लेवाली गृहस्थाविनी बने । अपना पति ( विष्णु इव ) साक्षात् विष्णुभगवान् ही है और मैं उसकी धर्मेष्टकी हूँ ऐसा भाव बनने लगे । जैसे विष्णु सब जगत्का पालनकारी है, वैसे ही मेरा पति भी अपने परिवारका उत्तम पालक है यह विचार मनमें रखकर पतिके विषयमें सदा आदरका भाव अपने जल करनेमें लगे । और ( भगव्य सुमतो अस्तु । मं १५ ) अपने पतिके उत्तम मतिमें अपने आचरणको रखे अर्थात् उसके विषयके उत्तम विचार मनमें धारण करे और उसके मनमें अपने विषयमें उत्तम विचार रहे ऐसा अपना आचरण करे । पति जो अपनी पत्नीके विषयमें सदा आदर रखे । इस तरह पतिपत्नी परस्परका सत्कार करते हुए गृहस्थधर्मका पालन करें ।

पतिपत्नीको व्यवहारशैली ऐसी हो कि उनमें आपसमें झगडा न हो, घनिष्ठता संग न होवे । दोनों बड़े प्रेमक साथ मिलकर रहें । ( अटुष्टौ ) दोनों पति और पत्नी जुरा सम्मर्पण, दुराचार कभी न करें, सदा अच्छे शुभ कर्मोंमें दक्षिण रहें, ( वि-यजुसी ) वे दोनों सदा विष्णु

रहें, कभी प्रमादसे भी पापमार्गमें न प्रवृत्त हों, (अशुभ मा आरतां ।) अशुभ व्यवहार कभी न करें। दोनों मिलकर परस्परको धर्म करनेमें सहायता देते हुए अपने उत्तमिके मार्ग पर चले।

### पतिके घरमें पत्नीका व्यवहार

अप पतिसे घरमें स्त्रीका निवास स्थिर होकर गर्भधारणा होती है तब बच्चा दिल पतिघरमें जन्म जाता है। तबतक वह अपने पिताक घरका स्वयं करती है। जब गर्भधारण होता है तब पतिसे घर पर प्रेम बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें वह मारी पतिके घरमें किस तरह व्यवहार करे, इस विषयमें उत्तम उपदेश मंत्र १० से प्राप्त होता है।

(अ-घोर-बधु) मूर पति करनेवाली स्त्री न बने, सदा सौम्य भानव प्रसन्न रहिते अपने घरके कार्य करती रहे, कितनीच ब्रौध न करे, पात्र (देवी) रहिते किसीकी ओर न देखे, (अ पति-पत्नी) पतिका पात्र, अपमान तथा विशेष कभी न करे, सदा पतिके दितमें दृष्ट रहे, (स्योना शिपा) स्त्री सचको मुख देवे, सचका हित करे, सचका कल्याण करनेक कार्यमें वृत्तचित रहे, (शामा) सदा शुभ कार्य करे, गर्वहीनकारी कार्यमें अपने मनकी लगन रखे, (तु-यमा) स्त्री अपने पतिके घरमें उत्तम धर्मनियमोंक अनुष्ठान आचरण करे, कभी अतिव्रतका आचरण न करे, (सु-सेपा) गुरु-नानी सेवा उत्तम रीतिमें करे, सेवा करनेवालोंका शोध न करे, प्रसन्नतासे सेवाका साथ देवे, (वीरसू, प्रजापती) वीर सत्ता उत्पन्न करनेके लिये जो जो वप्य व्यवहार करना आवश्यक हो, वह करती रहे, अपने मनमें वीरताक विचार धारण करे और वात्सल्यसे अपनी सत्तानोंको वीरताकी शिक्षा देती रहे। इस तरह अपनी सत्तानोंको सुवीर बनानेके लिये जो जो उपाय करना आवश्यक हो वह करती जाय। (देवू-यमा, अ देवू-प्रि) अपने पतिव्रत भाव्योंका हित करे, उनसे कभी द्वेष न करे, द्वेषका कभी ध्यान न करे। (सुमनस्यमाना) अन्न करनेमें उत्तम भावना रखनेवाली तथा उत्तम मनोवृत्तिवाली स्त्री हो, अर्थात् शिपा और सुनियमोंक द्वारा स्त्री अपना मन उत्तम, शांत, गंभीर और निश्चय पुत्र धनो और घरमें सबके मन अपनी ओर आकर्षित करे। (सुदर्या) स्त्री उत्तम तेजस्विनी बने, घरकी योग्य बनकर घरमें रहे, (पद्मस्य शिपा) पद्म नादियोंका भी श्रित गृहिणी करे, पद्मोंको चाय दान्यानी मिला है या नहीं, उनका आशय कैसा है इत्यादि विचार कर इस संबंध में जो आवश्यक कार्यमें हो वह करे। (गार्हपत्यं सपर्य)

गार्हपत्याग्निमें प्रतिदिन हवन करे, ईंधन उपासना करे। अग्नि में २६ और २७ में भी यही विषय पुन आया है। उसमें इसी तरह गृहपत्नीक कर्तव्य शब्दोंद्वारा इसी तरह कहे हैं, स्त्री (सुमंगली) उत्तम मंगल करनेवाली शुभमंगल काम वाधाही, (अ-तरणी) दुखसे पार होनेवाली (सुतेया) उत्तम सेवा करनेवाली, उत्तम सेवनीय, (पत्ये श्वनुराय श्रमः) पतिका और समुद्रका हित करनेवाली, (श्वभ्ये स्योना) सत्तका मुख बढ़ानेवाली, (श्वगुरेभ्यः, गृहेभ्यः पत्ये, अस्मै सर्वस्ये विशेषे स्योना) समुद्र, घरवाले पति और सब पारिवारिक लोगोंक लिये मुख देनेवाली गृहिणी हो।

### द्वित्रताको दूर करो

पतिके घर धर्मपत्नीक प्रवेश होनेके पश्चात् पत्नी और वरका मिलकर प्रयत्न इसलिये होता चाहिये कि अपने घरका शान्ति दूर हो। इस विषयका संदेश देते हुए १९ वें मंत्रमें कहा है कि—

हे निर्मते! प्रपत, यह मा रंस्या। अभिभू स्यात् गृहात्। त्या ईडे। (म १९)

बच्चे और मैं कहें कि 'हे परिव्रते! हमसे दूर भाग जा यहाँ हमारे घरमें न रह, मैं तेरा परामर्श करूँगा। और अपने घरसे तुझे निकल दूँगा, यह सच सच कहता हूँ।' इस प्रकारसे निश्चयपूर्वक भाव्य द्वित्रतासे कहे जाय। इसका तात्पर्य यह है कि पति और पत्नी अपने-अपने घरका शान्ति दूर करनेका निश्चय करें और तदनुसार प्रयत्न करें।

### घड़ोंको नमस्कार

वीरसं मंत्रमें कहा है कि, सब वधू भतिनी एसा करे और अपनी ईश्वरोपासना समाप्त करे, तब वह (पितृभ्यः नमः स्फुर। म २०) अपने घरक बड़े स्त्री पुरोहितोंको नमस्कार करे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यहाँ एक बड़ा मारी वैदिक भावमें वर्णोपा है। स्त्री मान काय उठे शरीरगुणिक स्वात्मादि कार्य करे, ईंधन उपासना हवन आदिसे निष्पन्न होकर अपने घरक बड़े स्त्री अर्थात् पति, पतिके मातापिता उसक बड़ गार्ह तथा अन्यत्र गुरुजन जो भी घरमें हों उनको यथायोग्य रीतिसे नमस्कार करे, उनका आशीर्वाद लेवे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यह नियम न केवल नव वधूक लिये ही उत्तम है, अपितु यह घरके सब पुमाता कुमारिकाओंक लिये भी अर्थात् उत्तम है।

इस तरह गृहपत्नीको लघु नमस्कार करना यह एक

( शर्म वार्ध एतत् । म २१ ) सुखदायक और सखक कवच है । यह रीति अनेक भागविशेषों कुमारों और कुमारीकाओंकी रक्षा करती है । अतः इस पद्धतिक प्रचार अर्थात् गृहोंमें होना शुभ है ।

( सूचना— मंत्र १५ व का दूसरा भाग यहा मंत्र २१ में पुन आया है । )

भवत्पुं ईश्वर उपासना और अग्निमें हुवन करनेक समय धर्मपर— प्राय कृष्णान्न पर—बैठे और अपनी उपासनाका कार्य करें । ( देखो म २१-२४ )

रोहिते धर्मणि उपविष्ट्य सुप्रजा अग्निं सचयतु ।

( म २३ )

‘ कृष्णान्नपर बैठकर उत्तम प्रजा निर्माण करनेवाली की अग्निकी उपासना करे ’ अग्निकी उपासना करनेका नाम वेदमन्त्रे इस तरह बताया है—

एव वैद्य सयां रक्षासि हन्ति । ( म २४ )

‘ यह अग्नि वैद्य सब रोगबीजरूपी राक्षसोंका नाश करता है ’ और कुटुम्बियोंको बीरोगी प्रकृत है । यह अग्नि उपासनाका महत्व है । मन्त्र हुवन प्रत्येक कुटुम्बमें होना चाहिये । इस तरह जो श्री करती है उसका ( सुज्येष्ठ पुत्र । म २४ ) उत्तम श्रेष्ठ पुत्र होता है । सुप्रजा निर्माण करनेक लिये ईश्वर उपासनाकी भावना आवश्यकता है, इससे मालापात्र और कुटुम्बियोंक मन सुसंस्कार संरक्ष होते हैं और उसका परिणाम सुप्रजा निर्माण होनेसे होता है । २५ व मन्त्रमें भी इसी कारण पुन —

प्रतिभूय देयान् । ( म २५ )

‘ देवोंको सुभूयित करो ऐसा आज्ञा दी है । ईश्वरोंका सेवा करनेक लिये ही यह आज्ञा प्रेषित करती है । देवताओंको भाग्यपूर्वसे सुभूयित करो, यह आज्ञा यहा है । मातृ देव, विषुदेव, अग्निदेव, पतिदेव आदि अनेक देव धारण करते हैं, उनको सुभूयित करनेक विषयमें यह आज्ञा हमारा सम्भवनीय है । धर्मों जो ना देवता हो उनकी शोभा बढ़ाना गृहस्थियोंका परम कर्तव्य ही है ।

कई लोग ‘ देवताओंकी मूर्तियोंकी सज्जामें करो ’ ऐसा इस मंत्रका अर्थ मानते हैं और इस मन्त्र लेख कहते हैं कि वेदमें इत्यादि देवताओंकी मूर्तियां वर्णित हैं, इस विषयमें उनके प्रमाण ये होते हैं—

क इम दशमिर्मंत्रं श्रीणाति धेनुभिः ।

( म १२३१० )

महे चन त्वामद्रिच परा शुल्काय देयाम् ।

न सहस्राय नानुताय यजिषो न शताय शतामय ॥

( म ८११५ )

‘ ( इम इन्द्र ) इस इन्द्रको ( दशभि धेनुभि ) इस गौवें देकर ( श्रीणाति ) खरीद लेता है । मैं सैकड़ों और सहस्रों गौवें मिलनेपर भी ( शुल्काय न परा देया ) अपना बहुलता मूल्य मिलनेपर भी इस इन्द्रको नहीं धेनुगा । ’ इन मंत्रों से लोग कहते हैं कि इन्द्रकी मूर्ति खरीदने और विक्रीका उद्देश्य है । श्री० बाबू अविनाशचन्द्र दास पृ ९, पीपूच श्री ने अपने ‘ वैदिक कल्पर ’ नामक पुस्तकमें पृ १४५ १४८ पर इन मंत्रोंका विचार किया है । कर्त्तमें उन्होंने इच्छा मन्त्र देकर भी वेदमें नि सन्देह मूर्ति पूजा है ऐसा अपना मत नहीं दिया । इसलिये उनके मतमें भी वेदमें मूर्तिपूजाका होना सिद्ध नहीं हुआ । अतः निम्न विषयमें इस पक्षक उपायकों की संदेह है उस विषयका खण्डनहम हमें यहा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । हमने यह मत यहा इसलिये दिया है कि इन मंत्रोंपर पूर्वोक्त बाबू महाशय यह कल्पना करते हैं । जो पाठक स्रोतकी दृष्टि अध्ययन करते हों वे इन मंत्रोंका अधिक विचार करें । उक्त बाबू महाशयकी और भी कल्पना यह है कि ( म ८११५ १५ १६ जैसे ) मंत्रोंमें यहाँ इन्द्रक रथमें बैठनेका उद्देश्य है यहा इन्द्रमूर्तिक रथपर सवार होना ऐसा अर्थ समझना चाहिये । यदि इस तरह कल्पना करनी हा तो प्राय सभी देवताओंका मूर्तियां वेदमें वर्णित हैं, ऐसा ये कह सकते हैं, क्योंकि वेदमें अनेक देवताओंकी वर्णनसे उनका रथों मिलनेका वर्णन है । देवताक रथमें बैठनेका आध्यात्मिक अर्थ क्या है इसका यहाँ हमने ‘ वैदिक अग्निविद्या ’ नामक पुनकमें भी विवेचना विषयमें की है । इसी प्रकार इन्द्रदेवतापर सत्त्रयया एक पुरुषक सिम्बल उत्तम इन्द्रदेवताक रथपर बैठनेका भावय क्या है इसका विचार किया है । यह विचार यहा संक्षेपत कहनेसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये यह विषय हम यहा नहीं लेये । हमारा विचारसे यहाके ‘ देयान् प्रतिभूय ’ का अर्थ अपने परिवारमें जो गुरुजन हैं उनको सुभूयित करो ऐसा है । अपने स्रोत दोनर जो बात सिद्ध होगी वह प्रकाशित करेंगे । वस्तु ।

उक्त प्रकारकी सुमनस्य पक्षको समान औपचार्य देव और आशीर्वाद द, उक्तका मन्त्र यह और उसकी सहायता कर, यह मात्र २८ वें मन्त्रका है । जो कुछ हृदयवारी ( दुर्दादि युक्तय ) किया करनेको बोला देवी रदती हैं और उनका

प्रेम और आनन्द प्राप्त होते। अपने घरमें बनाया यज्ञ न पहन कर और परकीयो द्वारा बनाया यज्ञ पहन कर ( यथा मा रियाम न ५० ) हमसे कोई भी नाशकी न प्राप्त होते। क्योंकि अपना बनाया यज्ञ न पहन कर और परकीयोद्वारा बनाया यज्ञ पहननेसे नि सन्देह नाश होगा। इस नाशसे गृहस्थियोग बचावका एक मात्र उपाय यह है कि प्रत्येक घरमें सूत काता जाय और उसका यज्ञ बनाकर वही उस घरके होय रहें। आपत्तिले बचनेका और संपत्तिमात्र बचनेका एक मात्र उपाय यह है। प्रत्येक घरमें इस वैदिक धर्मके आदर्शका पालन होना रहे। अपने मनाये बचने कोई मनुष्य पूजा न करे और परकीयो द्वारा बनाये बचकर कोई मनुष्य धेनू भी न करे। यही धृक्माय साधन उद्धारका है।

संघ ५२ में कहा है कि 'पत्नीकी इच्छा वरके पतिके घरमें पहुँचनेवाली कन्या इस दीक्षाव्रतका वाहन करे। वह दीक्षा-व्रत स्वयं सूत कातना और उसका यज्ञ गायत्र्येण लिखे बनाना है। जो स्त्री इस व्रतका पालन करेगी वही दीक्षाको धारण करनेवाली होगी और पुत्रका उद्भव करेगी। परंतु जो स्त्री स्वयं तो सूत कातनी नहीं और परकीयोद्वारा बनाये यज्ञ पहननेका आग्रह करेगी, [ ] अपने घरमें स्वयं दक्षिणाको बुलावेगी। इसलिये वरके पारिवारिक कीदुरावस्थाको उचित है कि वे सपके सब इस दीक्षाव्रतको धारण करें और इस व्रतका पालन करके उपपत्तिकी प्राप्त हों। वेदका यह आदेश सब गृहस्थियोगि सिद्ध है। जो इसका पालन करेगा वे अभ्युदय प्राप्त करेंगे और जो इससे विमुख होये वे अस-पक्ष जीवनमें गिर जायेंगे।

### गौर्वका यज्ञ

संघ ५३ से ५४ तक गौर्वके यज्ञका वर्णन है। सब गृह-स्थियोंको उचित है कि वे अपने घरमें गौर्वका पालन करें और उनका ही दूध, दही, मक्खन, घी आदिका सेवन करें। गौर्वका (घर्षः) तेज, (तेजः) कुर्वी, (अगः) देवर्ष, (यज्ञः) यज, (पयः) दूध, (रसः) अमृत है। गौर्वके दूधसे हमकी प्राप्ति मनुष्यको होती है। इसके अतिरिक्त सुहृद गौका मूत्र, गोमय आदि भी औषधि गुणोसे युक्त हैं। इन सब पदार्थोंद्वारा भी मनुष्योंको सुख देवी है। ये सब लाभ गौका घरमें पालन करनेके पिता नहीं हो सकते। अतः गृह-स्थियोंको अपने घरमें गौर्वका पालन करने जरूरी है, तेजस्वी, भगवान् और परास्त्री होना चाहिये।

अथो मय ५५ से ६२ तकके मंत्रमें पापसे बचनेका उप-देश किया है जो अपने (पेशिनः) पाप बढाते हैं, (अग्रं कृष्यन्तः) पाप करते हैं, (रोदेन समनर्तिषुः) रोते हैं। भावने कृदते हैं। क्षियां (यिकेदृती) बालोंको छोटकर घरमें रोती पीटती हैं, आशोक करती हैं। घरकी क्षियां घरमें जिस कलश आशोक करती हैं, नाना प्रकारके पातक करती हैं। वे सबके सब पापकारी लोग हैं और वे समाजसे दूर होते योग्य हैं। जो पापकारी भाव हैं वे मनसे दूर हों और जो पापकारी मानव हैं वे समाजसे दूर हों। इस तरह पापी विचारोंसे मन शुद्ध हो और पत्नी जंगलसे समाज शुद्ध हों। और मनसे और समाजसे रंगे बचनेका मूल कारण दूर हो जाये और संपूर्ण समाजमें आनन्द प्रसन्नता विद्यमान करे। यही गृहस्थ-धर्मका ध्येय है।

संघ ६२ और ६५ में कहा है कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु हो वह छोटी इच्छा हो, स्त्री कभी अपने पतिका अहित न चाहे। पतिका हित बनानेमें सदा दक्ष रहकर उससे दीर्घायुका चिन्तन करती रहे। (यज्ञ-याना इय दम्पती) जैसे ब्रह्मण्य वसी रहते हैं, आपसमें प्रेमसे साथ बिहार करते हैं वैसे ही श्रीगुरुप गृहस्थाश्रममें प्रेमसे साथ रहें। पत्नीके लिये एक मात्र पति और पतिके लिये एक पत्नीकी स्थिति गृहस्थाश्रममें ही है। उनसे प्रेमविकासदि होय उत्पन्न न हों। एक दिलसे और एक विष-यसे वे गृहस्थाश्रममें रहें। इस प्रकार (सु-व्रतस्त्री) अपने उत्तमोत्तम परस्पर करके उसमें रहें और (यिथ्यं भायुः प्यह्यनुतां) सब पूर्ण भायु प्यवीर्य करें। इस तरह गृहस्थाश्रममें पति और पत्नी सुखसे रहें और मानव प्रसन्न-ताके साथ गृहस्थधर्मका कार्य चलायें।

अथो मय ६५ से ६७ तकके तीन मंत्रोंमें विशेष रीतिसे कहा है कि जो विवाहादिके समय (कृत्यां) पातक विचार क्रिये हों, जो (दुष्टकृतं, दुर्गते) जो दुष्टाचार बध्ना प्रा-विष्टा हुए हों, जो (मते) मतिन जाचार तथा (दुर्गते) गुरे व्यवहार हुए हों, वे सपके सब हमसे दूर हों और हम (शुद्धाः यक्षियाः अमृतं) शुद्ध, पवित्र और अमृत बन जाय और (नः आर्द्युपि प्रतारिषत्) हमें कोई भायु प्राप्त हों। साधारणतः यह नियम है कि वरके उत्तरार्धमें, विवाह जैसे मंगल कार्योंमें जहाँ बनेकानेक गुरे भले मनुष्योंका संरक्ष आता है, वहाँ किसी न किसी रीतिसे कुछ न कुछ हीन आचरण हो ही जाया करते हैं, [ ] होर होते रहते हैं। उनसे अपने आपको बचानेका उपाय करना चाहिये और

शुद्ध पवित्र और यशस्के लिये योग्य बननेका बल प्रत्येक गृहस्थको करना चाहिये। यदि पूर्ण समयमें कुछ दोष हो भी गये हो, तो उनकी बिना मरनेमें समय व्यतीत न करते हुए भाग्ये समयमें आत्मशुद्धि करनेके प्रयत्नमें दृष्टान्त होना चाहिये। इस तरह शुद्ध और पवित्र बनकर गृहस्थ-योको आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये।

### बालोंकी पवित्रता

क्षिप्रांक वंशोकी स्वच्छता और पवित्रता करनेका उपदेश मंत्र १८ और १९ में है। ( यैष्ट्यः वसत्याः केदर्यं मलं अपस्त्रिजात् । म १८ ) कथा इस क्षीर वंशोंके मूलाको दूर करे। यह प्रतिदिनका कार्य है। क्षीको उच्छिद है कि वह अपने बाह्य छोटकर उठान स्वच्छ ठेल लगावे और कपड़े सफ धाल स्वच्छ करे और फिर वंशोंका प्रसाधन स्पष्ट रीतिसे करे। चार या आठ दिनोंमें एक या दो बार अपने बाह्य किसी मरनेवारक साधनसे पानीके साथ धोकर, पवित्र यक्षसे पानी दूर करने वालीको मुखादि और फिर कथा करके केशप्रसाधना अच्छी प्रकार करे। वंशोंकी निर्वस्त्रता रखना क्षियोंके लिये एक आवश्यक कर्म है। जिस क्षीके वंशोंमेंसे दुर्गन्धी आती है, वह क्षी धर्मकर्मके लिये मयोग्य समझी जाती है। इसलिये क्षीका केशप्रसाधन करे एक अत्यंत आवश्यक कर्म है।

क्षीके ( अंगान् अंगान् यक्ष्मं अपनिदध्यासे । म. १९ ) प्रत्येक अंग और अवयवसे मल अथवा रोगबीजको दूर करना चाहिये। क्योंकि क्षी राष्ट्रीय सत्ताओंकी जननी है। यह यदि मलिन, अपवित्र अथवा रोगयुक्त रहिये, तो राष्ट्रकी भावी संपत्ति भी वैसी ही होगी। इसलिये स्त्रियोंके शरीर पवित्र, नैतन और स्वच्छ होने चाहिये, जिससे सैवान् वनमोक्ष निकलती रहें। सब मल जलसे दूर होना है यह बात है, इसीलिये जलस्नानकी पवित्र रस्मकेवल बल होना चाहिये। यहाँ तो जलस्नानमें लोग स्नान करने और पीनेके जलमें ही यह मल आपणा और जल जलसे पवित्रता होनेवाली है, उसी जलसे अपवित्रता और रोगकी अवस्था बढ़ेगी, इसलिये कहा है कि ( आपः मलं मा प्रापत् । म. १९ ) जलस्नानमें मल न प्राप्त हो, अर्थात् संपूर्ण जल-स्थान स्वच्छ, पवित्र और निर्मल रहें। गानकलालावर्ग, कुर्वेमें, बर्दियोंमें तथा अन्धान् जलारवोर्गमें योग स्नान करते हैं, कपड़े धोते हैं और अन्य प्रकारसे अस्वच्छता करते हैं और उसी स्थानसे पीनेका पानी भी करते हैं। इससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वेदका यह आदेश गृहस्थियोंको

अवश्य मान्य रखना चाहिये। किसी भी जलानयने किसी प्रकारसे भी मनुष्य सज्जितता न करें। जलानयनको पवित्र, स्वच्छ और जीरोमि अवस्थामें रखे और ऐसे शुद्ध जलका उपयोग करके अपने शरीरका भारोग्य साधन करें। जलकी स्वच्छतापर अनुष्ठीका और पशुपक्षियोंका भारोग्य निर्भर है।

### पुष्टिका साधन

इस द्वितीय सूक्तके ७० वें मंत्रमें गृहस्थियोंकी पुष्टिका साधन कहा गया है। इससे किम अन्नका सेवन करना चाहिये इसका उपदेश हमें मिलता है। ( पुष्टिग्या। पयसा ) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले दूधका सेवन करना चाहिये। तथा ( औपध्यामिं पयसा ) औपधियोंके दूधका भी सेवन करना चाहिये। यहाँ औपधियोंका रस और भूमिका रस ये दो ही रस गृहस्थियोंके भोजनके लिये कहे हैं। औपधियोंके रसको सब जानते ही हैं। औपधी, कद, पुष्ट, एते आदिप्राका सेवन मनुष्य करते ही हैं। गृहस्थियोंको चाहिये कि वे पुष्टिकादूध और औपधियोंको बर्दान् और उनका सेवन करके पुष्ट और दृढ़ बनें। भूमिका दूध सेवन करनेके लिए भी इस मंत्रमें कहा है। भूमिका रस एक छोटा दूध और पवित्र स्रोतका जल है, दूसरा भूमिका धान्य आदि भी हैं। अतः, इस तरह दूध जल, दूध अन्न और दूध रसादि का सेवन करना चाहिये। वेदने यहाँ किसी भी स्थानमें पशुके मांसका भोजन मनुष्योंके लिये नहीं कहा है। अर्थात् मांसका भोजन जालोंके लिये वैदिक मर्यादाके अनुकूल नहीं है। इसमें कहाँ जहाँ भोजनका विषय वेदमें देखा है, वहाँ वहाँ किसी भी स्थानपर हमें मांसका आशय नहीं मिलता है। इसके विपरीत वहाँ धान्य, औपधि, वनस्पति, फलमूल आदिका ही उल्लेख देखा है, अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक भोजन दूध, निम्बोत्त-भोजन अर्थात् शाक-भोजन ही है। इस शाक-भोजनसे ही ( वाजं सन्नुहि ) वशको प्राप्त करो, यह वेदका आदेश है।

अंगोर्ग ७१ वें मंत्रमें क्षी और पुष्ट का किम तरह व्यवहार करें, इस विषयका उल्लेख उपदेश है, यह तालिका रूपमें नीचे दृष्टी है—

पुष्ट	क्षी
अम	सा
साम	कद ( कथा )
क्षी	पृथिवी

क्षी और पुष्ट कायसमें एकत्रितसे रहें यह उल्लेख उपदेश कहा दिया है। ऋग्वेदके मंत्रकी ताव और आवाजके साथ गाव्य करनेसे वह साम होता है। अतः ऋग्वेद और

सामंमंत्र एक ही है। इसी तरह श्री और पुरुष एक ही हैं, केवल एक स्थावर सौम्य गुणोंका विकास और दूसरे स्थावर उग्र गुणोंका विकास है। वही आज श्रीको पृथ्वी और पुरुषको सुलोकके रूपमें बताया है। श्री पुरुष इस प्रकारके ऐकमत्यके साथ रहें। आपसमें भ्रमण आदि कुछ भी न हो। मानन्द प्रसन्नताके साथ सब गृहस्थधर्मके व्यवहार करें। वे दोनों (इह संभवाय प्रजां आजन्मयाचहै। सं. ७१) यहां संतान उत्पन्न करें, सुप्रजाका निर्माण करें। अपने बाल-बच्चोंको सुसंस्कारसे संपन्न करें और सब प्रकारकी उन्नतिसे युक्त हों। दोनोंको प्रपन्न इस बातका करना चाहिए कि सब प्रकारका अभ्युपय और निःश्रेयस उत्तम रीतिसे सिद्ध हो।

(समग्रः जनिष्यति) अग्रे बचनेवाले लोग ही श्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा करें। रीति रहनेवाले, प्रयत्न न करनेवाले लोग विवाहित होनेकी इच्छा न करें। क्योंकि ऐसे आदर्श लोगोंकी संतान भी अयोग्य ही होगी और भ्रमों आदिपर उनके दोनोंके कारण करके रहेगा। (सुदानयः पुषियमिति) उत्तम दान देनेवाले, परोपकार करनेवाले, मानव समाजका भला करनेके लिये आत्मसमर्पण करनेवाले ही पुत्रप्राप्तिके इष्टतम हों, क्योंकि ऐसे लोगोंके शुभसंस्कार पुत्रोंमें आ सकते हैं और शुभसंतानके उत्पन्न होनेसे राष्ट्रका तथा मानव समाजका भला हो सकता है। इसलिये उत्तम दान करनेवाले विवाहित होकर संतान उत्पन्न करें और जो दान न करनेवाले स्वर्गीय हों वे भविष्यवाहित रहें। (अ-रिष्ट-आरुं वाजसा-तये सधेयमिह। सं. ७२) अपने प्रार्थनोंको सुरक्षित रखते हुए बड़ा बल प्राप्त करनेके लिये वे श्री पुरुष बन करें। हर एक श्री पुरुषको उचित है कि वे बल प्राप्त करें, कोई कमजोर, या निर्बल न रहें। बल प्राप्त करके आशुके व्यवहारपुत्रमें अग्रे बढ़कर विभूय प्राप्त करें। अनुपप्राप्तवृत्ति कोई प्राप्त न करे। सब लोग पुरुषार्थी बनें और अपने अपने कर्तव्य करते रहें।

## भार्गीवादि

अग्निमं पीन मंत्रमें यद्विवाहित यध्वरको शुभ भार्गी-वादि दिया है। मंत्र ७३ में कहा है कि जो संपत्ती और जाति-बांधव बरातों संघटित हुए हों, वे अपने अपने घर वास आनेके पूर्व (ते अस्त्यै संपत्तयः प्रजावत् शर्म यच्छन्तु। सं. ७३) इस शुभकालके लिये प्रजापुत्र सुख दें, भार्गी इसके सुप्रजा निर्माण हो और इसको उत्तम गृहसौख्य प्राप्त हो, ऐसा शुभाशीर्वाद दें और प्रजापुत्र वे अपने घर वास जायें।

जो विधवा इस बरातों भार्गी हों, वे अपने घर जातेके पूर्व प्रजा और जन प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद दें और (अगतस्य पंधां अनुयहन्तु) अग्निमं सुमानं वा चरु-नेके तथा योग्य व्यवहारके निर्देश इनको दें तथा यह (विराद् सुप्रजा) विशेष राजाही जैसी बनकर उत्तम प्रजापुत्र होवे, ऐसा सुदूर भार्गीवादि दें और परचाह अपने घरको वास जायें। बरातों आये हुए कोई भी धीरुष्य भार्गीवादि दिये बिना वापस न जाये।

विवाहित श्री भार्गी धर्मवती (दीर्घायुस्त्वया दारा-शारदाय) दीर्घायु और शालायु बननेका प्रयत्न करे। ऐसा आहारविहार करे कि जिससे घरवाले दीर्घजीवी बनें। (सुबु-धा बुध्वमाना प्रबुध्यस्व) उत्तम दान प्राप्त करकेका यत्न करे। हर एक प्रकारकी सुनिधा प्राप्त करके उत्तम शुभ-शिक्षण संस्कारोंसे युक्त बने। अपने पतिके घरमें आकर (गृहपत्नी) अपने घरकी स्वामिनी बनकर रहे। स्वामिनी-घरकी देवी बननेका इसका अधिकार है। (सपिता दीर्घ आयुः करोतु। सं. ७५) स्वर्णिग इसकी आयु दीर्घ बनाये। इस प्रकार रीर्षायु बनकर अपने पतिके घरमें यह विराजे।

सब लोगोंका गृहस्थाश्रम धर्मावृत्त हो और वह सबको शुभ देकर अगच्छ उपकार करनेवाला बने।

## पति और पत्नीका मेल

कं. २, सूक्त ३०

( कपि — प्रजापति । देवता — अग्निदेव । )

यथेदं भूम्या अग्निं तृणं वातौ मयावर्ति ।

एवा मग्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्त्रार्पणा असः ।

॥ १ ॥

सं चेन्नपांथो अग्निना कामिना से च वयं यः । सं वां मगांसो अग्नव सं चित्तानि सप्तु वृता ॥ २ ॥

यस्तुपणां विवक्ष्यो अनमीया विवक्ष्यः । तत्र मे गच्छताद्वे नृक्ष ईव कुर्महे यथा ॥ ३ ॥

यदन्तरं तद्वाहं यद्वाहं तदन्तरम् । कन्यार्जा विश्वरूपाणां मनो गृमायोपचे ॥ ४ ॥

एयमग्न्यविकामा जनिक्कामोऽहयानमम् । असः कनिक्कदुवया यमैताहं सहानमम् ॥ ५ ॥

अर्थ— ( यथा वातः ) जैसे वायु ( भूम्या अग्निं ) अग्नि ( इदं तृणं मयावर्ति ) वह घास दिलाता है, ( एवा से मनः मग्नामि ) जैसे ही मेरा मन मैं दिलाता हूँ, जिससे तू ( मा कामिनी असः ) मेरी इच्छा करनेवाली हो और ( यथा मत् अप-णाः न असः ) मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ १ ॥

हे ( कामिनी अभिमान ) परस्पर कामना करनेवाले दो बरवानों ! ( च इत् सं मयायः ) मिलकर चलो ( च सं मक्षयः ) और मिलकर भागे चलो । ( मां मगांसः सं अग्नव ) तुम दोनोंको देखते ही मुझे प्राप्त हो, ( चित्तानि सं ) तुम दोनोंके चित्त करस्तर मिलें और ( यतादि सं ) तुम्हारे कर्म भी परस्पर मिल जुल कर हों ॥ २ ॥

( यत् ) यहाँ ( विवक्ष्यः तुपणाः ) बोलनेवाले सुंदर पक्षीवाले पक्षी जाते हैं और ( विश्वरूपा अनमीया ) बोलनेवाले वीरोप मनुष्य जाते हैं, ( तत्र ) यहाँ ( मे इयं गच्छतात् ) मेरी प्रीतानुसार इसी प्रकार जानो, ( यथा शब्दः कुर्महे इय ) ऐसे कामकी बोक मिलानेपर जाओ ॥ ३ ॥

( यत् अन्तरं तत् वाहं ) जो अंदर है वही बाहर है और ( यत् बाह्यं तत् अन्तरं ) जो बाहर है वही अंदर है । हे बीपथे ! ( विश्वरूपाणां कन्याणां ) विविध रूपवाली कन्याओंका मन ( मग्ना गृमाय ) मन ग्रहण कर ॥ ४ ॥

( इयं पति-कामा मा अगन् ) यह कन्या पतिकी इच्छा करती हुई आती है और ( जनि-कामः अहं मा अगन् ) बी की इच्छा करनेवाला मैं आया हूँ । ( अहं भवेन् सह मा अगन् ) मैं पक्षी साथ आया हूँ, ( यथा कामिक्कद्वयः ) जैसे दिनदिलाला हुआ बीछा जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस रीतिसे वायु घास दिलाता है उस रीतिसे मैं मेरा मन दिलाता हूँ, जिससे तू मेरी इच्छा करनेवाली होकर सदा मेरे साथ रहनेवाली तथा मेरेसे दूर न होनेवाली हो ॥ १ ॥

हे परस्पर प्रेम करनेवाले बी पुरुषो ! तुम दोनों मिलकर चलो, मिल कर भागे चलो, मिलकर देखते प्राप्त करो, तुम दोनोंके चित्त करस्तर मिलें रहें और तुम्हारे कर्म भी मिल जुल कर होंगे रहें ॥ २ ॥

यहाँ सुन्दर पक्षीवाले पक्षी गन्ध करते हैं और जहाँ वीरोप मनुष्य जमान करने जाते हैं वेसे सुंदर स्थानपर तू मेरी प्रेमाने चल ॥ ३ ॥

जो हमारे अंदर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अंदर है । मैं निष्कण्ट आसते कर्त्तव्य करता हूँ और इस निष्कण्ट आचरणसे मैं विविध रूपवाली कन्याओंका मन आकर्षित करता हूँ ॥ ४ ॥

पतिकी इच्छा करनेवाली यह बी प्राप्त हुई है और बी की इच्छा करनेवाला बीछेके समान दिनदिलाला हुआ मैं उनसे साथ आया हूँ । इस दोनोंका इस रीतिसे मेल अर्थात् विवाह हुआ है ॥ ५ ॥

## पति और पत्नीका मेल

### अग्निनी देव

यह सूक्त विवाहके विषयमें षष्ठे महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है। इस सूक्तके देवता 'अग्निनी' हैं। ये देव सदा ओम्के स्वरमें रहते हैं, कभी एक दूसरेसे युक्त नहीं होते। विवाहमें भी स्त्रीपुरष एकसार विवाह हो जानेपर कभी युक्त न हो, आमरण विवाह बधनसे बंधे रहें, इस उद्देश्यसे इस सूक्त यह देवता रचे हैं। जिस प्रकार अग्निनी देव सदा एकट्ठे रहते हैं कभी वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरष गृहस्थाध्यायमें एकट्ठे रहें और परस्परसे विभक्त न हों अर्थात् विवाह बंधन तोड़कर स्वरं वरं करनेवाले कभी न करें।

द्वितीय मंत्रमें 'कामिनी अग्निनी' कहा है, अर्थात् परस्परकी कामना करनेवाले अग्निनी देव जिस प्रकार एक कार्यमें मिलजुलकर रहते हैं, उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरष गृहस्थाध्यायमें रहें और एक दूसरेसे विभक्त न हों। यहाँ भी 'अग्निनी' शब्द 'अग्निरग्निसे युक्त' होनेका भाव बता रहा है। पुरषको गर्भाधान करनेमें सगर्भ बनानेके लिये वैद्यक शास्त्रमें 'वासीकरण' के प्रयोग लिखे हैं। वासीकरण और गर्बीकरण ये शब्द समासार्थक ही हैं। स्त्रीपुरष अग्निनी हैं, इसका अर्थ वासीकरणसे प्राप्त होनेवाली अग्निते युक्त हों, अर्थात् गर्भाधान करनेकी शक्तिसं युक्त पुरुष हो और गर्भधारण करनेकी शक्तिसं युक्त स्त्री हो। 'अग्नि' शब्दका यह शेषार्थ यहाँ अवश्य द्रष्टव्य है। स्त्री पुरुष 'कामिनी' अर्थात् परस्परकी इच्छा करनेवाले हों, स्त्री पुरुषकी आसक्ति इच्छा करे और पुरुष स्त्रीकी आसक्ति इच्छा करे। इस शब्दसे विवाहका समय भी निश्चित हो सकता है—

### विशदका समय

मंत्र पाचमें निम्नलिखित भाग आता है, उससे विवाहका काल निश्चित हो सकता है—

इयं पातकामा आ अगम् ।

अहं जनिक्कामः आ अगमम् ॥ ( म. ५ )

'यह स्त्री पतिको इच्छा करती हुई आई है और मैं स्त्रीकी इच्छा करता हुआ आया हूँ।' यह समय है जो विवाहके लिये योग्य है। श्लोक शब्द पति-प्राप्तिकी इच्छा और पतिसे भँवर स्त्री-प्राप्ति की इच्छा प्रकट होने चाहिये। उस समय विवाह करना चाहिये। यहाँ कहा यह भी संभव होता है कि यह गर्भाधानका समय हो। तब

समावृत करनेके पूर्व विवाह करनेकी बात पहले भा चुकी है। यदि विवाह पहिले हुआ हो तो यह समय गर्भाधानका मानना पड़ेगा। तथापि निम्नय वही प्रतीत होता है कि महाकर्म समाप्तिके पश्चात् पुनः भी गृहस्थाध्यायके योग्य होनेके पश्चात् ही विवाह करना चाहिये। इस विषयमें इसी मंत्रमें आगे बताया है—

यथा कनिक्कदत् अभवः ।

अहं ममेन सह आगमम् ॥ ( म. ५ )

'जैसे दिनदिनाता हुआ घोडा जाता है, वैसे ही मैं धनके साथ आया हूँ।' यहाँ उक्तम तारण्य और गर्भाधानकी सत्युक्तम अति जिसके शरीरमें है ऐसे तक्षणका वर्णन है, यही विवाहके लिये योग्य है। विवाहके लिये मन्त्र तारण्य और दीर्घकी ही आवश्यकता है, प्रत्युत ( मंत्र ) धनकी भी आवश्यकता है। कुटुम्बका पालन पोषण करनेके लिये भाव-इयक धन कमालकी योग्यता पुरुष प्राप्त करे, जब वह धन कमाले तब तभी विवाह करे। पहले महाकर्म प्राप्त करे, तब धन, दीर्घवान् और बलवान् हो, धन कमाले लगे और पश्चात् सुखसय स्त्रीसे विवाह करे। यह पंचम मंत्रका आशय सतत ध्यानमें धारण करने योग्य है।

द्वितीय मंत्रसे 'कामिनी अग्निनी' शब्द हैं, इनका आशय इससे पूर्व बताया ही है। 'कामिनी' शब्दका विशेष स्पष्टीकरण पंचम मंत्रके पूर्वार्धमें किया है और 'अग्निनी' का-स्पष्टीकरण पंचम मंत्रके तृतीय चरण द्वारा हुआ है। 'अग्निनी' शब्द यहाँ उक्तम तारण्यसे युक्त पतिपत्नीका वाचक है और 'अग्नि' शब्द वासीकरण मित्र दीर्घवान् पुरुषका विशेषतया वाचक है।

पंचम मंत्रमें धन कमालेके पश्चात् विवाह करनेका उपदेश को विशेष ही ध्यान करने योग्य है। 'धीः, धीः, स्त्रीः' यह वैदिक त्रय प्रसिद्ध है।

### निष्कपट पर्वति

स्त्रीपुरषोंका परस्पर कर्तव्य, पतिरत्नीका परस्पर व्यवहार निष्कपट भावसे और हृदयकी एकतासे ही होना चाहिये। तभी गृहस्थाध्याय पुरुषोंको सुख प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें चतुर्थ मंत्रका उपदेश विशेष महत्त्वपूर्ण है—

यदन्तरं तद्व्यहं, यद्व्यहं तदन्तरम् । ( म. ५ )

'जो अन्दर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अन्दर है।' यह निष्कपट व्यवहारका परम उच्च भावार्थ है। पति पत्नीके विषयमें तथा पत्नी पतिके विषयमें भ्रष्टाचार एक जैसा व्यवहार करे, अंदर दूसरा और बाहर दूसरा भाव न



रोग । गृहस्थियों के लिये स्वयंसेवाका आदर्श पक्षा वेदने सुबोध शब्दों द्वारा बताया है । वैदिक धर्मका पालन करनेवाले गृहस्थी इसका अवश्य आचरण करें और अपने गृहस्थपनका सुख बतायें ।

विश्वरूपाणा भन्यानां मनः गृभाय । ( म ४ )

‘ विविध रूपवाली कन्याओं का मन इसी प्रकार आकर्षित किया जावे । ’ कोई तरण किसी कन्याक साथ बातचीत करने तथा अन्य व्यवहार करने के समय अपने अंदर और बाहरका बर्तन सीधा और ऊपरदाहिल रखे । ऊपर मानस कन्याको घोषा देकर उसको फझानेका शन कोई न करे । सरल निष्कण्ठ भावसे ही अपनी धर्मापत्ती बनाने के लिय किसी कन्याका मन आकर्षित किया जाय । कीपुरुष के व्यवहारके विषयमें इस मंत्रका यह उपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

### आदर्श पतिव्रती

चतुर्थ मंत्रमें परस्पर निष्कण्ठ व्यवहार करनेका उपदेश दिया है; उस उपदेशक शास्त्र करनेसे आदेशों कुतूहल बन सकता है इसमें कोई संदेह ही नहीं है, इसका योद्धा नष्टा द्वितीय मंत्रमें भी बताया है, इसमें पाथ उपदेश है—

१ संनयय — सम्मार्गसे चलने और चलाओ । एक मतसे चलो । एक मतसे बसाए चलाओ । श्री और पुरुष एक दिक्के चले और परिवारको चलावे ।

२ सयययय — मिलकर भाग करो । श्री और पुरुष एक दिक्काले जागे करने तथा उन्नति सिंघादन करनेका प्रयत्न करें ।

३ भगास्त स अगमस्त— तब मित्रवर ऐश्वर्य प्राप्त की । मिलकर देना प्रयत्न करें कि जिससे विपुल धन प्राप्त हो ।

४ धिसानि स— आवक विषय मिले हुए हों ।

५ यतामि सं— आपक कार्य भी मिलतुल कर किये जाय ।

‘ अथर्व पतिव्रतीमें वैर भाव या कटोर भाव न हो । हर्षसे यदा एक एकताका भाव हो कि ये दोनों मिलकर एक ही शरीरके अवयवसे प्रतीत हों । यदाके ये शब्द यथापि सामान्य पतिव्रतीके कर्तव्य बतावनेके लिये प्रयुक्त हुए हैं, तथापि सामान्यत ऐस्य प्रतिपादन परक भी इस मंत्रका भाव लिखा जा सकता है और इस दृष्टिसे यह मंत्र सामाजिक ऐव भावका उत्तम उपदेश दे रहा है ।

### अग्रमका स्थान

पतिव्रतीको मिलकर अग्रमक लिये जाना हो, तो किस प्रकार स्थानमें जाय, इस बातका उपदेश तृतीय मंत्रमें किया गया है—

यत् सुप्रर्णा विषम्व ।

अनम्रिया विवस्वत् ॥

तत्र मे हव पच्छतात् ॥ ( म १ )

‘ जहां सुंदर पक्षधर पक्षी शब्द करते हैं और जहां नीरोग युद्ध वार्तालाप करते हुए जाते हैं, वहां वैराग्यनुसार जाय । ’ ऐसे स्थानमें पतिव्रती परस्परकी इच्छानुसार भवया प्रेरणानुसार, परस्परकी रक्षिक अनुकूल भ्रमणके लिये जाय । जहां सुंदर सुंदर पक्षी मनुष्य सम्पर्क कर रहे हैं और जहां नीरोग मनुष्य मानेक इच्छुक होते हैं वहां जाय । यह स्थानका वर्णन किया मनोरम है । उत्तम भावसे ही ऐसे मन भावका प्रधान श्री पुरुषको भ्रमणक लिये प्राप्त हो सकते हैं । यहां वेदने आदर्श स्थान ही अग्रमक लिये बताया है, यदि ऐसा स्थान हरणक परिवारक लिये न मिले तो इसी प्रकारका कोई अन्य स्थान भ्रमणके लिये पसंद करें और निष्कण्ठ भावसे उसका वार्तालाप करते हुए गमन करें ।

### सौके साथ बर्ताव

युद्ध कीक साथ कैसा बर्ताव करें और श्री भी पुरुष साथ कैसा बर्ताव करें, इस विषयमें एक उत्तम उपमा भ्रमण मंत्रमें दी है और इस विषयका उपदेश किया है । ‘ निम प्रकार बापसे पास दिखायी जाती है । उसी प्रकार श्रीका मन दिखाता है । ’ ( म १ ) बापसे अंदर प्रवण शक्ति है, बाप बेगले यदि चलने श्ये, तो बड़े बड़े दृष्ट भी दृष्ट जाते हैं, परंतु वही बाप कोमल वासने मोहता नहीं, बरकर दिखाता ही है । इस प्रकार श्री पुरुष, जो अपने कोपसे प्रवण शक्तियों की उच्च शिक्षा कर सकता है, श्रीमते कोमलताका बर्ताव करें, ऊपर व्यवहार कभी न करें ।

किया श्री अपने अंदर प्राप्त समान कोमलता प्राप्त करें और प्रवण बापक चलनेपर भी जैसे धात दृष्टी नही, उसी प्रकार वे भी अपने कुतूहल स्थानसे कभी विचलित न हों ।

यहां इस उपमासे दोनो-क उत्तम कर्तव्य बताया है । इस उपमाका विचार निम्न अधिक किया जाय उतना अधिक बोध मिल सकता है । यह पूर्ण उपमा है, इतना योग्य उपमा अन्यत्र नही मिल सकती ।

## पतिपत्निका एकमत

कांड ७, सूक्त ३८

(कवि - अथर्वो । देशतः - धनस्पतिः ।)

हुदं खनामि भेषजं मांशुश्चर्मभिरोद्धम् । पुरावृतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥

येनो निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि । तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा वेत्तामि सुमित्रा ॥ २ ॥

प्रतीची सोममसि प्रतीक्ष्य सूर्यम् । प्रतीची विश्वान्देवान्तां त्वास्थावंदामसि ॥ ३ ॥

अहं वेदामि नेत्यं सुभायामहं त्वं वद । समेदसस्त्वं केवलो नान्वासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥

यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः । इयं ह मद्यं स्वामोर्षधिर्यद्वेषे न्यानयत् ॥ ५ ॥

अर्थ— मैं ( इहं औपधि खनामि ) इस औपधि ब्रह्मपतिको सोदती हूँ । यह औपधि पतिकी दृष्टिको ( मां— पदम् ) मेरी ओर किरातेवाला और ( अभिरोद्धं ) सब प्रकारके दुर्वर्तनसे रोक्नेवाला, ( पुरावृतः तिपर्वतः ) दुर्मांगमें दूर जातेवालेको भी बापस लातेवाला और ( आयतः प्रतिनन्दनं ) संपन्नमें रहनेवालेका भालम्प बढानेवाला है ॥ १ ॥

मित्र ( आसुरी ) आसुरी नामक औपधिने ( येन देवेभ्यः परि इन्द्रं नि पादे ) मित्र गुणके कारण इन्द्रको देवोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली बनाया, ( तेन अहं त्वां निकुर्ये ) उससे मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूँ, ( यथा ते सुमित्रा अस्मानि ) जिससे मैं तेरी मित्र धर्मपत्नी बनी रहूँ ॥ २ ॥

३ ( सोमं प्रतीची असि ) ऋग्वेद संमुख रहती है, ( उत सूर्यं प्रतीची ) और सूर्यके संमुख रहती है, तथा ( विश्वान् देवान् प्रतीची ) सब देवोंके भी संमुख रहती है । ( तां त्वा अघ्ना वदामसि ) ऐसे तेरा मैं उत्तम पर्वण करती हूँ ॥ ३ ॥

( अहं वेदामि ) मैं बोलती हूँ, ( न इह त्वं ) न इस लोक । ( त्वं सभायां अहं यत् ) न सभामें निमग्नपूर्वक बोल । ( त्वं केचलः मम इह असः ) न केचल मेरा ही होकर रह, ( अन्यासां न चन कीर्तयाः ) मन्त्रोंका नाम तक न ले ॥ ४ ॥

( यदि वा तिरोजनं असि ) यदि तू जेम्में दूर जेम्में आकर रहेगा अथवा ( यदि वा मद्यः तिरः ) यदि तू नदीके पार गया हुआ होगा, तो भी ( इयं औपधिः ) वह औपधि ( त्वां वध्या ) तुझे बांधकर ( मद्यं नि आनयत् ह ) मेरे पास ले आवेगी ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं इस औपधिकी भूमिसे सोदती हूँ, इससे मेरी ओर ही पतिकी आँसे लगेगी, अर्थात् किसी अन्य स्थानसे नहीं जायेगी, सब प्रकारके दुर्वर्तनसे बचाव होगा, यदि दुर्मांगमें उसका माँव पड़ा भी होगा, तो यह बापस ला जायेगा और वह संपन्नसे रहकर सब मानंद प्राप्त कर सकेगा ॥ १ ॥

इसका नाम आसुरी बतारवति है । इसके प्रभावसे इन्द्र सब देवोंमें विशेष प्रभावशाली होनेके कारण अहं बन गया । इस ब्रह्मपतिसे मैं अपने पतिकी प्रभावित करती हूँ, जिससे मैं अपने पतिकी प्रिया बनकर रहूँ ॥ २ ॥

यह ब्रह्मपति चन्द्रके अभिमुख होकर सान्त्वना प्राप्त करती है तथा सूर्यके संमुख रहकर तेजस्विता प्राप्त करती है और अन्य देवोंमें अन्यत्र दिव्य गुण लेती है । इसीलिये इसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ३ ॥

हे पति ! घरमें मैं बोलूँगी और मेरे भाषणका अनुमोदन तू कर । घरमें तू न बोल ! तू सभामें त्वं ब्रह्मरूप कर । पुरातनमें आकर तू वेषतः मेरा मित्र पति बनकर मेरे अनुग्रह रह । ऐसा करनेसे तुझे किसी अन्य स्त्रीका नाम तक लेनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी ॥ ४ ॥

यदि तू घरमें रह या बनेमें चला या अघ्ना यदि तू नदीके तट पार रह अथवा इस पार रह, यह औपधि ऐसी है कि जिसके प्रभावसे तू मेरे पास सेवा चला आया और किसी दूसरे स्थानपर नहीं जाया ॥ ५ ॥

यह सूक्त स्पष्ट है इसलिए अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। पठिक लिये एक ही की धर्मपत्नी हो और पत्नीके लिये एक ही पुरुष हो, यह निवाहका उच्चतम आदर्श इस सूक्ते पाद्यकी सम्मुख रखा है। कोई पुरुष अपनी विवाहित धर्मपत्नीको छोड़कर किसी भी दूसरी स्त्रीके अपेक्षा न करे और कोई स्त्री अपने विवाहित पतिको छोड़कर किसी दूसरे पुरुषकी कमी अपेक्षा न करे।

इससे एक दूसरेके वशमें होकर परस्पर लज्जित प्रेमपूर्वक व्यवहार करे। इस सूक्ते 'वासुकी' वनस्पतिका उल्लेख किया है। इसका सेवन करनेसे मनुष्य पराक्रमी और उत्साही होता है, मनुष्यकी प्रवृत्ति पाषाणयुगीन और नहीं होती। यह भीषण कीनसी है इसका पता नहीं चलता। यह वैदिकों द्वारा अभ्यषिष्य है।

## एक विचारसे रहना

कां. ६, सूक्त ७३

( कवि - अश्वि । देवता - सामन्तव्यम्, यत्ना देवता । )

यह यातु वरुणः सोमो अग्निर्वृक्षपतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य भियमुपसंयातु सर्वे उपस्य वेतुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥

यो वः शुभो हृदयेषु नृतराके विर्या वो मनांसि प्रविष्टा ।

तान्सीवयामि दुविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्बो अस्तु ॥ २ ॥

इहैव स्तु मां याताभ्युस्मरणा परस्तादप्यं वः कृणोतु ।

वास्तोस्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्बो अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— वरुण, सोम, अग्नि और वृक्षपति ( इह आ यातु ) यहाँ आये और ( वसुभिः सह इह आ यातु ) वसुभोंके साथ यहाँ आये । हे ( सजाताः ) उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषो ' ( सर्वे संमनसः ) सब एक मनवाले होकर ( अस्य उपस्य वेतुः भियं उपसंयातु ) इस घर और घेतना देनेवालेकी शोभाको बढ़ाओ ॥ १ ॥

( यः शुभः यः हृदयेषु अन्तः ) जो वर तुम्हारे हृदयमें है, ( या आकृतिः यः मनसि प्रविष्टा ) जो सकल तुम्हारे मनमें प्रविष्ट हुआ है । ( तान् सीवयामि घृतेन सीवयामि ) उनको भस्म और घृतसे मैं जोड़ देता हूँ । हे ( सजाताः ) उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषो ' ( यः रमतिः मयि अस्तु ) तुम्हारी प्रसन्नता मुझ नाथक पर रहे ॥ २ ॥

( इह एव स्तु ) यहीं पर रहो, ( परस्तादप्यं मां कृणोतु ) इसके दूर मत जाओ । ( पूषा च परस्ताद् अप्यं कृणोतु ) पूषा तुम्हारे लिये योग्य जानेका मार्ग बंद करे । ( वास्तोस्पतिः वः अनु जोहवीतु ) वास्तुपति तुम्हें अनुकूलतासे हलावे । हे ( सजाताः ) उत्तम कुलमें उत्पन्न मनुष्यो ' ( यः रमतिः मयि अस्तु ) भास्का प्रेम मुझपर रहे ॥ ३ ॥

भावार्थ— सब जानी एक स्थानपर इकट्ठे हो । सब मनुष्य एक विचारमें रहकर अपने नाथकका बल बढ़ावे ॥ १ ॥ जो लोगोंमें बल और विचार है, उसका पोषण योग्य उपायसे करना चाहिये । सब मनुष्य अपने नाथकर प्रसन्न रहें ॥ २ ॥

सब लोग एक स्थानपर स्थिर रहें । दूर दूर न जायें । भागनेका मार्ग उनके किण्व लुप्त न रहे । ईश्वर उनको अनुकूलतासे एक कार्यमें रखे । इस प्रकार सब लोग प्रेमसे एक नाथकके नीचे रहें ॥ ३ ॥

११ ( अथर्व. भा. ३ गृ. विन्दी )

म्रेणान्मृणीहि ॥ मृणा रभस्व मणिस्तै अस्तु पुरस्ता पुरस्तात् ।

अवारयन्त वरणेन देवा अम्बाचारमसुराणां शशं ।

॥ २ ॥

अयं मणिर्वैरजो विश्वमेपन्नः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।

स ते शत्रूनधरान्पादयाति पूर्वस्तान्दम्बुहि ये त्वां द्विपन्ति

॥ ३ ॥

अयं ते पुत्र्यां पितृतां पौरुषेचावयं भयात् । अयं त्वा सर्वस्मात्पापाहरणो वारयिष्यते

॥ ४ ॥

वृणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यस्मो वो अस्मिन्नाविष्टस्तुं देवा अवीवरन्

॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं ममः सृतिं यदि पावाद्दक्षुष्टाम् ।

परिष्वान्छुक्नुवैः पापवादादयं मणिर्वैरजो वारयिष्यते

॥ ६ ॥

अरात्यास्तवा निर्व्रता अभिचारादयो भयात् । मृत्योरोजीयसो वषाद्वरजो वारयिष्यते

॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता आतरो यवं मे स्वा यदनेनकृमा वयम् ।

ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः

॥ ८ ॥

अर्थ— ( पञ्चान्मृणीहि ) इनको मार, ( प्रमृण ) मारक दे, ( आ रभस्व ) नष्ट कर । यह ( मणिः ) मणि ( ते पुरस्तात् पुरस्ता अस्तु ) ठेरे जगज्जगत्में अनेकाल अघेसर है । ( देवाः वरयेत ) देवोंने इस वरणमणिले ही ( अमुराणां श्वः श्वः अभ्याचारं ) मजुरोंके प्रतिदिन होनेवाले अत्याचारोंका ( अव्यवस्थ ) विचार किया ॥ २ ॥

( अयं वरणो मणिः विश्वमेपन्नः ) यह वरणमणि सब बीपयियोंका सार है । ( सहस्राक्षः हरितः ) सहस्र भांखाला, सब दुःखोंका हरण करनेवाला है और यह ( हिरण्ययः ) सुवर्णसे युक्त है ( सः ते शत्रून् अध्वान् पादयाति ) यह ठेरे सब शत्रुओंको नीचे गिराता है । ( ये त्वा द्विपन्ति ) जो तेरा द्वेष करते हैं ( तान् पूर्वाः दम्बुहि ) इनको सबसे पहले दबा दे ॥ ३ ॥

( अयं वरणः ) यह वरणमणि ( ते पितृतां पुत्र्यां ) ठेरे पारों और फैले हुए कृत्याप्रयोगको नष्ट कर ( पाद-पेयात् भयात् ) मनुष्यकृत भयसे, ( सर्वस्मात् पापात् त्वा ) तथा सब प्रकारके पापोंसे तुझे ( वारयिष्यते ) हटावेगा ॥ ४ ॥

( अयं वरणः देवो वनस्पतिः ) यह वरणमणि वनस्पति देव ( वारयाते ) दुःखनिवारक है । ( यः दक्षमः अस्मिन् यायिषुः ) जो शपथमें इसमें प्रतिष्ठ हुआ है, ( तं व देवा अवीवरन् ) उसका देव निवारण करते हैं ॥ ५ ॥

( स्वप्नं सुप्त्वा ) स्वप्नमें निद्राके समय ( यदि पापं पश्यसि ) यदि तू पापके दृश्य देखता है उससे ( यदि मज्जुषं सृतिं पश्यत् ) और यदि मज्जुष्य गतिसे कोई वीधे तो उससे भी और ( शत्रून्ः परिष्वान् ) शत्रुनिके अलेंठ हुए शत्रुसे और ( पापवादात् ) निन्दाके शब्दोंसे ( अयं वरणो मणिः वारयिष्यते ) यह वरणमणि निवारण करता है ॥ ६ ॥

( अरात्याः निर्व्रताः ) अनुभव, विनाश, ( अभिचारात् अयो भयात् ) निवन्धक प्रयोग और जन्म भय और ( मृत्योः ओजीयसो वषात् ) शत्रुके मयाजक वधसे ( त्वा वरणः वारयिष्यते ) तुझे यह वरणमणि हटावेगा ॥ ७ ॥

( यत् मे माता ) जो मेरी माता, ( यत् मे पिता ) जो मेरा पिता, ( यत् य मे आतरः ) जो मेरे भाई, जो मेरे ( स्वाः ) भातजन तथा ( ययं यत् यनः चक्रम ) हम सब जो पाप करते रहे हैं, ( ततः ) उस पापसे ( अयं वनस्पतिः देवः ) यह वनस्पति देव ( नः वारयिष्यते ) हमारा निवारण करेगा ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता आरुण्या मे सर्वम्भवः । असूते रज्जा अप्यगुस्ते यन्त्वधर्मं तमः ॥ ९ ॥  
 अरिष्टोऽहमरिष्टगुरावुष्मान्स्त्वैवंपुरुषः । तं मायं वरुणो मणिः परि पातु दिशोर्विशः ॥ १० ॥  
 अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः । स मे शत्रून्वि वाधतामिन्द्रो दस्पृन्विशसुरान् ॥ ११ ॥  
 इमं विममि वरणमायुष्मान्छुवशरदः । स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशून्लोकं मे दधत् ॥ १२ ॥  
 यथा वातो वृक्षस्पर्तीन्वृक्षान्मनवस्योऽंशान्  
 एषा सप्तर्नाम्ने महर्षिष्वर्षीञ्छातां उवापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १३ ॥  
 यथा वातश्चामिषं वृक्षान्छातो वनस्पतीन् ।  
 एषा सप्तर्नाम्ने प्लाहि पूर्वोञ्छातां उवापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १४ ॥  
 यथा वातेन यक्षीणा वृक्षाः अरे न्यर्पिताः ।  
 एषा सप्तर्नास्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वोञ्छातां उवापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १५ ॥  
 तास्त्वं प्र छिच्छिन्द्र वरध पुरा दिशत्पुरायुषः । व एनं पुशुपु दिप्सन्ति ये चास्म राष्ट्रद्विप्तवः ॥ १६ ॥

अर्थ— ( सप्तम्यधः मे आरुण्याः ) अपने पापबोधों काप मेरे शत्रुगण ( वरणेन प्रव्यथिताः ) वरणमणिके कारण पीड़ित होकर ( असूते रज्जा अपि मयुः ) अन्धकारमय—धूलिमय स्थानको प्रसन्न हों । ( ते अधर्मं तमः पन्तु ) वे निकृष्ट अन्धकारको प्राप्त हों ॥ ९ ॥

( अहं अरिष्टः ) मैं अविनाशी, ( अरिष्टशुः ) अविनाशी वस्तुओंको प्राप्त करनेवाला ( आयुष्मान् सर्वपूरयः ) दीर्घायु और समस्त पुरस्कारों लानेवाला हूँ । ( अयं वरणः मणिः ) यह वरणमणि ( दिशोर्विशः मा परि पातु ) समस्त दिशाओंमें मेरी रक्षा करे ॥ १० ॥

( इन्द्रः दस्पृन् अशुदान इव ) जैसे इन्द्र असुरों और शत्रुओंको ताप देता है, वसी प्रकार ( अयं वरणः ) राजा वनस्पति ( देवः ) यह वरणमणि राजा वनस्पति देव ( मे उरसि ) मेरी छातीमें विराजता हुआ ( सः मे शत्रून् वि वाधतां ) मेरे शत्रुओंको पीड़ा देवे ॥ ११ ॥

✓ ( इमं वरणं विममि ) इस वरणमणिको मैं भाव्य करता हूँ । जिससे मैं ( आयुष्मान् शतशारदः ) दीर्घायु और गतायु होऊंगा । ( सः मे राष्ट्रं च क्षत्रं च ) वह मेरे लिये राष्ट्र और अधिकपदका तथा ( पशून् लोकां च मे दधत् ) पशुओं तथा लोकों मेरे लिये धरम करे ॥ १२ ॥

( यथा वातः ) जैसे वायु ( ओजसा ) वेगसे ( वृक्षान् वनस्पतीन् ) वृक्षों और वनस्पतियोंको ( भ्रमति ) खेद देता है, ( यथा ) उसी तरह ( मे पूर्वान् ज्ञातान् ) मेरे पछिछे गये हुए ( नरान् काश्यपान् महर्ष्यान् ) और दूसरे शत्रुओंको ( महर्षिष्व ) खेद दे । ( वरणः त्वा अमिरक्षतु ) वरणमणि मेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

✓ ( यथा वातः अग्निः च ) जैसे वायु और अग्नि मिलकर ( वनस्पतीन् वृक्षान् ) वृक्षवनस्पतियोंको ( प्लातः ) गूँथ कर देते हैं, ( एषा सप्तर्नाम्ने प्लाहि ) वसी तरह मेरे शत्रुओंका नाश करे ॥ १४ ॥

( यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः ) जिस तरह वायुसे क्षीण वृक्ष ( न्यर्पिताः देहे ) गिराये हुए गेट जाते हैं, ( एषा त्वं मम सप्तर्नाम्ने ) उसी तरह मेरे शत्रुओंको व वरणमणि ( न्यर्पय ) गिरा दे ॥ १५ ॥

हे ( वरण ) वरणमणि ! ( ये एनं पशुपु दिप्सन्ति ) जो इससे पशुओंमें घाव करते हैं तथा ( ये अस्म राष्ट्रद्विप्तवः ) जो हमसे राष्ट्रविप्लवक शत्रु हैं, हे वरणमणि ! व ( पुरा आयुषः ) वायुके रूप होनेसे पूर्व और ( दिशान् पुरा ) मिश्रित समस्तों की पूर्व ( त्वं तान् प्रच्छिच्छिन्द्र ) व उनको छिन्न भिन्न करे ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन्तेज आदितम् ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥

यथा यज्ञश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षति ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥

यथा यज्ञः पृथिव्यां यथास्मिन्ज्ञातवेदसि ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥

यथा यज्ञः कन्यापां यथास्मिन्संभृते रथे ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २० ॥

यथा यज्ञः सोमपीथे मधुपर्के यथा यज्ञः ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥

यथा यज्ञोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यज्ञः ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥

यथा यज्ञो यज्ञमाने यथास्मिन्पुत्र आदितम् ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥

यथा यज्ञः प्रजापती यथास्मिन्परमेष्ठिनि ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥

यथा देवेभ्यमृतं यथैषु सत्यमादितम् ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यज्ञसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

अर्थ— (यथा सूर्यः अतिभाति) जैसे सूर्य प्रकाशित होता है, (यथा अस्मिन् तेजः आदितं) जैसे हममें तेज है, (एवा वरुणो मणिः) इसी तरह वह वरुणमणि (मे कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु) मुझे कीर्ति और ऐश्वर्य देवे । (मा तेजसा समुक्षतु) मुझे तेजकं साथ संयुक्त करे, (मा यज्ञसा समनक्तु) मुझे यज्ञसे यज्ञस्वी बनावे ॥ १७ ॥

(यथा यज्ञः चन्द्रमसि नृचक्षति आदित्ये०) जैसा यज्ञ चन्द्रमा और दर्शनीय आदित्यमें है, (यथा यज्ञः पृथिव्यां अस्मिन् ज्ञातवेदसि०) जैसा यज्ञ पृथिवी और ज्ञातवेद अभिमें है, (कन्यापां संभृते रथे०) जैसा यज्ञ कन्याओंमें और सुदृकं लिये सिद्ध हुए रथमें है, (सोमपीथे मधुपर्के०) जैसा यज्ञ सोमपीथ और मधुपर्कमें है, (अग्निहोत्रे वषट्कारे०) जैसा यज्ञ अग्निहोत्र और वषट्कारमें है, (यज्ञमाने० यज्ञे०) जैसा यज्ञ यज्ञमानमें है और यज्ञमें है (प्रजापती परमेष्ठिनि०) जैसा यज्ञ प्रजापति और परमेष्ठिमें है, उसी तरहका यज्ञ यह वरुणमणि मुझे देवे और मुझे तेज और यज्ञसे युक्त करे ॥ १८-२४ ॥

(यथा देवेभ्यु अमृतं) जैसे देवोंमें अमृत है, (यथा एषु सत्यं आदितं) जैसे देवोंमें सत्य है, (एवा मे वरुणो मणिः) इसी तरह मेरे लिये वह वरुणमणि कीर्ति और ऐश्वर्य (नि यच्छतु) देवे और मुझे (तेजसा समुक्षतु) तेजसे युक्त करे और मुझे (यज्ञसा मा समनक्तु) यज्ञसे संयुक्त करे ॥ २५ ॥

इस सूक्तमें शत्रुनाश और अपने बरही अभिवृद्धिके लिये प्रार्थना है । इस सूक्तके मुख्य दोहोंमें अथिष इष्टीकरणकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

## पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनाने

कां. ७, सूक्त ३७

( अग्नि- अथर्वी । देवता- वायु. । )

अग्निं स्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा । यथासौ मम केवलं नान्वासं कीर्तयाश्चन ॥ १ ॥

अर्थ— ( मम मनुजातेन वाससा ) अपने पिताके साथ बनाये वस्त्रसे ( त्या अग्नि दधामि ) तुझे मैं बांध देती हूँ । ( यथा केवलः मम अस्तः ) जिससे तू केवल मेरा ही धनि होकर रहे और ( नान्वासं न चन कीर्तयाः ) अन्य द्विषोंका नाम तब देनेवाला न हो ॥ १ ॥

श्री अपने हाथसे सूत काटे, धागा चलाने, सूत निर्माण करे और अपनी कुशलवाले निर्माण किये हुए कपड़ेसे पतिसे पहिरनेके वस्त्र तैयार करे । पत्नीके निर्माण किये सूतसे बने हुए वस्त्र पति पहने । सूत निर्माण करनेके समय पत्नी अपने आन्तरिक प्रेमके साथ सूत काटे और पति भी ऐसा कपड़ा पहनना अपना वैभव माने । इस प्रकार परस्पर प्रेमका प्रगट्ठार करनेसे पति भी दूसरी स्त्रीका नाम नहीं देगा और धर्मपत्नी भी दूसरे पुरुषका नाम नहीं देगी । इस प्रकार दोनों गृह-स्वाधर्मका आनन्द प्राप्त करते हुए सुखी रहेंगे ।

## उत्कृष्टिकी दिशा

कांठ ३, सूक्त २६

( अग्नि- अथर्वी । देवता- अग्न्याय्य । )

येकुंसां स्व प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निर्दिवः ।  
वे नो मृदत ते नोऽर्षि मृत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥

येकुंसां ॥ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इष्यः ।  
वे नो मृदत ते नोऽर्षि मृत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ २ ॥

येकुंसां स्व प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां वः आप इष्यः ।  
वे नो मृदत ते नोऽर्षि मृत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ— ( ये अस्यां प्राच्यां दिशि ) जो तुम इस पूर्व दिशामें ( हेतयः नाम देवाः ) वस नामवाले देव हो, ( तेषां वः ) उन तुम्हारा ( अग्निः इष्यः ) अग्नि काम है । ( ते नः मृदत ) वे तुम हमें सुखी करो, ( ते नः अधिमृत ) वे तुम हमें उपदेश करो । ( तेभ्यः वः नमः ) उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे, ( तेभ्यः स्वाहा ) उन तुम्हारे लिये हम अपना समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

जो तुम इस ( दक्षिणायां दिशि ) दक्षिण दिशामें ( अविष्यवो नाम देवाः ) वस करनेकी इच्छा करनेवाले इस नामके जो देव हो ( तेषां वः काम इष्यः ) उन तुम्हारा काम काम है । वे तुम हमें सुखी करो और हमें उपदेश करो, उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे और तुम्हारे लिये हम अपना समर्पण करते हैं ॥ २ ॥

जो तुम इस ( प्रतीच्यां दिशि ) पश्चिम दिशामें ( वैराजा नाम देवाः ) विराज नामक देव हो, उन तुम्हारा ( आपः इष्यः ) शल ही काम है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ३ ॥

येष्टुस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविष्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ४ ॥

येष्टुस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्बा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ५ ॥

येष्टुस्यां स्थोर्ध्वायां दिशयवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो नृदस्पतिरिष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ— जो तुम इस (उदीच्यां दिशि) उत्तर दिशामें (प्रविष्यन्तः नाम देवाः) वैद्य करनेवाले इस नामसे वैद्य हो, उन तुम्हारे (वातः इष्यः) वायु बाण हैं। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ४ ॥

जो तुम इस (ध्रुवायां दिशि) ध्रुव दिशामें (निलिम्बा नाम देवाः) निलिम्ब नामक वैद्य हो, उन तुम्हारे (ओषधीः इष्यः) औषधी बाण हैं। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ५ ॥

जो तुम इस (ऊर्ध्वायां दिशि) ऊर्ध्व दिशामें (नृदस्पन्तः नाम देवाः) रक्षक नामवाले वैद्य हो, उन तुम्हारे (नृदस्पतिः इष्यः) ज्ञानी बाण हैं। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ध्रुव (पृथिवी) और ऊर्ध्व (आकाश) ये छः दिशाएँ हैं, इन छः दिशाओंमें क्रमशः (हेति-दास्तास्य) वज्र, रक्षाकी इच्छा करनेवाले सर्वसैनिक, (वि-राज्) राजरहित अवस्था अर्थात् प्रजासत्ता, वैद्यकता, वैद्य करनेवाले वैद्य और उपदेशक इनको प्रधानता है। वे लक्षकों उपदेश करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये उनका भी उनका सकल करती है और उनके लिये आत्मसमर्पण करती है ॥ १-६ ॥

## सामिनस्प

### कां. ६, सूक्त ७४

(आधि-अधर्वा । देवता-सामिनस्प, नाना देवता, शिवाना ।)

सं वः पृथ्यन्तां तन्वं १: सं मनांसि सर्म ब्रूता । सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्यगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

संक्षर्पनं वो मनसोऽयो संक्षर्पनं ब्रूदः । अपो भगस्य यच्छ्रान्ते तेन संक्षपयामि ॥ २ ॥

अर्थ— (वः तन्वः सं पृथ्यन्तां) तुम्हारे शक्ति मिलें, (मनांसि सं) तुम्हारे मन मिलें और (उ यता सं) तुम्हारे कर्म भी मिलजुल कर हों। (अयं ब्रह्मणस्पतिः यः सं) यह ज्ञानवाति तुम्हें मिलकर रहे। (भगः वः सं अजीगमत्) माय्य देनेवाला भी तुम सबको मिटाये रहे ॥ १ ॥

(वः मनसः संक्षर्पनं) तुम्हारे मनको मिलकर रहनेका अभ्यास हो (अपो ब्रूदः संक्षर्पनं) और ब्रूदको भी मिलनेका अभ्यास हो (अपो भगस्य यत् श्रान्ते) और आत्मवान्का जो परिग्रह है (तेन वः संक्षपयामि) उससे तुम सबको मिलकर रहनेका अभ्यास हो ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हारे शरीर, मन और कर्म सबके साथ एकते अर्थात् समतासे युक्त हों। तुम्हें ज्ञान देनेवाला एकताका ज्ञान दे तथा तुम्हारा भाग बढ़ानेवाला तुम्हें मिलाने रहे ॥ १ ॥

तुम्हारे मन और ब्रूद एक हों। माय्य प्राप्त करनेके लिये जो परिग्रह करने पड़ते हैं, उन अन्योंको काते हुए तुम आत्मसे मिलकर रहो ॥ २ ॥



यथादित्या वसुभिः संवसुवर्मसन्निभ्या अहृणीयमानाः ।

एवा त्रिणामुन्नहृणीयमान इमान्जनान्तसंपन्नसम्पृष्टीह

॥ ३ ॥

अर्थ—(यथा अहृणीयमानाः उभाः आदित्याः) जैसे किसीसे न दबनेवाले उभ आदित्य (वसुभिः मरुद्भिः संवसुवः) वसुधो और मरुतोसे मिलकर रहे, (एवा) उसी प्रकार है (त्रिणामन्) तीन नामवाले ! (अहृणीयमानाः) न दबता हुआ (इह इमान् जनान् सं पन्नसः कृषि) यहाँ इन लोगोंके एक विचारसे युक्त कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—'जिस प्रकार दूर आदित्य, वसुधो और मरुतोसे मिलकर रहते हैं, उसी प्रकार हम भी स्वयं मिलकर रहो और इन सब जनोंके मिलकर रहो ॥ ३ ॥

### एकताका बल

इस सूक्तमें मिलजुल कर रहने और अपनी एकतासे अपनी कृति साधन करनेका उपदेश है। इन्द्र, मन, विचार, संकल्प और काम आदि सबमें समता और एकता चाहिये। किसीमें विपरीत भाव हुआ तो भिन्नता होगी और संयमभाव बह होगा। इस कारणसे आदित्य, वसु और स्रज वस्तुतः भिन्न होनेपर भी जगत्के कार्यमें मिलजुलकर एग रहते हैं। इसी प्रकार वसुध्व रंगरूप और जालिकी भिन्नता रहनेपर भी राष्ट्रकार्य करनेके लिये सब मिल जायें और एक होकर राष्ट्रकार्य करें।

## सौभाग्य-वर्धन-सूक्त

कां. १, सूक्त १८

( अग्निः—ऋषिणोवा । देवता—वैशाखं सौभाग्यम् । )

निरुस्म्यं ललाम्यं१ निररातिं सुवामसि ।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि

॥ १ ॥

निररातिं सविता सविपक् पदोर्निर्हस्तोर्वैरुणो पित्रो अर्यमा ।

निरुस्म्यमनुमती रराणा प्रेमा देवा असाविपुः सौभाग्यम्

॥ २ ॥

अर्थ—(ललाम्यं) सिरपर होनेवाले (लक्ष्म्यं) बुरे किट्टको (निः) विशेषतासे दूर करते हैं; तथा (अ-रातिं) कंठ्ठी आदि (निःसुवामसि) विशेष दूर करते हैं (अथ या भद्रा) और जो कल्याणकारक किट्ट है (तानि नः प्रजाये) उन्हें सब अपनी संतानोंके लिये हम प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंठ्ठी आदिको (नयामसि) दूर भगाते हैं ॥ १ ॥

सविता, यक्ष, मित्र और अर्यमा (पदोर्हस्तयोः) पाओं और हाथोंकी (अरातिं) पीरतले (निः निः सविप-पक्) दूर करें। (रराणा अनुमतिः) दानशील अनुमतिने (अस्म्यं निः) हमारे लिये विशेष प्रेरणा की है। तथा (प्रेमाः) देवोंने (इमां) इस कीलके (सौभाग्यम्) सौभाग्यके लिये (प्र असाविपुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥

भावार्थ—सिरपर तथा करीबपर जो ऊँचका ॥ उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंठ्ठी आदि दुर्गुणोंको भी दूर करना चाहिये और जो गुरुत्व है उनको अपने तथा अपने संतानोंके पास स्थिर करना अथवा बढ़ाना चाहिये। तथा कंठ्ठी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥

सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीडाको दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश दे। क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उद्योग सम्पन्नके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥

१२ (अर्थ. भा. ३ पृ. दिग्दी)

यत् आत्मनि तुन्वा घोरमस्ति यद्वा केचोषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचापं हन्मो युषं देवस्त्वा सविता संदधतु ।

॥ ३ ॥

रिश्यंपदीं वृषदतीं गोपेषां विंधवामुत । विलीलां ललाम्य ता अस्मन्नाशयामसि

॥ ४ ॥

अर्थ—(यत् ते आत्मनि) जो तेरी आत्मामें तथा (तुन्वा) शरीरमें (या यत् केचोषु) अथवा जो केचोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोर अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) यह सब (यय वाचा हन्म) मैं सभीको हरा दूँगे है । (सविता देव) सविता देव (त्वा सुदधतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् परिपक्व बनावे ॥ ३ ॥

(रिश्यंपदीं) हरिण समान पाववाली, (वृषदतीं) बैल समान दाहवाली, (गोपेषां) गायक समान चलने वाली, (विंधमा) विरुद्ध शब्द सोलनेवाली, जिसका जन्म कठोर है पेशी की (उत ललाम्य विलीलाय) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् नाशयामसि) अपनेसे दूर करते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—तुम्हारी आत्मा अथवा मनम शरीरम, कर्मों तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हा, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम यथाने हटाते हैं । परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंस युक्त बनावे ॥ ३ ॥

हरिण समान पाँर, बैल समान दाह, गायक समान चलनेकी भाँव, कठोर जुड़ी मांसान तथा सिरपरक अन्य कुलक्षण आदि सब हमसे दूर हो ॥ ४ ॥

## सौभाग्य-वर्धन-सूक्त

### कुलक्षण और सुलक्षण

इस सूक्तमें शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा आदिक भी जो सुलक्षण हो उनका दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनानेका उपदेश किया है । इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं—

(१) ललाम्य लक्ष्य—सिरपरका लक्षण, कपाल ठोठा होना, माथेपर घाल होने, कुम्हिली दंतन आदि कुलक्षण । (मंत्र १)

(२) ललाम्य विलील्य—सिरपर कालोंके लुप्ते रहना और बसने सिरकी शोभाका बिगाड़ आदि कुलक्षण । (मंत्र ४)

(३) रिश्यंपदीं—हरिणक समान कुछ पाँव । (मंत्र ४)

(४) सुपदतीं—बैलके समान बड़े दाँत । (मंत्र ४)

(५) गोपेषां—गायक समान चलना । (मंत्र ४)

(६) विंधमा—कानोंको बुरा लगनेवाली आवाज, जिसकी भीड़ी मंजुल आवाज नहीं । (मंत्र ४)

ये अंतिम (३-६) चार कुलक्षण शिष्योंके लिये बहुत खुरे हैं अर्थात् शिष्योंमें ये न हों । यद्वा पसेद करनेसे समस्त इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है ।

(७) केचोषु घोर—कालोंमें झुरला अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् कालोंके कारण मुख झुरला दीखना । (मंत्र ३)

(८) प्रतिचक्षणे कूर—चेत्रोंमें झुरता, भयानक तेज, भयानक दृष्टि । (मंत्र ३)

(९) तम्या कूर—शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरक अवयवके देवदेवा होनेके कारण भयानक दृश्य । (मंत्र ३)

(१०) आत्मनि कूर—मन, ईंद्रि, चित्त, आत्मामें झुराके भाव होना । (मंत्र ३)

(११) म-रार्ति—कमूरी, बदरभावका भयान । (मंत्र १)

(१२) पदो हस्तयो अ-रणि—पाँव और हाथोंकी पीटा अथवा कुछ रिकार । (मंत्र २)

इन कुलक्षणोंको दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षणोंको अपनेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है । इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है । जिससे शरीर सुदीर्घ दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये । इसी प्रकार इंद्रियों, मन, बुद्धि, वाचा आदिक भी सुलक्षण हैं । इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करन अपनेमेंसे सुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है ।

## वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना

मंत्र ३ में 'सर्व तदाचारं हन्मो वयः।' अर्थात् हम वे सर्व कुलक्षण वाणीसे दूर करते हैं, अपना वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कहा है, तथा साथ साथ यह भी कहा है कि 'देवस्या सविता सद्यतु' सविता देव तुम्हें पूर्ण सुलक्षण पुत्र बनावे, परमेश्वरकी कृपासे मनुज सुलक्षणोंसे मुक्त हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लोगोंको संदेह होना संभव है, अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आलुप्त है।

## वाणीसे प्रेरणा

वाणीसे अपने आपकी अथवा दूसरेकी भी प्रेरणा या सूचना दैवत रोग दूर करना, क्या मन आदिसे कुलक्षण दूर करना संभवनीय है, यह बात वेदमें अनेक स्थानोंपर आई है। यह सूचना इस प्रकार ही जाती है— 'मेरे अद्वर

यह कुलक्षण है, यह केवल धोखे से रहनेवाला है, यह चित्काय नहीं रहेगा, यह कम हो रहा है, अतिसीध कम होगा। मेरे अद्वर कुलक्षण यह रहे हैं, मैं सुलक्षणोंसे मुक्त होऊँगा। मैं निर्वीर बन रहा हूँ। मैं निरोगी रहूँगा। मैं घोषोंको हटाऊँ हूँ और अपनेमें गुस्सेको विकसित करना हूँ।'

इत्यादि रीतिसे अनेक प्रकारकी सूचनाएँ मनको देने और उनका प्रतिबिम्ब मनके अद्वर स्थिर रखनेसे दृढ़ सिद्धि होती है। वेदका यह मानसशास्त्र सिद्धांत हरएक विचार करने योग्य है। 'मैं हीन हूँ, दीन हूँ' आदि विचार जो लोग मात्र कल बोलते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिम्बित होनेसे मनपर कुलस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं। इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चार ही हमेशा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे मुक्त भ्रष्टोंका उच्चार नहीं करना चाहिये। अतः हीन कुल प्रेरणाक विषयों का उच्चार उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आयेगए हैं, इस लिये इस विषयमें यह इतना ही लेल पर्याप्त है। अस्तु,

इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने कुलक्षणोंको दूर करना और अपने अद्वर सुलक्षणोंको बढ़ाना हरएक मनुष्यको योग्य है।

## हार्षों और पाँवोंका दर्द

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता (सूर्य), वरुण (जल), मित्र (प्राणवायु), अर्यमा (आमका पौधा) ये हार्षों और पाँवोंके दर्दको तथा तारीक दर्दको दूर करें। सूर्यकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आम्के पत्तोंका लेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। इस विषयमें हमसे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारबार लाले जारा है। आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है।

## सौभाग्यके लिये

'हमा देवा असाविषु सोममरय।' इसको देखते सौभाग्यके लिये बनाया है। विरथ करके चौंके उदेरपसे यह मंत्रभ्याग है, परन्तु सबक लिये भी यह माना जा सकता है। अर्थात् मनुष्य मरत खी हो या दुःख हो यह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और यह यदि परमेश्वरकी भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीको सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा। हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मक सिद्धांतको मनमें स्थिर करे। अपनी उन्नतिको सिद्ध कराय हरएकके पुत्रप्रापरा अब स्थित है। यदि अपनी अन्नगति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुत्रप्रापमें शुद्धि हुई है।

## सन्तानका करपाण

यह ही अपनेमें कुछ कुलक्षण हो, तथापि अपनी सत्ता नेमें सुलक्षण ही जाये (या भद्रा तामि न. प्रजापदे) यह प्रथम मन्त्रका उपदेश हरएक गृहस्थीको प्याममें करना चाहिये। अपनी सत्ता निर्वीर और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे मुक्त बने यह आज यदि हरएक गृहस्थीमें रहेगा, तो प्रति पुत्रमें मनुष्यवैभव सुभाष होता जफण और राज्य प्रति दिन उन्नतिकी सीढ़ीपर चड़ेगा। यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है, इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले।



## सौभाग्य-वर्धन

कां. ६, सू. १३९

(ऋषिः-अथर्व। देवता-वनस्पतिः।)

न्यस्तिका ऋरोहिष सुभगुंकरणी मम ।

श्रुतं तथे प्रतानास्त्रयैस्त्रिंशच्चित्तानाः । तया सहस्रपुण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥

शुष्पंतु मयि ते हृदयमयों शुष्पस्थास्यम् । अथो नि शुष्प मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २ ॥

संवर्तनी सनुष्पला वभ्रु कस्यापि सं जुद । मम च मां च सं जुद समानं हृदयं कृधि ॥ ३ ॥

यथोदुकमपुषोऽपुष्यस्यास्यम् । एवा नि शुष्प मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४ ॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधास्याहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिद्यं सं धेहि धीर्धायति ॥ ५ ॥

अर्थ— (मम सुभगुंकरणी न्यस्तिका ऋरोहिष) मेरा सौभाग्य बढ़ानेवाली और दोष दूर करनेवाली यह सौधनी उत्पन्न हुई है । (तय प्रताना) तेरे ती प्रकरकी शाखाएं हैं और (अत्रिंशच्चित्तानाः) तीस सप्तधाई हैं । (तया सहस्रपुण्या) उस सदस्यगी भीषणिते (ते हृदयं शोषयामि) तेरा हृदय शुष्क करता है ॥ १ ॥

(ते हृदयं मयि शुष्पंतु) तेरा हृदय मेरे विषयमें विचार करके सूख जाये (अथो आस्यं शुष्पंतु) और तुल भी सूख जाये । (अथो मां कामेन नि शुष्प) तुझे भी कामसे शुष्क करके दू (अथो शुष्कास्या चर) शुष्क सुख-वाली होकर चल ॥ २ ॥

हे (वभ्रु कस्यापि) शोषक करनेवाली भववा पीले रंगवाली और कस्याप करनेवाली । (संवर्तनी सनुष्पला) सेवन करने योग्य और उत्साह बढ़ानेवाली है । दू (मम सं जुद) उसको प्रेरित कर, (मां च सं जुद) मुझे प्रेरित कर । हमारा (हृदयं समानं कृधि) हृदय समान कर ॥ ३ ॥

(यथा उदकं अपपुषः) मिलकरका जल न पीनेवालीका (आस्यं शुष्पति) सुख सूख गया है, (यथा मां कामेन नि शुष्प) इस प्रकार मुझे कामसे सुखकर दू कथे भी (अथो शुष्कास्या चर) सूखे सुखवाली होकर चल ॥ ४ ॥

(यथा नकुलः गहि विच्छिद्य) जैसे नेमल खाँको काटकर (पुनः संदधाति) फिर जोड़ देता है, (यथा धीर्धायति) इस प्रकार हे धीर्धायकी शोषण । (कामस्य विच्छिद्यं) कामके दूरे हुए संबंधको (सं धेहि) जोड़ दे ॥ ५ ॥

भाषार्थ— सदस्यगी भीषणि सौभाग्य बढ़ानेवाली और दोष दूर करनेवाली है । इसको सैकड़ों शाखाएं होती हैं । इससे शीघ्रतः वीर्यवान् होने हैं और परस्परके विषयको सह नहीं सकते जहाँ तक विषय होनेपर सूख जाते हैं ॥ १-२ ॥

यह वनस्पति पुष्टि करनेवाली और सब प्रकार जानंद देनेवाली है, उत्साह भी बढ़ाती है, इसलिये गृहस्थी कीपुरुषोंके द्वारा सेवन करने योग्य है । शीघ्रतः वीर्यवान् बनकर इच्छाकी श्रेया इसके सेवनसे होती है और दोनोंका हृदय समानतया परस्परके प्रति आकर्षित होता है ॥ ३ ॥

मिल प्रकार जल न पीनेसे सनुष्प सूख जाता है, इस प्रकार कामसे शीघ्रतः परस्पर प्राणिकी हृदयसे सूखते हैं ॥ ४ ॥

मिल प्रकार नेमल खाँको काटकर पुनः जोड़ देता है, उसी प्रकार विभुज शीघ्रतः वीर्यवान् पुनः जोड़ देता योग्य है ॥ ५ ॥

सदस्यपणों औषधि

इस सूचके सहस्रवर्षी औषधीका वर्णन है। यह औषधी को प्रमुखोको परस्पर संबंध करने में योग्य पुष्ट और कीर्तमान बना देती है। इसके सेवन करनेपर औषधुषोको परस्परका विशेष साधन करना असंभव हो जाता है। निर्दिष्ट पुरातन भी बड़ा उत्साहसम्पन्न हो जाता है। इस प्रकारसे यह सहस्रवर्षी औषधी कीर्तनी व्यवस्थित है, इसका पता आजकलके वैद्यकीयपंडित नहीं करते। वैद्यको इस विषयकी खोज करना चाहिये।

### नेवलेका सांपको काटना और जोड़ना

इस सूक्ते पंचम मंत्रमे 'मेवला सायको कारवा हे और उसको फिर खोद देवा हे' (सकुल. अहिं विप्रिख्य पुनः संदधाति) ऐसा कहा है। यह विश्वास प्रायः सर्वत्र भारतवर्षमे है। सर्वविद्वद् भी यहाँ यही बात कही है। अतः इस विषयकी ओर हमारी सादरिये। यदि इस प्रकारकी कोई वस्तुवि मिठी तो कही नमजारी सिद्ध हो सकती है।

## सौभाग्यके लिये बढाओ

का. ७, स. १६

(अपि - भूय । देवता - सविता ।)

पुर्वस्वते सर्वितर्धयेनं ज्योतयेनं महते सोमंवाय ।

संश्लिष्टं चित्संस्तरं सं श्लिष्टाधि विश्वं एनमस्तु मयन्तु देवाः ।

॥ १ ॥

अर्थ— हे (बुद्धपते सखित) ज्ञानपते, हे उत्पादक देव ! (एमें वचन) इसको पढा, (एन महते सीम-  
गाय ज्योतय) इसको वडे सीमात्मक स्थिय प्रकाशित कर । (संशिते से-वर्तं थित् संशिराशि) पहिले ही वीर्य  
उद्विगलको अधिक उच्चम धनमेर स्थिते शिक्षाते पुन कर । (विश्वे देवा, एनं अनु मन्तु) तब देवतालीन इसका  
अनुमोदन करें ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**हे ज्ञानी देव ! हम सब मनुष्योंको बढाओ, हमें बड़ा वैभव प्राप्त हो, इसलिये अपना प्रकाश भर्न  
मनो । हमें जो पहिले वैराग्यी लोग हैं, उनको अधिक वैराग्यी बनानेके लिये उत्तम शिक्षा प्रदा होवे और दैवी शक्तियोंकी  
सहायता सबको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

इष्टी, शप, तेज, वायु, सूर्य, चन्द्रमादि सादि देवताओंका सहायता हमें उत्तम प्रकारसे प्राप्त हो और उनकी शक्ति प्राप्त करके हम अपनी उन्नति साधन करें और देवताओं भावी हम करें। ईश्वर ऐसी परिस्थितियों हमें रखे कि, जहाँ हमें उन्नति करने कार्यमें किसीका विरोध न होवे और हम अपने उन्नति साधन कर सकें।

## दांतोंकी पीड़ा

कां. ६, सू. १४०

(ऋषि—अथर्व । देवता—ब्रह्मणस्पति, इन्द्र ।)

यौ व्याघ्रावबहूदो जिष्यत्सप्तः पितर मातरं च । यौ दन्तौ म्रक्षणास्पते शिबौ कृशु जातवेदः ॥ १ ॥

अर्थ—(यो व्याघ्रो अयस्फुटो) जो बाघक समान बड़े हुन दो दात (मस्तरं पितरं च जिघासतः) माता और पिताको ॥ य देते हैं, हे ब्रह्मणस्पते ! हे (जातयेदः) शस्त्री ! (तौ दन्तौ शिष्यौ पृथु) उन दोनों शिष्योंको कल्याण करनेवाला बर ॥ १ ॥

व्रीहिर्मेत्तं यवमत्तमथो मापमथो तिलम् ।

एष वा मागो निहिता स्तन्धेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च

॥ २ ॥

उपहृती स्युजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।

अन्यत्र वा घोरं तन्वैः परैस्तु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च

॥ ३ ॥

अर्थ—(व्रीहि अत्तं यव अत्तं) चावल सागो, जौ सागो, (अथो मापं अथो तिलं) उबड़ और तिल सागो । (एष वा मागः स्तन्धेयाय निहितः) वह तुमझारा आज स्तन्धधारणके छिये निश्चित हुआ है । हे दांतो ! (पितरं मातरं च मा हिंसिष्टं) माता पिताको कष्ट न दो ॥ २ ॥

(स्युजौ स्योनौ सुमङ्गलौ दन्तौ उपहृती) साथ साथ जुड़े हुए सुखदायी अंगलकारी दोनों दांत प्रशंसनीय हैं । (वां तन्वैः घोरं अन्यत्र परैस्तु) तुमहारे शरिका बहोर दुःख दूर हो । हे (दन्तौ) दांतो ! (पितरं मातरं च मा हिंसिष्टं) माता पिताको कष्ट न दो ॥ ३ ॥

बादलोंके जिस समय दांत आते हैं, उस समय उनको बड़े कष्ट होते हैं, उनमें भी दो दांत देते हैं ॥ तिनके कारण बालकोंको बड़ा ही कष्ट होता है । बालकोंका कष्ट देख कर उनके मातापिता भी बड़े दुःखी होते हैं ।

इस समय बालकोंको बाबट, जी, उबड़ और तिल खानेके लिए देना चाहिये । जिस रीतिसे पचन हो आप उस रीतिसे सच्ची प्रकार भोज खानेके लिए देना चाहिये । दूसरे खानेसे दांत मुट्ट होते हैं और रत्नोंके समान घुसूर होते हैं ।

बैद्योंको सूचना चाहिये कि, वह पथ्य बालकोंसे किस प्रकार बढाना चाहिये । हरएक बालकोंको दांतोंका कष्ट होता है, यदि वह पथ्य दितकारक सिद्ध हुआ, तो हरएक गृहस्थी इससे लाभ उठा सकता है ।

## केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. १३६

(अथि - नीतद्वयः । देवस्य - अवलसि ।)

देवी देव्यामथि जाता पृथिव्यामस्योपधे । तां त्वा नितति केश्यभ्यो दंष्ट्राय खनामसि ॥ १ ॥

दंष्ट्रं प्रतान्ध्रनयाज्ञाताञ्जातान् वर्षीपितस्कधि ।

॥ २ ॥

यस्तु केश्योऽवपसते समूलो यत्र वृक्षते । इदं ते विश्वमेपज्यामि पिञ्चामि वीरुषां

॥ ३ ॥

अर्थ—हे बीपधे 'तु (देवी देव्यां पृथिव्यां अधि जाता) दिव्य औषधी पृथिवी पृथिवी उत्पन्न हुई है । हे (नितति) नीचे फैलनेवाली औषधि ' (तां त्वा केश्यभ्यः दंष्ट्राय खनामसि) उस तुझ औषधिको केशोंको सुदृढ़ करनेके लिये खोदते हैं ॥ १ ॥

(प्रतान् दंष्ट्रं) प्रताते केशोंको दृढ़ कर, (अज्ञातान् जनय) जहां जल उत्पन्न नहीं होते वहां उत्पन्न कर (जातान् उ वर्षीपसः रुधि) और जो उत्पन्न हुए उनको रंधे कर ॥ २ ॥

(यः ते केशः अवपसते) जो वेरा नेत्र फिर जाता है (यः च समूलः वृक्षते) और जो मूल सहित उत्पन्न जाता है, (इदं ते विश्वमेपज्यामि वीरुषां अभिपिञ्चामि) उस वेशको वेशवोषको दूर करनेवाली रक्षाके रससे मैं मिगा देता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—नितली नामक औषधी पृथ्वीपर उगती है, उसके प्रयोगसे केदा सुदृढ़ होते हैं । जो केश प्रताते हैं, दृष्टते हैं, फिर जाते हैं, इस औषधीके रसके लगानेसे वह सब दोष दूर हो जाता है और दाढ़ सुदृढ़ हो जाते हैं । जहां बाढ़ उगते नदी वहां इस औषधिकी रस लगानेसे दाढ़ भाते हैं और जहां भाते हैं वहांके बाढ़ बड़े रंधे हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

इस नितली नामक औषधीको वैद्यवर्धक कहा है, परंतु यह बीमारी औषधी है, इसका पता नहीं चलता । वैद्योंको चाहिए कि वे इस औषधिकी खोज करें और प्रकाशित करें ।

## केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. १३७

(अधि.— वीतहृन्मः । देवता— वनस्पतिः ।)

यां जमदग्निस्त्रिखनदुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहृन्म आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अमीष्टानां मेयां आसन्व्यामेनानुमेयाः । केशां नृणां इव वर्धन्तां शीर्ष्मस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

हं हूलमाग्रे यच्छ वि मय्यै यामपौषधं । केशां नृणां इव वर्धन्तां शीर्ष्मस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

अर्थ— (जमदग्निः यां केशवर्धनीं दुहित्रे अस्त्रिखनत्) कमदग्निने मिल केशवर्धक औषधिको अपनी कन्याके रूप छोड़ा था, (तां वीतहृन्मः असितस्य गृहेभ्यः आभरत्) उसको वीतहृन्मने अक्षितरे दसौक लिये भर लिया ॥ १ ॥

ओ (अमीष्टानां मेयां आसन्) वन अगुलियोंसे मागे जले थे वे (अयमेन अनुमेयाः) हाथोंसे माग्ने योग्य होगये । (ते शीर्ष्मः परि) ठेरे सिर पर (असिताः केशाः) काले बाल (नृणाः इव वर्धन्तां) बालोंके समान बढ़ें ॥ २ ॥

हे औषधि ! (मूलं हं ह) केशका मूल दूध कर, (यमं वि यच्छ) अग्रभाषणों दीक कर और (मय्यै यामप) मन्त्रभाषणों भी दूध कर । (ते शीर्ष्मः परि) ठेरे सिरके ऊपर (असिताः केशाः) नयाः इव वर्धन्तां) काले बाल बालोंके समान बढ़ें ॥ ३ ॥

यह केशवर्धक औषधिके रसके उपयोगसे बाल बहुत बढ़ जाते हैं । सीले स्थलमें जैसे बाल बहुत बढ़ती हैं, उसी प्रकार इस औषधसे बाल बढ़ते हैं और केतोंके मूल भी सुख हो जाते हैं, काय वे दृढ़ते नहीं । यह केशवर्धक औषधि बढ़ी है कि जो पूर्व सूक्तमें वर्णित है । यह औषधि मन्त्रेणोप है । क्योंकि इसका बाल नहीं बढ़ता ।

## केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. २१

(अधि.— वनस्पतिः । देवता— वनस्पतिः ।)

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुच्यते । तासां पृथिवी त्वचो अहं मेपुजं सभुं जग्रमम् ॥ १ ॥

अथेमसि मेपुजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

अर्थ— (इमाः याः तिस्रः पृथिवीः) वे जो तीन लोक हैं (तासां भूमिः उच्यते) उनमें यह भूमि उच्यत है । (तासां त्वचः अधि) उनमें त्वचाके विषयमें (मेपुजं अहं उ सं जग्रमे) यह औषध मेने प्राण की है ॥ १ ॥

(यथा यामेषु देवेषु) जैसे जलनेवाले देवोंमें (सोमः भगः वरुणः) सोम, भग और वरुण अथ है, उसी प्रकार (मेपुजानां अथेमसि) औषधमें तू अथ है, (वीरुधानां वसिष्ठ) वनस्पतिजोंको यह वनस्पतिजोंका अर्पाण अथ है ॥ २ ॥

रेवतीरनाघृषः सिपासवः सिपासथ । उत स्थ केशदृष्टीरथो ह केशवर्धिनीः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( रेवती\* अनाघृषः सिपासवः ) सामर्थ्यवान्, अर्हिसित और आरोग्य देनेवाले रेवती औषधियो । तुम ( सिपासथ ) आरोग्य देनेको इच्छा करो । ( उत केशदृष्टीः स्थ ) और बालोंको बनवान् करनेवाली होवो ( अथो ह केशवर्धिनीः ) और बालोंको बढ़ानेवाली होवो ॥ ३ ॥

\* रेवती\* औषधी वनस्पति करनेवाली और बालोंको बढ़ करनेवाली है । यह लघुका रोगोंके लिये भी उत्तम है । यह औषधि आम्बल नहीं मिलती, इसलिए इसकी खोज करनी चाहिये ।

## अरुन्धती औषधि

कां. ६, सू. ५९

( अथि - मयथं । देवता - रुद्र, मनुष्योत्तम । )

अनङ्गुस्सर्पं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति । अर्धेनवे वयसे शर्मं यच्छु चतुर्गदे ॥ १ ॥

शर्मं यच्छुस्त्रोषधिः सह धेवोरुन्धती । कस्तूर्यस्वन्तं गोष्ठमयस्मो उव पूरुषान् ॥ २ ॥

विश्वरूपां सुभर्गामुच्छावदामि वीजलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेति दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( अरुन्धती ) अरुन्धती औषधि\* ( स्वं अनङ्गुः ) ह बैलको ( स्वं धेनुभ्यः ) ह गौओंको तथा ह ( चतुर्गदे अर्धेनवे वयसे ) चार पाववाले गौले मिल पशुको तथा वसियोंको ( प्रथमं शर्मं यच्छु ) पहिले सुख दे ॥ १ ॥

( अरुन्धती औषधिः देवीः सह ) अरुन्धती नामक औषधी सब अन्य दिव्य औषधियोंके साथ ( शर्मं यच्छु ) सुख देवे । तथा ( गोष्ठं पयस्वन्तं ) गोमालाको बहुत दुग्धवान् ( उत पूरुषान् अयस्मान् फलत् ) और मनुष्योंको रोगरहित करे ॥ २ ॥

( विश्वरूपां सुभर्गामुच्छावदामि ) मानकरूपवाली भगवत्प्राणिकी जीवला औषधिसे विषयमे हम उत्तम वपन कहते हैं, स्तुति करते हैं । ( रुद्रस्य अस्तां हेति ) रुद्रके पेश रोगादि शत्रुको ( नः गोभ्यः दूरं नयतु ) हमारे पशुओंसे दूर के जावे, उनके निरोग बनावे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— अरुन्धती नामक औषधी शाय, बैल आदि पशुत्वाद और पक्षी आदि द्विपादोंको निरोग करती है और सुख देती है ॥ १ ॥

अरुन्धती तथा अन्य औषधियां सुख देनेवाली हैं, इनसे गौंमें अधिक दूध देनेवाली बनती हैं । और सब प्राणी निरोग होते हैं ॥ २ ॥

अनेक रगरूपवाली यह जीवन देनेवाली जीवला औषधि स्तुति करने योग्य है । पशुपक्षियों और मनुष्योंको होनेवाले रोग इससे दूर होते हैं ॥ ३ ॥

## अरुन्धती

\* अरु' का अर्थ राशिराज, चन्द्र, इस स्थानके रोग ठीक करनेवाली औषधि 'अरुन्धती' है । इसका व्याकरणका नाम क्या है इसका पता नहीं चलता । खोज करके विश्रय करना चाहिये । इसे गौओंको सिलानेसे गौर अधिक दूध देने लगती है । इसका सेवन मनुष्य कौंसे तो बरमा जैसे रोग दूर होते हैं । 'जीवला' औषधि भी इसी प्रकार उपयोगी है, संभव है कि जीवला, अरुन्धती ये नाम एक ही औषधिके हों । यह खोजना विशय है ।



## काजीकरण

कां. ६, सू. ७२

( कपि — अथर्वहिर । देवता — वेदोऽर्क । )

यथासितः प्रथयते यथा अनु वर्षेपि कृष्णसुरस्य प्रायया ।

एवा ते श्रेय सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गे संसमकं कृणोत ॥ १ ॥

यथा पसेस्तायादुरं वातेन स्पृष्टमं कृतम् । यावत्परंस्वतः पसेस्तावंचे वर्धतां पसः ॥ २ ॥

यावदुज्जीनं पारस्वतं हास्तीनं गार्दभं च यत् । यावदस्यस्य बाजिनस्तावंचे वर्धतां पसः ॥ ३ ॥

अर्थ— ( यथा असितः ) जिस प्रकार बघनहित मनुष्य ( असुरस्य मायया वर्षेपि कृष्णः ) आहुती लावाले देहोंको बनाया हुआ ( यथाऽनु प्रथयते ) अपने बुद्धोंको बचाने करता हुआ उनको पैदाया है, ( एवा ते अयं श्रेयः ) उसी प्रकार तेरे इस शरीरागको ( सहसा अंगेन अर्कं सँ समकं अर्कः कृणोत ) बलते दूसरे सम्म अथर्ववेदके समान ही यह पूजनीय अस्मा पुष्ट करे ॥ १ ॥

( यथा पसः वातेन सापादरं स्पृष्टमं कृतं ) जिस प्रकार शरीराग बलसे सम्मानोपसिद्ध योग्य और पुष्ट किया होता है और ( यावत् परस्वतः पसः ) पूर्ण पुरुषका जैसे शरीराग होता है ( तावत् ते पसः वर्धतां ) वैसे ही तेरा शरीराग भी बढ़े ॥ २ ॥

( यावत् अङ्गीनं पारस्वतं ) जैसे सुष्ट अंगवाले पूर्ण पुरुषका तथा जैसे ( यावत् हास्तीनं गार्दभं अश्वस्य बाजिनः ) हाथी, गधे और घोड़ेका होता है, ( तावत् ते पसः वर्धतां ) वैसे ही तेरा शरीराग बढ़े ॥ ३ ॥

शरीराग सुष्ट और संक्रान्तोपसिद्धे कार्यें छिने योग्य बने । सुष्ट शीलाग न हो, रक्षाग हो ।

## स्त्री-पुरुषकी दृष्टि

कां. ६, सू. ७८

( कपि — अथर्व । देवता — अश्वत्थ, खट्वा । )

तेन भूतेन हविषायमा द्यावतां पुनः । आयां यामस्या आवांसुस्तां रसेनामि वर्धताम् ॥ १ ॥

अमि वर्धतां पर्यस्तामि राष्ट्रेण वर्धताम् । इत्या सहस्रवर्चसेयौ स्वामनुवर्धितौ ॥ २ ॥

अर्थ— ( तेन भूतेन हविषा ) उस किये हुए हविते ( अर्थ पुनः आप्यायतां ) यह लावत पुष्ट हो । ( आयां यामस्यै अवांसुः ) जिस स्त्रीका इसके साथ विवाह हुआ है, ( तां रसेन अमिवर्धतां ) उसको भी यह लाते पुष्ट करे ॥ १ ॥

ये अमती ( पर्यस्ता अमिवर्धतां ) वृष पीकर पुष्ट हो, ( राष्ट्रेण अमिवर्धतां ) राष्ट्रेण साथ बढ़े, ( सहस्रवर्चसा इत्या ) सहस्र वेदोंवाले बनते ( इमौ अनुवर्धितौ स्तां ) ये दोनों प्रतिपत्नी सदा भरपूर हो ॥ २ ॥

भावार्थ— इस वैवाहिक यज्ञसे यह पति बढ़े और जिस कारण यह जो विवाहमें इसे दी गई है, इस कारण विविध रसोंसे यह पति इसकी पुष्टि करे ॥ १ ॥

दोनों प्रतिपत्नी वृष पीकर पुष्ट हो, अपने राष्ट्रेकी उन्नतिऽ साथ उन्नत हो और इनके पास सदा हजारों तेजोवाला धन भरपूर रहे ॥ २ ॥

१३ ( अथर्व. भा ३ गु. हिन्दी )

त्वष्टा जायामञ्जनपक्षरशै त्वां पतिम् । त्वष्टा सहस्रमायूषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

अर्थ—( त्वष्टा जायां अञ्जनपक्ष ) उग्रावस्थिता देवने सोमो उत्पन्न किया है और ( त्वष्टा अस्त्यै त्वां पति ) उसी ईश्वरने इसके लिये तुम्हें पतिको भी उत्पन्न किया है । ( त्वष्टा यां सहस्रं आयूषि ) रचयिता ईश्वर तुम दोनोंको हजारों वर्षोंतक रहनेवाला ( दीर्घ आयुः कृणोतु ) दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— ईश्वरने जिस प्रकार सोम को उत्पत्ति को है, उसी प्रकार सोमके लिये पतिको भी उत्पन्न किया है । यह ईश्वर इनके लिये उत्तम दीर्घ आयु देवे ॥ ३ ॥

### गृहस्थीकी पुष्टि

पति और पत्नी घरमें रहकर एक दूसरेकी पुष्टि और उन्नतिवा विचार करें । कभी घरदरके नानाका विचार न करें । विशिष्ट गुणधर्मोंसे ईश्वरने जैसे सियोंको जैसे ही पुत्रोंको भी उत्पन्न किया है । इसलिये दोनोंको उचित है कि वे परस्परकी सहायता करके परस्परकी उन्नति करनेमें प्रयत्न करें ।

पाय, काकी, लमाख, मस आदि न चोंचें, नपित्त गौक्ष दूध ही आवश्यकतानुसार पीवे, दोनों दूध पीकर पुष्ट हों । अर्थात् दमक करीरकी पुष्टि दूधसे होवे । इसी प्रकार दोनों कोरुख पत्तादि पदार्थोंका उपाहार करें और गुणसाधनोंसे भरपूर हों ।

दोनों कोरुख एक बूझोकी प्यास करने हुए चोंचोयु प्राप्त करें और सुखी हो ।

## श्री-चिकित्स

कांड ७, सू. ३५

( अग्नि-अधर्मा । देवता- गार्ग्यदेवः । )

प्रान्यान्तसपत्नान्सहस्रा सहस्रं प्रायजातान् जातवेदो नुदस्व ।

इदं राष्ट्रं विपुहि सौमगाय विषं एनुमनुं मदन्तु देवाः ॥ १ ॥

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीकृत । तासां ते सर्वासामहवमना विलुप्तवचाम् ॥ २ ॥

परं योनेरधरं ते कृणोमि मा त्वां प्रजामि युन्मोत मनुः ।

अस्वं त्वां प्रजसं कृणोम्यदमानं ते अपिधानं कृणोमि ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अन्यान् सपत्नान् सहस्रा प्रसहस्र ) इससे सपत्नियोंको बढते देवा दे । हे ( जातवेदः ) ज्ञानप्रकाश ! ( अजातान् प्रति नुदस्व ) भागे दोनोंसके सपत्नियोंको भी दूर कर । ( इदं राष्ट्रं सौमगाय विपुहि ) इस राष्ट्रको उत्तम समुचित लिये परिपूर्ण कर । ( विषे देवाः यन् अनुमदन्तु ) सब देव इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥

( याः ते इमाः शतं हिराः ) जो ये सौ नाशिया हैं, ( उत सहस्रं धमनीः ) और इसमें धमनियां हैं, ( ते तासां सर्वासां विले ) जैसी उन सब धमनियोंका द्विद ( यह अहमना अपि अधां ) मैं परपत्ने बन्द करता हूँ ॥ २ ॥

( ते योनेः परं ) तेरे गर्भरक्षणसे करे जो है उनकी ( अयं कृणोमि ) मैं समीप करता हूँ । जिससे ( प्रजा उत मनुः ) संतान अथवा पुत्र ( त्या मा अमिमूत् ) तुझे निरुद्ध न करे । ( त्या अस्वं प्रजसं कृणोमि ) तुझे असुवानी शर्पात् प्राणवाही संतान देवा हूँ और ( महमानं ते अपिधानं कृणोमि ) परपत्ने तुझे दकता हूँ ॥ ३ ॥

## स्त्री-चिकित्सा

इस मूलमें औषधिक्रियाका विषय कहा है। विमलकर योनिचिकित्साका महाग्रन्थ विषय है। मूल अष्टपद है। अथ इसका योग्य स्वीकरण हम कर नहीं सकते। योनिस्थानका सैकड़ों नादियोंका छिद्र बंद करनेका विधान द्वितीय मंत्रमें है। अर्थात् किन्हीं रक्तप्रवाहके रोगको दूर करनेका तात्पर्य यहाँ प्रतीत होता है। रक्तप्रवाहको दूर करनेका साधन (अध्मा) शयन कहा है, यह किम जातिका पराध है, इसकी शीघ्र बंधोंको करनी चाहिये। यह कोई ऐसा पराध होगा कि जिसके बादपर लगानेसे, वहाँसे होनेवाला रक्तप्रवाह बंद होकर रोगीको मारोग्य प्राप्त हो जाता होगा। तृतीय मंत्रमें भी इसी पाठका उल्लेख है। पाठपर इस पंथको ध्यान रखते रक्तप्रवाहके लिए इस मंत्रमें कहा है। यह विधान इराणियों होगा। यदि किसी शायक रक्तप्रवाह रुकना लगानेसे बंद न होगा तो, तो उसपर यह औषधिका पंथ बहुत समय तक बांध देना चाहिये।

चित्रकरीक पराधको छोड़ि शयनर रगजिम्ब वहाका रक्तप्रवाह बंद हो जाता है, यह अनुभूत है। इसी प्रकार यह कोई पराध होगा, जिसे किन्हीं योनिस्थान रक्तप्रवाहको रोकनेवाला यहाँ कहा है।

तृतीय मंत्रमें सन्तान न होनेवाली स्त्री योनिस्थान और

गर्भाशयकी नादियों और धमनियोंका स्थान बन्द देनेका उल्लेख है। इस प्रकार स्थान बन्द देनेमें उभय स्त्रीका सम्मान होता है। स्त्री और पुरुष सन्तान भी होती है। प्रकार धमनियोंका स्थान बन्द करनेपर संतति उस मातृका विरक्त नहीं बल्कि (प्रजा भा माभि भूत्) ऐसा मंत्रका वक्ष्य है। प्रजा अध्मा मत्तान इत्यादि का विरक्तार होनेका स्पष्ट अर्थ यह है कि उस स्त्रीकी संतान न होना। जो शिक्का विरक्तार करता है, वह उषध प्राप्त नहीं जाता। यहाँ मन्त्रान स्त्रीका विरक्तार करती है, ऐसा कहनेमें इस स्त्री सम्मान नहीं होती यह बात सिद्ध है। ऐसी वंशा स्त्री (असू-व प्रजस हृणोमि) प्रजननी प्रय पैदा करती है। पूर्वोक्त प्रकार स्त्रीकी धमनियोंका प्रवाह बन्द करनेसे वंश स्त्री भी प्रजननी प्रय पैदा होती है। 'असू-व' शब्द 'असू-यन्', 'असू-यान्' प्राकृत्या इस अर्थमें पढ़ा है। यहाँ 'अप्रय' ऐसा भी पाठ है। यह पाठ माननेपर 'यन्-यान्' ऐसा अर्थ होगा।

वंश दो प्रकारकी होती है, एक वंश ही नहीं होगा और दूसरी सन्तान होता तो है परंतु मर जाती है। इन दोनों प्रकारकी वंशोंमें योनिस्थानकी नादियोंका स्थान बन्द देनेसे सन्तानोत्पत्तिकी सम्भावना पढ़ी कही है।

## उत्तम गृहिणी स्त्री

कां. ४, सू. ३८

(अभि - वादसायि । देवता - अम्बर, अम्बर ।)

उद्भिन्दुर्वा संजयन्तीमध्मरां साधुदेविनीम् । गृह्णन्ति कृत्वा नामध्मरां तामिह हुवे ॥ १ ॥

विचिन्वतीमाकिन्वन्तीमध्मरां साधुदेविनीम् । गृह्णन्ति कृत्वा नामध्मरां तामिह हुवे ॥ २ ॥

अर्थ—(उद्भिन्दुर्वा साधुदेविनी) जन्तुको उन्नादनेवाली, उत्तम व्यवहार करनेवाली और (संजयन्ती अम्भरां) उत्तम निज प्राप्त करनेवाली समीप स्त्रीका तथा (गृह्णन्ति कृत्वा नामध्मरां तामिह हुवे) अम्भरां नाम उत्तम रूप करनेवाली उस स्त्रीको (इह हुवे) यहाँ बुलाया है ॥ १ ॥

(विचिन्वन्ती आकिन्वन्ती) सम्यक् करनेवाली और सोचनेवाली (साधुदेविनी अम्भरां) उत्तम व्यवहार करनेवाली तथा (गृह्णन्ति कृत्वा नामध्मरां तामिह हुवे) सम्यक् उत्तम रूप करनेवाली उभय समीप स्त्रीको ये यहाँ बुलाया है ॥ २ ॥

भाषार्थ—बाधुको यह करने उत्तम होनेवाली, उत्तम व्यवहारमें दक्ष, विद्वती और व्यवहार सम्यक् योग्य करने उत्तम प्रकारसे सिद्ध करनेवाली स्त्रीको हम यहाँ बुलाते हैं ॥ १ ॥

सम्यक् सोच करनेवाली और सम्यक् समझमें दान करनेवाली, उत्तम व्यवहारदक्ष तथा स्वयं उत्तम योग्य करने उत्तम प्रकारसे करनेवाली स्त्रीको हम यहाँ बुलाते हैं ॥ २ ॥

यायैः परिन्त्यस्याददाता कृतं गृहत् । ता नः कृतानि सीपती प्रहामामेतु मायया ।

सा नः पयस्वत्येतु मा नो जैपुरिदं धनम् ॥ ३ ॥

वा अक्षेर्षु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती । आनन्दिनी प्रमोदिनीमप्सरा तामिह हुमे ॥ ४ ॥

सूर्यस्य रदमीनः पाः संचरन्ति मरीचीर्वा वा अनुसंचरन्ति ।

यासांमृगमो दूरतो वाजिनीवान्तस्यः सर्वान् लोकान्पुषेति रक्षन् ।

स न एतु होममिह जुपाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥ ५ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्म वत्तामिह रक्ष वाजिम् ।

हुमे ते स्तोका बहुला एष्वारिष्यं ते कर्काहं ते मनोऽस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ— ( या अर्थः गृहत् कृतं आददाता ) जो शुच धर्मविधियोंसे रचवाई उत्तम कृष्णकी स्वीकार करती है । ( सा नः कृतानि सीपती ) वह हमारे उत्तम कर्मोंको निरुपम करती हुई ( मायया प्रहां आज्ञेतु ) अपनी बुद्धिसे प्रगतिको प्राप्त करे । ( सा पयस्वती नः मा पतु ) वह भववाणी उत्तम की हमारे पास भाग्य मिलने ( नः इदं धनं मा जैपुः ) हमारा यह धन कोई दूसरे न ले जाय ॥ ३ ॥

( शुचं क्रोधं च बिभ्रती ) लोक और पोषको धारण करती हुई भी ( याः अक्षेर्षु प्रमोदन्ते ) जो अपनी भाँखोंमें आनन्दित वृत्ति रखती है ( तां आनन्दिनीं प्रमोदिनीं मप्सरां ) उस आनन्द और उत्साह देनेवाली सुन्दर कीको ( इह हुमे ) यहां मैं उल्लास हूँ ॥ ४ ॥

( याः सूर्यस्य रदमीनः अनुसंचरन्ति ) जो सूर्यके किरणोंमें अनुकूल स्थित करती हैं, ( वा याः मरीचीः अनुसंचरन्ति ) भयना को सूर्य प्रकाशमें संचार करती हैं, वे क्षियां हमारे पास भाग्य और ( वाजिनीवान् कृपमः ) कृपायुध सह पुरुष ( वृत्ताः सद्यः यासां सर्वान् लोकान् रक्षन् पुषेति ) दूरसे ही तत्काल भिन्न क्षियोंकी सब सम्बन्धी दोषोंकी रक्षा करता हुआ चारों ओरसे आता है । ( सः वाजिनीवान् ) वह बलवादी पुरुष ( इमे होमं जुपाणा ) इस पशुको स्वीकार करता हुआ, ( अन्तरिक्षेण सह मः आ पतु ) आन्तरिक विचारके साथ हमारे पास भाग्य ॥ ५ ॥

हे ( वाजिनीयम् वाजिम् ) बलवान् ! ( अन्तरिक्षेण सह कर्म वत्तां ) अन्तःकरणोंके साथ अपने कर्मव्यवस्थित-वादी बंधोंकी ( इह रक्ष ) यहां रक्षा कर । ( इमे ते बहुलाः स्तोकाः ) ये तेरे आनन्ददायक बहुलते पद्य हैं, ( अर्वाह एहि ) यहां आ, ( इह ते कर्काहं ) यहां तेरी कर्मव्यवस्थित और ( इह ते मनः अस्तु ) ऐसा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

आचार्य— जो स्वर्गके सम्पन्न पुण्यधर्मविधिके अनुसार उत्तम कृष्ण बनती है तथा जो हमारे सब पुण्यकर्मोंको उत्तम व्यवस्थासे करती है, वह अपनी कुशलबुद्धिसे इस स्थानपर प्रगति करे । वह भववाणी की यहां रहे और उसकी व्यवस्थासे यहाँका धन सुरक्षित हो ॥ ३ ॥

लोक और ओषधके मनमें रहने पर भी जो सदा अपने भाँखोंमें आनन्दनी प्रमा दिखाती है, वह आनन्द और संतोष बढ़ानेवाली की यहां भाग्य ॥ ४ ॥

जो सूर्यकी किरणोंमें व्यवहार करती है भयना सूर्य प्रकाशको अनुकूल बनाती है, इस प्रकारकी क्षियोंकी रक्षा दूरसे अर्वाह योग्य अर्वादासे ही सब पुरुष क्षिया करें । वे बलवान् पुरुष अपने कीबन्धका पशु करने हुए अपने हार्दिक विचारसे क्षियोंका आदर करके यहां रहें ॥ ५ ॥

हे बलवान् मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमके साथ बंधियोंकी रक्षा करो, सन्धानकी रक्षा करना आनन्ददायक कर्म है, भाग्य होकर यह कार्य करो, इस कार्यमें तुम्हारा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाञ्छनीयन्कुरी उत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

अयं घातो अयं मृज इह वत्सा नि वीमीयः । यथानाम व ईदमहे स्वाहा ।

॥ ७ ॥

अर्थ— हे (वाञ्छनीयन् वाजिन्) पत्न्यान् । (अन्तरिक्षेण सह फली घातां) अपने आंतरिक शिपारने साथ कर्तव्य शक्तिवानी बशीकी (इह रक्ष) यहाँ रक्षा कर । उत्सम शिपे (अयं घातः) यह घात है, (अयं मृजः) यह गौभोंका स्थान है, (इह वत्सां निवामीयः) यहाँ बहरीको बाधते हैं । (यथानाम वः ईदमहे) नामों अनुसार पुण्यारी स्वरथा हम करते हैं, (स्व-आहा) हमारा साथ तुम्हारे शिपे हो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे बहबाले मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमन साथ गौरी बजकिमेंही रक्षा करो, गौभों और बहबाले शिपे यह घात है, उनके शिपे यह स्थान है, बहबालों यहाँ बाधते हैं और उनमें नामों वत्से उनकी उत्तम स्वरथा करते हैं, उनके शिपे हम आत्मसर्वस्वका समर्थन करते हैं ॥ ७ ॥

## उत्तम गृहिणी स्त्री

### दश स्त्रीका समादर

इस सूत्रमें दश स्त्रीका बहुत ज़ावर किया है। श्री गृहिणी होती हैं, इसलिये घरकी व्यवस्था उत्तम रखना और उस कार्यमें उत्तम दक्षता धारण करना स्त्रीमेंका वर्य बलव्य है। इस विषयक आदेश इस सूत्रमें ज़रूर है, जिसका ध्यान राख करते हैं—

### स्त्री कैसी हो ?

(१) संजयन्ती—उत्तम विप्रश्रव करानेवाली, अर्थात् अपने बहबालको विप्रश्रव दिलावे अर्थात्को मात्तारणी लावेवाली हो । (मं १)

(२) साधुदेविनी—‘दिव’ धातुसे ‘देविनी’ शब्द बनता है। ‘दिव’ धातुसे अर्थ—‘श्रीका, विप्रश्रवणा, ध्यवहार, प्रकाश, आनंद, गति’ इत्यादि हैं। अर्थात् ‘साधु देविनी’ शब्दका अर्थ—‘श्रीका या शेर सेलनेके द्वारा, अपने बहबालकी विप्रश्रव लावेवाली, धरने प्रकाशन समाप्त तेजस्विनी होकर रहनेवाली, स्वय आनंद स्वभावसे रहकर सब लोगोंका आनंद बढानेवाली, सबकी प्रशंसा करनेवाली’ । इस प्रकार ही बनता है। इस अर्थका संबंध ‘संजयन्ती’ शब्दसे अर्थसे साथ है । (मं १, २, ३, ४)

(३) उद्भिदन्ती—अपने मनुष्योंको उन्माद देनेवाली । (मं १) इसका भी धारण ‘संजयन्ती’ शब्दसे समान ही है, विप्रश्रवण और व्यवहार दक्ष होनेसे मनुष्योंको उन्मादना और विप्रश्रवण करना ये कार्य सुखमय हैं । (मं १)

(४) गल्हे एतानि एषामा—‘गल्ह’ शब्दका अर्थ है ‘स्पर्धा’, जीवन एक प्रकाशकी स्पर्धा है, इस स्पर्धामें

‘हृत्’ अर्थात् उत्तम हृत् अथवा उत्तम प्रकाश करनेवाली । ‘हृत्’ शब्दका अर्थ यह है—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु ह्यपरः ।

उत्तिष्ठन्नेता भवति हर्न नं पद्यते चरन् ॥

गर्दर परिय । (मं १ ७ १५)

“सुप्त शयनाका नाम कलि है, निद्रा या आलस्यको लायकेका नाम शयन है, प्रयत्न करनेकी बुद्धिसे उठनेका नाम प्रेता है और हृत् उसको कहते हैं कि जिस अवस्थामें मनुष्य पुरवार्य करता है । “उत्तिष्ठ” शिपे प्रयत्न पुरवार्य करनेका साथ बल है। सोने “मनुष्यका जीवन एक ग्रीष्म मेरु” है । इसमें सोते रहनेवाले लाभ नहीं प्राप्त कर सकते । इस सूत्रमें ‘कलि’ शब्द, प्रेता और हृत्’ के चार शब्द होत हैं । जो शयनका और आलस्य होते हैं उनको हृत् जीवनकी सुख्य ‘कलि’ मिलता है जिसमें हानि है। हानि होती है, जो साधारण पुरवार्यका धारण करते हैं उनको शीघ्र ही लाभ मिलते हैं, परन्तु जो प्रयत्न पुरवार्य होता है वही ‘हृत्’ शब्दक साथ श्रवण करके अधिकसे अधिक जन प्राप्त करता है ।

उत्तम या शीघ्र भेदनेवाले अपने धर्मोंमें जो चार प्रकारका लाभ प्राप्त करते हैं, उन चार/लाभोंके वाचक के चार शब्द हैं । “हृत्, प्रेता, शयन और कलि” ये चार शब्द जसस उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और दानिकारक दानिके मूलक शब्द हैं। बलुत केवमें “अग्निर्मा दीप्यः ।” (मं १ ७ १५ ३३) मुना मग रोच । इस प्रकारक वक्तव्यमें श्रुत है निवेद किया है । इसलिये वैदिक धर्ममें श्रुतकी मर्यादा ही नहीं है । लक्ष्मी वही मनी मनुष्य अपने आनुषंगिक शान्तिका शेष शेष रहे हैं, अपने आनुषंगिक मुना विष रहे हैं अथवा शीघ्र सेठ रहे हैं । इसमें धर्मोंका पर शेष लाभ

कारी होता है और नष्टोंको हाविकारक होता है। इसलिये इस जात्ररूपी यार्थीमें उत्तम रीतिसे यह खेल खेलकर मनुष्य यशक भागी हो, यह उपदेश देनेके लिये रूपकप्रकाश इस सूत्रमें 'रहह, एत, देविनी' ये शब्द या ज्योंमें प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द ज्वेवाणीका अर्थ भी बनाते हैं और इससे उत्तम विजयी व्यवहारका भी अर्थ बताते हैं। यह नीलका निर्देश होते हुए भी सुख भी इससे अपने विजयी जीवन बनानेका योग प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु। 'रहहे कृतानि सुर्वाणि' का यहाँ यह अर्थ है— "इस जीवनरूपी मर्याद क्षेत्रमें जो भी उत्तम पुत्रपार्ष्णी दान प्राप्त करती है।" अर्थात् उत्तम स्त्री यह है कि जो इस जीवनमें पाम पुत्रार्थ प्रयत्न करती है। (म० १, २) म० ३ में 'एत रहहात् आदधाना' पाठ है। इसका भी उक्त प्रकार ही अर्थ है।

(५) विचिन्वन्ती, आकिरन्ती— समझ करनेवाली, दान देनेवाली। समझ करनेका समय योग रीतिसे और वृक्षवासे समझ करनेवाली और दान करनेका समय उदारता पूर्वक दान देनेवाली। स्त्री ऐसी होनी चाहिये कि वह घरमें वृक्षवासे और व्यवसायमें योग उद्योगोंका समझ करे। उद्योग दान करनेके समय उदारताका साथ दान करे। 'विचिन्वन्ती' का मूल अर्थ पुन पुनकर पदार्थोंको प्राप्त करनेवाली और 'विकिरन्ती' का अर्थ 'विलेनेवाली' है। यह समझ करनेका गुण और दानका गुण सीमें इतना हो कि जिससे उसका बुद्धका घन घटे घटे नहीं। (म० २)

(६) या अये परिनुत्यति— जो शुभ विधियोंमें भागदत्ते भागती है अर्थात् जिसका प्रयत्न सदा सर्वदा भागिक शुभ विधि करनेके लिये ही होता है। 'अयः' का अर्थ 'शुभ विधि' है (अयः शुभायुधो विधि)। अमर कोश १११२०) जिसका पूरे कर्म भी उत्तम है और इस लक्षणा भी कर्म उत्तम है। (म० ३)

(७) कृतानि सीपती— जो उत्तम कर्मोंका शुभ वरणा नियमसे करती है। (म० ३)

(८) पयस्वती— वृषवाली, जिसका पाय बखोले देनेके लिये बहुत दृष्ट होता है। (म० ३)

(९) या शुचि क्रोध च विभ्रती अनेषु प्रमोदन्ते— य शोक और क्रोध मानेपर भी भावोंमें प्रसन्नताका तेज प्राण करती है। 'अक्ष' शब्दका अर्थ 'आँख और इन्द्रिय' है। यहाँ इन्द्रिय श्रेय बरेक्षित है। जो स्त्री कान्त कायमें शोक उत्पन्न होनेपर अथवा क्रोध उत्पन्न होनेपर भी रौखी पीठनी या चित्तवाली नहीं है, प्रयुक्त अपने व्यवहारमें, इन्द्रिय श्रेय ध्यातारमें प्रसन्नताको हृदयक दिखाती है यह उत्तम स्त्री है। (म० ४)

(१०) जानन्दिनी, प्रमोदिनी— भाग्य और हर्षसे युक्त। अर्थात् जो सदा भाग्यवन्ति रहती है। और दूसरोंको प्रसन्न करनेका यत्न करती है। (म० ४)

(११) सूर्यस्य रश्मीन् संवरन्ति— जो सूर्य की-र्योंमें अग्रगण्य करती है। 'मरीचीः' अनुसंवरन्ति— जो सूर्य प्रकाशमें अग्रगण्य करती है। अथवा जो सूर्य प्रकाशको अपने अनुवृत्त बनाती है। इससे आरोग्य उत्पन्न होता है। जिसको सूर्यप्रकाशमें व्यवहार करना चाहिये। [यहाँ स्पष्ट होता है कि पूषट या कुर्की पदवि पूर्णतया मर्यादिक है।] (म० ५)

ये व्यासदृष्ट उत्तम और दृष्ट गृहिणी हैं। स्त्री, धर्मपत्नी, गृहिणी धर्म किस प्रकार व्यवहार करे, इस विषय पर ये व्यासदृष्ट उत्तम वदुत उत्तम प्रकाश करते हैं। स्त्री और पुरुष इन दृष्टियोंका विचार करें और इस उपदेशको अपनातेका यत्न करें। इन दृष्टियोंमें शत्रुको उखाड़ देना और विषय प्राप्त करना ये भी दृष्टान्त हैं, जिससे प्रतीत होता है कि जिसमें इतनी क्षमता हो अत्यन्त ही होनी चाहिये कि जिससे वे अपनी रक्षा उत्तम प्रकार कर सकें। भाग्यरक्षार्थ लिये क्षिया दूसरेपर निर्भर न रहें। गृह व्यवहारमें दृष्ट, निर्धर्म और अपने कुलका यश बढ़ानेवाली क्षिया होनी चाहिये। इन दृष्टियोंका विचार करके स्त्री-शिक्षाका भी निश्चय हो सकता है। जिस शिक्षासे स्त्री अक्षर इतनी शुभ विभ्रमिता हो, वह शिक्षा जिसको देनी चाहिये। अथवा जो कहिये कि जिसमें शिक्षासे इन गुणोंका विकास करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

## अप्सरा

इन दृष्टियोंसे युक्त स्त्रीको इस सूत्रमें 'अप्सरा' कहा है। सुदूर स्त्रीको अप्सरा कहते हैं। अप्सरा शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमें यह भी एक अर्थ है। स्त्रीको सुदूरवा इस शब्दसे ध्वनित होती है। शरीरकी सुदूरवा बहुत उत्तम सुख नहीं देती, जिसका गुणको सुदूरवा देता है। इसलिये इन गुणोंसे युक्त सुदूर स्त्रीको अपने घरमें गृहिणी बनानेका सुचना यहाँ दी है।

इसी अर्थवेदमें कहाँ कहाँ पर 'अप्सरा' शब्दका अर्थ रोगोपादक किमि भी है और इस सूत्रमें 'सुदुरी गुणवती सुखी स्त्री' है, यह देखकर पाठक चकित न हो। एक ही शब्दक इतनी प्रकार अनेक अर्थ होते हैं। इसी प्रकार 'असुर' शब्द परमेश्वरराज्य और राक्षस भी वाचक होता है अर्थात् इन शब्दोंके अर्थ इसी प्रकार विभ्रमण होते हैं और यह एक वेदकी रीति ही है।

इस सूत्रके प्रथम पाँच श्लोकोंमें दृष्ट धर्मपत्नीय शुभ

गुणोंका वर्णन है। यह वर्णन जैसे खिचोंके लिए बोधप्रद है उसी प्रकार तुरयोक्त लिये भी बोधप्रद है।

### रश्मिस्नान

पञ्चम मन्त्रमें 'सूर्यरश्मीन् यजुः सञ्चरन्ति। ( म ५ )' सूर्य रश्मियोंका अन्दर अतुल्य रीतिसे सञ्चार करनेकी मृणा दो बार दी है। एक ही विषयको दो बार कहनेसे यह दृढ हो जाता है। अर्थात् खिचोंका सूर्यकिरणोंमें प्रक्षालन करना वेदकी बहुत ही अभीष्ट है। खिचों प्रायः घरेलू व्यवहारमें दूध रहती हैं और घरेलू धातुके बाहरके व्यवहारको करते हैं। इसलिये तुरयोक्तों उनका व्यवहार ही कारण सूर्यरश्मिस्नान होना है। खिचा घात अन्तरक व्यवहार करती है, इसलिये सूर्यरश्मियों के अतुल्यसे परिचित रहती हैं, अतः उनका स्वास्विक लिये इस मन्त्रमें रश्मिस्नानका दो बार उपदेश दिया है।

### स्त्री रक्षा

खिचोंकी रक्षा होनी चाहिये। वह दो प्रकारसे हो सकती है। एक तो पूर्णतः गुणोंका उत्तम विकास खिचोंमें करनेसे खिचा स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो जावेगा और अपनी रक्षा करनेके लिये दूसरी मुखकी और देखनेकी आवश्यकता उनको नहीं रहेगी। तथापि कई असमर्थ हैं कि जिनमें तुरयोक्तों खिचोंकी रक्षा करनी ही पड़ती है। ऐसे समर्थों-  
घासां सर्वान् लोकान् दूरतः रक्षन्  
यातिनीयान् पर्येति। ( म ५ )

'जिन खिचोंका सब लोगोंकी दूरसे रक्षा करना हुआ बलवान् पुत्र भजन करता है।' इसका अभाव यह है कि तुरय खिचोंकी रक्षा करनेका समय मिटाया पूर्वक उचित रीतिसे दूर रहकर रक्षाका कार्य करे। खिचोंमें सुमकर अथवा खिचोंका अन्य प्रकार निरादर करे उनकी रक्षाका प्रयत्न करना योग्य नहीं है। जिस प्रकार बड़े प्रतिष्ठित तुरयोक्तों रक्षा करनेवाले रक्षक उचिन् अन्तर्पर रहते हुए उनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार खिचोंकी रक्षा भी उनको सुयोग्य भाँति करते हुए करनी चाहिये।

इस मंत्रमें और भाग्ये छठे मंत्रमें 'अन्तरिक्ष' शब्द 'अन्तरका भाग' इस अर्थमें आया है। अन्तरिक्ष लोकका ही बंग अपने घरमें अपना अन्तःकरण है। मानो, वहाँका यह शब्द अन्तःकरणका ही वाचक है। वास्तव्य यह है कि जो कुछ कार्य करना हो वह अन्तःकरणसे ही करना चाहिये। ऊपर ऊपरसे किया हुआ कार्य निष्फल होता है और अन्तःकरण लगाकर किया हुआ कार्य सफल होता है। अनुप्यका अशुद्धता सतत बरानों सन्नाहपूर्वक लिये हुए करीने ही होगी, शम्प मार्ग नहीं है।

चरतां इह रक्ष। ( म. ६ )

'पुत्रीकी वहाँ रक्षा कर।' पुत्रीकी रक्षाका उत्तम प्रबंध करना चाहिये। पुत्रीकी रक्षा होनेसे ही भाग्ये वह पुत्री सुयोग्य और सुवीर्य धर्मपत्नी अथवा स्त्री या माता हो सकती है। आनन्दक पुत्रीका जन्म होने ही धरके सभी सदस्य दुःखी होते हैं और प्रायः पुत्रीकी उत्पत्तिका विचार नहीं करते, ऐसे लोगोंकी चेष्टा यह उपदेश अवश्य ध्यातमें धारण करना चाहिये। जगत्की स्थिति और सन्तानपरदा खिचोंका कारण होती है, इसलिये खिचोंकी उत्पत्ति ही सब जगत्का बलवान् होना सम्भव है। माता स्वार्थ भी अधिक प्रेक्ष है, फिर माताका वास्तव्यसे उत्पत्ती रक्षाका प्रबंध उत्तमसे उत्तम होना चाहिये इससे संदेह ही क्या हो सकता है?

सब शब्द त्रिम प्रकार पशुओं के बच्चोंका वाचक है, उत्तम प्रकार मनुष्यों के बच्चोंका भी वाचक है। प्रेमसे पुत्रको बल और पुत्रीको वस्त्रा कहते हैं। इसलिये इस पद्यमें प्रेमका शब्द मनुष्योंकी बच्चोंकी वाचक और सतत मेमका बच्चा शब्द भी आदिशोंकी बच्चोंकी वाचक है। सतत प्रेमसे बच्चेके लिये धारा और उसको उत्तम पोषाकासे बाधनेका प्रयत्न होनेसे वहाँकी बच्चा ही आदिशोंकी बच्ची है, इससे संदेह नहीं है। परंतु यह मेमका बच्चा शब्द मनुष्यों के बच्चोंका भी वाचक मानना योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम मनुष्यों के बच्चे की सुरक्षितताका प्रयत्न करनेसे करता चाहिये, उत्तम प्रकार साथ घाँटे आदि पाले हुए जानवरों के बच्चोंका भी पालनकर प्रबंध उत्तम रीतिसे करना चाहिये। जिस प्रेमसे घाँटे लगे अपने बच्चोंका पालन करते हैं, उसी प्रेमसे पशुमोक्ष सचयोग्य भी पालन किया जाय, यह इस उपदेशका तात्पर्य है। उनका घाँटेका प्रबंध उत्तम हो, उनका जगत्पादका प्रबंध उत्तम हो, उनका रक्षक होना प्रशस्त हो, तथा उनके स्वास्विकता भी उचित प्रबंध किया जाय। वास्तव्य यह कि पाले हुए पशुमोक्षों भी अपनी पालनर समान मानकर उपदेश देना ही प्रेम का वाचक चाहिये।

यह मूल अर्थका प्रेम पशुमोक्ष पशुमोक्षका इस दृष्टिसे उपदेश दे रहा है। प्रेम बिना बेटेगा और पाले और फैलेगा टटला अहितवा भाव विस्तृत होगा। रक्षक धर्मका अग्रिम माध्य पूर्व अहितवा भाव मनमें विपर करना ही है, यह हम रीतिमें निःसंदेह निश्चि होना।

आपका आदर, खिच अन्तर पुत्र गुणोंका विकास करनेकी रीति, खिच रक्षा, पुत्रीकी रक्षा और बच्चोंकी रक्षा आदि अन्तःकरणोंका विचार हम मूलमें आये है।

# सूरिके पतिव्रत्यकी रक्षा

कां. ५, सूक्त १७

( अग्नि-भयोभू । देवता-ब्रह्मणा । )

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मांवरिषा ।

वीडहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमवा क्रतुस्य

॥ १ ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।

अमूर्तिता परुणो मित्र आसीदुग्रिहोता हस्तगृह्णा निनाय

॥ २ ॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवीचत् ।

न दूताय प्रहेया तस्य एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य

॥ ३ ॥

पामाहुस्तारकैषा पिक्वेतीति दुच्छुनां ग्राममपथयमानाम् ।

सा ब्रह्मजाया पि हुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि अश उत्कृषीमान्

॥ ४ ॥

अर्थ— ( अ-कूप-पारः सलिलः ) जगाध समुद्र, ( मातरिषा ) वायु ( वीडहरा- ) बलवान् तेजवाला अग्नि, ( उग्रं तपः ) उग्र तप देवेवला सूर्य ( मयो-भूः ) सुप्त देवेवला अमृता, ( देवीः आपः ) दिव्य जल, ( क्रतुस्य प्रथमजाः ) सत्यका पहिला प्रवर्तक देव ( ते प्रथमा ) ये मुख्य देव भी ( ब्रह्म किल्बिषे अभवन् ) ब्राह्मणके संबंधमें पापक करनेवाले विषयमें गवाही देते हैं ॥ १ ॥

( अहृणीयमानः प्रथमः राजा सोमो ) क्रोध न करते हुए पहिले राजा सोमने ( ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छत् ) ब्राह्मणकी भाषां उसे वापस दी । उस समय ( चरुणः मित्रः अमूर्तिता आसीत् ) वरुण और मित्र ये साथ गए और ( होता अग्निः हस्तगृह्णा निनाय ) होता अग्नि उसका हाथ पकड़ कर ले गया ॥ २ ॥

( ब्रह्मजाया इति चेत् अवीचत् ) यदि वह ब्राह्मणकी पत्नी है ऐसा कहा जाय । ( हस्तेन एव ग्राह्यः अस्या आधिः ) तो उसे हाथसे ही ग्रहण किया जाने, ऐसा इसका आदेश है, ( एषा दूताय प्रहेया न तस्ये ) वह दूतके द्वारा हेताने योग्य नहीं है, ( तथा क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रं ) वही प्रकार ही क्षत्रियका सुरक्षित राष्ट्र भी होता है ॥ ३ ॥

( नियेशी एषा तारका इति ) मार्गको बिखरावे हुई वह ब्राह्मणकी ओर एक ऐसा तारा है ( ग्रामं अपथयमानां दुच्छुनां यां वाहुः ) जिसे ग्राममें ऊपर गिरनेवाली विषय कहते हैं । ( यत्र उत्कृषीमान् शशः प्र अपादि ) जहां जहां उच्छांपुक्त शशकम्पी ब्राह्मणकी शी गिरती है ( सा ब्रह्मजाया राष्ट्रं विदुनोति ) वहां वह राष्ट्रको हिला देती है ॥ ४ ॥

भावाच्य— अग्नि, जलविषय समुद्र, वायु, तेजस्वी सूर्य, सुप्त देवेवला अमृता, तथा अन्य सब देव ब्राह्मणके संबंधमें पाप करनेवाले पारीके पापाचरणके विषयमें सत्य बात स्पष्ट कह देते हैं ॥ १ ॥

सोमने शान्तिदे साथ ब्राह्मणकी ओरको पुन वापस किया, वहां वरुण और मित्र उपस्थित थे और अग्नि भी पानि-ग्रहणके समय होता बना था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणकी पत्नी नहीं करती है वह पानिग्रहण विधिले ही निवारित हुई होती है । वह किसीके दूत द्वारा भगाई जाने योग्य नहीं होती, इसकी सुरक्षासे क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित होता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार आकाशकी तारका और उसका किसी ग्रामपर गिरती है और उसे दुश्मिन् कहा जाता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मणकी भगाई जानेपर राष्ट्रका नाश करती है ॥ ४ ॥



ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भग्न्येक्यद्गम् ।  
 तेन जायामन्विन्नुवृहस्पतिः सोमेन नीता जुह्व न देवाः ॥ ५ ॥  
 देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वं सप्तक्रुपयस्तपसा ये निषेदुः ।  
 भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुष्ठां दधाति परमे ष्योमन् ॥ ६ ॥  
 ये गर्भा अवपद्यन्ते अयद्यच्चापलुप्यते । वीरा ये वृक्षन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ ७ ॥  
 एत यत्पत्यो दश स्त्रियाः पूर्वं अवोवाणाः । ब्रह्मा चेदस्तमर्गहीत्स एव परिवरेक्ष्वा ॥ ८ ॥  
 ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्योऽन वैश्यः । तत्सूर्यः प्रमुवर्चति पृथग्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ — ( ब्रह्मचारी विष वेविषत् चरति ) ब्रह्मचारी प्रजाओंकी सेवा करता हुआ जगन्में संचार करता है इसलिये ( स देवाना एक भग्न भवति ) वह देवोंका एक भग्न बनता है । ( सोमेन नीता जुह्व न देवा ) निम्न प्रकार सोमके द्वारा दाने हुए भग्नसे जुह्न जाहुते द्रव प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( तेन वृहस्पति जाया अभ्याविन्दत् ) उसने द्वारा वृहस्पति भार्या प्राप्त की ॥ ५ ॥

( एतस्या पूर्वं देवा ये अजयन्त ) इसका संबंधम पूर्व दुर्वाज कहा है तथा ( ये तपसा निषेदु सप्त क्रुपय ) जो तप करनेके लिये बैठते हैं उन सप्त ऋषिबंभि भी पैसा हो कहा है कि ( ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा ) ब्राह्मण की भगाई पत्नी भयंकर होती है, वह ( परमे ष्योमन् दुर्घा दधाति ) परम भयम भी दु ख देनेवाली होती है ॥ ६ ॥

( ये गर्भा अवपद्यन्ते ) जो गर्भ गिर जाते हैं ( यत् अगत् य अप लुप्यते ) जो चलनेवाले प्राणी भागका प्राप्त होते हैं, ( ये वीरा मिथ वृक्षन्ते ) जो वीर पक्षम कटते मिश्रते हैं, ( तान् ब्रह्मजाया हिनस्ति ) उनका ब्राह्मणकी भार्या नष्ट होती है ॥ ७ ॥

( एत यत् पूर्वं ब्राह्मणा स्त्रिया दश पत्य ) और जो ब्राह्मणसे पहिले उस कीक दस ब्राह्मण पति हान हैं, बादमें ( ब्रह्मा चेदस्तमर्गहीत् ) ब्राह्मण जब उसका पाणिग्रहण कर लेता है वा ( स एव एकथा पति ) ॥ अथवा ही उसका पति होता है ॥ ८ ॥

( ब्राह्मण एव पति न राजन्य न वैश्य ) उस कीका ब्राह्मण ॥ पति होसकता है, क्षत्रिय भववा वैश्य नहीं । ( सूर्य पृथग्य मानवेभ्यः तत् प्रमुवर्च पति ) सूर्य सूर्यः अनुपपत्ते वह जगत्स हुनर बढ़ता है ॥ ९ ॥

भावार्थ — ब्रह्मचारी विषा समाप्त करनेपर जगत्की सेवा करता हुआ जगन्में संचार करता है, इसलिये उगका वैवर्तन करते हैं । यह उक्त अन्वयावस्था बना रहता है और जिसका की होती है उसे उसका वाग पदुवाता है ॥ ५ ॥

तप करनेवाले ऋषि और सब देवता लोग इस विषयों शारदार कहत भाव हैं कि, इस प्रकार भगाई गईं गुण्यभी भयानक क्षति करती है और दूसरे उक्त लोकमें भी बड़ी पीडा देती है ॥ ६ ॥

राहुने जिस समय भकाओं ब्रह्मणोंकी सृष्टि होती है और प्राणियोंका बहुत संहार होता है और भग्नमें वीर लोग एक दूसरे के सिर कोटने लगते हैं, तब समस्तता आदिसे कि यह पवित्रास गुणरत्निका विष गन् पूर्वोक्त कष्टि कारण ही हो रहा है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणसे भिन्न दस पति कीक होते हैं, परंतु जिस समय ब्राह्मण किसी कीका पाणिग्रहण कर लेता है उस समय उस कीका वही एक पति होता है और कोई उस काका दूसरा पति नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

ब्राह्मण ही एक पति है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं, यह बात सूर्य ही पृथग्योस कहता है ॥ ९ ॥

पुनर्वै देवा अंददुः पुनर्मनुष्या अददुः । राजानः सत्यं गृहाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥	
पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकित्विषम् । ऊर्ध्वं पृथिव्या भस्त्वोरुगाममुपासते ॥ ११ ॥	
नास्य जाया शतधादीं कल्प्याणी तत्पमा श्रये । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १२ ॥	
न विकर्णः पृथुश्चिरास्तस्मिन्नेवमनि जायते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १३ ॥	
नास्य क्षत्ता निष्कप्रीवः सूतानामेवमग्रतः । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १४ ॥	
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १५ ॥	
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डाकं जायते विसम् । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १६ ॥	
नास्य पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या रोहंमुपासते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिरया ॥ १७ ॥	

अर्थ— ( देवाः वै पुनः अददुः ) देवोंने पुनः दिया, ( मनुष्याः पुनः अददुः ) मनुष्योंने पुनः दिया है । ( सत्यं गृहानाः राजानः ) सत्यका पावन करनेवाले राजाओंके भी ( ब्रह्मजायां पुनः ददुः ) माहलग्नीको पुनः देते हैं ॥ १० ॥

( देवैः निकित्विषं कृत्वा ब्रह्मजायां पुनर्दायं ) देव शरादित करके माहलग्नीको पुनः देकर ( पृथिव्याः ऊर्ध्वं भस्त्वा ) पृथिवीके धरका विभाग करके ( ऊर्ध्वार्थं उपासते ) वही शरादा करने योग्य देवताकी उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

( यस्मिन् नाष्ट्रे अभित्या ब्रह्मजाया निरुध्यते ) जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी की बंधनमें डाली जाती है । ( अस्य शतधादीं कल्प्यामी जाया तल्पं न आदायै ) उसकी सौ सताल उपवास करनेवाली कल्प्याकारिणी धी भी बिलोत्तर न लोवे ॥ १२ ॥

जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी बंधनमें डाली जाती है ( तस्मिन् वेधमनि विकर्णः पृथुशिराः न जायते ) उस धरातें धिरीय चुननेवाला और बड़े शिरकाला पुत्र उत्पन्न नहीं होता ॥ १३ ॥

जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी बंधनमें डाली जाती है, ( अस्य क्षत्ता निष्कप्रीवः सूतानां अग्रतः न एति ) उस राहूका और सुवर्णाकार गलेमें घातन करके लड़कियोंके सम्मुख नहीं आता ॥ १४ ॥

जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी बंधनमें डाली जाती है ( अस्य श्वेतः कृष्णकर्णः धुरि युक्तः न महीयते ) उस राहूमें श्वेतमर्कट वेशवर्णका घोडा पुरातें युक्त होकर महत्त्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥

जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी प्रतिबंधित होती है ( अस्य क्षेत्रे न पुष्करिणी ) उसके क्षेत्रमें कमलोंवाले तालाब नहीं होते और ( यिस् आण्डाकं न जायते ) कमलोंमें धीर भी नहीं होता ॥ १६ ॥

जिस राहूमें ब्रह्मजने माहलग्नी की बंधनमें डाली जाती है, उस राहूमें ( ये अस्याः रोहंमुपासते ) जो इसकी दुर्हंतके लिये बैठते हैं तो वे ( अस्मै पृश्निं न दुहन्ति ) इसके लिये दूध नहीं देतीं ॥ १७ ॥

भावार्थ— देव, मनुष्य और सत्त्वयुक्त राजा लोग माहलग्नीकी सुरक्षित सुकके प्रति पहुँचते हैं ॥ १० ॥

जहां निष्पापतासे मुक्तलीको सुरक्षितताके साथ सुकगृहके प्रति पहुँचवा जाता है, वहां भूमिका सत्य ब्रह्मा है और यम कैलास है ॥ ११ ॥

परंतु जिस राहूमें माहलग्नी पर प्रतिबंध लगाये जाते हैं, उस राहूमें मानो कोई सुवर्णकी भी बिलोत्तर पर सुरक्षित नहीं हो सकती ॥ १२ ॥

जिस राहूमें मुहुरतीका अपमान होता है, उस राहूमें वधम पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकते ॥ सुवर्णके आभूषण 'धारण करके कोई वीर यारिकामोके साथ खेल नहीं सकता ॥ श्वामर्क के घोड़ेको कोई जोत नहीं सकता ॥ कमलयुक्त तालाब प्रयुक्त नहीं होते ॥ गीयें दूध नहीं देतीं ॥ १३—१७ ॥

नाश्य धेनुः कल्प्याणी नानुद्धान्तसहते धुस् । विज्ञानिर्गत्रं ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापपा ॥ १८ ॥

अर्थ— ( विजानिः ब्राह्मणः ) सीरहित होकर ब्राह्मण ( यत्र रात्रिं पापपा वसति ) वहाँ रात्रीमें पापवृद्धिमें रहता है, ( अस्त्य ) उसके राष्ट्रमें ( कल्प्याणी धेनुः न ) कल्पान करनेवाली धेनु नहीं होती और ( न अनुद्धान् धुरं सहते ) न वैध धुरको सहता है ॥ १८ ॥

भाष्यार्थ— जिस राष्ट्रमें गुरपत्नीकी भावनामें होती है और उस कारण धर्मपरवी न होनेसे गुरु भक्षण ही धरत होकर शेषकी भावना मनमें धारण करके सोता है, उस राष्ट्रमें यौ भी कल्पान नहीं करती और वैध भी कार्य करनेवाला नहीं होता ॥-१८ ॥

## श्रीके पातियस्यकी रक्षा

### श्रीधारिष्यकी रक्षा

श्रीधारिष्यकी रक्षा करती चाहिये, जिस राष्ट्रमें श्रीधारिष्यकी रक्षा की जाती है और सब पुरुष श्रीके पातियस्यकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस राष्ट्रकी उन्नति होती है । पण्डित जिस राष्ट्रमें श्रीधारिष्यकी रक्षा नहीं होती, वह राष्ट्र पतित होता है । शत्रुओंसे इस राष्ट्रका बड़ा उपदेश है ।

इस धर्ममें ब्राह्मणकी श्री क्षत्रियके द्वारा भगार्ज्जुनसे जिस राष्ट्र पतितने अन्तर्गुप्त है, इसका वर्णन है : ' वर्णानां ब्राह्मणो गुह्यः । ' भगार्ज्जुन सब वर्णोंको विधादान देनेवाला सबका भगवान् भगवा ' गुरु ' ब्राह्मण है । इसलिये ब्राह्मणकी श्री सबकी ' गुरुपत्नी ' होती है । जिस प्रकार ' ब्राह्मण ' सब पुरुषोंको ज्ञानोपदेश देता हुआ सर्वत्र भ्रमण करता है, उसी प्रकार ' ब्राह्मणी ' भी सब क्षत्रियोंको धर्मका उपदेश करती हुई भ्रमण करती है । गुरुपत्नीका यह कर्तव्य ही है । यह कर्तव्य करनेके लिये जब गुरुपत्नी चाहत भ्रमण करती है, तब उसके धरिष्यका रक्षण सब लोग करें । कोई भी उसको न रोकें और न उसका क्रिया प्रहार भ्रमण करें ।

जो गुरुपत्नीका भ्रमण करनेका साहस करें, वे अन्य क्षत्रियोंका भ्रमण करनेसे पीछे नहीं हटेंगे, वह भय नहीं है । पण्डितने सभी क्षत्रियोंके धरिष्यकी रक्षा होनी चाहिये । क्योंकि इसी पर राष्ट्रका गौरव अवलंबित है । जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीका भी धरिष्य अथवा पातियस्य मुण्डिते अत्याचारके कारण मुद्राक्षिप्त नहीं रहता, वहाँकी अन्य क्षत्रियोंकी बुद्धिमान्ता वर्ण ही बचा होकरता है । इसलिये सब क्षत्रियोंके धरिष्यके उत्कर्षकी इच्छा है । इस धर्ममें कहा है कि सब

जनता गुरुपत्नीका मान करें । यह धर्म भाकाशस्त्र धरियोंकी रक्षित पर रक्ष दुष्ठा भक्षण है, इसका स्वरूपकण भय देखिये—

### बृहस्पति और तारा

भाकाशस्त्रमें बृहस्पति नामका एक सिद्धांत है, जिसकी ' गुरु ' भी कहते हैं । वह सिद्धि विचार है, जो शत्रुके समय दीखता है । भाकाशस्त्र नाम पञ्चधर्मोंमें ' तारा भयदा तारा ' नामका एक वक्ष्य है, रूपकसे समझा जाता है कि यह ' गुरु ' की ' धर्मपत्नी ' है, भगार्ज्जुन बृहस्पतिकी पद भार्या है । यही धर्मपत्नी कहनेका शास्त्रमें इतना ही है कि यह बृहस्पति इस भक्ष्यमें बहुत दैतक और इसमें बहुत ममीर रहता है । इसलिये इसकी भावनामें पतिपत्नीकी कल्पना की है । बृहस्पतिकी ' भ्रमणपत्नी ' भी दूसरा नाम वैदिक है । इसका अर्थ ' ज्ञानी गुरु ' होनेसे इसका वर्ण ब्राह्मण माना गया, अर्थात् इसकी धर्मपत्नी होनेसे तारा यी : ब्राह्मणी, गुरुपत्नी अथवा ब्रह्मपत्नी ' कहलाती है । इस प्रकार यही ब्राह्मण धरिष्यकी कल्पना की गई है । यह बृहस्पति देवोंका गुरु है और जब भाकाशस्त्रमें देवोंकी गमा शत्रुके समय लगती है, तब समय यह देव गुरु अपने विराजते हैं और मानों, देवोंको मुख्यत्व सहा देते हैं ।

इसी प्रकार राजा सोम भी देवताधर्मोंके वरिष्ठ होने हैं । इस समय के एक क्षत्रिय राजा माने गये हैं । ये क्षत्रिय राजा अपने राज्याधिकारके प्रदर्शनमें अनेक तारागणोंसे संवर्धित होते हैं अर्थात् अनेक क्षत्रियोंसे सर्वध करते हैं । इस अत्याचारके कारण उनको संप्रयोग होता है । इस भ्रमणकारके कारण राजा सोम ( चन्द्रमा ) क्षीय होते जाने हैं और भ्रमण

वासवाकी राश्रीमे तो इनकी हज्जत बहुत खराब होती है। उस समय कुछ उपचारके करनेपर कुछलभसे कुछ पुष्ट होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें गुरुपत्नी ताराका दर्शन होता है और उसका दर्शन होते ही क्षत्री राजाका मन चञ्चल हो जाता है। राजा इसी प्रकार जब अपने आसनाधिकारके कालमें उन्मत्त होकर गुरुपरमेश्वर गौरव और आदर न करता हुन्ना उसका पर्यण करता है और इस प्रकार क्षत्री पातिव्रत्यका नाश करनेके कारण जो पाप होता है, उस पापके कारण राज्यमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न होता है और सब प्रजा क्रुद्ध हो जाती है। जहां गुरुपत्नीका इस प्रकार अपमान होता है, वहां भग्न क्षत्रियोंके पातिव्रत्यका क्या होता होगा, ऐसी विचार करके भग्नपत्नी राजाका विशेष उपस्थित जयि और सदस्य वेष्ट करने लगते हैं। राजा अपने घनेघने अस्त्र विशेषक जयियों और देवोंकी द्वाजेका पाल करता है, इससे प्रजामें और अधिक क्षोभ उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् राजा सोम देवता है कि उसकी प्रजा प्रतिकूल हो गई है और उसकी राज्यसे पदपुष्ट करनेका विचार करती है, इसपर प्रजाके अधिष्ठ द्वाजेके लिये असुर सेनाकी सहायता लेता है और विदेशी असुर सेनासे अपनी प्रजाको द्वाजेकी चेष्टा करता है। इससे प्रजा और अधिक क्षुब्ध होती है और बड़ी लड़ाई छिन्ती है। दोनों ओरका बहुत संहार होनेपर दोनों पक्षोंकी आपसमें कुछ सहाह होती है। इस संबंधमें अनुसार राजा सोम गुरुपत्नीको वापस कराता है। उस समय परम और मित्र साथ रहते हैं और अग्नि मार्गदर्शक होता है। इस प्रकार चक्रमात्र करके एककर इस ओर चमकता फल इसको मिलता है।

इस समय सोम और ताराके संगमसे पुण्यकी उत्पत्ति होती है। तारा अश्रितापसे मुक्त होकर फिर अपने घर चतुर्धती है। इस प्रकारकी क्या बहुत पुण्यमें है। इस विस्तृत कथाका कुछ मूल इस सूत्रमें दिखाई देता है। जिस प्रकार वृत्रकी कथा मेघ और सूर्य इसपर कथनप्रकार मानकर रची है, उसी प्रकार चंद्रमा, वारक, गुह आदिके ऊपर यह बोधप्रद अर्थकार रचा है। वेदमें इस प्रकारके अनेक अलंकार हैं और उनसे अनेक प्रकारका बोध प्राप्त होता है।

यहां भी यह बोध मिलता है कि कोई राजा अपने अधिकांशकें मरसे उन्मात्त होकर क्षत्रियोंपर अत्याचार न करे, यदि करें, तो उसको परमेश्वरके राज्यमें उन्नी प्रकार दण्ड मिलेगा, जैसा कि सोम राजाको जन्मपर कंडंकित होना पड़ा

था। उसका अपमान हुआ, कंडंकित होना पड़ा, रोनी होना पड़ा, राजविद्रोह हुआ, राज्यमें बहका हो गया और न जाने क्या क्या आपत्तियां आईं। यदि इनके समर्थ सोम राजाकी वह बनवा हुई, तो उसके बहुत छोटे पार्थिव राजाकी क्या भवस्था होगी? और यदि राजाकी ऐसी दुर्दशा होगई तो कोई प्रजापति यदि ऐसा कुकर्म करेगा तो उसकी कितनी दुर्दशा होगी, ऐसा विचार मनमें लाकर हरएक पुरुषको क्षत्री पातिव्रत्यकी रक्षा करनी चाहिए। केवल गुरुपत्नीके ही पातिव्रत्यकी रक्षा यहां अभीष्ट नहीं है, तत्पुत्र संपूर्ण क्षी-जातिके पातिव्रत्यकी रक्षाका यहां उपदेश है। गुरुपत्नी यहां केवल उपरक्षण मात्र है।

जिस राज्यमें क्षत्रियोंकी पातिव्रत्यका अप्प्री प्रकार होती है और छोटे बृहत् उच्च सुखपूर्वक भ्रमण करनेमें क्षीको किसी प्रकार भी अवमाननी संभावना नहीं होती, वह राज्य अर्थव सुरक्षित होता है—

न वृताप प्रवेया तस्य यथा

राष्ट्रं शुषितं क्षत्रियस्य ॥ ( मं ३ )

‘यह क्षी वृत्तके द्वारा ले जाने योग्य नहीं होती, अपात्र किसीका दूत इस प्रकारका भयानक कुकर्म करनेको जिस राज्यमें साहस नहीं कर सकता, वह क्षत्रियका राज्य सुरक्षित रहता है।’ अर्थात् जिस राज्यमें क्षीके ऊपर अत्याचार होते हैं वह राज्य किसी सज्जनके रहनेके लिये योग्य नहीं होता है।

‘जिस राज्यमें क्षत्रियोंपर अत्याचार होते हैं उस राज्यमें सत्सत्ता भी होते है, प्राणी अकारणमें मरते हैं, वीर लोग आपसमें लड़ते मिलते हैं।’ ( मं. ३ ) इसलिये क्षत्रियोंकी सुरक्षितता अवश्य होती चाहिए।

क्षत्रिय, वैश्योंमें नियोगके कारण और ग्रामोंमें पुनर्विवाहके कारण एकके पश्चात् दूसरा इस प्रकार बस एक पतिव्रतीकी संस्था हो सकती है। परंतु मादृशको लिये तो न नियोगकी प्रथा है और ना ही पुनर्विवाहकी प्रथा उचित समझी जाती है, इसलिये मादृशोंका आपसमें साथ एकद्वार विवाह हो अप्प्री तो उसका किसी भी कारण दूसरा पति नहीं हो सकता। क्योंकि वास्तविको भोगमें फंसना नहीं चाहिए। इत्यादि विषय आइये मंथने देखने योग्य है। शेष मंत्रमें छोटी अत्याचार करनेवाले राज्यकी जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन है। इसलिये उनके अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं है।

इस सूत्रमें कई प्रकारके बोध प्राप्त होते हैं। सबसे प्रथम देने योग्य बोध यह है कि राजाको अपना आचरण बहुत ही

निर्दोष रहना चाहिये। बहुत झिंझा करना और दूसरोंकी झिंझोके साथ तुकम करना बहुत ही बुरा है। बहुवर्णी ध्वन-  
हार करनेसे सबसे पहिला भे कष्ट होता है वह मध्यवर्च-नाश  
और वीर्यनाशके कारण क्षयरोग है। शरीरमें जलजक भरपूर  
वीर्य रहता है तबतक क्षयरोग हो ही नहीं सकता। वीर्य  
रोग उत्पन्न होनेसे क्षयरोग होता है और अन्तमें उससे  
मृत्यु निश्चित है। राजका आचार व्यवहार देखकर अन्य  
लोग उसी प्रकार आचार करते हैं, राजाओंके ऊपर यह भारी  
जिम्मेवारी है। राजाके विनाश जानेसे राष्ट्रेके लोग विनाश  
शेते हैं और इस प्रकार राष्ट्रका नाश होता है। बल बड़े  
लोगोंको अपने आचार व्यवहार धर्माजुहुत ही करने

प्राहिये। राजाके काम जो अधिकार होता है उसका प्रभेदमें  
अपने अधिकारका दुरुपयोग करना राजाको योग्य नहीं  
है। प्रजाके सम्बन्धका उपयोग करनेके लिये राजा का  
अधिकार दिया होता है। इस अधिकारका उपयोग अपने  
स्वार्थ भोग भोगनेके लिये करनेसे ही राजा दोषी होता है।  
इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा समझे कि मेरा  
निरीक्षण करनेवाला परमेश्वर है, इसलिये मुझे कोई अपराध  
करना योग्य नहीं है। इस प्रकार विचार करके राजा अपना  
आचार व्यवहार सुधारे और अपने योग्य प्रबंधसे संपूर्ण  
राष्ट्रका उन्नत करे।

## काम

### कां. ९, सूक्त २

( गति - अर्थार्थ । देवता - काम । )

सुप्रसूहन्मृषमं घृतेन कामं शिषामि हविषान्जयेन ।

नीचेः सुपत्नान्ममं पादय त्वममिष्टुतो महता वीर्येण

॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे चक्षुषो न अभिनन्दति ।

तदुप्यज्यं प्रति मुञ्चामि सुपत्ने कामं स्तुतवोदुर्दं मिदेयम्

॥ २ ॥

अर्थ—( सुप्रसूहन्मृषमं कामं ) शत्रुको नाश करनेवाले बलवान् कामको मैं ( हविषा आज्येन घृतेन  
शिषामि ) इति वी आदिसे शिषित करता हूँ । ( महता वीर्येण अभिष्टुतः ) बड़े पराक्रमसे प्रशंसित होता हूँ ।  
( यन्मे मनसो न प्रियं ) जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, ( यन्मे चक्षुषो न अभिनन्दति ) जो मेरी आँखोंको प्रिय  
नहीं है, ( यन्मे यमस्ति ) जो मेरा निरस्कार करता है और ( तदुप्यज्यं ) मुझे आनन्द नहीं देता है, ( तत्  
स्तुतवोदुर्दं मिदेयम् ) वह बुरा मम ( सुपत्ने प्रतिमुञ्चामि ) शत्रु ऊपर भेजता हूँ । ( अहं कामं स्तुत्या ) मैं कामकी स्तुति  
करके ( उहं मिदेयं ) उन्नत होता हूँ ॥ २ ॥

( यन्मे मनसो न प्रियं ) जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, ( यन्मे चक्षुषो न अभिनन्दति ) जो मेरी आँखोंको प्रिय  
नहीं है, ( यन्मे यमस्ति ) जो मेरा निरस्कार करता है और ( तदुप्यज्यं ) मुझे आनन्द नहीं देता है, ( तत्  
स्तुतवोदुर्दं मिदेयम् ) वह बुरा मम ( सुपत्ने प्रतिमुञ्चामि ) शत्रु ऊपर भेजता हूँ । ( अहं कामं स्तुत्या ) मैं कामकी स्तुति  
करके ( उहं मिदेयं ) उन्नत होता हूँ ॥ २ ॥

मायार्थ—काम ( संकल्प ) बड़ा बलवान् है और शत्रुका नाश करनेवाला है, उसको यन्मे शिषित करना  
चाहिये। वह बड़े वीर्यसे प्रशंसित होने पर शत्रुओंको नीचे गिराता है ॥ १ ॥

जो मेरे मन और अन्य इंद्रियोंको प्रिय है, जो मुझे आनन्दित नहीं करता, जो मेरा निरस्कार करता है, वह बुरा  
स्वप्न मेरे शत्रुको भेज दे। मैं इस संकल्पशक्ति द्वारा उन्नत होता हूँ ॥ २ ॥

द्रुष्यन्त्य काम दुरि॒तं च॑ कामा॒ग्रज॒स्वाम॒स्वगता॒मवर्ति॑म् ।

उ॒ग्र ई॒शानः॑ प्र॒ति मुञ्च॑ तस्मिन्त्यो अ॒स्मर्त्तव्यं॑ गृह॒णा चि॒किंत्सात्

॥ ३ ॥

नुद॒स्त्रं काम॑ प्र पु॒दस्त्र॑ कामा॒गतिं॑ यन्तु मम॑ ये स॒पत्न्याः ।

तेषां नु॒त्तानां॑ म॒ध्या तमां॑स्यग्ने वा॒स्तूनि॑ निर्दे॒ह त्वम्

॥ ४ ॥

सा ते॑ काम॑ दु॒हिता धेनु॑रुच्यते या॒माहु॒र्वाच॑ क॒रयो॑ वि॒राव॑म् ।

तया॑ म॒पत्न्या॒न्परि॑ वृ॒ह॒ग्नि॒धे मम॑ प॒र्यन्ता॒न्प्राणः॑ प॒ञ्चवो॑ जी॒रनं॑ वृ॒णक्तु॑

॥ ५ ॥

काम॑स्येन्द्र॒स्य वरु॑णस्य रा॒ज्ञो वि॒ष्णोर्व॑र॒तेन॑ स॒वितु॑ स॒वेन॑ ।

अ॒ग्नेर्हो॒त्रेण॑ प्र पु॒दे स॒प॒त्नाछ॒म्भोव॑ ना॒वंमु॒द्रके॑षु धी॒रः

॥ ६ ॥

अ॒श्व॒क्षो वा॒जी मम॑ का॒मं उ॒ग्रः कु॑णोतु म॒ह्यम॑स॒पत्न॑येव ।

वि॒श्वे दे॒वा मम॑ ना॒थं य॑वन्तु स॒र्वे दे॒वा ह॒व॒मा य॑न्तु म इ॒मम्

॥ ७ ॥

अर्थ— हे ( उग्र काम ) स्वप्न काम । वृ ( ईशान तस्मिन् प्रतिमुञ्च ) स्वप्न कामी है, अथ ( द्रुष्यन्त्य ) दृष्ट स्वप्न, ( दुरितं च ) पाप और ( अग्रजस्ता ) सन्तान न होना, ( य-स्व-गता ) निर्धन अवस्था, ( अगतिं ) आपत्ति इन सबको, जसपर छोट कि ( य अन्धमन्य गृहणा चिकित्सात् ) जो हम सबको पापमय विपत्तिमें डालनेका विचार करता है ॥ ३ ॥

हे काम ! ( पुदस्त्र ) उनको दूर कर, हे काम ! उनको ( प्रपुदस्त्र ) हटा दे, ( ये मम सपत्न्या ) जो मेरे शत्रु हैं वे ( अगतिं यन्तु ) आपत्तिको प्राप्त हों । हे अग्ने ! ( अध्यामा तमासि मुञ्चामा ) पाप अन्धकारमें भेजे हुए उन शत्रुओंके ( वास्तूनि त्य निर्देह ) पतोक हटा दे ॥ ४ ॥

हे काम ! ( या धेनु ते दुहिता उच्यते ) यह धेनु तेरी दुहिता बही खली है, ( या वज्र विद्याय याच जाहु ) जिसको करि होय विशेष तेजस्वी वाणी कहते हैं । ( ये मम ) जो मेरे शत्रु हैं उन ( सपत्न्या सया परि वृहग्नि ) शत्रुओंको उससे दूर हटा दे । ( एनाम् ) इन शत्रुओंको ( प्राण पशय जीवन् परि वृणक्तु ) प्राण, पशु और जातु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

( इय ) नेते ( उदकेषु शशी धीर नाथ ) जल धर्मवान धीवर नीकाको धरता है, उसी प्रकार ( कामस्य इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञ ) काम, इन्द्र वरुण, राजा और ( विष्णो वरेन सवितु सवेन ) विष्णु वर और सवितानी प्रणाल सया ( अग्ने होत्रेण ) अग्नि हवनमें मैं ( सपत्न्या प्रपुदे ) शत्रुओंको दूर करता ॥ ६ ॥

( उग्र वाजी नाम ) गवासी बन्वान काम ( मम अश्वक्ष ) मेरा अश्विहाता है । वृ ( मय असपत्न पद कुणोतु ) मुझे सन्तानहित करे । ( विष्वेदेवा मम नाथ यवन्तु ) सब देव मेरे नाथ हों, ( सर्वे देवा मे इम हय आगन्तु ) सब देव मेरे इस इन्द्रके स्वागमें आवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ— हुए स्वप्न, पाप, सन्तान न होना, आपत्ति, आपत्ति आदि सब हमारे उन शत्रुओंको प्राप्त हों, जो कि हमें पापमूलक विपत्तिमें डालनेका विचार करते हैं ॥ ३ ॥

काम हमारे शत्रुओंको दूर हटा देवे, उन शत्रुओंको विपत्ति भेरे और जब न शत्रु गणा अन्धकारमें पड़े, सब अग्नि उनको पतोक हटा देवे ॥ ४ ॥

सब करि लोक कहते हैं कि बन्धो कामकी शत्रुता है । इस वाणीक द्वारा हमारे सब शत्रु दूर हों और उनको प्राण, पशु और जातु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अनाथ समुद्रमें नौकाको घावर होय बढाते हैं, उसीप्रकार देवोंकी शक्तिसे मैं शत्रुओंको इस अवसागरमें प्रेरित करता हू ॥ ६ ॥

बड़वान, गवासी काम मेरा अश्विहाता है । यह मुझे शत्रुहित करे, देव मेरे स्वामी बनें, सब देव मेरे पक्षमें आवें ॥ ७ ॥

इदमाज्यं धृतवञ्जुषाणाः कामज्येषा इह मादयधम् । कृष्यन्तो मत्तमसपुत्रमेव ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरयं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान्मम पादपायः ।

तेषां पद्मानामप्या तमांस्त्रे वारुण्यनुनिर्देह त्वम् ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्त्रे पादपैनाम् ।

निनिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमञ्चनहंः ॥ १० ॥

अवधीत्कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकन्मलमेघतुम्

महं नमन्तां प्रदिशुधर्तस्रो महं पदुर्बाधितमा वहन्तु ॥ ११ ॥

तेऽधराजः प्र ध्वन्तां छिन्ना नीररं धन्वनात् । न सायकप्रशुतानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

अर्थ— हे ( कामज्येषा ) कामको भेद माननेवाले सब देवो ! ( इहं धृतवात् आज्यं जुषाणाः ) इस धृतवज्जुषणका सेवन करते हुए ( इह मादयधम् ) महा इतिष्ठ हो जाओ और ( महं असपत्नं एव कृष्यन्तः ) मुझे शत्रुद्वेष करो ॥ ८ ॥

हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! हे काम ! तुम सब ( सरयं हि भूत्वा ) समान स्वरूप पदवेगाने होकर ( मम सपत्नान् नीचैः पादपायः ) मेरे शत्रुओंको नीचे गिराओ । ( तेषां पद्मानां तमांसि पद्मानां ) उस शत्रुओंके गाल भण्डकारमें पकनेपर दे जाते ! ( त्वं वारुणि अनुनिर्देह ) तू उरुं परकोई नष्टा दे ॥ ९ ॥

( ये मम सपत्नाः ) ओ मेरे शत्रु हैं, उनका ( रं जहि ) दू नाश कर । तथा ( पद्मान् अन्धा तमांसि अप पादय ) इनको गहरे भण्डकारमें गिरा दे । वे ( सर्वे निनिन्द्रियाः अरसाः सन्तु ) सब इन्द्रियरहित और रसहीन हों, ( ते कतमञ्चन अहं मा जीविषुः ) वे एक भी दिन जीवित न रहें ॥ १० ॥

( मम ये सपत्नाः ) मेरे जो शत्रु हैं उनका ( कामः अवधीत् ) शक्ती देव दिया है । क्या उसने ( महं पदुर्बाधितं उरुं लोकं अकतम् ) मुझे बहनेके लिए विस्तृत स्थान दिया है । ( धतसः प्रदिशः महं नमन्तां ) चारों दिशाएँ मेरे सम्मुख गन्त हों । ( पद उर्वीः महं धृते आग्रहन्तु ) छ भूमिके विभाग मेरे वाम पृष्ठके आगे ॥ ११ ॥

( धन्वनात् छिन्ना मीः इय ) धन्वन्ते कटी हुई नीकाके समान ( ते अधराजः ॥ पतन्तां ) वे भंगी बहते जायें । ( सायकप्रशुतानां पुनः निवर्तनं न अस्ति ) शायकसे अर्थात् शत्रुओंका फिर पास आना नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

भाषार्थ— काम जिनमें भेद है ऐसे सब देव इस वस्त्रे भाज्य इस द्रव्य द्वारा मार्तण्डित हो और मुझे शत्रुद्वेष करने दें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र, अग्नि और काम ! तुम सब मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दो । वे भण्डकारमें जायें और पद्मान् अग्नि उनमें धोको जलावे ॥ ९ ॥

मेरे शत्रुओंका दू नाश कर । वे गाल भण्डकारमें गिर जायें । वे सब इन्द्रियहीन और रसहीन बनें और एक दिन भी जीवित न रहें ॥ १० ॥

इस कामसे मेरे शत्रु दूर हो जायें और मुझे बड़ा कार्यक्षेत्र प्राप्त हुआ । चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग मेरे सामने गन्त हो चुके हैं और सब पृथ्वी मेरे अधिकास्में आ चुकी है ॥ ११ ॥

धन्वन्ते रहित हुई नीका जैसे महासागरमें शिथिल चारों ओर बरकती है, वैसे ही मेरे शत्रुओंकी भ्रान्त लहरणा हो गई है, जो अब कभी अपनी पूँछे शिथिल नहीं आ सके ॥ १२ ॥

अग्निर्वयं इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेमम्	॥ १३ ॥
असर्ववीरश्वरतु प्रणुतो द्वेष्टो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।	
उत पृथिव्यामव स्पन्ति विद्युत उग्रो वो देवाः प्र मृणत्सपत्नान्	॥ १४ ॥
च्युता चेयं वृहस्पच्युता च विद्युद्विमर्ति स्तनयितृन्श्च सर्वान् ।	
उग्रसादिरयो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान्नुदतां मे सहस्वान्	॥ १५ ॥
यसै काम शर्म शिवरूपमुद्भु मष्ट्य वर्म विरतमनविष्यार्घ्यं कृतम् ।	
तेन सपत्नान्परि वृद्धिं ये मम पथैर्नान्प्राणः पञ्चशो जीवने वृणक्तु	॥ १६ ॥
येन देवा असुरान्प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनघमं तमो निनाय ।	
तेन स्थ काम मम ये सपत्नान्स्तानस्माल्लोकात्प्र शुदुस्व दूरम्	॥ १७ ॥

अर्थ— (अग्निः यवः) अग्नि इत्यनेनात्मा है, (इन्द्रः यवः) इन्द्र हयनेवात्मा है और (सोमः यवः) सोम भी इत्यनेनात्मा है । (यवयावानः देवाः) इत्यनेनात्मा भी इत्यनेनात्मा देव (यमं यावयन्तु) इस शत्रुको दूर करें ॥ १३ ॥

(प्रणुतः द्वेष्टः) भगवान् दुष्ठा शत्रु (असर्ववीरः) सर्ववीरोंसे रहित होकर (स्वानां मित्राणां परिवर्ग्यः) अपने मित्रोंके द्वारा भी त्यागा हुआ (श्वरतु) विचरे । (उत पृथिव्यां विद्युतः अयस्पन्ति) और प्रकाश देनेवाली बिजलियां पृथ्वीपर आगम्य । (यः उग्रः देवः) आपका यह प्रतापी देव (सपत्नान् प्रमुणत्) शत्रुओंका नाश करे ॥ १४ ॥

(च्युता च अच्युता च इयं वृहती विद्युत्) विचलित अवस्था अविललित हुई बड़ी विद्युत् (सर्वान् स्तनयितृन् च विमर्ति) सब गर्वना करनेवालोंको धामन करके है । (द्रविणेन तेजसा उग्रान् सहस्वान् आदिश्वः) धन और तेजसे साथ उग्रको प्राप्त होनेवाला बळवान् सूर्य (मे सपत्नान् नीचैः शुदतां) मेरे शत्रुओंको नीचोंको और भगाये ॥ १५ ॥

हे काम ! (यत् ते शिवरूपं उद्भु) जो तेरा तमोमें भोजने रहक वरूह शक्तिवाला (विततं प्राप्त यमं) कैलाश हुआ शानका कवच (अमतिघ्नायार्थं कृतं) शाकंसे वेधनेके अयोग्य और (शर्म) सुखदायक है (तेन) बलसे (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् परिबृद्धिं) शत्रुओंको दूर कर । (एनान् प्राणः पञ्चशो जीवनं परि वृणक्तु) इनको प्राण, पशु और आयु छोड़ दें ॥ १६ ॥

(येन देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिससे देव शत्रुओंको दूर करि रहे, (येन दस्यून इन्द्रः अधमं तमः निनाय) जिससे शत्रुओंको इन्द्रने गहरे अन्धकारमें डाल दिया, हे काम ! (तेन) उससे (मम ये सपत्नाः) मेरे शत्रु हैं (तान् सपत्नान्) उन शत्रुओंको (त्वं अस्मात् लोकात्) तू इस लोकसे (दूरं प्रमुदस्व) दूर भगा ॥ १७ ॥

भावार्थ— सब देव मेरी सहायता करें और मेरे शत्रुओंको भगा दें ॥ १३ ॥

हमारे पराक्रमसे भगाये ॥ शत्रु अब चारों ओर भटक रहे हैं, न उनके पास कोई धीर है, न उनके पास कोई मित्र है, न उनके लिये कोई परिवार रहा है । सब देव मेरी सहायता करें और शत्रु नष्ट हों ॥ १४ ॥

यह विद्युत् और सूर्य अर्थात् इनमें जो देव हैं वह मेरे शत्रुओंको दूर भगा दें ॥ १५ ॥

इस कामका बड़ा सारक्षक अनामक कवच है वह सब सुलोक देनेवाला है । इसको मैं पहनता हूँ, जिससे शत्रुके शस्त्र मेरा देव नहीं कर सकेगा और सब शत्रु प्राण, पशु और आयुसे रहित हो जायेंगे ॥ १६ ॥



यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनमथ तमो वपाधे ।

तथा त्व काम मम ये सपन्नास्वानस्मान्लोकात्प्र पुंस्व दूरम्  
कामो जज्ञे प्रथमो जैन देवा औषुः पितरो न मर्त्याः ।

॥ १८ ॥

तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इच्छामि  
यावती चापापृथिवी वरिष्णा वाचदापः सिप्पदुर्पावदुषिः ।

॥ १९ ॥

तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इच्छामि  
यावतीदिशः प्रदिशो विपृचीर्यापेतीराक्षा अभिचक्षणा दिवः ।

॥ २० ॥

तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इच्छामि  
यावतीभृक्षा जृषुः कुरुरवो यावतीर्वपा वृक्षसुपर्णो यमूनुः ।

॥ २१ ॥

तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इच्छामि

॥ २२ ॥

अर्थ— (यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त) जिस रीतिसे देवोंने असुरोंको हथवा (यथा इन्द्र दस्यूनमथ तमो वपाधे) जिस प्रकार इन्द्रने शत्रुओंको गहरे जन्मकारमें बसा, (तथा त्व काम) उस प्रकार है काम । तु (मम ये सपन्ना) मेरे जो शत्रु हैं (तान् अस्मात् शोकात् दूर प्रपुदस्व) उनके इस शोकसे दूर हटा दे ॥ १८ ॥

(काम प्रथम जज्ञे) काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ (देवा एन न भाषु) देवोंने इसकी प्राप्त नहीं किया और (पितर मर्त्या न) पितरोंको और मर्त्योंको भा वह प्राप्त नहीं हुआ । (तत स्य ज्यायान् असि) अब तु कुछ है और (विश्वहा महान्) सदा महान् है । है काम । (तस्मै ते इत् नम इच्छामि) उस तुझे मैं नमस्कार करता हू ॥ १९ ॥

(यावती वरिष्णा चापापृथिवी) जिसकी विस्तारसे ही और पृथिवी बसी है, (यावत् आप सिप्पदु) जहातक तक फैला हुआ है, (यावत् आशि) जहातक अभि फैली हुई है, (तत स्य ज्यायान् असि) उससे भी दू बड़ा है और (विश्वहा महान्) सदा बड़ा है । है काम । (तस्मै ते इत् नम इच्छामि) उस तुझे मैं नमस्कार करता हू ॥ २० ॥

(यावती दिश प्रदिश विपृची) जहातक दिशाएँ और उपदिशा फैली हुई हैं और (यावती दिव आभि चक्षणा भाशा) जहातक पुच्छोंका प्रकाश फलनेवाली दिशाएँ हैं, (तत त्वे०) उससे भी दू बड़ा और सदा महान् है, है काम । मैं उस तुझको नमस्कार करता हू ॥ २१ ॥

(यावती भृक्षा जृषु) जिसने औरें अनितया, (यावती कुरुरव यथा) वया जन्म करनेवाले काटे और (वृक्षसुपर्ण यमूनु) वृक्षपर चढ़नेवाले सर्प हैं (तत त्वे०) उससे तु बड़ा और सदा बड़ा है, है काम । अब तुझे मैं नमस्कार करता हू ॥ २२ ॥

भाषार्थ— जिस रीतिसे देवोंने असुरोंका और इन्द्रने दस्युओंका पराभव किया, उस रीतिसे मैं अपने शत्रुओंका इस स्थानसे भगा दूँगा ॥ १८-१८ ॥

काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । देव, पितर और मर्त्य उसका पक्षार्थ ग्रहण हुए । अब काम सबसे बड़ा है । इस विषे मैं उसको नमन करता हू ॥ १९ ॥

जिसका पृथ्वीका विस्तार है, जहातक तक फैला हुआ है, जहातक प्रकाशका व्याप्ति है, दिशाएँ जहातक फैली हुई हैं वस्तुपरी जहातक दोबले हैं उन सबकी व्याप्तिस कामकी व्याप्तिका बराबर हैं ॥ २०-२२ ॥

१५ (अपर्व भा ३ वृ हिन्दी)

ज्यायांनिमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायांन्तमुद्रादसि काम मन्यो ।

तत्स्त्वर्मेसि ज्यायांनिमिषदा मुद्रास्तस्मै ते काम नम इत्कुणोमि

॥ २३ ॥

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाभिः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।

तत्स्त्वर्मेसि ज्यायांनिमिषदा मुद्रास्तस्मै ते काम नम इत्कुणोमि

॥ २४ ॥

यास्ते जिवास्तन्वः काम मद्रा यामिः सत्यं सर्वेति यद्वृणीमे ।

तामिष्टमस्मौ अभिसंविद्यस्वान्यत्र पापीरपं बेश्या धियः

॥ २५ ॥

अर्थ— हे काम ! हे ( मन्यो ) उल्गाह ! तू ( निमिषतः ज्यायान् ) एक बारनेपालोंसे पडा, ( तिष्ठतः ज्यायान् ) खरनेपालोंसे भी पडा और ( समुद्रात् असि ) समुद्रसे भी पडा है । ( तत् त्वं० ) उनसे तू पडा और पडा श्रेष्ठ है, हे काम ! उत तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

( यातः य न कामे न आप्नोति ) वायु भी कामसे नहीं प्राप्त कर सकता, ( न यमिः, सूर्यः न उत चन्द्रमाः ) अग्नि, सूर्य और चन्द्र इन्हींसे भी कोई उसको प्राप्त नहीं कर सकता । ( ततः त्वं० ) उनसे तू पडा और पडा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥

हे काम ! ( याः ते दिवाः भद्राः तान्यः ) जो तेरे कल्पलकरी और हितकर शरीर है, ( यामिः ) जिनसे तू ( यत् सत्यं भवति ) जो सचा होता है उसका ( वृणीमे ) स्वीकार करना है । ( तामिः त्वं अस्मान् अभि सं विदस्य ) उनसे तू हम सबसे प्रविष्ट हो और ( पापीः धियः ) पाप बुद्धियोंको ( अन्यत्र अपदेशाय ) दूर कर ॥ २५ ॥

भाषार्थ— भाँसें मूरनेराष्टे जालिपोंसे कामकी शक्ति बढ़कर है, ज्विर पदामोंसे भी बढ़कर है, धृष्टी, आप, तेज, वायु और साफासे भी बढ़ी है । सूर्य, चन्द्रसे भी बढ़कर है अर्थात् यह काम अपनेसे बढ़कर है ॥ २३-२४ ॥

अथ हे काम ! शुभ, अशुभ और सत्य जो है वह मेरे पास प्राप्त हो और पापबुद्धि मुझसे दूर चली जाय ॥ २५ ॥

## काम

### संकल्पशक्ति

इस शृण्णे ' काम ' शब्द है जिसकी संक्षेपके विषयका साफक नहीं है, अतिसु संक्षेपशक्तिका साफक है । यह काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है ऐसा इस शृण्णे निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

कामो जग्रे प्रथमः । ( मं ६९ )

' काम सबसे पहिले प्रकट हुआ । ' यही बात वेदोंमें अन्यत्र कही है—

कामस्तदग्रे समयस्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदानीत् । ( अ. १-११२९१० )

' आरम्भमें मनका पीछे ब्रह्मनेत्रका काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । इस प्रकार कामकी उत्पत्ति सबसे प्रथम कही है । उपनिषद्में भी देखिये—

कामः संकल्पो विचिकित्सा ध्याऽध्या धृतिरधृति ह्रीर्धौर्मोरेरेवेतस्त्वै मन एष ॥ ( मं. उ. १५/३ )

काम एष यस्यात्यतने हृदयं लोको मनो ज्योतिः० य एषांयं काममयः पुरुषा० । ( मं. उ. ३/१५११ )  
कामोऽवर्षापीडाहं करोमि, कामः करोति, कामः पर्त्ता, कामः पररयिता ॥ ( महाभारत उ. १८/३ )

' काम, संकल्प, विचिकित्सा, ध्या, अध्या, धृति, अधृति, ह्री ( लज्जा ), धौ ( बुद्धि ), धौ ( भय ) यह सब अपनेमें रहते हैं । काम सबसे आधारास्वात है, उसका निम्न भाग है और हृदय शोक है । यह मनुष्य काममय है अर्थात् जिस प्रकारके वृत्तोंके काम होते हैं वैसे यह बनता है । काम ही सबका रत्न है, ही रत्नो नहीं है । कामों

“ प्रतापी, यत्नवान् काम मेरा अभ्यस्त है वह मुझे शत्रु-  
रहित करे । ” अर्थात् यह काम किंदा सकल्य द्वारा एक मनुष्य-  
का अधिष्ठाता है । अधिष्ठाता यह होता है जो संतत साध  
रहता हुआ निरीक्षण करता है । यही कामका कार्य है । यह  
मनुष्योक्त वास्तव्यनका अधिष्ठाता होकर निरीक्षण करता है ।  
यदि अधिष्ठाता शिक्षित हो, तो सन्धी सहायता होती है  
और यदि बुरा हो तो हीन प्रवृत्ति करता है, उसे मारने के  
जाता है, जिसका परिणाम घनाक होता है । इमलिये प्रार्थना  
की है कि—

विभ्ये देवा मम मायं भवन्तु ।

सर्वे देवा मम हयमाप्सन्तु ॥ ( म ७ )

“ सब देव मेरे रक्षक बनें, सब देव मेरे यत्नको स्वीकार  
करें । ” इस प्रकार देवोंके द्वारा मेरी सहायता होती रही,  
तो निःसन्देह मेरी कामना सुदृढ़ होगी और मेरी उन्नति  
होगी । अतः यह मेरी प्रार्थना सब देव मुझे और रक्षा कर  
मेरी रक्षा करें । “ काम-अपेक्षा : ” देवोंमें काम ही घेष्ठ है,  
सब देवोंमें यह काम देव सबसे श्रेष्ठ है । क्योंकि जगत्  
रचना करनेमें सब देव सहायता करते ही हैं, परन्तु परमात्मका  
काम-संकल्प-अवतक जाग नहीं उठता, अवतक कोई अन्ध  
देव रचनाके कार्यमें अपने भापको नहीं लगा सकते । यह  
कामका सहाय है । मनुष्यके व्यवहारमें भी ऐसिये सबसे  
पढिसे सकल्य होता है, उपभार इतिवन्तावाग होते हैं ।  
इसीलिये सर्वत्र कामके-संकल्पके सहायका वर्णन किया है ।  
पौराणिकता परमार्थमें तथा कामका अन्व देवोंके साथ  
सम्बन्ध होता है । यह देखनेसे ही सब देवोंमें काम श्रेष्ठ कैसे  
है यह जान सकते हैं—

परमात्मा	जीवात्मा
काम, सकल्य [ अधिष्ठाता ]	काम, सकल्य
महत्तम	हुदि
अनुमा	मम
इन्द्र	चित
सूर्य	नेत्र
वायु	प्राण
अग्नि	वाणी
जल	वीर्य

इस रीतिसे सब देवोंका अधिष्ठाता काम है । जरीयमें जो  
देव हैं वे विश्व देवोक्त सुसम अंग ही हैं, अतः दोनों व्यक्तियों  
देवोंका सम्बन्ध एक जैसा ही है । जैसा संकल्प होता है वैसे

अन्वान्य देव शरीरमें तथा अन्तरमें अनुपलब्धतासे कार्य करते  
हैं । अपने शत्रु जान पावे और जगत्में मेरी विजय होवे ।  
यही सबकी मानना सर्वसाधारण होती है अतः कहा है—

अथधीतकामो मम ये सप्ततनाः ।

उरं लोकप्रकटनमहामेघतुम् ।

मार्ता नमन्तां प्रदिशध्वतस्त्रो,

मह्यं पद्वीर्ध्वतमा यहन्तु ॥ ( म. ११ )

“ संकल्प ही शत्रुमोक्ष नाश करता है, संकल्प ही रुद्धि  
करनेके लिए निस्तुत कार्यक्षेत्र देता है । सकल्यसे चारों  
दिशाएँ मनुष्यके सामने खल होती हैं और संकल्पसे ही सब  
भूतदेवोंसे वृत्तादि अन्नभोग प्राप्त होते हैं । ” यदि किसीने  
संकल्प ही इस प्रकार नहीं किया तो उसका क्या होगा ?  
पाठक विचारकर देखिये जगत्में देखें, तो उनको स्पष्ट दिखाई  
देगा कि इस जगत्के व्यवहारमें सर्वत्र ‘ काम ’ की ही प्रेरणा  
हो रही है, हर एक कर्मक पीछे काम होता है, यदि किसी  
स्वात्पर काम न रहे तो कोई कार्य चलता नहीं । अतः इस  
मंत्रमें कहा है कि जो भी कुछ इस जगत्में बन रहा है काम-  
की प्रेरणासे ही बन रहा है ।

पूर्वोक्त कोटकमें दर्शाया है कि अग्नि, इन्द्र, सोम ममया  
अथ देव ये सब कामकी प्रेरणासे कार्य कर रहे हैं, उनके प्रति-  
विधि चानी, मन और चित्त ये भी संकल्पसे ही अपने अपने  
कार्यमें प्रेरित हो रहे हैं । इसी रीतिसे ( अग्निः ययः ) अग्नि  
शत्रु दूर करता है, अन्व देव जो शत्रुमोक्षो दूर करते हैं, यह  
सब पूर्वोक्त रीतिसे ही समझना चाहिये ।

कामका कवच ।

यह काम एक ऐसा कवच पहनता है, कि जिससे शत्रुके  
भाषात उसके ऊपर लगते ही नहीं, देखिये—

यत्ते काम शर्म विचरुधमुद्भु प्रह

वर्म चित्तमवतिव्याप्य कृतम् । ( म. ११ )

“ यह कामका एक विश्लेषण कवच है जो तीनो केन्द्रोंमें  
उत्तम रहता है, इससे ( मन्-अतिव्याधि ) शत्रु  
सर्वोत्तम प्रहस अपने ऊपर नहीं लगता । यह ( प्रहस यर्म )  
ज्ञानका कवच है ।

यह काम ( प्रथमः जज्ञे ) सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ,  
इसके बाद अन्य देव व्याग बने, अतः अन्व देव इसको प्राप्त  
कर नहीं सकते । जो हमारे पूर्व हो हमारे बर्ष हुए हों, उनको  
हम कहापि प्राप्त नहीं कर सकते । इसी प्रकार कामकी  
उत्पत्ति पहिले और अन्य देवोंकी बाद होनेसे अन्व देव

कामको शांत नहीं कर सकते वह विष्णुल ठीक है। अतः कहा है—

कामो जसो प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्याः ।  
ततस्त्वमसि ज्येष्ठान् विज्वहा महान् । ( म १९ )

“ काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ अतः इसको देव शांत नहीं कर सकते और पितर तथा मर्या भी शांत कर नहीं सकते, क्योंकि पितर और मर्या तो देवोंक पश्चात् उत्पन्न हुए हैं। इस कारण यह काम सबसे बड़ा और समर्थ है, इसकी श्रेष्ठता यदा सर्वदा स्थिर रहनेवाली है। अतः इसका सामर्थ्य सर्वोपरि है। ”

भाग्य मंत्र १। से २४ तक कात मन्त्रोंमें काम सबसे श्रेष्ठ है वही बात कही है। सर्वसे यदाप्येते, स्थिरचरोते, अपांत स्वसे यह श्रेष्ठ है। पथमद्व्युत्थेते, सप प्राणिपेते,

सूर्य और अन्द्रमाते तथास्य अन्येति, काम श्रेष्ठ और समर्थ है। अतः अन्तिम मन्त्रमें प्रार्थना यह है कि—

यास्ते शिवास्तन्य त्रय भद्रा  
याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।  
तमिधूवमसौ जमि संदिशस्व  
अभ्यव पापीत्य वेदाया धियः । ( म २५ )

“ काममें अंदर जो शुभ और कल्याणकारी भाग है, जिससे सब मजबूती मिलि होती है, वह शुभ भाग मेरे अंदर प्रविष्ट होऊय और जो पतका भाग है, वह दूर हो। ” सकम्प यह बड़ी भारी शक्ति है, उससे पाप भी होया और पुण्य भी। इस कारण मनुष्यको उचित है कि वह तथा शिवसंस्कार करे और पाप ब्रह्मणसे दूर रहे। इस रीतिसे मनुष्य अपनी कामना शुभ कराके सदा ब्रह्महिंसे पथसंस्कार कर सकता है।



## कामाग्निका शमन

कां. ३. सू. २१

( कवि - वसिष्ठ । देवता - अग्नि । )

ये अग्रयो अस्त्वन्तर्धे वृषे ये पुरुषे ये अश्मसु ।

य आग्निवेद्योषधीषो यनुस्पतीस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १ ॥

यः सोमे अन्तयो गोष्वन्तर्धे आग्निवेद्यो षषीःसु यो वृषेपु ।

य आग्निवेद्यो द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २ ॥

अर्थ— ( ये अग्रयो अस्तु अन्तः ) जो अग्निवा अग्न अन्तर है, ( ये वृषे ) जो वेदमें और ( ये पुरुषे ) जो इक्षवमें हैं, तथा ( ये अश्मसु ) जो शिलाओंमें हैं और ( यः ओषधीः यः यः यनुस्पतीन् आग्निवेद्यो ) जो औषधियोंमें और यनुस्पतियोंमें प्रविष्ट हैं ( तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु ) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होने ॥ १ ॥

( यः सोमे अन्तः, यः गोषु अन्तः ) जो सोमके अन्तर, ( ये गोमोष अन्तः, यः वयः सु, यः सुगेषु आग्निः ) जो पक्षियोंमें और जो मृगोंमें प्रविष्ट हैं, ( यः द्विपदः यः चतुष्पदः आग्निवेद्यो ) जो द्विपद और चतुष्पदोंमें प्रविष्ट हैं, ( तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु ) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होने ॥ २ ॥

भारार्थ— जो अग्नि अग्न, वेध, प्राणियों अथवा मनुष्यों, शिलाओं और औषधिवनस्पतियोंमें हैं, उनको वसुधागां लिये यह हवन है ॥ १ ॥

जो अग्नि सोम, गौर्ध, पक्षियों, मृगोंमें तथा द्विपद चतुष्पदोंमें प्रविष्ट हुआ है उसके लिये यह हवन है ॥ २ ॥

य इन्द्रेण सूरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदुग्धम् ।

यं जोह्वीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ३ ॥

यो देवो विश्वाद्यमु काममाहुर्प दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।

यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ४ ॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।

वृक्षोषसे यक्षसे सनुतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ५ ॥

उक्षाभाय वक्षाभाय सोमपृष्ठाय वेधसे । वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ६ ॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्वाननुसंचरन्ति ।

ये दिक्ष्वंशन्तये याते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ७ ॥

अर्थ—(यः देवः विश्वदुग्धम् उत वैश्वानरः) जो देव सबको जलनेवाला परतु सबका घालक अथवा दितकारी और (इन्द्रेण सूरथं याति) इन्द्रके साथ एक रथपर बैठकर चलता है तथा (यं पृतनासु सासहिं जोह्वीमि) युद्धमें रथपर देनेवाला होनेके कारण जिसको मैं मार्पना करता हूँ (तेभ्यः १०) उन अग्निपौरि लिये यह हुवन होवे ॥ ३ ॥

(यः विश्वाद् देवः) जो विश्वका मशक देव है, (यं उ कामं आहुः) जिसको 'काम' नामसे पुकारते हैं, (यं दातारं प्रतिगृह्णन्तं आहुः) जिसको देनेवाला और लेनेवाला भी कहा जाता है, (शक्र धीरा शक्रः परिभू अश्वभ्यः) जो इन्द्रमान, शक्तिमान, समर्थ करनेवाला और न दबनेवाला है (तेभ्यः १०) उन अग्निपौरि लिये यह हुवन होवे ॥ ४ ॥

(यथोक्ता भौवनाः पञ्च मानवाः) तेरह भुवन और पांच मनुष्यजातियाँ (यं त्वा मनसा होतारं अभि संविदुः) जिस बुद्धिके मन्त्रसे होता अर्थात् राजा मानते है, (यथोषसे) तेरहवीं (सनुतापते) मरुत्मापी और (यक्षसे) यक्षरही बुद्धे और (तेभ्यः १०) उन अग्निपौरि लिये यह हुवन होवे ॥ ५ ॥

(उक्षाभाय वक्षाभाय) जो बेल और मौक लिये अन्न होता है और (सोमपृष्ठाय) औषधियोंको पीवकर होती है उस (वेधसे) जमीन लिये और (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यः १०) सब मनुष्योंके दितकारी भेद उन अग्निपौरि लिये यह हुवन होवे ॥ ६ ॥

(ये दिवं अन्तरिक्षं अनु, विद्युतं अनु संचरन्ति) जो सुरोक, मेतरिक्ष लोक और विद्युत्के अन्तर भी अनुसृत-ताले संचार करती है, (ये दिक्षु अन्तः, ये याते अन्तः) जो दिशाओंके अन्तर और वायुके अन्तर हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्निपौरि लिये यह हुवन होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—सबको जलाने मन्त्र करनेवाला परतु सबका संचालक जो यह देव इन्द्रके साथ रथपर बैठकर प्रमण करता है, जो युद्धमें रथपर प्राप्त करनेवाला है उस अग्निपौरि लिये यह हुवन है ॥ ३ ॥

जो अग्नि विश्वका मशक है और जिसको 'काम' कहते हैं, जो देने और लेनेवाला है, और जो बुद्धिमान, समर्थ, सर्वत्र जानेवाला और न दबनेवाला है, उस अग्निपौरि लिये यह हुवन है ॥ ४ ॥

तेरह भुवनोंका प्रदेश और मनुष्योंकी प्राणल अग्निपादि पाँच जातियाँ इसी अग्निपौरि मन्त्रसे दाता मानती हैं, तेरहवीं, सत्वदात्रिके मौक, यक्षरही इस अग्निपौरि लिये यह अर्पण है ॥ ५ ॥

जो बेल और मौक लिये अन्न होती है, जो औषधियोंको पचती है, जो सबका घालक या उपपादक है, उस सब मानवोंमें भेदरूप अग्निपौरि लिये यह अर्पण है ॥ ६ ॥

सुरोक, अन्तरिक्ष, विद्युत्, दिशाएँ, वायु आदिमें जो रहती है उस अग्निपौरि लिये यह अर्पण है ॥ ७ ॥

हिरण्यपाणिं सधितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मिश्रमग्निम् ।

विश्वान्देवानक्षिरसो हवामह इमं क्रुष्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥ ८ ॥

शान्तो अग्निः क्रुष्याच्छान्तः पुरुषरेपणः । अथो यो विश्वदावर्षीस्तं क्रुष्यादमशीशमम् ॥ ९ ॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उचान्शीर्वरी । वातैः पर्जन्य आदुग्निस्ते क्रुष्यादमशीशमन् ॥ १० ॥

अर्थ— ( हिरण्यपाणिं सधितारं ) सुवर्णपूषण हाथमें धारण करनेवाले सधिता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मिश्र, अग्नि, विश्वेदेव और क्षिरसो ( हवामहे ) हम प्रायश्चा करते हैं कि वे ( हम क्रुष्यादं अग्निं शमयन्तु ) इस मांसभोजी अग्निको शांत करें ॥ ८ ॥

( क्रुष्यादं अग्निः शान्तः ) मांसभक्षक अग्नि शांत हुई, ( पुरुषरेपणः शान्तः ) मनुष्यविक्रयक अग्नि शांत हुई ( अथ यः विश्वदावर्षः ) और जो सबको जलनेवाली अग्नि है ( तं क्रुष्यादं अग्नीशमम् ) उस मांसभक्षक अग्निको मैंने शांत किया है ॥ ९ ॥

( ये सोमपृष्ठाः पर्वताः ) जो वनस्पतियोंको पीठपर धारण करनेवाले पर्वत हैं, ( उचान्शीर्वरीः आपः ) ऊपरको जानेवाले जो जल हैं, ( वातः पर्जन्यः ) वायु और वर्षण ( आदु अग्निः ) तथा जो अग्नि है ( ते ) वे सब ( क्रुष्यादं अग्नीशमन् ) मांसभोजी अग्निको शांत करते हैं ॥ १० ॥

भाष्यार्थ— सधिता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मिश्र, अग्नि और मागिरस आदि सब देवोंकी हम प्रायश्चा करते हैं कि ये सब देव इस मांसभक्षक अग्निको शांत करें ॥ ८ ॥

यह मांसभोजी पुरुषनाशक और सब जगत्को जलनेवाली अग्नि शांत हुई है, मैंने इसको शांत किया है ॥ ९ ॥

सोमादि वनस्पतियोंसे युक्त पर्वत, ऊपरकी गतिसे चलनेवाले जलप्रवाह, वायु और वर्षण तथा अग्नि ये सब देव मांसभक्षक अग्निको शांत करनेमें सहायता देते हैं ॥ १० ॥

## कामाग्निका शमन

### कामाग्निका स्वरूप

इस सूक्तमें कामाग्निकी शान्त करनेका विधान है । कामको अग्निही उपना देकर अथवा अग्निको शांत करनेके बगैरके बहाने कामको शांत करनेका वर्णन इस सूक्तमें बड़ा ही मनोरंजक है । यह सूक्त ' बृहस्पतिगण ' में गिना गया है, सधमुष कामका शमन करना ही ' बृहस्पति ' स्थापित करती है । यह सबसे बड़ा कठिन और कष्टसाध्य कार्य है । इस सूक्तमें जो अग्नि है वह ' ब्रह्माद ' अर्थात् कदा मांस खानेवाला है । साधारण लोग समझते हैं कि इस सूक्तमें मुझे खानेवाले अग्नि का वर्णन है, परन्तु यह सब ठीक नहीं है । कामरूप अग्नि का वर्णन इस सूक्तमें है और यही कामरूप अग्नि बड़ा मनुष्यभक्षक है । जिसका अग्नि जलाती है उसमें साहसगुना यह काम जलाता है । इस सूक्त

में अग्निका स्वरूप बड़े ही निश्चित करते हैं । इसका स्वरूप बतानेवाले जो अनेक शब्द इस सूक्तमें हैं वे इस प्रकार हैं—

१ यो देवो विश्वाद् ये उ काम आदुः । ( मं ४ )— जो अग्निदेव सब जगत्को जलानेवाला है और अग्निको ' काम ' कहते हैं ।

इस मंत्र भागमें स्पष्ट कहा है कि इस सूक्तमें जो अग्नि है वह ' काम ' ही है । काम निर्देह करनेके कारण इस विषय में किसीको संशय करना भी अब उचित नहीं है । तयारि निश्चयकी दृष्टांत लिये इस सूक्तमें अथ मंत्र भाग भी अब देखते हैं—

२ ब्रह्माद अग्निः । ( मं ९ )— मांसभक्षक अग्नि ।

३ पुरुषरेपणः अग्निः । ( मं ९ )— पुरुषका नाशक ( काम ) अग्नि ।

पंचम मंत्रमें 'अथोद्ग श्रुतेर्मे श्रुतेवाले पंचजन इसके मनसे मानते हैं, दाता कदकर पृथगे हैं' ऐसा कहा है। संपूर्ण जनता कामकी ही उपासना करती है यह बात इस मंत्रमें कही है। कई विरक्त सेंट मन्त्र इस कामको अपने आशीर्वाद करने परमात्मोपासक होते हैं, अन्य संसारी जन तो कामको ही अपने सर्वस्वका दाता मानते हैं। इस प्रकार हुए कामने ही सब जगत्पर अपना अधिकार जमावा है। जनता समझती है कि (वचैः) देव, (यशः) यश और (सुनुते) सत्य आदि सब कामके प्रभावसे ही सबक और सुखक होते हैं। सब लोग जो संसारमें भग्न हैं, इसीकी प्रेरणासे चले हैं माने इसीके वेगसे घूम रहे हैं। जो सत्पुरुष इसके वेगसे झुक होकर इस कामको, जोत ठेका है वही सेंट होता हुआ मुक्तिका अधिकारी होता है। इसके वेगसे पूट जाया ही मुक्ति है।

### इन्द्रकी रथ

तृतीय मंत्रमें कहा कि 'यह काम इन्द्रके रथपर बैठकर (इन्द्रेण सारथ्यं याति) जाता है।' (मं. ३) यह देखना चाहिये कि इन्द्रका रथ कौनसा है? 'इन्द्र' नाम जीव-त्माका है और उसका रथ यह सारी ही है। इस विषयमें उपनिषद्का वचन भी है—

आत्मानं रथिनं विधि शरीरं रथमेव तु ।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥

(उप. उ. ३.१६)

'आत्मा रथमें बैलगाड़ा है, उसका रथ यह शरीर है और इन्द्रियाँ उस रथके घोड़े हैं, जो विषयमें घूमते हैं।' इस पंक्तिसे इन्द्रके रथका पता लग सकता है। इस उपनिषद्वाक्यके 'इन्द्रिय' पदका अर्थ 'इन्द्रकी शक्ति' है। हमारी इन्द्रियें इन्द्रकी शक्तियाँ ही हैं। अतः आत्मा ही इन्द्र है।

इस इन्द्र अर्थात् आत्माके अतीतस्वी रथमें यह 'काम' बैठा है—

यः इन्द्रेण सारथ्यं याति । (मं. ३)

'जो कामरूप अग्नि इन्द्रके रथपर बैठकर जाता है' इस वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हुआ ही होगा। इस शरीरमें जैसे जीवात्मा है अथवा इन्द्र है, उसी प्रकार काम भी है, दोनों इसको चलातेवाले हैं। स्पष्ट दृष्टिसे देखा जाय तो काम अर्थात् इन्द्र ही इसको चला रही है। इस प्रकार इस शरीरमें कामकी स्थिति है।

कामरूपी यह अग्नि प्राणियोंके शरीरमें बस रही है इसको

अधिक प्रज्वलित करना उचित नहीं, मनुष्य इसको जहाँतक शक्य हो सकना है, उतना प्रयत्न करके शांत करनेका ही उपाय करना चाहिये। इसको शांत करनेका उपाय अब देखिये—

### काम-शान्तिका उपाय

तृतीय मंत्रमें इस कामाग्निको शान्त करनेका विधान है—

शान्तो अग्निः कृत्याच्छान्तः पुरुषरेपथः ।

अथो यो विभ्वदान्यस्तं कृत्यादमशीशाम् ॥

(मं. ५)

'यह मांस भक्षक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, यह मनुष्यकी वासक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, जो यह सबको जलानेवाली कामाग्नि है इसको मैंने शान्त किया है।' इस मन्त्रमें इस कामाग्निको मैंने शांत किया ऐसा कहा है, इस विधानसे शान्त करनेका कुछ उपाय यह निःसन्देह सिद्ध होता है। यदि एक मनुष्य इसको शान्त कर सकता है तो अन्य मनुष्य भी उसी मार्गसे चलकर अपने शरीरमें लटकी रहनेवाली इस कामाग्निको शान्त कर सकते हैं। हरएकके शरीरमें यह कामाग्नि लटकी है इसलिये हरएकको चाहिये कि यह प्रयत्न करके इसको शान्त करनेका उपाय करें और आत्मिक शान्ति प्राप्त करें। इसको शांत करनेका उपाय जहम मंत्रके भागमें और दूसरे मन्त्रमें कहा है—

'दिरन्ध्रपाणि सविता, इन्द्र, वृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव, आक्सिर इनका हम पजन करते हैं, ये हम मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें।' (मं. ८)

'सोमवह्नी मित्रपर उसकी है वे स्वर्ग, ऊपर गमन करनेवाले अन्न, वायु, पृथ्वी और अग्नि ये इस मांस भक्षक कामाग्निको शान्त करें।' (मं. १०)

इन दो मंत्रोंमें जो मार्ग कहा है यह कामाग्नि शान्त करनेवाला है। ये मन्त्र उपाय बनानेके कारण सज्जन मनुष्यके हैं और इनका इसी कारण अधिक मरन करना चाहिये। इन दो मंत्रोंमें जो उपाय कहे हैं, उनका क्रम पूर्वक चिन्तन अब करते हैं—

१ सोमवह्नीः पूर्वतः—मित्र पूर्वतोपर सोमवह्नी अथवा अन्ध्याय लोपधियाँ उमरती हैं वे पर्वत कामाग्नि शान्त करनेमें सहायक होते हैं। इसमें पहली बात तो यह है कि उन पर्वतोंकी शान्त ऋतवायु कामको भटकने नहीं देती है। शीत प्रदेशकी अथवा उष्ण प्रदेशमें कामाग्निकी ज्वाला शीघ्र और अधिक बलक उठती है। उष्ण देशके लोग भी इसी

कारण छोटी भावमें कामाग्निसे उद्दीप्त होते हैं। इस विषयमें दूसरी बात यह है कि सोम आदि शीतवीर्यवादी औषधियां सेवन करनेमें भी कामाग्नि की उष्णता प्राप्त होती है। सोम-प्राणाग्नौ पर्यगन्तिस् हिमावप्यग्ने है, यहाँ ही विषय औषधियाँ होती हैं। योनी छोटा उनका सेवन करते स्थिरवीर्य और दीर्घजीवी होते हैं। हीमरी भाग इसमें यह है कि योनी पहाड़ियोंमें प्रतोभन कम होगे हैं, यहाँ उँचे अत्यधिक नहीं होते, इसलिये भी कामकी उत्पत्ति नहीं होती। यही यहाँ नहीं होती है। इत्यादि अनेक उदाहरण पहाड़ोंक भाग सम्बन्ध रखते हैं। ( मं १० )

२ उत्तानशीयरीः प्रापः— जग भी कामाग्नि का समान करनेवाला है। जग उष्ण स्थान, जगजगमें तेजसे उत्पन्न में समशीतोष्णता होती है जिससे कामकी उत्पत्ति नष्ट होती है, शीत जगमें अल्प शरीरका स्वाप करना, जिसको कठि-रवान कहते हैं, मध्यम भावना में बड़ा लाभदायक है। गुह इन्द्रियके आसवापनका प्रदेय सृष्टि के समय, वा विष समय कामका उत्प्रेक हो उस समय जो देते प्रकाश भावनामें बड़ी महाप्राप्ति होती है। इस प्रकार विविध रीतिसे जग की सहायता कामाग्नि की प्राप्ति करनेमें काममें होती है। ( मं १० )

३ पुरुषः— मेघ वर्षापूर्व वृष्टिका जग इस विषयमें कामकारी है। वर्षामें सदैव होकर उस आकाशमार्गसे जगसे स्वाप करता भी बड़ा उत्तम है। हमको शरीरकी उत्पत्ति सम होगयी है। हमके अतिरिक्त वृष्टिकृत वीर्यसे भी शरीरके उत्पत्ति होकर हट जाते हैं और कामकी प्राप्ति होनेमें सहायता होती है। ( मं १० )

४ अग्निः— आग, अग्नि यह अत्युच्च शरीरको अधिक उष्ण बनादेवाली है। जो कोमल प्रवृत्ति अत्युच्च होते हैं यदि उनकी अग्निसे साथ साथ करनेका अवसर मिल जाए तो उनके शरीरकी उत्पत्ति करनेमें उनका शरीर अधिक लाभ होता है और उत्तम कारण उनको शीतवीर्यकी बाधा होगयी है। इसलिये हम प्रकाश अत्यधिक कोमलता शरीरसे दृढी आदि है। अग्नि प्रयोगसे ही हट एककी है। हीम हवन करते समय शरीरको अग्नि का स्वाप लगाता है, अल्प प्रकाशसे भी शरीरको अग्नि की उत्पत्ति की भावना रखनी आदि है, जिससे किनी समय आग साध काम करना पड़े, तो उस उत्पत्ति को शरीर सह सकता है। अग्नि की उत्पत्ति का दानिकारक परिणाम शरीरपर न होनेसे लिये इस प्रकार शरीरको सहनशक्ति पुष्प बनाता आदि है। ( मं १० )

५ वातः— वायु भी इस विषयमें लाभदायक है। शुद्ध वायु सेवन तथा शुद्ध वायुमें भ्रमण करनेमें यह लाभ है। प्राणायाम करना भी वायुसेवनका एक लाभप्रद रीति है। प्राणायाम करनेसे शीतवीर्य नष्ट होते हैं। प्राणायाम अल्पमत्ते अत्युच्च शरीर शीत हो जाता है। इस कारण वायुको कामाग्नि का प्राप्त करनेवाला कहा है। जो अल्पमें वायु है यही शरीरमें प्राप्त है। ( मं १० )

६ स्रविता— सूर्य भी इस विषयमें बड़ा सहायक है। जो वात अग्नि के विषयमें कही है, यही सूर्य के विषयमें भी सत्य है। कोमल प्रवृत्ति में अत्युच्च सूर्यप्रकाशमें पुष्पने विरतमें शीतवीर्य होजाते हैं, यह इस कारण होता है कि सूर्य प्रकाश सहन करनेका शक्ति अल्पमें नहीं होती। अत्युच्च सूर्यका प्रकाश शरीर स्वापके लिये बड़ा लाभकारी है। सूर्य प्रकाशमें बड़ा जीवन है। शीत शीत सूर्य प्रकाशसे अपने शरीरको उत्पत्ति करनेसे शरीरकी सहनशक्ति बढ़ती है और शरीरमें बहुत जीवन रस संचारने लगता है, आरोग्य बढ जाता है और शरीरकी उत्पत्ति कामकी उत्पत्ति शरीरमें होनेकी संभावना कम होती है। इस प्रकारकी सहनशक्ति बढ़नेका प्रत्यक्ष कारण है, जो प्रत्यक्ष प्राण कालों कोमल सूर्य प्रकाशमें प्राप्त करना आदि है और पश्चात् बड़े प्रकाशमें भ्रमण करना आदि है। यह सूर्यप्रकाश बड़ा ही लाभदायक है। मंत्रों 'हिरण्यपाणिः स्रविता' ये शब्द बड़ा बलशाली के सूर्य ही वाचक हैं, सोनेके रंगके समान रंगवाले किरणों-वाला सूर्य प्राण और साथ ही होता है। ( मं ६ )

७ यदधः— यदधका स्वाप समुद्र है। इसलिये समुद्र-जान इस विषयमें कामकारी है ऐसा हम यहाँ समझ सकते हैं। इसमें जग प्रयोग भी भासता है। ( मं ६ )

८ मित्रः— सूर्य, इस विषयमें पूर्व स्थलमें कहा ही है। यदि 'हिरण्यपाणिः स्रविता' एवंकहा है तो उसके आदिके सूर्यका नाम मित्र है। पूर्वोक्त प्रकार यह भी लाभदायक है। मित्रकी प्रेम इष्टिका उत्पत्ति होनेसे यो गर्भात् जगत्की और प्रेम पूर्व मित्र रहित देखनेसे भी बड़ा लाभ होता लाभ है। ( मं ८ )

९ दिग्देवाः— अल्पमत्त देवताओंके विषयमें भी इसी प्रकार विचार करने आवश्यक आदि है और उनसे अपना लाभ लेना आदि है।

१० बृहस्पतिः— यह ज्ञानका देवता है। ज्ञानसे भी कामाग्नि प्राप्त करनेमें सहायता मिल सकती है। बृहस्पति



नाम 'गुरु' का है। गुरुसे ज्ञान प्राप्त करने उस ज्ञानके गुरुसे अपनेको बचाना चाहिये अर्थात् कामाग्निका संपन्न करना चाहिये। यहाँ जो ज्ञान आवश्यक है वह शरीर-शास्त्र, मानस-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र इत्यादिका ज्ञान है। साथ ही साथ भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग आदिका भी ज्ञान होना चाहिये।

( मं. ८ )

११ अद्गिरसः—अगरसकी विद्या जाननेवाले कवि। शरीरमें सर्वत्र संचार करनेवाला एक प्रकारका जीवन-रस होता है, उसकी विद्या जो जानते हैं, उससे यह विद्या प्राप्त करते उस विद्या द्वारा कामाग्निका संपन्न करना चाहिये। योग साधनमें इस विषयमें अनेक उपाय बड़े हैं, उनका भी यहाँ अनुसंधान करना चाहिये। ( मं. ८ )

१२ इन्द्रः—इन्द्र नाम जीवतमा, राजा और परमात्माका है। इन्द्र कीर्तिका भी उपयोग कामाग्निको प्राप्त करनेमें बहुत है। जीवतमाका आग्निष्ठ-फल बढ़ाकर शुभसंस्कारोंके द्वारा अपने अंदरके काम विकारका संपन्न करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह अपने राज्यमें प्रत्यक्ष और संपन्नका वायुमंडल पठाकर कामाग्निको प्राप्त करनेके

लिए सबको प्रेरणा दे। राज्यमें अध्यापकवर्ग, संरक्षक और अधिकारी वर्ग प्रत्यक्ष ही रहकर राज्य चलानेका उपदेश देते हैं। यदि राज्यमें अध्यापकगण पूर्ण प्रत्यक्षकारी होंगे और राज्यशासनके अन्य ओहदेदार भी उच्चम प्रत्यक्षकारी होंगे तो उस राज्यका वायुमंडल भी प्रत्यक्षपर्यंत लिये अनुकूल ही होगा और ऐसे राज्यमें रहनेवाले लोगोंके मध्यमवर्ग, संपन्न बाधका कामाग्निके समनमें कोई विघ्न नहीं होगा। धन्य है ऐसा वैदिक राज्य कि जहाँ सब भक्तिकारी-वर्ग और अध्यापक-वर्ग प्रत्यक्षकारी होते हैं। इसके बाद इन्द्र सन्त्रका तीसरा अर्थ परमात्मा है। यह परमात्मा तो पूर्णव्यवस्थाका धाम आदर्श है, इसकी भक्ति और उपासनासे कामाग्निका संपन्न होता ही है। सप्त अग्निमुनि और योगी इसी परमात्म-भक्तिकी संधानसे मनःसंपन्न द्वारा कामाग्निका संपन्न करनेके अवसर हो गये।

इस प्रकारके उपायोंका वर्णन इस सूक्तमें किया है। यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वका है। इसका पाठ 'बृहच्छान्तिगण' में किया है। सचमुच यह सूक्त पृथ्वी शक्ति करनेवाला ही है।

## कामका काण

कां. ३, सू. २५

( अर्थ.—बृहत् । देवता—मित्रावरुणे, कामेधुः । )

उत्तुदस्त्वोत्तुदस्तु मा धृष्टाः शर्मन्ते स्वे । इषुः कामस्य गा भीमा तथा विष्णामि त्वा हृदि ॥ १ ॥

आधीर्षणां कामशस्यामिषुं संकल्पकुंत्वमलाम् । तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विष्पतु त्वा हृदि ॥ २ ॥

अर्थ—( उत्तुदः त्वा उत्तुदस्तु ) दिलनेवाला काम तुझे दिलाने। ( स्वे शर्मन्ते मा धृष्टाः ) अपने सपनमें ए मत डर। ( कामस्य या भीमा इषुः ) कामका तो भयात्क बाण है ( तथा त्वा हृदि विष्णामि ) उससे तेरे हृदयको रीचता हूँ ॥ १ ॥

( आधी-पर्णा ) जिसमें मानसिक पीड़ास्वी फल लगे हुए हैं, ( काम-दास्यां ) जिसका सम्प्रभाग कामेच्छा है, नियमे ( संकल्प-कुंत्वमलाम् ) जिसकी दृष्टी संकल्प है, ( तां ) उस ( इषुं ) बाणको ( सुसन्नतां कृत्वा ) ठीक प्रकार लक्ष्यपर धरके ( कामः त्वा हृदि विष्पतु ) काम तेरे हृदयको रींचे ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे श्री ! सबको मर्त्यदेवता काम तेरे अन्तःकरणसे भी न मरे। कामका बाण तेरे हृदयका घेरा न करे जिसमें विद्वद् हृद् तू सुखसे निद्रा लेनेमें भी असमर्थ हो ॥ १ ॥

इस कामके बाणको मानसिक पीड़ास्वी फल लगे हुए हैं, इसके बाजे कामविकाररूपी मोहका पीड़न शल्य रखाया गया है, उसके पीछे मनकी लक्ष्यरूपी दृष्टी जोड़ दी है, इस प्रकारके बाणको भक्ति वीक्षण बनाकर काम तेरे हृदयका घेरा न करे ॥ २ ॥

या प्लीहानं शोषयति कापूरपेषुः सुसन्तता । प्राचीनपक्षा ब्योषि तपां विष्णामि त्वा इति ॥ ३ ॥  
 शुचा विद्धा व्योषिषा शुष्कास्थामि सर्प मा । मृदुनिर्मन्त्रः केवली प्रियवादि-वसुवता ॥ ४ ॥  
 आत्रामि त्वार्जन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम कृतावसो यमं चित्तपुषारयति ॥ ५ ॥  
 व्यस्ये मित्रावरुणौ हृदयिष्ठान्यस्यतम् । अथैनामकहे कृता मयैव कृणुतं वधे ॥ ६ ॥

अर्थ— ( सुसन्तता ) ठीक दूधपत्र पत्रवा हुवा ( प्राचीनपक्षा वि-ओषा ) तीसरे पक्षमना और विशेष जलनेवाला ( या कामस्य ह्यु ग्रीहान शोषयति ) जो कामका बाण दिलीको सुखा देता है, ( तथा त्वा इति विष्णामि ) उससे मेरे हृदयको रींथता हू ॥ ३ ॥

( व्योषिषा ) विशेष दाह करनेवाले और ( शुचा ) सोक बदनेवाले बाणके द्वारा ( विद्धा ) विद्ध या रीझित हुई हुई तू ( शुष्कास्या ) सूखे सुदबली होकर ( मा अमिसर्य ) मेरी ओर चली जा । तू ( मृदु ) कोमल, ( निमग्न्यु ) मोघरहित, ( प्रियवादिनी ) मीठा भाषण करनेवाली, ( अनुमता ) अनुकूल कर्म करनेवाली, ( केवली ) फलक मेरी ही हृष्टा करनेवाली हो ॥ ४ ॥

( त्वा आ-अजन्त्या ) तुझको बेगसे ( परि मातु अथो पितु ) माता और पिताके पाससे ( मा अजामि ) जाता हू । ( यथा मम वत्ती अल ) जिससे मेरे अनुकूल कर्म तू रद और ( मम चित्तं उपायसि ) मेरे चित्तक अनुकूल कर ॥ ५ ॥

हे ( मित्रावरुणौ ) मित्र और वरुण ! तुम दोनों ( अस्मै ) हमारे लिये ( हृदयिष्ठानि व्यस्यत ) हृदयक विचारोंको विशेष प्रकारसे मेरित करो ( यथा यमा अत्रतु प्रत्या ) और इसको कर्महीन बनाकर ( मम एव यशो कृणुत ) मेरे ही यशमें करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ— यह कामका बाण अचूक होता है, क्योंकि इसपर आत्मसिद्धि व्यवहारें कर ली हुई होती हैं और साथ ही यह विशेष रीतिसे जलनेवाला भी होता है और यह दिलीको बिल्कुल सुखा देता है, इससे मैं इसे रींथता हू ॥ ३ ॥

यह कामका बाण विशेष जलनेवाला, सोक बदनेवाला और मुझको सुखानेवाला है, हे की ! इससे मेरी हुई तू मेरे पास का और कोमल, मोघरहित, अनुग्रहाविणी, अनुकूल भाषण करनेवाली और फलक मुझमें ही अनुरूप होकर मेरे साथ रह ॥ ४ ॥

हे की ! माता और पितासे अलग करने में तुझे यहाँ लाया हूँ, इसलिये तू मेरे अनुकूल कर्म करनेवाली और मेरे विचारोंके अनुकूल विचार करनेवाली फलकर यहाँ रह ॥ ५ ॥

हे मित्र और हे वरुण ! इस लीज हृदयके विचारोंमें विशेष प्रेरणा करो, जिससे मेरे अनुकूल होनेवाले कर्मक सिवाय दूसरे किसी कर्ममें इसका प्रेम न रहे, तथा यह धर्मपत्नी मेरे ही यशमें रहे ॥ ६ ॥

## कामका ध्यान

### विरहपरिणामी अलंकार

' विरहपरिणामी अलंकार ' का उच्चम उदाहरण यह सूक्त है । ' विरह परिणाम ' का अर्थ है, कि जो कुछ बोला या किया जाय उसका उल्टा उसका परिणाम निकले । सोने जानेवाले शब्दोंका एतद् अर्थ कुछ ही और उसके अंदरका भाव कुछ और ही हो, उसको ' विरह परिणामी-अलंकार ' कहते हैं । इसका एक दो उदाहरण देखिये—

( १ ) ' हृदयका जलनेवाला, धनका नाश करनेवाली, उड़कमें फट्ट करके छोड़नेवाली और शरीरको सुखानेवाली गरिब विधो । ' इस वाक्यमें यद्यपि शरीर विधो ऐसा कहा है तथापि शरीरक दुर्गुणोंका वर्णन करने परत शब्दोंमें किया है कि उसे सुखानेवालेकी प्रकृति न पीनेकी ओर ही होती है ।

( २ ) ' जिससे शरीर पुष्ट होता है और मद्यपय पात्रन होनेक कारण नाशोप, वह और शीर्षशीघ्र ॥ सिद्ध प्रज्ञ

होता है, इस प्रकारका आसन प्राणायामादिका योगसाधन कभी भूलकर भी मत करो । इसमें यद्यपि योगसाधन करनेका स्वष्ट निषेध है, तथापि सुननेवालेके मनमें योगसाधन मरदप करना चाहिये, वह भाव उत्पन्न होता है ।

ये भाषाके काव्यालंकार हैं, योग्य समयमें ये प्रयुक्त किये अथ तो इनका सुपरिचाम ही होता है । अब इस सूत्रका कथन देखिये—

‘ हे स्त्री ! कामरूप बाणसे मैं तेरे हृदयका वेधका हूँ, इस कामके पागले ‘ मानसिक व्यथा ’ के सुदूर पंख उगे हुए हैं, इसमें जो छोटेका अग्रभाग है वह ‘ मानसिक विकार ’ का कारण ही है, मन्त्रों ‘ कुसंकल्प ’ को हकड़ीसे इस बाणको बनाया गया है, यह वशा ‘ जलमेवासा ’ है, इससे लगनेसे मुख सूख जाता है, पसीहा सूख जाती है, हृदय जल जाता है, इस प्रकारके कामसे विध्वंसक बाणसे मैं तेरा वेधन करता हूँ, इससे तू दिव्य हो । ’

इसमें यद्यपि ‘ कामरूप बाणसे विद्ध हो ’ ऐसा कहा है, तथापि इस कामके बाणका लक्षकका इतना अर्थकर वर्णन किया है, कि इसको पहकर पड़नेवालेकी प्रवृत्ति ‘ इस कामके बाणसे अपना वधाव करने ’ की ओर ही होमेगी । इस सूत्रमें जो ‘ कामरूप बाण ’ का वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

### कामका बाण

१ उल्लुङ्गः— श्वा देवेवासा, तस्मिन्ने वाट वट्ट कर पीडा देवेवासा । ( म. १ )

२ भीमा इयुः— त्रिस्तका परिणाम अर्थकर होता है देसा बाण । ( म. १ )

३ माधी-पर्णा— इस पल्लकी मानसिक व्यथाके फल होने हुए हैं । ( म. १ )

४ काम-दाह्या— स्वार्थकी प्रवृत्ति इच्छारूपी, भयना कामविकार रूपी शब्द जिसमें दया दुःखा हैं । बाणका जो अग्रभागमें छोटेका दाह होता है वह, यहाँ कामविकार है । ( म. २ )

५ सद्गुह्य-कुत्सला— मनुष्य कामविषयक संकल्प रूपी हकड़ीसे यह बाण बनाया गया है । ( म. २ )

६ माचीन-पक्षा— इसमें जो मानसिक व्यथाके फल होने हुए हैं वे ऐसे दगे हुए हैं कि निवृत्ति कारण यह बाण मीधी गतिसे और अतिवेगसे जाय है । ( म. ३ )

७ शुचा ( शुष् )— शोक उत्पन्न करनेवाला । ( म. ४ )

८ व्योषा ( वि-ओषा )— विशेष रीतिसे कटने-वाला । ( म. ३, ४ )

९ शुष्कास्या ( शुष्क-आस्या )— मुखसे सुखाने-वाला, मुखको मृत्तन करनेवाला । ( म. ४ )

१० ग्रीहानं शोषयति— ग्रीहाको सुखा देता है । शरीरमें ग्रीहा सत्तकी वृद्धि करके शरीर स्वस्थ रखती है, ऐसे महानशी अवयवका दास कामके पागले होजाता है । इसकी मारकता इस मनुष्यके बाणमें है । ( म. १ )

११ हृदि विध्वयति— इसका वेध हृदयमें होता है, इससे हृदय भिदीर्ग होता जाता है, हृद्भागको वरपति कामके वधनेसे होती है । ( म. १-३ )

कामके बाणका यह भयंकर वर्णन इन शब्दोंद्वारा इस सूत्रमें किया है । ‘ हे स्त्री ! ऐसे भयंकर बाणसे मैं तेरा वेध करता हूँ । ’ ऐसा एक श्रुत भरनी धर्मपत्नीसे कहता है । पति भी जानता है कि जिस शरसे वेध करना है वह कामका शर इतना भयंकर विधातक है । इस बाणसे न केवल निद्रा होनेवाला ही कट जाता है अपितु वेधन करनेवाला भी कट जाता है, अर्थात् यदि पतिने यह कामका शर अपनी धर्म-पत्नीपर चलाया तो वह जैसे धर्मपत्नीको काटता है उसी प्रकार पतिको भी काटता है और पूर्वोक्त प्यारह दुष्परिणाम उत्पन्न करता है ।

जो कर्म करना है उसकी मर्यादक आवश्यकताका अनुभव करनेके पश्चात् वह कर्म अधिक नहीं हो सकता, नितना आवश्यक है उतना ही होगा, कभी अधिक नहीं होगा ।

### पतिपत्नीका एक मत

इस सूत्रमें कही बात पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है । ‘ यह धर्मपत्नी अपने माता पितासे घरको छोड़कर पतिके घर पतिके साथ रहने आयी है । ’ ( देखो म. ५ ) धर्मपत्नी उत्तरी है, इस अनुभूति मरणा संयम करना बड़ा कठिन कार्य होता है । कष्ट भोग भोगनेके इच्छुक रहते हैं, परंतु यह काम मेला है कि—

समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य ॥ वै. भा. १।२।५९

कामः पशुः ॥ शान्तिसि उ. ४

‘ समुद्रके समान काम है । क्योंकि जैसे समुद्रका अन्त नहीं होता, वैसे कामका भी अन्त नहीं होता । ’ तथा ‘ काम ही पशु है । ’

यह काम भोग भोगनेसे कम खर्ची होता, प्रस्तुत बढता ही जाता है। यह पशु होतेसे इसका उपपत्तक भी पशुरूप होते हैं, जो इस कामरूपी पशुको अपने अन्दर बढते देते हैं, वे मानो पशुभावको अपने अन्दर बढाते हैं। मरन करनेवालेका नाम मनुष्य होता है और मरनकी मरनशक्ति काबूते नष्ट हो जाती है। काम मतमें ही उत्पन्न होता है और वहा मरन हुआ यह मरनशक्तिको ही नष्ट कर देता है। इसी कारण साधनमें यदि मरने अद्वर काम बढ जाय तो यह मनुष्य विवेकभ्रष्ट होजाता है।

अथ अपने प्रस्तुत विषयको और आते हैं। धर्मपत्नी दूसरे पारसे लायी गई है। माताको और पिताको अपने भाइयो और जगन् संघर्षियोंको इस खीते छोड़ दिया है और पतिको अपने ठन और मरनका स्वामी माना है। इस प्रकार कीका पतिसे पास आकर रहना एक प्रकारसे पतिके ऊपरकी जिम्मेदारी बढातेवाला है। पतिको यह अपना उत्तरदायित्व ध्यानमें रखना चाहिये।

उक्त प्रकार अपने माता पिताको छोड़कर की सक्ति घर लायेपर भी यदि साधनवाचकका तरीधर्मके अनुसार उसकी भोग्य सुखकी प्राप्ति न हुई, तो उसके दिलके भटक जानेकी भी सम्भावना है। पति धर्मद्वय आदि समय और मरनार्थ प्राप्त करने छोड़ना और गृहस्थधर्म प्राप्त अपने कीविषयक कर्तव्यकी न कोषा, तो खीते मरनकी अधागति की सम्पत्तिके सम्भावना रहती है।

शान्तदम प्रवृत्तय आदि सब उत्तम है, मनुष्यत्वका विकास करनेवाला है, यह सब सत्य है, परन्तु निवाहित हो जानेपर खीते मनोवर्तनका भी विचार करना चाहिये। यह कर्तव्य ही है। खीते मातापिता छोड़कर अथ स्वाम किया है। अतः पतिको अपनी पत्नीके हर सुखदुःख का कर्तव्य रखना चाहिये। गृहस्थधर्म भी एक महान् पक्ष है। यही उसका अर्थ है। ऐसा पतिने न किया तो यह खीते असम्भारमें प्रवृत्त करनेका भागी बनेगा।

इस सूक्तमें जो पति अपनी धर्मपत्नीका इष्ट कामक मरानक बालसे निद्र करना चाहता है, वह श्रेणी हेतुसे चाहता है। इसलिये कामके कामकी मरानक विषयक शक्तिका वर्णन करता हुआ पति खीते कहता है कि ऐसे मरानक बालसे मैं भरे बिरको अपने कर्तव्य प्राप्त करनेके हेतुसे ही वेध करता हू। इस वर्णनको सुनकर खी भी समझे कि यह जो कामोपयोगका विचार मरानमें उत्पन्न हुआ है,

यदि काम उपयोगके लिये मरनको सुखा छोड़ दिया जाय, तो कितनी मरानक अवस्था बन जायगी।

इस विचारसे उस खीते मनमें भी कामको शमन करने की ही लहर उठ सकती है और यदि पतिने इस सूक्तसे बतलये मार्गसे अपने खीते मनमें यह समयको टहर बढायी, तो केसमे जाकर दोनोंका कल्याण हो जाता है।

परन्तु यदि पतिने उबरदरतोसे खीते कामप्रवृत्तिसे रोक रखा, तो उस खीते अद्वर कामविषयक सकल बहुत बढ जायग और मराने उसका बंध पाउके विषयमें कोई संदेह ही नहीं रहेगा। ऐसा बंध का न हो इसलिये कृतगामी होने आदि परिमित गृहस्थधर्म प्राप्त करनेके विषयमेंकी प्रवृत्ति हुई है। साथ ही साथ कामकी मरानक विषय काका ही विचार होना रहेगा, तो उसल बढनेकी ओर हरएक कोपुनरकी प्रवृत्ति होगा। इसलिये पति स्वयं सत्य करना चाहता है और अपनी धर्मपत्नीको अपने अनुकूल धर्मधर्य करनेवाली भी बनाया चाहता है। यह कारनेके लिये पति स्वयं सुविचारोंकी जगति करता है और दोनोंकी प्रार्थना द्वारा भी वैसी शक्तिकी सहायता लेनेका इच्छुक रहता है। इसलिये यह मराने निरावश्य देवतामेंकी प्रार्थना की गई है कि 'हे देवो' इस धर्मपत्नीको मेरे अनुकूल रहने और मेरे अनुकूल धर्मधर्य करनेकी शुद्ध दीजिये। इस धर्मपत्नीके मरनके विषयमें ऐसा परिमर्तन कीलिये कि यह दूसरा कोई विचार मराने न हाकर मेरे अनुकूल ही धर्मा प्राप्त करती रहे, दूसरे किसी अनुचित कर्ममें अपना मन न दीहावे।' ( म ६ )

पतिको अपनी धर्मपत्नीके विषयमें यह दक्षता प्राप्त करना आवश्यक ही है। पतिको दक्षित है कि वह अपनी धर्मपत्नीको समुद्र रखता हुआ उसकी समनके मार्गसे चराने।

## धर्मपत्नीके गुण

१ अष्टु.- काम स्वभाववाली, शांत स्वभाववाली।

( म १ )

२ निमन्पु.- श्रेष्ठ न करनेवाली, शान्तिले कार्य करनेवाली। ( म ४ )

३ प्रियवादिनी- प्रभु प्राप्त करनेवाली। ( म ४ )

४ अनुवर्त- पतिके अनुकूल कर्म करनेवाली। ( म ४ )

५ ( मर ) घटो- पतिने वराने रहनेवाली, पतिकी आज्ञामें रहनेवाली। ( म ६ )

६ केवल्यी- केवल पतिकी ही चनकर रहनेवाली।

(मं. ४)

७ (मम) चित्तं उपपासितं- पतिके चित्तके समान अपना चित्त बनानेवाली। (मं. ५)

८ अक्रान्तुः- पतिके विरुद्ध कोई कर्म न करनेवाली।

(मं. ६)

९ (मम) मृतौ अस्तः- पतिके उद्योगमें सहायता देनेवाली। (मं. ५)

ये शब्द धर्मपत्नीके कर्तव्य बता रहे हैं।

### गृहस्थधर्म

इस प्रकारकी अनुकूल कर्म करनेवाली धर्मपत्नीको पति

कहा है, कि 'हे स्त्री! मैं तेरे हृदयको ऐसे भयंकर कामके बागसे बाँधता हूँ।' पति जानता है कि यह कामका बाग बड़ा घातक है, महाचर्ममें विष उत्पन्न करनेके कारण बड़ा हानिकारक है। धर्मपत्नी पतिके अनुकूल चलनेवाली होनेके कारण यह भी जानती है कि यह कामका बाग तपस्यामें विष करनेवाला है। तथापि दोनों 'गृहस्थधर्म' से संबद्ध हैं, इसलिये संतानोत्पत्ति करनेके लिये बाधित है। अतः दोनों गृहस्थधर्मसे संबद्ध होते हैं। धर्मनिष्ठ-मानुष्य क्रतुमानो होकर धर्ममें सेवाका बीजरूप बीर बालक उत्पन्न करते हैं और पश्चात् अपनी तपस्यामें लग जाते हैं।

## बीर पुत्रकी उत्पत्ति

कां. ३, सू. २३

(कविः- मरुतः । देवता- ऋद्धमः, योनिः, वावाश्रयिणी ।)

येन वेदहृत्पूर्विष नृशयामसि त्वत् । इदं तद्वन्पुत्रं त्वदपं दूरे नि दंशसि ॥ १ ॥

आ ते योनिं गर्भे एतु पुमान्पात्रं हवेदुविषम् । आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमासः ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् । यवासि पुत्राणां माता जातातां जनपांश्च यान् ॥ ३ ॥

अर्थ— (येन वेदहृत्पूर्विष) जिस कारणसे तू बन्धा हुई है, (तत् त्वत् नृशयामसि) यह कारण तुझसे हम दूर करते हैं। (तत् इदं) यह यह बन्धावन (अन्वन्पुत्रं त्वदपं दूरे) दूसरी जगह तेरेसे दूर (अप नि दंशसि) हम केजाते हैं ॥ १ ॥

(पुमान् गर्भः ते योनिं आ एतु) उरुध्व गर्भ के गर्भाशयमें आजाये, (वायाः इदुविषं इय) कैसा बाग हृत्निर्गम होना है। (अत्र ते) यहाँ तेरा (दशमासः) बीस पुत्र आजायतां) इस महीने गर्भमें रहकर बीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ २ ॥

(पुमांसं पुत्रं जनय) पुत्र संकाश उत्पन्न कर, (तं अनु पुमान् जायतां) उसके पीछे भी पुत्र ही उत्पन्न होते। इस प्रकार तू (पुत्राणां माता भवसि) पुत्रोंकी माता हो, (जातातां यान् च जनयः) जो पुत्र जनते हैं और जिसकी तू इसके बाद उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्त्री! जिस दोषके कारण तुरन्तही गर्भाशयमें गर्भधारण नहीं होती है और तू बन्धा बनी है, यह दोष मैं तेरे गर्भसे दूर करता हूँ और पूर्ण बीरिये यह दोष तुझसे दूर करता हूँ ॥ १ ॥

तेरे गर्भाशयमें पुत्र गर्भ उत्पन्न हो, यह गर्भ यहाँ दस मास तक मण्डी प्रकार गुप्त होता हुआ तससे उत्पन्न बीर पुत्र तुझे उत्पन्न होते ॥ २ ॥

पुत्र संकाश उत्पन्न कर। उसके पीछे दूसरा भी पुत्र ही होते। इस प्रकार तू अनेक पुत्रोंकी माता हो ॥ ३ ॥

यानि मुद्राणि योजान्मृपुष्पा ज्ञनयन्ति च । तैस्त्व पुत्र बिन्दस्व सा श्रुषेत्तुका भव ॥ ४ ॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भं प्लुते ते ।

बिन्दस्व त्वं पुत्र नारि यस्तुभ्य शुभमसृच्छमु तस्मै त्वा भवं ॥ ५ ॥

यासां योः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं योरुषां वभूव ।

तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोपधायः ॥ ६ ॥

अर्थ— (यानि च मुद्राणि योजानि) जो कल्याण कारण बीज हैं, तिनको (शुभमा जनयन्ति) कपभक्त वनस्पतिया उत्पन्न करती हैं, (तै त्व पुत्र बिन्दस्व) उनसे तू पुत्रको प्राप्त कर । (सा प्रसू) वैसी प्रसूत होनेवाली तू (प्रेतुका भव) गौरी समान उत्तम माता हो ॥ ४ ॥

(ते प्राजापत्य कृणोमि) तुझे मैं प्रजापाली बनाऊँ । (गर्भं ते योनिं प्लुते) गर्भं करी; यानिमें भावे । हे (नारि) श्री ! (त्व पुत्र बिन्दस्व) तू पुत्रको प्राप्त कर । (य तुभ्य श भवत्) जो तेरे लिये कल्याणकारी हो वे बीर (य त्व उ तस्व श भव) तू निश्चयसे उसक लिये कल्याणकारी हो ॥ ५ ॥

(यासां बीरया) जिन औपधियोंका (यो पिता) शुक्रके पिता है, (पृथिवी माता) पृथ्वी माता है और (समुद्र मूल) समुद्र मूल (वभूव) बना है । (ता दैवी ओपधाय) वे दिव्य औपधिया (पुत्रविद्याय) पुत्र प्राप्त करनेके लिये (त्वा प्र अयन्तु) तेरा विशेष रक्षण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— कपभक्त भादि औपधियोंके जो उत्तम बीज होते हैं, उनका लेख पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर और उत्तम बीर पुत्रोंको उत्पन्न कर ॥ ४ ॥

प्रजा उत्पन्न होनेका प्राजापत्य संस्कार मैं तुझपर करता हूँ, उससे तेरे गर्भाश्रयमें पुत्र उत्पन्न होने और तू पुत्र सत्ताको उत्पन्न कर । वह पुत्र तारा कल्याण करे और तू उसका कल्याण कर ॥ ५ ॥

जो औपधिया पृथ्वीपर उत्पन्न होती हैं, तिनका पालन दिव्य शक्तिके द्वारा है और जो समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं, उन दिव्य औपधियाका सेवन पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर, उससे तेरे गर्भाश्रयका दोष दूर होगा और तेरे उत्तम सत्ता उत्पन्न होगी ॥ ६ ॥

## वीर पुत्रकी उत्पत्ति

### वीर पुत्रका प्रसव

बीरया बीरका उत्पत्ति करके उसको उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न होने योग्य 'जन्म' बनाता इस सूक्तका साध्य है । पाँडे तीन भद्रोंमें मंगल विचारोंकी सूचना द्वारा सांत्विक परिवर्तन करनेका उपाय कहा है । यदि किसी का को यौव नमें मनसे शांति प्राप्त हो जाये कि वहका वध्यापन हो गया है, तो भद्रका भी ऐसे ही अनुकूल परिवर्तन होना भी सम्भव है । यदि यात्र निषय कोई वैसा कहा दोष न हो, तो इस मानसिक विचार परिवर्तनसे जो आनन्दवर्धक सिद्धि मिलनी सम्भव है ।

इस कार्यके लिये 'प्राजापत्य इष्टि' का प्रयोग वज्र मंत्रमें कहा है । कपभक्त भादि दिव्य औपधियोंका हवन

और उनके बीजोंका विधिवत्क भक्षण करनेका विधान प्लुते मंत्रमें है । कपभक्त औपधियोंका एक गण ही है वे औपधिया यौव बदलेवाली, शरीरको पुष्ट करनेवाली और गर्भाश्रयके दोष दूर करके बच्चा करनेवाली बनायेवाली है । इन औपधियाका हवन करना, सेवन करना और आराधना विचार मंत्रमें धारण करना ये तीन उपाय प्रत्येक दूर करनेके लिये इस सूक्तमें कहे हैं ।

याज्ञक धर्मशास्त्रोंमें यह प्राजापत्य यज्ञ कहे, पशुधेव आहुतिस्व योको पितृदेव और प्रथम तीन भद्रोंक आराधन विचार आशीर्वाद रूपसे कहे— 'दे श्री' तेरे भद्र जो वध्यापनका दोष था, वह इस प्राजापत्य इष्टिसे दूर हो गया है अब तेरे गर्भाश्रयमें पुत्र वर्धन उत्पन्न होगा, यद्यपि वह

वीर यादक दस मासतक पुष्ट होवा रहेगा और पश्चात् बोन्य करनेकी रीति यह है। इस विषयके सूक्त अथर्ववेदमें समयमें उत्पन्न होगा। सब सूक्तके पुत्रोंकी माता बनेगी। अनेक है।

( म. १-३ )

इस प्रकारके मनपूर्वक दिष्टे हुए आशीर्वादसे तथा उस आशीर्वादको अथवा निश्चयसे स्वीकार करनेसे अश्विदेव अन्दर आवश्यक परिवर्तन हो जाता है। ' शिव सकलसे चिकित्सा '

इस सूक्तमें ' ओपधयः ' शब्द बहुवचनान्त है, इससे अनुमान होता है कि इस सेवन विधिमें अनेक औषधियाँ आती हैं। सुविश्व वैद्योंको इस विषयकी खोज करनी चाहिये।

## गर्भधारणा

कां. ५, सू. २५

( अथि- मृदा । देवता- योनिवर्म, पृथिव्यादयो देवता । )

पथैतादिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाधृतम् । ओषो गर्भस्य रेतोषा । सती पुममिवा दधत् ॥ १ ॥	
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥	
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अग्निनोमा भञ्जं पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥	
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः । गर्भं तु इन्द्राग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥	
विष्णुर्गोनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥	
यद्वेदु राजा वरुणो यज्ञा देवी सरस्वती । यदिन्द्रो वृत्रहा वेदु तर्हर्मकरणं पिय ॥ ६ ॥	

अर्थ— ( पर्वतात् दियः ) पर्वतसे लेकर पृथिव्यादयो देवता ( अङ्गात् अङ्गात् स आभूतौ ) मंग प्रसंगसे इकट्ठा किया हुआ ( योनेः ) योनिसे आगने ( रेतोषाः शेषः ) बीजकी स्थापना करनेवाला पुल्लेखित ( सती पूर्ण हय ) अल्पवारने वनेकी रखनेके समान ( गर्भस्य आदधत् ) गर्भका आवास कराते है ॥ १ ॥

( यथा ह्यं मही पृथिवी ) जिस प्रकार यह बनी पृथिवी ( भूतानां गर्भं आदधे ) समस्त भूतोंके गर्भको धारण करती है, ( एवा ते गर्भं दधामि ) उसी प्रकार वेदा गर्भ में धारण करती हैं, ( तस्मै अवसे त्वां हुवे ) और उसकी रक्षाके लिये उसे सुधायी है ॥ २ ॥

हे ( सिनीवालि ) मत्स्य चन्द्रवल्ली रात्री देवी ! ( गर्भं धेहि ) गर्भको धारण करा । हे ( सरस्वति ) शान-देवी ! ( गर्भं धेहि ) गर्भको धारण करा । ( उभौ पुष्करस्रजौ अग्निनौ ) दोनों कमलमाला धारण करनेवाले अग्निदेव ( ते गर्भं आधत्तां ) वेदे गर्भको धारण कराते ॥ ३ ॥

( मित्रावरुणौ ते गर्भं ) मित्र और वरुण वेदे गर्भको पुष्ट करें ( देवः बृहस्पतिः गर्भं ) देव बृहस्पति गर्भको धारण कराये । ( इन्द्रः च अग्निः च ते गर्भं ) इन्द्र और अग्नि वेदे गर्भको धारण कराये । ( धाता ते गर्भं दधातु ) धाता वेदे गर्भको धारण कराते ॥ ४ ॥

( विष्णुः योनिं कल्पयतु ) विष्णु योनिको समर्थ बनावे । ( त्वष्टा रूपाणि पिशतु ) त्वष्टा उस गर्भको वस्त्र रूपवत् बनावे । ( प्रजापतिः आसिञ्चतु ) प्रजापति गर्भको सींचे और ( धाता ते गर्भं दधातु ) धाता वेदे गर्भको धारण कराते ॥ ५ ॥

( यत् राजा वरुणः वेदः ) जो वरुण राजा जानता है, ( या यत् देवी सरस्वती ) अथवा जो देवी सरस्वती जानती है, ( यत् वृत्रहा इन्द्रः वेदः ) जो वृत्रहा नाता करनेवाला इन्द्र जानता है ( तत् गर्भं-करणं पिय ) यह गर्भको स्थिर करनेवाला यह सब धारण कर ॥ ६ ॥

गर्भो अस्पोर्षधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अथै गर्भमेव धाः ॥ ७ ॥  
 अथि स्कन्द धीरयस्य गर्भेया वैहि योन्वाम् । वृषासि वृष्ण्यावनज्जायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥  
 वि जिहीष्य चाहत्सामे गर्भेष्टे योनिमा ध्रुवाम् । अदृष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयपविर्नम् ॥ ९ ॥  
 धातुः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नाथौ मवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १० ॥  
 स्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नाथौ मवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ ११ ॥  
 सविर्तुः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नाथौ मवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १२ ॥  
 प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नाथौ मवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १३ ॥

अर्थ— ( ओपधीनां गर्भः अस्ति ) इ लीपधिपोक गर्भ है और ( वनस्पतीनां गर्भः अस्ति ) इ वनस्पतिपोक गर्भ है, इ ( विश्वस्य भूतस्य गर्भः ) सब भूतमात्रका गर्भ है, दे भग्नो ! ( सोः इह गर्भे आधाः ) यह इ पक्षी गर्भको धारण करा ॥ ७ ॥

( मविर्न्योः ) उभर करा हो, ( धीरयस्य ) धीरका कर, ( योन्वां गर्भे आधेहि ) योनिमें गर्भकी स्थापना कर । हे ( वृष्ण्यावनम् ) वृषा अस्ति ) धीरकाह ) इ कलमाह है । ( त्वा प्रजायि नयामसि ) तुझे केवल सम्भारके लिये ही के माते हैं ॥ ८ ॥

हे ( चाहत्सामे ) वृक्षसम मानेवाली की ! इ ( जिहीष्य ) विषेय प्रकार वैपार रह । ( ते योनि गर्भः आशया ) तेनी योनिमें गर्भ स्थिर होवे । ( सोमपा देवाः उभयपविर्न पुत्रं ते अदु- ) सोमपा करनेवाले देवोंने त्वा योनों रक्षा करनेवाले पुत्रको तुझे दिया है ॥ ९ ॥

हे ( धाता ) धाता ! और हे ( स्वष्ट ) रूप बनानेवाले देव ! हे ( सविर्तुः ) उत्पादक देव ! हे ( प्रजापते ) प्रजापतक देव ! ( अथ्याः नाथौ मवीन्योः ) इस बंशके दोनों गर्भधारक भादिकोंके बीचमें ( श्रेष्ठेन रूपेण पुमांसं पुत्रं आधेहि ) उभर सुंदर रूपके पुत्र पुत्र सत्ताभी स्थापना कर और ( दशमे मासि सूर्तवे ) दसवें मासमें उत्पत्ति होनेके लिये उसे योग्य कर ॥ १०-१३ ॥

### गर्भकी सुरक्षितता

गर्भकी सुरक्षितताके लिये परमेश्वरकी तथा बन्ध्यामय देवताओंकी प्रार्थना इस सूत्रमें की गई है । इस प्रकारकी प्रार्थना करनेसे मानसशक्तिकी सामर्थ्य द्वारा बहुत लाभ होता है । इसके पारितो इस सूत्रमें गर्भविषयक बन्ध्यामय श्रुतसि उपपुत्र बातें कही हैं, उसका धोखासा विचार नहीं करना आवश्यक है ।

धूर्त्वीके ऊपरके पर्वतसे लेकर धुलोके पर्वत अर्थात् इस धामाश्रुपिडीके अन्तर मिलने पदार्थ हैं, उन सबके भंग प्रत्ययोंके भंग से लेकर और उन सब अंगोंको विशेष जोरनासे इकट्ठा करके यह गर्भ बनाया गया है । वह प्रथम अग्रका कथन है । अर्थात् इस गर्भमें जिस प्रकार सूर्य और चंद्रके भंग हैं, उसी प्रकार वायु और जलके भंग भी हैं और उसी हीनसे औषधि वनस्पतिपोक भी भंग हैं । जो अग्रकाभमें है

वही सिद्धमें है । अग्रकाइका एक भंग ही रिक्त है । इसी प्रकार विनाके भंग प्रत्ययोंका सब धीरे धीरे निशुनें भाग है और उसी धीरे धीरे निशुनें गर्भ घटता होता है, इसलिये गर्भमें विनाके भंग प्रत्ययोंका सब भाग हुआ होता है । इस प्रकार एक दृष्टिसे यह लक्ष्य सब अग्रकाइका सत्याश है और दूसरी दृष्टिसे यह गर्भ विनाका सत्याश है । गर्भमें, भागो, हजारी प्रचण्ड शक्तियां हैं, इसलिये गर्भकी विनाकी सुरक्षा हो सके, उत्तरी करनी चाहिये और उसकी गिलनी उभरि हो सके उतना प्रयत्न करना चाहिये ।

मंत्र २ से ५ तक देवताओंकी प्रार्थना है कि सब देव इस गर्भकी रक्षाके लिये सदायक रहें । और जो देवताओंके भंग नहीं हैं उनको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखे और बचावें । पात्रक वहां अस्वस्थ रहें कि रक्षा तो देवोंद्वारा ही होती है, अनुपपका कार्य हजारी ही है कि यह उभरमें स्थापित न करे । जिस प्रकार वेद कर्ममें धरा रहनेसे धूर्त्वी रक्षासे



मनुष्य दूर रहते हैं, उसी प्रकार अन्योन्य देवोंकी रक्षामें मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण दूर रहता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह अपने आपको इन देवताओंके आधीन कर दे। ऐसा करनेसे इसकी उन्नति रक्षा हो सकती है। गर्भकी भी सुरक्षितताके लिये गर्भिणी भी कुछ वायुमें तथा पृथ्वी आदिमें अपने आपको रखेगी और सूर्यादि देवोंसे

जो रक्षा प्राप्त होती है उससे लाभ उठावेगी, तो गर्भिणी लाभ हो सकती है।

गर्भ उत्तम रीतिसे बढ़कर दूसरे मासमें माताके उदरसे बाहर आना चाहिये। यह समय उसकी पूर्ण वृद्धि है। यह बात दूसरा मन्त्रमें कही है।

अन्य मंत्र गर्भाधान विषयक हैं वे सुविज्ञ पाठक साहजिक समझ सकते हैं।

## गर्भधारण

कां. ६, सू. १७

( कवि - अथर्व । देवता - गर्भदेवता, पृथिवी । )

यथेयं पृथिवीं मही भूतानां गर्भमादधे । एवा तं ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सर्वितवे ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवीं मही द्वाधारेमान्वनस्पतीन् । एवा तं ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सर्वितवे ॥ २ ॥

यथेयं पृथिवीं मही द्वाधार पर्वताग्निरीन् । एवा तं ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सर्वितवे ॥ ३ ॥

यथेयं पृथिवीं मही द्वाधार विष्टितं जगत् । एवा तं ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सर्वितवे ॥ ४ ॥

अर्थ— ( यथा इयं मही पृथिवी ) जिस प्रकार वह बड़ी पृथिवी ( भूतानां गर्भमादधे ) सूर्वोंका गर्भ धारण करती है, ( यथ ते गर्भः ) उसी प्रकार तेरा गर्भ ( सूतुं अनु सर्वितवे ध्रियतां ) तबानको अनुकूलतासे ढरपक करनेके लिये स्थिर होवे ॥ १ ॥

( यथा इयं मही पृथिवी ) जिस प्रकार वह बड़ी पृथिवी ( इमान् वनस्पतीन् द्वाधार ) इन वनस्पतियोंको धारण करती है। उसी प्रकार सन्तान उत्पन्न होनेके लिये तेरे अंदर गर्भ स्थिर होवे ॥ २ ॥

जिस प्रकार वह बड़ी पृथिवी ( पर्वतान् गिरीन् द्वाधार ) पर्वतों और पहाड़ोंको धारण करती है, उसी प्रकार तेरे अंदर वह गर्भ सुखसे प्रसूति होनेके लिये स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार वह बड़ी पृथिवी ( त्रिष्टितं जगत् ) त्रिविध प्रकारसे रहनेवाले जगत्को धारण करती है, उसी प्रकार तेरे अंदर वह गर्भ सुख प्रसूतिके लिये स्थिर रहे ॥ ४ ॥

श्रीको अपने गर्भाध्यायमें गर्भ स्थिर रखनेकी इच्छा होती है, यह सफल करनेके लिये यह आशीर्वाद है।

## मर्मदोष-निवारण

कां. ८, सू. ६

( कवि — मातृनामा । देवता — मन्त्रोक्ता, मातृनामा, मध्यस्थसति । )

यो वै मातोन्मपाजं जातायाः पतिवेदनौ । दुर्गाया उत या गृध्रदुर्लभ उत वत्सर्पः ॥ १ ॥

पालालानुपलालौ शुक्रे कोकै मलिम्लुचं पत्नीजंकम् । आभेषं वज्रिवांससमृथप्रिबं प्रमीलितम् ॥ २ ॥

मा सं वृतो मोषं सुप ऊरु भावं सुपोऽन्तरा । कृषोर्मपस्यै मेपथ मज दुर्गामिच्छातनम् ॥ ३ ॥

दुर्गामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः । अरायानपं हन्मः सुनामा स्त्रैर्गमिच्छताम् ॥ ४ ॥

यः कृष्णः केदयसुर स्वम्बुज उत तुर्गिडकाः । अरायानस्या मुष्काम्यां संतुषोपं हन्मसि ॥ ५ ॥

मर्म — ( जाताया ते ) उत्पन्न होते ही मेरे ( यो पतिवेदनौ ) जो पत्नीको प्राप्त होनेवाले दोनों भाग वेदी ( माता उन्मपाजं ) माताके स्वच्छ क्रिये के ( तम ) उन्म ( दुर्गामा, अलिप्त वत्स वत्सप ) दुर्गामा, अलिप्त तथा वत्सप ये रोगहनि ( मा गृध्रम् ) न पहुँचे ॥ १ ॥

( पालालानुपलालौ ) मातृ वीर मातृसखी, ( शुक्रे ) द्विष, ( कोक ) कामसखी अथवा वीरसखी, ( मलिम्लुच पत्नीजंक ) मलिन, पलित रोम, ( आभेष ) धिक्करवाले, ( वज्रिवांसस ) रूपादीनका करनेवाले, ( नक्षत्रमिच्छतः ) रीछके समान मर्दन बनानेवाले, ( प्रमीलित ) भावें मूदनेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूँ ॥ २ ॥

( मा सं वृत ) मज वत्, ( मा उप सुप ) पास मज जा, ( ऊरु अन्तरा मा सं वृत सुप ) अथार्थोंके बीचमें न रह । ( अस्मै मेपथ कृषोमि ) इसके क्रिये भौषध बनाना हूँ, यह भौषध ( मज दुर्गामिच्छातनम् ) वत्स नामक है इससे दुर्गाम हनि दूर होते हैं ॥ ३ ॥

( दुर्गामा च सुनामा च उभौ ) दुष्ट नामयुक्त वीर उद्यम वामबाया ये दोनों ( सं वृत इच्छत ) सगति करना चाहते हैं, उनमेंसे ( अ-रायान् अप हन्म ) विहृष्टोंका हम नाश करते हैं वीर जो ( सुनामा ) वत्स नाम वाला है यह ( स्त्रैर्गमिच्छताम् ) स्त्रीगतिको हन्म करे ॥ ४ ॥

( य कृष्ण ) जो काला ( केदय असुर ) बालोंवाला असुर है, ( स्वम्बुज उत तुर्गिडका ) शेर शरीर तममें रहता है अथवा मुलमें रहता है, इन ( अरायान् ) दुष्टोंकी ( अस्या मुष्काम्या ) इस स्त्रीके रोगों प्रदेहोंसे तथा ( मजस्य ) कविदेवताके ( अप हन्मि ) दृष्ट देता हूँ ॥ ५ ॥

भाष्यार्थ — बच्चा उत्पन्न होते ही स्तनमें तथा अल्प उमर तक करनेवाले कुमि न पहुँचे ॥ १ ॥

मातृमें उत्पन्न होनेवाले, द्विष, वीरदोष उत्पन्न करनेवाले, बाल सनेद करनेवाले, कुल्फता बढानेवाले, गर्दनमें रोग उत्पन्न करनेवाले, मातृमें दुस्ती रानेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूँ ॥ २ ॥

रोगग्रस्त पास न रहे, प्रसवस्थानमें गर्भागोंके मध्यम न जावे, इसको दूर करनेके क्रिये यह भौषध बनाना हूँ, यह मज नामक भौषध इस दुष्ट क्रिमिको दूर करता है ॥ ३ ॥

दो प्रकारके क्रिमि होते हैं, एक दुष्ट वीर द्वारा द्विषकारी । दोनों पास जाते हैं, उनमें दुष्टको दबाते हैं वीर उद्यम को स्त्री गतिके पास रखते हैं ॥ ४ ॥

काला, बालोंवाला, प्राणपातक, मुलबाध, जरीरके स्वयमें रहनेवाला, बातकी, शीणता बढानेवाला हनि है, उसको भीके अवपवोंसे हानि देते हैं ॥ ५ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं कृव्यादमृत रेरिदम् । अराणां ह्यकिष्किणो वयः पिबेते अनीनश्च ॥ ६ ॥  
 यस्तथा स्वप्ने निपद्यते आतां भूत्वा पितेवं च । वृजस्तान्त्संहतामिवः क्षीवरूपं स्तिरीटिनः ॥ ७ ॥  
 यस्तथा स्वपन्तो स्तरति यस्तथा दिप्सति जाग्रतीम् । ह्यायामिव प्र तान्सूर्यः परिक्रामन्ननीनश्च ॥ ८ ॥  
 या कुपोति मृतयन्तामवेतो कामिमां स्तिर्यम् । तमोपेवे त्वं नाक्षयास्याः कमलमाम्बिवम् ॥ ९ ॥  
 ये शालोः परिवृत्यन्ति सायं र्दभनादिनः । कुसूला ये च कुक्षिलाः कंकुमाः कृन्माः सिमाः  
 तानोपेवे एवं गन्धेन विपूचीनान्वि नाक्षय ॥ १० ॥

अर्थ—(अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं) शब्द लेनेसे नास करनेवाले, रसक करनेवाला नास करनेवाले, (कृव्यादं मृत रेरिदं) मृत करनेवाले और हिसक (अकिष्किणः अरायान्) कुत्तेके समान कट देनेवाले, मिसर करनेवाले रोगबीजोंको (पिबे) घनः अनीनश्च) पीला वज्र औषध नष्ट करता है ॥ ६ ॥

(आतां भूत्वा) भाई वनकर (पिता इष च) भयवा पिता वनकर, (तथा यः स्वप्ने निपद्यते) तेरे पास जो स्वप्ने आता है, (क्षीवरूपान् तान् स्तिरीटिनः) क्षीवरूप उन गुरु रस्तेवाले रोगबीजोंको (इतः घनः सहतां) पड़ते वज्र औषध हटा देवे ॥ ७ ॥

(स्वपन्तो त्या यः स्तरति) सोती हुई त्रि पास से भाग है, (या जाग्रतीं त्या दिप्सति) जो जागती हुई तेरे पास भाग कर घंघुणा है, (सूर्यः छायां ह्य) सूर्य जैसे अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार (परिक्रामन् प्र अनीनश्च) भ्रमण करता हुआ उनका नाश करे ॥ ८ ॥

(या इमां स्तिर्यं) जो इन चीको (मृतयन्तां अवतोकां कुपोति) मो बहोवाकी भयवा गर्मराज होनेवाली करता है, हे औषध । (त्वं अस्याः सं नाशय) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा (कमलं अंजिवं) गर्भधाररूपी कमलको रोपद्रवित कर ॥ ९ ॥

(ये र्दभनादिनः) जो गंधेके समान शब्द करनेवाले (सायं शालाः परिवृत्यन्ति) सायंकालके समय घंटिके चारों ओर गंधे हैं, (कुसूलाः कुक्षिलाः) सुईके समान कम भागवाले, बड़े पेटवाले, (कंकुमाः कृन्माः सिमाः) बड़े भेदे, बुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगप्रिय हैं, हे औषध । (त्वं तान् गन्धेन) तू उनको अपने गंधको (विपूचीनान् विनाशय) पीलाकर नष्ट कर ॥ १० ॥

साधार्थ— कई किसी रूपसे प्राणवात करते हैं, कई रससे नास करते हैं, कई मीसको खींच करते हैं, कई भय रीतिसे नास करते हैं, कई कट देते हैं; उन सब रोगबीजोंको पीली वज्र औषधि हटा देती है ॥ ६ ॥

भाई भयवा पिताके रूपसे स्वप्नमें जो आते हैं, वे दिव्य हैं, परंतु पातक होते हैं, उनको वज्र औषधसे हटाया जा सकता है ॥ ७ ॥

सोनेकी अवस्थामें भयवा जायनेकी अवस्थामें जो रोगबीज पास आते हैं, उनको सूर्य अन्धकारका नाश करनेके समान नष्ट करता है ॥ ८ ॥

बुरा शब्द करनेवाले, सब मिसकर बड़ा आवाज करनेवाले, मुसमें काटने और दंग करनेके साधन रखनेवाले, वनों जो रोगबीज चीको मृज्जता भयवा गर्मपाल करनेवाली बनाते हैं, उन रोगबीजोंका नाश कर और उस चीका गर्मपाल पीतोत बना ॥ ९ ॥

गंधेके समान बुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायंकालके समय घंटेके पास नाचते और गाते रहते हैं, जिनके मुसमें सुईके समान चुभनेवाला फास रहता है, जिसका पेट बड़ा और टेढ़ामेढ़ा होता है और जिनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगप्रिय मच्छर आदिकोंका कम गंधवाली औषधियोंको चारों ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कुर्चिर्दिग्धानि विभ्रति ।

बलीषा इव प्रनुस्यन्ते बने ये कुर्वते घोषं तान्नितो नाशयामसि ॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिस्रन्ते आतपन्तममं दिवः ।

अरायान्प्रस्तवासिनो दुर्गन्धील्लोहितस्यान्मकंकाशाशयामसि ॥ १२ ॥

य आत्मानमविम्रात्रमसं आधाय विभ्रति । स्त्रीणां शौणिप्रतोदित हन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

ये पूर्वे वृक्षोऽत्र यन्ति हस्ते वृक्षाणि विभ्रतः ।

आपाकेष्टाः प्रहासिनस्त्वभ्ये ये कुर्वते ज्योतिस्तान्नितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

येषां पश्चात्प्रदानि पुरा पाप्नीः पुरो मुखा ।

खलुजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मद्मटाः कुम्भमुष्का अयाशयः ।

तान्स्यां प्रक्षयस्यते प्रतीयोधेन नाशय ॥ १५ ॥

अर्थ— ( ये कुकुन्धाः कुकूरभाः ) जो पुरा शब्द करते हैं और घोड़े चमकते हैं और जो ( रुसी ) वृक्षानि विभ्रति ) काटनेवाले इव करनेके साधनोंको धारण करते हैं, ( ये घोरे कुर्वते ) जो शब्द करते हुए ( बलीषा इव बने मनुष्यान्तः ) ह्रीर्मेले समान वस्त्रों नाचते हैं, ( तान् हन्तः नाशयामसि ) उनका वधुति नाश करते हैं ॥ ११ ॥

( ये दिवः आपतन्तं ममं सूर्यं न तितिस्रन्ते ) जो धुलोकसे आनेवाले इस सूर्यको सहन नहीं कर सकते, उन ( अरायान् प्रस्तवासिनः ) सखहीन करनेवाले, वस्त्रों रहनेवाले ( दुर्गन्धीन् लोहितस्यान् ) दुर्गन्धवाले, रक्तपुष्प मुद्रवाले, ( मकंकान् नाशयामसि ) मच्छोंका वधुति नाश करते हैं ॥ १२ ॥

( यः आत्मानं अविम्रात्रमसं आधाय ) जो अपने आपको अत्यंत रूपसे कन्धेपर चढाकर ( विभ्रति ) धारण करता है, हे हन्त ! उन ( स्त्रीणां प्रतोदितः रक्षांसि नाशय ) स्त्रियोंके गर्भभागको रीटा देनेवाले रीटा कुम्भियोंका नाश कर ॥ १३ ॥

( ये पूर्वे हस्ते वृक्षाणि विभ्रतः ) जो पहिले अपने हाथोंमें सोंगोंको लेकर ( वृक्षः यन्ति ) खीके पास पहुंचते हैं, ( ये आपाकेष्टाः प्रहासिनः ) जो पाक स्थानमें रहते हैं और जो हँसते हैं, ( ये स्त्वभ्ये ज्योतिः कुर्वते ) जो तत्त्वमें प्रकाश करते हैं, ( हन्तः तान् नाशयामसि ) वधुति उनका नाश करते हैं ॥ १४ ॥

( येषां प्रदानि पश्चात् ) जिनके पाँव पीछे और ( पाप्नीः पुरा ) वृद्धियाँ आगे हैं और ( मुखा पुरा ) मुख भी आगे हैं, ( खलुजाः शकधूमजाः ) सखों उरुष, गोबरके धूमसे उत्पन्न, ( उरुण्डा ये च मद्मटाः ) जो बड़े हुलवाले और कष्ट बढ़ानेवाले ( कुम्भमुष्काः अयाशयः ) बड़े धन्वेवाले गरिमाय होते हैं, हे मङ्गलस्यो ! ( अस्याः तान् ) इस स्त्रीके उन रोगबीजोंको ( प्रतीयोधेन नाशय ) जगले नाश कर ॥ १५ ॥

सारार्थ— नाचनेवाले रोगोपादक मच्छर आदि किसीको वधुति हटा दो ॥ ११ ॥  
धुलोकसे प्रकाशनेवाले सूर्यके प्रकाशको जो सह नहीं सकते, दुर्गन्धिपुष्प चर्मा आदि वधुतियों जो रहते हैं, उन रक्त पीनेवाले मच्छोंका इस नाश करते हैं ॥ १२ ॥

जो अपने आपकी कन्धेके सहारे ऊपर ही ऊपर धारण करता है, वह रोगकुम्भ स्त्रीके गर्भासवका रोग बढ़ानेवाला है, उसका नाश कर ॥ १३ ॥

जो अपने पास सोंग रखते हैं, पाकग्रहमें रहते हैं, जो चमकते हैं और स्त्रियोंके पास जाकर रोग उत्पन्न करते हैं, उन रोगकुम्भियोंका वधुति नाश करो ॥ १४ ॥

इनके पाँव पीछेकी ओर और पीछे की ओर होती है, मुख भी आगेकी ओर होता है, जो गोबर आदिमें उत्पन्न होते हैं, ये बड़ा कष्ट देनेवाले रोगबीज वधुति हटा दो ॥ १५ ॥

## गर्भदोष-निवारण

## प्रसूतिके दोष

प्रसूतिके समय किसीको विविध रोग होते हैं, उसका कारण मलिनता है, अतः इस स्थानकी पवित्रता करने और कुछ औषधियोंका उपयोग करके किसीको प्रसूतिके यह दूर करने चाहिये, इस महत्वपूर्ण विषयका वर्णन इस सूक्तमें कहा है। इसका अर्थ 'मातृ-शायी' है अर्थात् यह माता ही है। माताओंके अनुभव सुश्रुतीविशेषोंके द्वारा एकत्र करके जो अनुभवज्ञान प्राप्त हो सकता है, वह इस सूक्तमें है। इस सूक्तका विषय इसी सूक्तके १ वे अन्तर्गमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सं अवतोकां करोति ।

अथ्याः तं माशय, कर्मलं अक्षियं (छुट) । (मं. १)

" जिस रोगके कारण छोटे बच्चे मरते हैं, अथवा जिस रोगसे छोटा गर्भ पतनको प्राप्त होता है, उस छोटा बच्चा दोष दूर करना चाहिये और उसके गर्भाशयको निर्दोष बनाया चाहिये।" यह इस सूक्तका साध्य है। छोटा गर्भपतन न होने और बालबच्चे भी दीर्घायु हों। यह उपाय करना इस सूक्तका वांछित विषय है। यह विषय सब स्त्रीमात्रिका हित करनेवाला होनेके कारण बड़ा उपयोगी है। सब इन्द्रणी इससे लाभ उठा सकते हैं। इस सूक्तमें कहा है कि स्त्रीका-गृहमें कुछ रोगबीज होते हैं अथवा बाहरसे लुप्तते हैं, उनका नाश करनेके लिये 'यज विंश' नामक औषधि है, देखिये—

ये अस्तः जातान् मारयन्ति, स्त्रिकाः अनुरोरते ।

सोमापायान् पिङ्गाः आजनु ॥ (मं. १९)

" जो रोगबीज अपने हुए बच्चोंको मारते हैं, वे स्त्रिका गृहमें रहते हैं, वेही किसीके भागोंमें पहुँचते हैं। उनको दूर करनेके लिये विंश नामक औषधि है।" इस विंश औषधिका विचार हम भारी करेंगे, यहाँ इतना ही देखना है कि ये रोगबीज स्त्रीकागृहके अर्भकोंके कल्याण उत्पन्न होते हैं। और इसके कारण गर्भप्राप्त होता है, गर्भप्राप्त होता है और बच्चे भी भर जाते हैं। प्रायः स्त्रीकागृहमें अजानो लोग अन्धेरा रखते हैं, सूर्य प्रकाश यहाँ नहीं पहुँचता, अतः अन्धेरेके दोषसे ये रोगबीज यहाँ उत्पन्न होकर बढ़ते जाते हैं, वे सूर्य-प्रकाशमें नहीं रहते, इस विषयमें निम्नलिखित ग्रन्थ देखिये—

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्तूपेयं श्वशुरादधि ।

यजः तेषां हृदये अधि निविध्यताम् ॥ (मं. २०)

' जिस प्रकार बहुत श्वशुरसे दूर भागती है, उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशसे दूर भागते हैं। उन रोगकिसमियोंके हृदयोंपर यह औषधि यजः धरका पहुँचाती है।' यह उपाय उत्तम रीतिसे विचार करने योग्य है। बहुत अर्थपर स्तुता श्वशुरके पास नहीं रहती, उससे सम्बन्ध भी खरी नहीं होती, श्वशुरके आगे ही भागने लगी जाती है। इसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशके सम्मुख खड़े नहीं रह सकते, सूर्यप्रकाशमें जीवित भी नहीं रह सकते, जहाँ सूर्य-प्रकाश पहुँचता है वहाँ वे नहीं रहते। अतः जहाँ नींदोगता करनेकी इच्छा हो, वहाँ सूर्यप्रकाश विपुल रखना चाहिये। यदि प्रसूतिगृहके रोगबीज नष्ट करनेकी इच्छा हो, तो वहाँ सूर्यप्रकाश पहुँचानेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

यज औषधि हमने हृदयोंपर प्रहार करती है ऐसा यहाँ कहा है, इससे हमने हृदय हैं यह बात सिद्ध होती है। अर्थात् ये रोगबीज हृदयवाले होनेसे हृमिरूप हैं, ये निर्जीव नहीं हैं, ये कृमि वृंकि अन्धेरेमें बढ़ते हैं और सूर्यप्रकाशमें नाशको प्राप्त होते हैं, अतः इनसे बचनेका उपाय सूर्यप्रकाश ही है यह बात निश्चित है। परमेश्वरने सूर्यप्रकाश एक ऐसी औषधि दी है कि जिससे अनेक रोग दूर होते हैं और मनुष्य नींदोग और दीर्घायु हो सकता है। इसलिये कहा है—

अप्रजास्तये मार्तण्डस्तं रोदं अयं आधर्यं प्रातमुञ्ज ।

(मं. २१)

' संतान न होना, पैदा होनेके याद बच्चेका मर जाना, उस कारण होने पीड़नेका संभव होना, पापापराधोंमें प्रवृत्ति होना इत्यादि बातोंसे मनुष्यको मुक्त होना चाहिये।' अर्थात् मनुष्यको ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि धर्ममें संतति पैदा होवे, उत्पन्न बच्चे न मरे, दीर्घकालकाल जीवित रहें, मनुष्यपर कुटुम्बियोंकी मृत्युके कारण होने पीड़नेका अवसर न आवे, सब कुटुम्बी भावदत्ते काउत्तमन करते रहें और किसीकी प्रवृत्ति पापकी ओर न होवे। यह साध्य करनेके लिये विपुल सूर्यप्रकाशसे रहनेकी अर्जत आवश्यकता है। इसका कार्यकालमान यह है कि सूर्य प्रकाशसे नींदोगता होती है, रोगबीज दूर होते हैं, नींदोग होनेसे शरीर पुष्ट और दीर्घायु होता है। औत्तरायण शरीर दीर्घायु और अष्टपुष्ट होनेसे ऐसे बच्चों पवित्रलीनोंसे होनेवाला गर्भाधान उत्पन्न होता है, यह स्थिर होता है, संतान नींदोग, बालवान् और

सुख होती है, दीर्घजीवी होती है, अर्थात् ऐसी संतान होनेसे मरणात्यय के कारण होनेवाली रोगेरीटनेकी सम्भावना नहीं होती । प्रसूतिपूर्वका भारोग्य रहनेसे ऐसे बनेक लाभ होते हैं और प्रसूतिपूर्वका भारोग्य सूर्यप्रकाशसे स्थिर हो सकता है, अतः कहा है—

यः स्वपत्नीं जाग्रतीं विस्तति । ( म १ )

सूर्यं जनीनशतम् ॥ ( म २ )

‘ जो रोगबीज सोती हुई या जाग्रती हुई स्त्रीके शरीरमें जाकर उसको कष्ट देता है, उस रोगबीजका नाश सूर्य करता है । ’ सूर्यप्रकाशसे ये सब रोगबीज दूर होते हैं, रोगग्रन्थ भी सूर्यप्रकाशसे दूर रहते हैं, यह बात आमका चिकित्सा-शास्त्र भी कहता है । इसी सूर्यप्रकाशका महान् विस्तारित क्षेत्रमें विशेष रीतिसे कहा है—

ये सूर्यं न तितिक्षन्ते तान् मायायामसि । ( म १२ )

‘ जो सूर्यको नहीं सह सकते उस रोगग्रन्थियोंका नाश हम करते हैं । ’ यहाँ कहा है कि ये रोगग्रन्थ सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते । अन्धकारमें ही ये उत्पन्न होते, बढ़ते और रोगीतराजि करते हैं । जो सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते, वे सूर्यप्रकाशसे ही नष्ट होते हैं । सूक्ष्माग्रहका भारोग्य इस प्रकार सूर्य प्रकाशसे सहनहीमें प्राप्त हो सकता है अतः कहा है—

यः गर्भं प्रतिनृणात् जातः सा मायायामसि ।

तः पिंगं हृत्पाविषं कुणोतु । ( म १३ )

‘ जो रोगग्रन्थि गर्भका भाग करता है, अपने दुष्ट बच्चेका नाश करता है, उसका विंगलधर्मका सूर्य ( अथवा पीकी भौषधि ) हृदयमें रेष करके नाश करे । ’ यहाँ ‘ पिंगं हृत्पावे’ दोनों नये होते समर्थ हैं । सूर्य भी ( विंगल ) पीक पण होता है और वह वनस्पति भी पेशी ही पीकी होती है । जो रोगग्रन्थि पूर्वक प्रकार प्रसूतिपूर्वमें अधिरेम और अधिक शक्ति उत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार नाश करते हैं—

ये काम मांसं खादन्ति, ये पौकषेयं च क्रवि ।

फेदाया गर्भान् खादन्ति तान् हतः नायायामसि ।

( म २३ )

‘ ये रोगग्रन्थ शरीरका कष्ट ही मांस खाते हैं, वेही गर्भोंको खाते हैं, अतः उनका नाश करना उचित है । जब ये रोगग्रन्थि शरीरमें घुसते हैं तब जहाँ वे जाते हैं और वहाँका रक्त और मांस खाकर मनुष्यको क्षीय करते हैं और ये गर्भमें पहुंचकर गर्भको भी शूना देते हैं, इसलिये

सूर्यप्रकाशकी शरण जाना आवश्यक योग्य है । अतः कहा है—

पिब जायमानं रक्तं, पुमांसं क्षिप्य मा क्रतु ।

आण्डात् गर्भान् मा वभन्,

इतः किमीदिमं वाचस्व ॥ ( म २४ )

विंगलधर्म सूर्य ( अथवा भौषधि ) अपने बाळकको रक्षा करता है, स्त्री या पुरुषको रोगका अवसर नहीं देता, गर्भोंको रोगग्रन्थि दबा नहीं सकते, और ये जो भूषे किमि हैं उनसे सूर्यप्रकाश ही दूर हो देता है । ’ ये सूर्यप्रकाशसे लाभ होते हैं । इस अन्तर्गम इन रोगकिमियोंका नाम ‘ किमी दिव् ’ और ‘ आण्डात् ’ कहा है । किमीदिव्का कर्प ( फि हृदानी ) अथवा खाँ, अथवा खाँ, ऐसा कहोइले ये इमि होते हैं अर्थात् ये बच्चा भूषे ही रहते हैं । कभी इनको शूल शान्त नहीं होती, इनको अनुग्रह पदार्थ खानेके लिए मिळने पर वे बहुत सफाईमें बढ़ते हैं और अधिक शक्तिसे हृष्ट करते हैं । इसी प्रकार ये ( आण्डात् ) गर्भमें स्थित दीर्घको खाते हैं और मनुष्यको निर्वाप बना देते हैं, इसलिये इनका हमका होनेसे मनुष्य बलाकमें मर जाता है, पान्दु यदि यह मनुष्य सूर्यप्रकाशसे बीरोग बननेका चरम करेगा, तो इसकी अकालमृत्यु नहीं होगी ।

ये रोगबीज प्रसूतिपूर्वमें स्त्रीके शरीरपर हमका करते हैं और उसके शरीरमें रोग उत्पन्न करते हैं । रोग उत्पन्न होने के पश्चात् उनके निवारणका उत्पन्न करनेकी अपेक्षा रोग न होनेका बचन करना अधिक लाभकारी है, इसलिये कहा है—

जाताया दुर्धर्मा अलिश यस्तप मा पृधत् ।

( म १ )

‘ बाळकके अगले ही दुर्धर्मा, अलिश और यस्तप ये रोगबीज शरीरपर हमका करनेकी हृष्टता न करें । ’ प्रसूति पूर्वमें ये रोगकिमि होते हैं और शरीरपर हमका करते हैं । अतः ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि, ये इमि प्रसूतिपूर्वमें उत्पन्न न हों और यदि उत्पन्न भी हो पाए तो स्त्रीके शरीर पर हमका न करें और असाधारणके कारण हमका भी हों तो भी रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ न हों । प्रसूतिपूर्वमें यह कामक भौषधि रखनेसे अथवा सूर्यकिरण बढ़ा पहुंचाने से यह बात सिद्ध हो सकती है । अतः कहा है—

यज दुर्धर्माचातर्न । ( म २ )

‘ यज भौषधि इस दुर्धर्मा नामक रोगबीजको दूर करने वाली होती है । ’ इस वनस्पतिको प्रसूतिपूर्वमें रखनेसे यहाँ का भारोग्य स्थिर रह सकता है । सब हमि रोग उत्पन्न

करते हैं ऐसी बात नहीं है, इस कृमियोंमें दो प्रकारके कृमि हैं, उनमेंसे एक अच्छे हैं और दूसरे बुरे, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है

दुर्णामा च सुनामा च उभौ संयुते हृच्छतः ।

अरायात् अप हन्मः । सुनामा स्त्रियं हृच्छताम् ॥

( मं. ४ )

‘दो प्रकारके ये कृमि हैं, एक (सुनामा) उच्चम नाम-वाला भर्षाव जो शरीरमें शिवकारी है और दूसरा (दुः-नामा) दुष्ट नामवाला, जिससे शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं। ये दोनों शरीरपर आक्रमण करना चाहते हैं। इनमें जो (अ-रायात्) कृपण, जटुभार भयवा दुष्ट होते हैं उनका नाश इन करते हैं और जो वचन हैं वे छोड़े पास रहें।’ भर्षाव उच्चम कृमि मनुष्यके किये शिवकारक हैं, परन्तु जो रोगग्रस्त हैं वे ही भातक हैं, अतः ऐसा प्रवृत्त होना चाहिये कि वे पात्ररु रोगग्रस्त या किसीको कष्ट न पहुँचा सकें। ये कृमि जिस कृमिके होते हैं, इसका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

द्वयास्यात् चतुरसात् पञ्चपदात् भ्रमंगुरे ।

भभिसर्पतः परिवृतात् श्रुतात्परिषाहि ।

( मं. २२ )

‘इन कृमियोंके दो मुख, चार भाँसों और पाँच पांव होते हैं। इनकी भंगुलियाँ नहीं होती। ये हमका करते हैं और संवसकिते रहते हैं, इनसे बचना चाहिये।’ यह इन कृमियोंका वर्णन है, इसके साथ निम्नलिखित वर्णन और देखिये—

येषां प्रपदानि पक्षात्, पार्ष्वां मुखानि च पुरः ।

जलजाः शरुधूमजाः उदग्महाः

मर्ममटाः कुम्भमुष्काः अयाशयः

अस्याः ताव् प्रतिपौषेन नाशय । ( मं. १५ )

‘इनके पाँच पीठकी ओर तथा एही ओर मुख आवेकी ओर होता है।’ इन कृमियोंका वर्णन करनेवाले शब्द इस मंत्रमें ‘जलजा’, शरुधूमजा, उदग्महा, मर्ममटा, कुम्भ-मुष्का, अयाशयः’ ये हैं, इनमें ‘शरुधूमज’ शब्दका अर्थ ‘गोबरके धुँवसे उत्पन्न’ है, अन्य शब्दोंके अर्थ अभी तक विशेष विचार करने योग्य स्पष्ट नहीं हुए हैं। इस सूत्रमें ऐसे और भी बहुतसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट सुलभ नहीं है। ये कृमि जिनके शरीरमें रोग उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें कहा है—

ये हस्ते मृग्याणि विधत्तः पथः पथि ।

ये स्तम्भे ज्योतिः कुर्वते ।

ये जा-पाके-स्रमः प्रहासिनः नाशयामसि ।

( मं. १४ )

“जो हाथोंमें अपनी सींगोंको धारण करते हैं और सीके पास पहुँचते हैं, जो चमकते हैं और पात्रशालामें निवास करते हैं, उनका नाश करते हैं।” ऐसे कृमि जिनके शरीरमें घुसते हैं और वहाँ विविध रोग उत्पन्न करते हैं, अतः इनका नाश करना योग्य है। इस वर्णनमें ‘स्रमं ज्योतिः करनेका’ क्या अर्थ है इसका ज्ञान नहीं होता। इसको भी खोज होनी चाहिये। इस सूत्रमें रोगग्रस्तोंमें दो भेद कहे हैं, एक सूक्ष्म और दूसरे बड़े। यद्यपि सूक्ष्म कृमियोंका वर्णन हुआ अब बड़े मध्यम जैसे कृमियोंका वर्णन देखिये—

मच्छरोंका नाशन

मर्ममनादिनः कुसुलाः कुसिलाः कदमाः किमाः ।

सापं शालाः परिकृस्वन्ति, तान् गन्धेन नाशय ॥

( मं. १० )

“गंधे जैसा शब्द कानेवाले, जिनके पास दुर्गन्धके किये सुई जैसे इषिवार होते हैं, जिनका पेट घना होता है, जो सार्व-कालके समय घरके पास नाचते हैं, इनका गन्धसे नाश कर । यह वर्णन प्रायः मच्छरों अथवा मच्छर जैसे कीड़ोंका वर्णन है। ये शब्द करते हैं, सार्वकालको इनका शब्द सुनाई देता है, इनके कानोंके ठेक बड़े वीक्षण होते हैं। इनका नाश करनेके लिये उग्रगन्धवाने अथवा सुगन्धवाले पदार्थ उलाने चाहिये। परमं रूप जलानेसे मच्छर नष्ट हो जाते हैं, यह भागला भी बहुत भय है। इसी प्रकार उग्रगन्धवाले पदार्थ भी जलानेसे इन कीड़ोंको हराया जा सकता है। इनकी वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें है—

मच्छरोंके शत्रु

कुसुल्वाः कुकूरमाः कृतीः दूर्शानि विधत्ति ।

ये घोषे कुर्वतः यने प्रनुत्पतः

ताव् नाशयामसि । ( मं. ११ )

“ (कृतीः) कानेवाले (दूर्शानि) दंश करनेके साधन बनने पास धारण करते हैं। ये शब्द करते हैं और अद्वयमें नाच करते हैं, ऐसे कृमियोंका हम नाश करते हैं।” यह वर्णन जो पूर्वके समावही मन्त्रोंके मुखोंमें जो कानोंके साधन होते हैं, उनका नाम यहाँ ‘दूर्श’ दिया है और कानोंके

कारण ही इनको 'कृती' अर्थात् कष्टनेवाला कहा है। ये मर्यादिको बढाते हैं इसलिये उग्रगन्धवाले पदार्थ जल्दकर इनका नाश करना उचित है। इस मन्त्रमें और पूर्व मन्त्रमें कई ऐसे शब्द हैं कि जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं होना होता। ये शब्द खोजके योग्य हैं। तथा और देखिये—

### मण्डरोंके स्थान

भरायान् यस्तथासिनः दुर्गन्धीन् लोहितास्वात्  
मककात् माशयामसि ॥ ( मं. ३२ )

“ ये हमि बल अर्थात् चर्म आदिरर रहते हैं, इनसे दुर्गन्ध आती है, इनसे मुख काल होवे हैं, इन मशकोंका अर्थात् मण्डरोंका नाश करते हैं। ” इस मन्त्रमें 'मकक' शब्द बहुत कठिने मण्डरोंका शाब्दक है। 'बल' शब्दके मिश्रित अर्थकी भी खोज करनी आवश्यक है। इन कृमियोंको यहाँ 'अराय' कहा है। इस शब्दका अर्थ 'न देनेवाला' है। ये कृमि भारोग्यको नहीं देते, लूटके नहीं देते, भालु-प्यको नहीं देते तथा शरीरकी छोभाकी और बलको भी नहीं देते। क्योंकि इनसे अनेक रोग होते हैं और उस कारण इनका नाश करना चाहिए। इन रोगकृमियोंके कुछ स्थान निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रकट होते हैं, तथा ये शब्द अब देखिये, द्वितीयमन्त्रमें निम्नलिखित रोगजन्तुओंके नाम हैं—

### रोगकृमियोंके नाम

१ पलाक-अनुपलाकी—मांस मिनके रिप अनुकृत है, मांस रससे जो बढते हैं, मांस लाकर जिसकी पुष्टि होती है।

२ शकुं—हिलक, जो नाश करते हैं।

३ कोक—कानको बढाकर बीर्यवात करनेवाले।

४ मलिम्बुच्—मलिनवाले कष्टनेवाले, मलिनवाले चरत होनेवाले।

५ पलीजक—परित रोगको उत्पन्न करनेवाले।

६ शाशेप—कितोके साथ रहनेवाले।

७ प्रमीलिन—सुखी जानेवाले।

इस मन्त्रके शब्द शब्द 'यमियास्य', 'प्राश्रमीय' ये खोज करने योग्य हैं, क्योंकि इनका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। प्रथम मन्त्रों निम्नलिखित शब्द हैं—

॥ कृष्णः—काले रंगवाले। कृन्ना बीर्यनेवाले।

९ केरी—शकुंवाले मयवा अनुवाले।

१० अ-सुरः—मालवात करनेवाले।

११ तुपिडक—छोटे मुखवाले।

१२ ज-रायः—भारोग्यादि न देनेवाले।

इस पञ्चम मन्त्रमें 'स्त्ययज' शब्द है, इसका अर्थ समझों नहीं आता है। मतः यह खोजकी अपेक्षा रखता है। यह मन्त्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

१३ यनुजिघः—सूम्नेसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले, पाकिता द्वारा शरीरमें प्रवेश करनेवाले, केकड़ोंमें जो बढते हैं।

१४ प्रमुशन्—स्पर्श करनेवाले, स्पर्शसे प्राप्त होनेवाले, स्पर्शजन्य रोगके बीज।

१५ कट्यादः—मांस खानेवाले, शरीरका रस और मांस सनेवाले।

१६ रेरेरि—हिलक, घातक, नाशक।

१७ श्वकिष्की—कुत्तेके समान बीर्य करनेवाले।

इसी प्रकार अन्य मन्त्रोंमें जो शब्द हैं, उनका भी यहाँ विचार करेंगे तो उनसे इन रोगकृमियोंका ज्ञान हो सकता है।

इन सब रोगकृमियोंको 'रिंग बल' दूर करता है। इस रिपयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

### रिंग बल

परिसृष्टं धारयतु, दितं मा भवपात्रि।

उग्रौ भेयजौ गर्भं रक्षताम् ॥ ( मं. २० )

पर्वीनसात् त्वयस्वात् छापकात्

मन्त्रकात् किमीदिनः।

प्रजाये स्ये रिंगः परिपातु ॥ ( मं. २१ )

‘वर्माशयमें आधान किया हुआ गर्भ उद्यम रीतिसे धारण किया जाने, यमशयमें स्थित गर्भ पराक्यो न प्राप्त हो, यह दोनो चीज औषधियाँ उसकी रक्षा करें। इन रोग-बीजोंसे उद्यम संताप होनेके लिये रिंग बलस्थिते गर्भा-धयकी रक्षा होवे।’

इसीमें मंत्रके रोगबीजावक शब्द बदे दुर्बोध हैं तथा इस सूत्रमें कहे 'रिंग यज' वगैरहिका भी कुछ पता नहीं चलता कि यह वद वनस्पति कौनसी है। वैद्यक ग्रंथोंमें इसका नाम नहीं है। मत्तः इसकी खोज रोरी कठिन है। श्री. शास्त्राचार्यजीने अपने प्रथमभाष्यमें इस सूत्रपर भाष्य करते हुए इसका अर्थ 'भेदसर्प' किया है, अर्थात् 'संकेत सरसों', समझ द्ये, यही 'रिंग यज' का अर्थ हो, इसके गुण वैद्यकग्रंथोंमें निम्नलिखित प्रकार दिष्ट हैं—



## पिशवजके गुण

तिक्तः तीक्ष्णोष्णः घातकफघ्नः उष्णः कृमिकुष्ठघ्नः ।

सितासितमेदेन द्विधा । ( रात्रि )

कृष्ट्वा वातशूलनुत् । गुल्मफण्डूकुष्ठमणायकः ।

वातरक्तप्रहापहः । त्वरदापशमनो विषशूलमणायकः ।

सर्पपतैलगुणाः— घातकफघ्निकारणं कृमिकुष्ठघ्नं चक्षुष्यम् ।

। 'सरसो' तिक्तः, तीक्ष्णः, उष्णः, घातः और कफको हटा देने-वाली, हमि और कुष्ठरोगको दूर करनेवाली है। शूल और कफकी वृद्धि इसके दो रोग हैं। यह कटु, उष्ण, वातघ्नकका नाश करनेवाली, गुल्म, कण्डू, कुष्ठ, प्रवक्ता नाश करनेवाली

है। वायु रक्तदोषको दूर करनेवाली, त्वचाके दोषको दूर करनेवाली, विषसे उत्पन्न मणको हटानेवाली है। सरसोके लैटके [ ] ये हैं—वायु और कफके विकारको दूर करता है, हमि और कुष्ठका नाश करता है और नासिके छिदे हितकर है ।'

इस वर्णनमें सरसोका गुण कृमिनाशक, कुष्ठनाशक दिया है, जो पूर्वोक्त सूक्तके उपदेशके साथ संगत है, अतः बहुत समन है कि यही अर्थ 'पिशवज' का हो। इसकी विशेष खोज वाक्यत आरम्भक है। वस्तुतः [ ] तब सूक्त ही विशेष खोज करने योग्य है, क्योंकि इसके कई शब्द और कई वाक्य दुर्बोध हैं और आधुनिक कोशोंसे इनका अर्थ करनेमें छिपे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है ।

## पुंसवन

कां. ६, सू. ११

( कथि- प्रजापति । देवका- रैवः, भग्नोक्तदेवका । )

शमीर्मन्त्राय आरुहस्वत्र पुंसवनं कृतम् । तद्वै पुत्रस्य वेदनं वरुणीष्वामं रामसि ॥ १ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तस्त्रियामस्तु पिच्यते । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्राजापतिरमवीत् ॥ २ ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवालीचिकलवत् । स्रैपूयमुन्यत्र दधत्सुषुंसमु दधद्विह ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अथर्व-स्था ) भगवत् पुत्र ( शमी आरुहः ) शमी वृक्षपर जहाँ बड़ा होता है ( तत्र पुंसवनं कृतम् ) वहाँ पुंसवन किया जाता है। उससे ( पुत्रस्य वेदनं ) पुत्र-प्राप्ति निश्चित है। ( तद् वरुणीषु आमरामसि ) वह क्षिपेमें हम भर देते हैं ॥ १ ॥

( पुंसि वै रेतः भवति ) पुत्रमें निश्चयसे बीज होता है ( तद् त्रियामं अनुपिच्यते ) वह क्षिपेमें सींचा जाता है, ( तद् वै पुत्रस्य वेदनं ) वह [ ] प्राप्ति का साधन है, ( तद् प्रजापतिः अमवीत् ) वह प्रजापतिने कहा है ॥ २ ॥

( प्रजापतिः अनुमतिः ) प्रजापत्यक विना अनुकूल मति धारण करे और ( सिनी-वाली चिकलवत् ) गर्म-बली की समर्थ होवे, पैदा होनेपर ( पुंसं व ह ह दधत् ) इस गर्म ही यहाँ धारण होता है, ( अन्यत्र स्रैपूयं दधत् ) अन्य परिस्थितिमें क्षीगर्मे धारण होता है ॥ ३ ॥

## पुंसवन

निश्चयसे पुत्रकी उत्पत्ति

निश्चयसे पुत्रकी उत्पत्ति होनेके लिये एक उपाय इस सूक्तमें कहा है, उस औपधि प्रयोगका उपाय यह है—

शमी, अथर्व आरुहः तत्र पुंसवनं कृतम् ।

तद्वै पुत्रस्य वेदनं, तद् वरुणीष्वामरामसि ॥ ( मं. १ )

' ( १ ) शमी वृक्षपर जग और बड़ा हुआ पीपलका पुत्र होता है, वह पीपल पुत्रस्य गर्भकी धारणा करनेवाला होता है। क्योंकि इसकी औषध बताकर यदि क्षी सेवन करेगी तो वह क्षी पुत्र उत्पन्न करनेवाली बनेगी । ( २ ) [ ] पीपल निश्चयसे पुत्र उत्पन्न करनेवाला है, ( ३ ) इसके सेवनसे

विश्वपते पुत्र उत्पन्न होता है, ( ३ ) पुत्र उत्पत्तिसे लिये इस पीपलके औषधको शिपोंकी देना चाहिये ।

भर्माके वृक्षपर बने पीपल वृक्षके पञ्चस्रक्का वर्ण करने मधुके साथ सेवन किया जाये अथवा अथ वृष नागिहास सेवन किया जाये । इसके सेवनसे अनेक गर्भावात पुत्र गर्भ बलानेमें समर्थ होता है । जिस कीकसे कटकिपां ही होती हों, उस छोटी वह औषध देनेसे उसके गर्भाशयमें परिवर्तन होकर, पुत्र गर्भ उत्पन्न करनेकी शक्ति उसमें आसकती है ।

### पुंसवन और स्रुपय

पुत्र उत्पन्न होनेका 'पुंसवन' और कन्दकी उत्पन्न होनेका नाम 'स्रुपय' है । ये दोनों नाम इस मूलमें प्रयुक्त हुए हैं । जो पुत्र संतान निधायसे चाहते हैं वे इस औषधीका उपयोग करें । इस मंत्रके रूप अर्घ्यसे और जो एक मासप अथवा होता है, वह देनेसे योग्य है—

१ अश्विनस्यः— मन्त्रका अर्थ वाली है । वासीकवक्ता अर्घ्य पुरषको पुत्रप्राप्तिसे मुक्त करता है । मधु वान्धव अर्घ्य वह पोढेके समान पुत्रप्राप्तिसे मुक्त और समर्थ पुत्र । ( अश्व ) पोढेके समान जो ( स्रु, स्रु ) रहता है ऐसा वक्ता पुत्र ।

२ शमी— मन्त्रकी वृत्तिर्वा उल्लेख देनेवाली की, अर्थात् धर्मानुष्ठान गृहसामर्थ्य नियमोंका पालन करनेवाली की । ऐसे कीपुत्रोंके सम्बन्धसे निश्चित पुत्र संतान होती है । श्रीवृक्ष-सम्बन्धमें वीर्यका वृद्ध अधिक होने और रजकी ग्लूता करनेका विधान किया है । इसी कारण विश्वपते पुत्र संतान होती है । अर्थात् पुत्र अधिक बटताही हुआ जो पुत्रसंतान और की बटताहीनी हुई, जो वीर्यसंतान होती है ।

है । वहां बटका गर्भ पुत्रवर्धन और श्रीरक्षा भाग देना योग्य है ।

द्वितीय मंत्र गर्भाधान परक है और स्पष्ट है । तृतीय मंत्रमें फिर संवर्धनसे कुछ विशेष आशय कहा है । वह मधु देलिये—

१ प्रजापतिः— अपने संतानोंका वक्ता हीतसे पालन करनेमें समर्थ गृहस्थी पुत्र ।

२ अनुमतिः— वरपर अनुकूल प्रेमपूर्ण मधु रखने-वाले जो वा पुत्र ।

३ सिनीवाली— सिनका अर्घ्य है वक्ताका, वक्ताका वक्ता बटनेवाली की सिनीवाली है । जिस वक्ता वृक्षकी शक्तिमें वक्ताकी कलसे बटती है, वही प्रकार जिस कीकें गर्भाशयमें गर्भकी वक्ता बटती है । उसे सिनीवाली कहते हैं ।

ये शब्द बड़े विशालार्थ हैं । सम्मान उत्पन्न बड़ी की कि जो उनके पालन पोषणका भार सहन करनेमें समर्थ हो । सम्मानोत्पत्ति करना है जो कीपुत्र परस्पर अनुकूल संवर्धन रखें, सभी सम्मानयुक्तता पुत्र होगा । इनमें विरोध होगा जो संतान भी विशुद्ध गुणवर्धनवाली होगी । गर्भवती की समय की मेरे अन्तर चंचल गैला अपनी कलामेंसे बटने-वाला गर्भ है और वक्ताकी सुदृष्टिका प्रबंध करना मेरा कर्तव्य है । इस प्रकार व्यवस्था होनेसे पुत्र सम्मान होती है । इसके विपरीत व्यवस्था होनेसे की सम्मान होती है अथवा पुंसक सम्मान होती ।

अर्थात् पुत्र वीर्यकी ग्लूता, जो रजकी अधिकता, पुत्र और कीकें मजोवृत्तिमें विरोध इत्यादि कारणसे की सम्मान और रजवीर्यकी समावृत्तिसे पुंसक सम्मान होती है ।

## मुख-प्रसूति-सूक्त

कां. १, सू. ११

( अति-मधुरा । देवता- एतादृश, वक्ता देवताः । )

वर्षत ए पृथ्वास्मिन्सूतावर्षमा होतां कृणोतु मेघाः ।

सिखतां नार्युतप्रजाता वि पवीणि बिहतां सूता उ

॥ १ ॥

अर्थ— हे ( पूष ) पोष ईश ! ( ते वण्ट ) के लिये हम स्वर्गकी अर्पित करते हैं । ( अस्मिन् सूता ) हम प्रसूतिके कार्यमें ( अर्जमा होता मेघाः ) आर्य मन्त्रका दाता विधाता ईश्वर सहायका ( कृणोतु ) करें । ( अतमगता ) नियमपूरक शक्तियोंके जन्म देनेवाली ( नारी ) की ( सिखतां ) दक्षतासे रहे । श्या अपने ( पवीणि ) शरीरोंकी ( सूतवे उ ) सुलभप्रसूतिके लिये ( बिहतां ) बहने करे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे सर्वके पोषण करनेवाले जगदीश ! तेरे लिये हम स्वर्गकी अर्पित करते हैं । हम प्रसूतिके समय तक शालका निर्माणा दूरी हमारा सहायक कर । वह की की दक्षतासे रहे और इस समय अपने शरीरोंकी बहा करे ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिश्वर्तस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्युत्थिष्यन्तु सूतवे ॥ २ ॥

सूपा व्युत्थोतु वि योनिं द्वापयामसि । अथवा सूरणे त्वमय त्वं पिष्कले मृज ॥ ३ ॥

नेवं मांसं न पीवसि नेवं मज्जस्माहृतम् ।

अथैतु पृश्नि शेषलं शुने जरायुचवेऽयं जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥

वि तं भिनधि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणावं जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।

एवा एव दशमास्य साकं जरायुणा एतावं जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (दिवः) साक्षात्की (उत) तथा (भूम्याः) भूमिकी (चतस्रःप्रदिशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवोंने (गर्भं समैरयन्) इस गर्भको बनाया, इसलिये वे ही (सूतवे) उसकी मुखप्रसृष्टिके लिये (तं वि व्युत्थिष्यन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर निकालें ॥ २ ॥

(सूपा) उसमें संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्युत्थोतु) अपने शरीरोंको खोलें । इन (योनिं) योनियों (विद्वापयामसि) खोले हैं । हे (सूरणे) प्रसृत होनेवाली स्त्री ! (त्वं) तू भी (अथय) अंदरसे प्रेरणा कर और हे (पिष्कले) घीर स्त्री ! (त्वं) तू (जरायुज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

(न इव मांसं) न तो मांसमें, (न पीवसि) न चर्बीमें और (न इव मज्जसु) न सो मगगमें वह (आहृतं) चिरका हुआ है । (पृश्नि शेषलं) नाम सेवारके समान (जरायु) जेरी (शुने अस्तवे) कुत्तेके सानेके लिये (अथैतु) नीचे जावे, (जरायु) जेरी (अजपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥

(तं मेहनं) वेरे गर्भके मर्लको, (योनिं) योनिकी तथा (गवीनिके) गौमें नाहियोंकी (वि वि वि भिनधि) विविध रीतिले सुना कराया है । (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रके (वि) अलग करावा हूँ तथा (कुमारं जरायुणा वि) बच्चेकी जेरीसे शलग करता हूँ । (जरायु) जेरी (अज पद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥

जैसे वायु, जैसे मन और जैसे पक्षी (पतन्ति) पतते हैं, (एव) इसी प्रकार हे (दशमास्य) दस मासितकले गर्भ ! तू (जरायुणा साकं) जेरीके साथ (पत) नीचे या तथा (जरायु अजपद्यताम्) जेरी नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भाषार्थ— माताका और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्योदि सन्मुख देवोंने इस गर्भको बनाया है और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको मुखपूर्वक गर्भस्थानसे बाहर करेंगे ॥ २ ॥

और अब अपने गीग चुके करें, सहाय करनेवाली माँदे योनिकी छोड़ें । हे स्त्री ! तू भी अंदरसे प्रेरणा कर और मुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

वह गर्भ मांस, चर्बी या मज्जामें चिरका नहीं होगा । वह पानीमें पारपौर होनेवाले नरम सेवारके समान अथि भोमसु पैटीमें विपद्य हुआ होगा है, सब पैटीकी पैटी एकदम बाहर आवे और वह बालके साथ जेरी पुत्रोंको सानेके लिये ही जावे ॥ ४ ॥

योनि, गर्भस्थान और चिटली नाहियोंकी बीटा किया जावे, प्रसृति होने ही मातासे बच्चा शलग किया जावे और बच्चेसे जेरी माल समेत प्रलग ॥ जावे । मात समेत सब जेरी पूर्णतसे बाहर निकल जावे ॥ ५ ॥

किस प्रकार मन वेगसे विपयमें गिरता है, जैसे जल और पक्षी वेगसे आकाशमें पतते हैं उसी प्रकार इसमें मर्दिमें गर्भ जेरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर जावे और जेरी जावे सब नीचे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका दोहा भी भाग बचगिए न रहे ॥ ६ ॥

## सुख-प्रसूति-सूक्त

### प्रसूति प्रकरण

इस सूक्तसे नया प्रकरण प्रारंभ हुआ है। यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियों के लिये और सामान्यतः सुख के लिये विशेष लाभकारी है। स्त्रियों को प्रसूतिक समय जो कष्ट सहने पड़ते हैं उनका हृत्त क्षिप्त ही जाननी है। प्रसूतिक समय श्रुत कष्ट होना प्रकृतसे साध्य है। गर्भधारणसे लेकर प्रसूतिक समय तक प्रथम गर्भधारणसे भी पूर्व समयमें भी जो नियम धारण करने योग्य होते हैं, उनका योग्य शिक्षित वाचन करनेसे प्रसूतिके बहुलसे कष्ट दूर होने संभव है। इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है। यहाँ इस सूक्तमें जितना विषय आया है, उसको अब यहाँ देखिये—

### ईश्वरभक्ति

परमेश्वरकी भक्ति ही मनुष्यको दुःखोंसे पार कर सकती है। गृहस्थी वीरुष वदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होने से उस परिवारकी स्त्रियोंको प्रसूतिके कष्ट न होयें, यह अनेक लिये इस सूक्तके प्रथम मंत्रके पूर्वार्धमें ही लक्ष्य प्रकट है ईश्वरकी आज्ञासूत्रका ध्यान किया है।

'वपद' शब्द 'स्याद्वा' अर्थात् 'आत्मसमर्पण' के अर्थमें प्रयुक्त होता है। (हे पूषम् ! ते वपद) हे ईश्वर ! मेरे लिये इस अपने आपको समर्पित कर रहे हैं। तू ही (अये-मा) मेरा सरागोका भाल करनेवाला अर्थात् शिकारी है, तू ही (येधाः) सब जगत्का रक्षयिनी और निर्माता है और तू ही (होता) सब सुखोंका दाता है। इसलिये हम तेरे आज्ञासे रहते हैं और तेरे लिये ही पूर्णतया समर्पित होते हैं।

यहाँ पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देखने योग्य है। 'सर्व सूर्यादि देवताओंको धार्मिक देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासन ही सर्वोच्च है।' इसादि भाग जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहाँ देखिये। 'सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा सहायकारी है, और मैं उसकी ओदरों हूँ' इसादि भक्तिके भाव जिसके दृष्टमें अत्रिम प्रेमके साथ रहते हैं, वह अनुभव विशेष चक्षुषे और भावनेसे सुक्त होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य तथा जाननेमें रहता है।

काम विकारका समय करनेके लिये परमेश्वर भक्ति ही एक दिव्य औपधि है। कामविकारका नियन्त्रण हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके हृत्त लीन गीमे कम हो जायेंगे, क्योंकि कामकी भक्ति होनेसे ही स्त्रियों अलग कभी हैं और लक्ष

गतके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके प्रसन्नके क्षयादि रोग भी कष्ट देते हैं। इसलिये काम-भोगका नियन्त्रण परमेश्वरकी भक्तिके करनेका उपदेश हर एक स्त्रीपुरनको यहाँ अवश्य ध्यानमें राना चाहिये।

### देवोंका गर्भमें विकास

सूर्यादि देवता अपना-अपना अंश गर्भमें रहते हैं, तब देवताओंका भक्षणवत्ता गर्भमें होनेसे पञ्चात् सात्मा उसमें आता है। इसादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है। [इस विषयमें स्वाध्यायमंडल द्वारा प्रकाशित 'मनुचर्य' पुस्तकमें 'देवोंका भक्षणवत्ता' शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये। यहाँ विविध वेदमंत्रोंद्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया गया है।] साधारण, गर्भमें भक्षणरूपसे अनेक देवता रहते हैं और उनका सबैक बाह्य देवताओंके साथ है। भूमि और आकाशको जहाँ विश्वार्थोंमें रहनेवाले सब देवता गर्भमें भक्षणरूपसे साथ पाए हैं, मानो उनका संमेलन (समैरयन्) ही गर्भमें हुआ है और उनका अधिष्ठाता आत्मा भी वही गर्भमें है। यह स्वविश्वास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये। सर्वांग जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने वेदक कालोपरमोवका ही भक्त नहीं है, अतः उसमें विशेष मद्भाग्यपूर्ण आत्मभक्तिका और दैवीभक्तिका सम्बन्ध है। ऐसा भाव गर्भवती कीमें स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है। गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आह्वान किया जाता है। गर्भाधान काम-विकारके पोषणके लिये नहीं है अतः उच्च चक्षुषोंकी धारणाके लिये ही है। अतः। गर्भिणी की अपने गर्भके विरपमें इतना उच्च भाव करने चाहिए और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें रहते हुए हैं वे ही देवता गर्भका पोषण और पुनः प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगे। अर्थात् इस प्रकार देवता-ओंकी सहायता और परमात्माका साधारण गुणों से हमलिये गुणों को कष्ट नहीं होगा, यह स्वविश्वास उत्तम होना चाहिये।

### गर्भवती स्त्री

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर उद्भावे धारण करे। जब गर्भवती की अवस्था गृहस्थावस्थामें रहनेवाली की निम्न बातोंका विचार करे—

१ लक्ष्मी— जो गर्भनीतिमें (नृपाति) चण्डी है अर्थात् सर्व दिव्यमेंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुरुषों साथ रहती है, वह लक्ष्मी कहलाती है। अर्थात् विशेष गृहस्थ-

धर्मके विषमोंका पालन करनेका साध इस शब्दसे सूचित होता है । ( सं. १ )

२ श्रुत+प्रजाता- ( श्रुत ) सत्यनियमानुष्ठान ( प्रजाता ) प्रजनन कार्यसे युक्त । अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-वोषण और प्रसूति आदि सब कार्य जिसके तत्त्व धर्मनियमोंके अनुसार होते हैं । श्रुतगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपरान्त अथवा बालक दूध पीना छोड़ दे तत्पश्चात् श्रुत-गामी होना इत्यादि सब विषयोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है । ( सं. १ )

३ सूया, सूयणा- जिस स्त्रीको प्रसूतिके कुछ वर्षों होते, अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है । स्त्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह पुण्य करनेमें काम आहिye । ( सं. १ )

४ विष्कसा- पीर की अर्थात् धैर्यवती स्त्री । स्त्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढ़ाना आवश्यक है । कठोरसे पचाना नहीं चाहिये । धैर्यसे इनको सहना चाहिये । ( सं. १ )

गर्भवती स्त्रियोंको इन शब्दों द्वारा प्रसूत होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है ।

### गर्भ

इस सूत्रमें गर्भका नाम " दद्या-मास्य " आया है । इसका अर्थ " दस मासकी मातृभार " ऐसा है । यह शब्द परिपूर्ण गर्भका समय बता रहा है । दसवें मासमें प्रसूतिका ठीक समय है । दसवें माससे पूर्व स्त्री प्रसूति होती है, यह गर्भकी अपेक्ष अनुसारमें होनेके कारण मासके कुछ बढ़ाती है । योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब मासके कुछ बढ़ानेवाले हैं और ये सब दुःस गृहस्था-धर्मी स्त्रीपुरुषोंके विषमराहित वर्तमानों ही होते हैं । जो गृहस्थाधर्मी स्त्रीपुरुष योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंका सुखसे प्रसूति होती है ।

### सुख-प्रसूतिके लिये आदेश

१ स्त्री परमेश्वरी की ओ । ( सं. १ )

२ अपने गर्भमें देवताओंका आराधना है ऐसे भाव मनमें धारण करे । ( सं. २ )

३ ( सिद्धता ) दृढ़तासे अपना ध्यान करे । ( सं. १ )

४ प्रसूतिके समय ( पर्याणि विविहतां ) अपने कर्तव्योंको ठीक करे । ( सं. १ )

५ ( सूया व्यूर्णोत्तु ) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने कर्तव्योंको ठीक अथवा सुख करे अर्थात् सरत न बनाये । ( सं. ३ )

६ ( सूयमे ! त्वं शयय ) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपनी दृष्टि-शक्तिसे भी अंदरसे प्रेरणा करे तथा मनसे प्रसूतिके कर्तव्योंको प्रेरित करे । यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्रीको ही अंदरसे करनी चाहिये । ( सं. ३ )

### पार्श्वकी सहायता

१ प्रसूतिके समय पार्श्वकी सहायता आवश्यक होती है । यह पार्श्व भी प्रसूत होनेवाली स्त्रीको एक सूचनाएं देती रहे और धीन देती रहे । " परमेश्वर तेरा सहायक है और सब देव तेरे गर्भमें हैं अतः उनकी भी सहायता तुझे मिलेगी । " इत्यादि वाक्योंसे उसका पीरता घटायें ।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे खुला करे । ( सं. ३ )

३ जेडीके अंदर पर्यं होता है । गर्भके साथ जेडी नाल आदि सब बाहर बाह्य और कोई उसका पदार्थ मासके गर्भशयमें न रह जाय इस विषयमें पार्श्व दृष्टिसे अपना कार्य करे । उस पदार्थके अंदर रहनेसे बहुतही दुःखका होता संभव है । ( सं. ४ )

४ प्रसूतिके समय गर्भमाला, योनि और पिछले अवयव खुले करने चाहिये । इनको यथायोग्य रीतिसे ढीका करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे । ( सं. ५ )

५ प्रसूति होने ही मासके दाससे पुत्रको भरणा उसके उस-परके जेडीका घेरा हुआ तो अवश्य कार्य करना ही यह सब योग्य रीतिसे करे । ( सं. ५ )

### सूचना

यह विषय शारीरशास्त्रका है, वैज्ञानिक नहीं है । इस सूत्रके शब्दोंका अर्थ भी शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकारमें अनुसृत ही समझना उचित है । इसलिये जो वैद्य या डाक्टर हैं, जिन्होंने सुख-प्रसूतिशास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके साथ अच्छा अनुभव भी है, उनको इस सूत्रका अधिक विचार करना चाहिये । वे ही इस सूत्रके " सिद्धतां विविहतां, व्यूर्णोत्तु " आदि शब्दोंको ठीक प्रकार समझते हैं और वे ही इस सूत्रकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं ।

## रक्तसाव बन्द करना

कां. १, सू. १७

( कपि—प्रका । देवता—योपितः धमन्यः । )

अमूर्या यन्ति योपितो हिरा लोहितवाससः । अम्रातर इव आमयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥  
 तिष्ठान्ते तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे । कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठदिद्धमनिर्मही ॥ २ ॥  
 हतस्य धमनीनां सहस्रेण हिराणाम् । अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥  
 परि वः सिकतावती धनूर्ध्वदस्यक्रमात् । तिष्ठतेत्यन्ता सु कम् ॥ ४ ॥

अर्थ—( हय ) जिस प्रकार ( अ-भ्रातरः ) विना भार्यके ( हत-वर्चसः ) निस्तेज बनी ( आमयः ) बहने लड़ जाती हैं उसी प्रकार ( अमूः याः ) यह जो ( लोहित-वाससः ) रक्त-काष्ठ कपड़े पहनी हुई ( योपिता ) कियों हैं अर्थात् काल रंगका लून के जानेवाली ( हिराः ) धमनियां शरीरमें हैं वे ( तिष्ठन्तु ) और तब अर्थात् चलना बंद करें ॥ १ ॥

( अमरे तिष्ठ ) हे नीचकी माही ! वृ क । ( परे तिष्ठ ) हे ऊपरवाली माही ! वृ भी एक ( उत मध्यमे ) और बीचवाली ( त्वं तिष्ठ ) तू भी एक जा । ( कनिष्ठिका च तिष्ठति ) छोटी माही भी एकही है तथा ( धमनिः इव तिष्ठान्ते ) धमनी माही भी एक जावे ॥ २ ॥

( धमनीनां हतस्य ) सैकड़ों धमनियोंके और ( हिराणां सहस्रेण ) हजारों नाड़ियोंके बीचमें ( इमाः मध्यमाः अस्थुः ) वे मध्यम नाड़ियां एक गई हैं । ( साकं ) साथ साथ ( अन्ताः ) बंद भाग भी ( अरंसत ) ठीक हो गए हैं ॥ ३ ॥

( धृवती धनूः ) बड़े धनुष्यमें ( वः परे साकमात् ) तुझपर हमका किया है, अठ. ( सिकतावती तिष्ठत ) रेतवाली भयबा शर्करावाली बतकर और जा, जिससे ( क ) सुख ( सु हल्यत ) प्राप्त करेंगी ॥ ४ ॥

भाषार्थ—शरीरमें हाथ रक्त रक्त शरीरमें पड़नेवाली धमनियां हैं । अब कहीं धाव लगा जावे तब इनकी गति रोक देनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रहित बहियोंकी गति रक्त जाती है ॥ १ ॥

नीचवाली, ऊपरवाली तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाड़ियोंको बंद कर देना चाहिये ॥ २ ॥

सैकड़ों और हजारों नाड़ियोंमें आवश्यक नाड़ियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके पटे अंतिम भाग रोक दिये जावें ॥ ३ ॥

बड़े धनुष्यके बड़े बाणोंसे धमनियोंपर हमला होनेके कारण नाड़ियां पट गई हैं, उनका सँकराये साथ संघट्ट करनेमें शीघ्र साधोप प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

## रक्तसाव बंद करना

धाव और रक्तसाव

शरीर हाथादिसे धाव होनेपर धावके ऊपरकी और नीचकी नाड़ियोंकी धाव देनेसे रक्तका साथ बंद हो जाता है । धाव देखकर ही नियंत्रण करना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तसाव इस प्रकार बंद किया जाय तो शीघ्रमें शीघ्र भागोप प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके

बहुत धाव होनेके कारण धनुष्य मर भी सकता है । इस-लिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

“ सिकतावती ” अर्थात् रेतवाली भयबा शर्करावाली धमनी करनेसे रक्तसाव बंद होया है । प्राकिक गिभीका धावके चूर्ण लगानेसे धाव बंद हो सकता है, यह कपल विचार करने योग्य है ।

व्याघ्रेऽक्षयं जनितं वीरं नक्षत्रजा जपमानः सुवीरः ।

स मा वंघीरिपतरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्वानित्रीम्

॥ ३ ॥

अर्थ—( व्याघ्रे अक्षि ) जू दिनेमें ( वीरः अजनिष्ट ) वीर पुत्र उत्पन्न हुआ है, ( नक्षत्र-जाः जापमानः सुवीरः ) योग्य नक्षत्रके समय उत्पन्न हुआ वह उत्तम वीर है । ( सः वर्धमानः पितरं मा वंघीत् ) वह बढ़ता हुआ पिताको न मारे, ( जनित्री मातरं च मा प्रमिनीत् ) उत्पादक माताको भी दुःख न दे ॥ ३ ॥

मायार्थ— किसी भविष्ट सम्बन्धों भी वह रक्तका उत्पन्न क्यों न हुआ हो, वह उत्पन्न होनेके बाद उत्तम वीर बने और बढ़ता हुआ अपने माता पिताको कोई क्रोध न पहुँचावे ॥ ३ ॥

## संस्तानका सुख

कां. ७, सू. १११

( अग्नि- प्रजा । देवता- वृषभः । )

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधानं आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।

प्रजा जनय यास्तं आसु या अन्यथेह तास्तं रमन्ताम्

॥ १ ॥

अर्थ— इ ( इन्द्रस्य कुक्षिः असि ) इन्द्रका पेट है, इ ( सोम-धानः ) सोमका धारक है । इ ( देवानां मानुषाणां आत्मा ) देवों और मनुष्योंकी आत्मा है । ( इह प्रजाः जनय ) यहाँ संतान उत्पन्न कर । ( याः ते आसु ) जो तेरी प्रजाएँ इन भूमियोंमें निवास करती हैं ( याः अन्यथ ) और जो दूसरे स्थानमें निवास करती हैं । ( ते ताः रमन्ताम् ) वे तेरी प्रजाएँ सुखसे रहें ॥ १ ॥

समुच्च इन्द्र अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्ति देनेवाले आत्माका सोम-संग्रह करनेका मानो पेट ही है, इस पेटमें सोमादि बनस्पतिका संग्रह किया जाये, अर्थात् शाकाहार किया जाये । मांसाहार सबंधा विषय है । ऐसा परिशुद्ध समुच्च इस संसारमें उत्तम संतान उत्पन्न करे, प्रजा अपने देशमें रहे या परदेशमें रहे, वह कहीं भी रहे । जहाँ रहे वहाँ आनन्दसे रहे । सुख और ऐश्वर्य भोगे, सुखपूर्वक रहे ।

## घरके दो बालक

कां. ७, सू. ८१

( अग्नि- अथर्वः । देवता- सप्तर्षिः । )

पूर्वापरं चरतो मापयेतौ शिशू क्रीडन्तौ परि पातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो सुवंता विचष्टं क्रतून्मो विदधंज्जापसे नवः

॥ १ ॥

अर्थ— ( एतौ शिशू क्रीडन्तौ ) वे दो बालक अर्थात् शिशु और बाल, खेलते हुए ( मापयेतां चरताः ) जगिमे भागे पीछे चलते हैं । और ( अर्णवं परि यातः ) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुँचते हैं । ( अन्यः विश्वा सुवंता विचष्टे ) उनमेंसे एक सब सुवन्तोंको प्रकाशित करता है और ( अन्यः क्रतून् विदधत् नवः जायसे ) दूसरा मनुष्योंकी बनाया हुआ नया नया बनाने है ॥ १ ॥

मायार्थ— हम पारमें दो बालक हैं, वे दोनों एक दूसरेके पीछे अपनी शक्तियों ही खेलते हैं । खेलते हुए समुद्रतक पहुँचते हैं, उनमेंसे एक सब जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा मनुष्योंकी बनाया हुआ नया भी बारबार नवीन करीब बनाता है ॥ १ ॥

नवोन्नवो भवसि जायमानोऽह्ना केतुत्पसमिष्यग्रं ।

साम दुवेभ्यो वि दधास्यायन्त्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः

॥ २ ॥

सोमस्यांशो युधां एतेऽनूतो नाम वा असि । अनूत दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च

॥ ३ ॥

दुर्शोऽसि दर्शतोऽसि सर्वत्रोऽसि समन्तः ।

समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरर्थैः प्रजयां पशुभिर्गृहैर्धनेन

॥ ४ ॥

योऽह्नान्द्रेष्टि यं वय द्विप्पस्तस्य स्व प्राणेना प्यायस्य ।

आ युयं प्याधिषीमहि गोभिरर्थैः प्रजयां पशुभिर्गृहैर्धनेन

॥ ५ ॥

यं देवा अशुषाप्याययन्ति यमश्चित्तमक्षिता भक्षयन्ति ।

तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु युवेनस्य गोषाः

॥ ६ ॥

सर्थ—(जायमान नय नय भवसि) प्रकट होता हुआ क्या क्या होता है। एक (अह्ना केतु) दिनोंको बतातेवाला है वह (उपस्था अग्र मयि) उप कालेक बार प्रकट होता है। (आयन्त्र त्रेयेभ्य भाग विवधासि) वह भाग हुआ हैवैक लिये विभाग समर्पण करता है। तथा (चन्द्रम दीर्घ आयु म स्तिरसे) है चन्द्रमा। तू दीर्घ आयु भरण करता है ॥ २ ॥

हे (युधा पते, सोमस्य अश) युद्धोंक स्वामी ! हे सोमके मत ! (अनूत नाम वै असि) तू अनूत नवांश महान् यतवाला है। हे (दर्श) दर्शनीय ! (मा प्रजया धनेन च अनूत वृधि) मुझे प्रजा और धनसे परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

(दर्श असि) तू दर्शनीय है, तू (दर्शत असि) दर्शनक लिये योग्य हो। तू (स अन्त समग्र असि) सब अन्तोंसे समग्र हो। (गोभि गव्यै प्रजया पशुभि गृहै धनेन) गौ, घोड़े, सत्तान, पशु, घर और धनसे मैं (समन्त समग्र भूयास) अन्ततक परिपूर्ण होऊ ॥ ४ ॥

(य अस्मान्द्रेष्टि) जो हम लपटे देव करता है (य युय द्विप्प) और जिससे हम सब देव करते हैं, (तस्य प्राणेना प्यायस्य) उसक प्राणसे तू नय नय, (गोभि, गव्यै, प्रजया, पशुभि, गृहै, धनेन यय आप्याशिषीमहि) गौ, घोड़े, सत्तान, पशु, घर और धनसे हम सबें ॥ ५ ॥

(य अशु देवा आप्याययन्ति) जिस सोमको देव बहाने हैं, (य अक्षित अक्षिता भक्षयन्ति) जिस भविष्यतीको क्षत्रिणासी खाते हैं, (तेन) उस सोमस (अस्मान्) हम सबको (युयनस्य गोषा इन्द्र वरुण बृहस्पति) युवनक रक्षक इन्द्र, वरुण, बृहस्पति ये देव (आप्याययन्तु) बहानें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इनमेंसे एक दिनक समग्रका फिह है जो उप कालक अन्तिम समयमें प्रकट होता है और सब देवोंको योग्य विभाग समर्पण करता है। जो दूसरा बालक है वह स्वयं बारबार नवीन नवीन वयस है और सबको दीर्घ आयु देता है ॥ २ ॥

हे युद्धोंक स्वामी ! सोमक भंज ! तू पूर्ण और दर्शनीय है, तब मुझे सत्तान और धनसे परिपूर्ण करा ॥ ३ ॥

तू दर्शनीय और अन्ततक परिपूर्ण है, मैं जो गाय घोड़े आदि पशु सत्तान, घर, धन आदिसे पूर्ण बर्तूंगा ॥ ४ ॥

जो दुष्ट हमसे देव करता है और जिससे हम देव करत हैं उसक प्राणका तू दहन कर और हम धनादिसे परिपूर्ण करें ॥ ५ ॥

जिस सोमको देव बहाने और भक्षण करत हैं उससे हम पुष्ट हों, त्रिभुवनक रक्षक देव इन्द्रासी उचति करें ॥ ६ ॥





अदितिः इमं वपस्वार्प उन्दन्तु वर्षसा । चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुस्त्वाम् चर्षसे ॥ २ ॥

येनार्वपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।

तेन ब्रह्माणो वपतेदमुस्य गोमानश्चैवानुयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अदितिः इमं वपत् ) अदिति चाथेका वपन करे, ( आपः वर्षसा उन्दन्तु ) जल तैवके साथ बालोंको गीला करे । ( दीर्घायुस्त्वाम् चर्षसे ) दीर्घायु और उच्चम दक्षिके लिये ( प्रजापतिः चिकित्सतु ) प्रजापालक इसकी चिकित्सा करे ॥ २ ॥

( विद्वान् सविता ) ज्ञानी सविता ( येन क्षुरेण ) जिस क्षुरेसे ( वरुणस्य राज्ञः सोमस्य अयपत् ) ब्रह्म राजा सोमका वपन करता रहा, हे ( ब्रह्माणः ) ब्रह्माणो ! ( तेन अस्य इदं वपत् ) उससे इसका यह सिर मूंडो ( अयं गोमान्, अश्वयान्, प्रजावान् अस्तु ) यह गौबोवाका, घोबोवाका और सन्वागवाका होवे ॥ ३ ॥

घातोंका वपन करना अर्थात् हजामत बनवाना हो तो पहिले उचित मन्त्रसे बालोंको अच्छी प्रकार भीगेना चाहिये । भिगातेवाला विशेष स्थानसे बाळ भिगावे । उज्जरा छानेवाला निर्दोष उत्तुंग छाने, उसको तीक्ष्ण करे । जिसने क्यालसे राजाके सिरका वपन करते हैं, उसकी ही सावधानीसे बालका भी सिर मुण्डाया जाय । किसी प्रकार मत्तावधानी न हो । जिसका वपन करना हो उसकी भातु मंडे और दक्षि उच्चम हो ऐसी रीतिसे वपन करना चाहिये । पैदा उत्तरे और जलकी परीक्षा करे जिसकी हजामत होनी है उसकी भी परीक्षा करे । वपनके समय मक्का भार ऐसा रखे कि जिसकी हजामत की जा रही है वह दीर्घायु, स्वस्थ, मौनी और धोड़ोंका पालनेवाला तथा उच्चम संजानसे युक्त हो । इसके विपरीत भाव मनमें न रहे ।

## मेखला वंशज

कां. ६, सू. १३३

( कपिः— अग्रजः । देवता— मेखला । )

य इमां देवो मेखलामावपन् यः संननाह य उ नो युयोज ।

यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥ १ ॥

आहुतास्पमिहुतु ऋषीणामस्यायूषम् । पूर्वा व्रतस्य प्राप्नुवी वीरिणी यव मेखले ॥ २ ॥

अर्थ— ( यः देवः इमां मेखलां आवपन् ) जिस आचार्य देवने इस मेखलाको मेरे शरीरपर बांधा है, ( यः संननाह ) जो इसमें तैयार रहना है और ( यः उ नः युयोज ) जो हमें कार्यमें लगाता है । ( यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः ) जिस आचार्य देवके आशीर्वादसे इस व्यवहार करते हैं, ( सः पारं विच्छात् ) वह हमारे दुःखसे पार होनेकी इच्छा करे और ( सः उ नः विमुञ्चात् ) वही हमें बंधनसे मुक्त करे ॥ १ ॥

दे मेखले ! ( आहुता अभिहुता अस्ति ) तू सब प्रकारसे प्रशंसित है । तू ( ऋषीणां आयुधं अस्ति ) ऋषियोंका आयुध है । तू ( व्रतस्य पूर्वा प्राप्नुवी ) किन्तु व्रतके पूर्व बांधी जाती है । तू ( वीरिणी भय ) सबके वीरोंको मारनेवाली है ॥ २ ॥

भाषार्थ— शुभ शिष्यकी कमरमें मेखला बांधता है और उसकी सत्कर्म करनेके लिये, जानो, तैयार करता है । ऐसे मुष्टके आशीर्वादसे साथ ओ शिष्य व्यवहार करते हैं वे संपूर्ण दुःखोंसे पार होते हैं और अन्तमें मुक्ति भी प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

मेखलाकी सब प्रशंसा करते हैं, वह मेखला कश्चिर्बला शक्त है । इतक कार्य करनेके पूर्व कमर बांधकर तैयार होनेकी शिक्षा इससे मिलती है । इस प्रकार कश्चिद् होकर कार्य करनेसे साथ शत्रु दूर होजाते हैं ॥ २ ॥

मृत्योरहं प्रकचारी पदस्मि निर्पाचन्मृतात्पुरुषं यमाय ।

तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानर्थेन मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥

श्रद्धाया दुहित्वा तपसोऽधि ज्ञाता स्वसु शरीरायां भूतकृता नृभूय ।

सा नो मेखले प्रतिमा धेहि मेधामयो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

या त्वा पूर्वं भूतकृत शपेयः परिबेधिते । सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुस्वार्थं मेखले ॥ ५ ॥

अर्थ— (यत् यह मृत्योः प्रकचारी अस्मि) भिन्न कारण मैं मृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ, उस कारण मैं (मृतात् पुरुषं यमाय निर्पाचन्) मनुष्य प्राणियोंसे एक पुरुषको मृत्युके लिये समर्पित हूँ और (त अहं) उस पुरुषको मैं (ब्रह्मणा तपसा श्रमेण) ज्ञान, तप और परिश्रम करनेकी तकिके साथ (एवं अनया मेखलया सिनामि) इस मेखलासे बांधता हूँ ॥ ३ ॥

यह मेखला (श्रद्धाया दुहिता) अर्थात् दुहिता, (तपस अधिज्ञाता) तपसे उत्पन्न हुई, (भूतकृता शरीरायां स्वसु) भूतोंको बनानेवाले शक्तियोंकी भगिनी है। हे मेखले ! (सा) वह तू (न मां मेधा बाधेहि) नहीं कलम बुद्धि और धारणाशक्ति दे (अथो तप इन्द्रियं च न धेहि) और कथशक्ति और कलम इन्द्रियां इमे प्रधान कर ॥ ४ ॥

हे मेखले ! (या त्वा पूर्वं भूतकृत शपेयः परिबेधिते) जिस तुझको पूर्वकालसे भूतोंको बनानेवाले शक्ति बाधते रहे (सा त्वं दीर्घायुस्वार्थं मां परिष्वजस्व) वह तू दीर्घायुके लिये मुझे आश्विन्य दे ॥ ५ ॥

भाषार्थ— मेखला बांधनेका अर्थ कटिबद्ध होना है। विशेष कार्यके लिये मेखला बंधन करनेसे, मातो, मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही सिद्ध होता है। तप मातृवाची मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही तैयार होते हैं। इत्यादि ही नहीं अपितु वे मनुष्योंमेंसे कई मनुष्योंको इस प्रकार मृत्यु स्वीकार करनेके लिये तैयार करते हैं। ज्ञान, तप, परिश्रम और कटिबद्धता इन गुणोंसे वे युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

मेखला अर्थात् बांधी जाती है। उससे तप करनेकी प्रवृत्ति होती है। केवल शक्तियोंसे वह कटिबंधनका प्रारंभ हुआ है। वह कटिबंधन समको कलम बुद्धि, धारणाशक्ति, इन्द्रियशक्ति और तप देवे ॥ ४ ॥

शक्तिद्वारा इस मेखलाको बांधते हैं, अतः वह मेखला हमें दीर्घायु देवे ॥ ५ ॥

## मेखला बंधन

### कटिबद्धता

मेखलाबंधन 'कटिबद्धता' का सूचक है। हरवृत्त कार्यके लिये कटिबद्ध होना आवश्यक होता है, अन्यथा वह कार्य बन नहीं सकता। भाषाओं भी कहते हैं कि कमर कसके वह मनुष्य इस कार्यको करते एगा है, अर्थात् कार्य ठीक करने के लिये कमर कसनेकी आवश्यकता है। कविलोग तथा ब्रह्मचारीगण मेखला बंधन करते थे इसका अर्थ यही है कि वे कमर कसकर धर्मकार्य करनेके लिये सदा तैयार रहते थे। इसी कारण वे यश प्राप्त करते थे।

साधारण कार्य करनेमें कोई विशेष धर नहीं होता है, परंतु कई ऐसे महत्त्व कार्य होते हैं कि उनके करनेसे प्राण जनेकी भी सम्भावना होती है। वैराग्य, राष्ट्रहित या राष्ट्रहित करने आदिके महत्त्व कार्योंमें कई मनुष्योंको अपने सर्वस्वकी आहुति भी देनी होती है, इस कार्यके लिये गुण शिष्योंको तैयार करना है—

इमा मेखलां आवधन्ध, सननाद, न. कुयोल ।

( म १ )

'इमारे गुस्ने यह मेखला हमपर बांधी, उसने इसे

तैयार किया और हमें सत्कार्यमें लगाया ' यह गुरुका कार्य है और यही विद्या सीखनेका हेतु है। विद्या पढ़कर मल-चारीयण जनपदोद्धार करनेके लक्ष्यके लिये सिद्ध हो जावें और अपने आपको उस कार्यमें सत्परवराके साथ रखा दें। पाठशालामें पढ़ानेवाले गुरु भी ऐसे हों, कि जो अपने विद्यार्थियोंको इस ढंगसे तैयार करें और राष्ट्रीय विद्यापीठकी पढाई भी ऐसी होनी चाहिये कि, जिसमें पढ़े हुए विद्यार्थी जनहितके कार्य करनेके लिये सदा तैयार हों, सदा करिबद्ध हों। जो शिष्य इस प्रकार अपने गुरुजका भावीर्वाद लेकर फाँट करत है, उनका बेजा पार हो जाता है—

यस्य प्रशिक्षा चरामः, स पारं दृष्टवान्,  
स नः विमुञ्चान् । ( मं. १ )

" जिस गुरुके भावीर्वादको प्राप्त करके हम फाँट करत हैं, वह हमें मुक्त पार करता है और अपनेसे मुक्त भी कराता है। " ऐसे गुरु और ऐसे शिष्यका ही हमें उस देशका सी-भाग होनेका ऊँची अवस्थामें रहना है। इसमें सन्देह नहीं है।

वह मेघरा इस प्रकार कटिबद्धताकी सूचना देती है इसीलिये सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। हर एक कार्यके प्रारंभ करनेके पूर्व इसी कारण मेघरा बांधी जाती है और इसी कारण इससे वायुका बल कम होता है।

विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य करनेके समय सर्वस्वनाशका भी भय होता है, नृपयुका भी भय होता है। यदि इस भयकी वापना न होगी तो बैसा समय आनेपर मनुष्य बर कायना

और पीछे हटेगा। ऐसा न हो इसलिये प्रारम्भसे ही हमें विद्यार्थियोंको यह शिक्षा दी जाती है कि—

अहं मृत्योः ब्रह्मचारी अस्मि । ( मं. ३ )

" मैं मृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ। " ब्रह्मचारी समझता है कि मैंने मृत्युको ही आर्तिगान दिया है। मृत्युको ही स्वीकार किया है। जब कोई मनुष्य जानते है मृत्युका अस्तित्व बनता है, सब और कौनसे अवस्था है कि जिसमें उसको डर लगे ? जिसने आत्मत्वं मृत्युको स्वीकार कर लिया, उसका सब डर मिट गया, क्योंकि सबसे बड़े भारी डरका उसने मुकमल किया है। ब्रह्मचारीको इस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिये। इस प्रकारका निष्ठर धना ब्रह्मचारी भी—

भूताय यमाय पुनर्य निर्वाचन् । ( मं. ३ )

" जन्मासे मृत्युके लिये एक पुरुषकी याचना करता है। " अर्थात् वह ब्रह्मचारी जैसे स्वयं निर्मम होकर कार्य करता है, उसी प्रकार अन्य मनुष्योंको भी निर्मम बनाता है, ये निर्मम बने हुए मनुष्य—

ब्रह्मणा, तपसा, भ्रमेण, मेघलया । ( मं. ३ )

" ज्ञान, तप बर्षाव शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति, परिश्रम करनेका बल और मेघलापधन बर्षाव कटिबद्ध होनेका गुण " इनसे युक्त होते हैं और जो इनसे युक्त होते हैं वे सबसे धैर्य होते हैं।

मेघलापधनसे सन्धि, धारणाश्रुति, शीतोष्णसहन करनेका सामर्थ्य और सुख इन्द्रियकी भांति होती है, तथा दीर्घायु भी प्राप्त होती है। इस प्रकार मेघराका महत्व है।

## कामको वापस भेजो

कां. ६, सू. १३०

( अग्नि - अथर्वशिखा । देवता - सूर । )

रथजिता राथजितेयीनामभस्तरसांभं स्मरः । देवाः प्र हिंशुत स्मरमसी मामनुं शोचतु ॥ १ ॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति । देवाः प्र हिंशुत स्मरमसी मामनुं शोचतु ॥ २ ॥

अर्थ— ( रथजिता राथजितेयीनामभस्तरसांभं स्मरः ) रथसे जीतोकारी और रथसे जीती गई मन्थरामोंका ( अर्थ स्मरः ) वह काम है। हे देवो ! ( स्मरं प्रहिंशुत ) इस कामको दूर करो, ( असौ मां अनुशोचतु ) वह मेरा शोक करे ॥ १ ॥

( असौ मे स्मरता इति ) वह मुझे स्मरण करे, ( प्रियो मे स्मरता इति ) मेरा प्रिय मुझे स्मरण करे। हे देवो ! ( स्मरं प्रहिंशुत ) इस कामको दूर कर। ( जसी मां अनुशोचतु ) वह मेरा शोक करे ॥ २ ॥

येथा मम स्मरादुसो नामुष्पाई कदा चन । देवाः प्र हिंषुत स्मरसौ मामनु शोचत ॥ ३ ॥  
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अथ उन्मादया त्वमसौ माननु शोचत ॥ ४ ॥

अर्थ—(यथा भसी मम स्मरात्) जिस प्रकार वह मेरा स्मरण करे, उस प्रकार (अमुष्य अहं कदाचन न) उसका मैं कदापि स्मरण न करूँ, हे देवो ! (स्मरं) इस कामको दूर करो, वह मेरा शोक करे ॥ ३ ॥

हे मरुतो ! (उन्मादयत) उन्मत्त करो । (अन्तरिक्ष ! उन्मादय) हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त कर । हे भते ! (त्वं उन्मादय) तू भी उन्माद उत्पन्न कर । (असौ मां अनुशोचतु) वह मेरा शोक करे ॥ ४ ॥

### कामको सौटा दो

इसका आशय स्पष्ट है । किसीके विषयमें लगे काम उत्पन्न हो जाय, तो उसको जिसके कानन वह काम उत्पन्न हुआ हो उसके पास वापस करना चाहिये । अपने अपने उसको स्थान देना नहीं चाहिये । जिस अवस्थामें दूसरे लोग-व्यापार-व्यापार-कामके कारण उन्मत्त, प्रसन्न और चेष्टासे हो आते हैं, वैसी अवस्था प्राप्त करनेपर भी कामका असर अपने मनपर नहीं होने देना चाहिये । इस प्रकार अपना मम काम विकारसे दूर रखना चाहिये ।

## कामको वापस भेजो

कां. ६, सू. १३१

(प्रतिः—अधर्मादिना । देवता—सर. ।)

नि क्षीयंतो नि पंचत आच्योऽनि निरामि वे । देवाः प्र हिंषुत स्मरसौ मामनु शोचत ॥ १ ॥  
अनुमतेऽनिरुदं मेऽनुमत्यस्व । देवाः प्र हिंषुत स्मरसौ मामनु शोचत ॥ २ ॥  
पञ्चावसि त्रिषोऽनं पञ्चयोऽनमश्चिन्म । तत्स्वं पुनरायसि पुत्राणां नो अतः पिता ॥ ३ ॥

अर्थ—(ते आच्यः शीर्षतः पञ्चतः) वेही व्याघ्र मिरसे और पाँचसे (नि नि नि निरामि) हरा देता है । हे (देवाः) देवो ! (स्मरं महिषुत) कामको दूर करो, (असौ मां अनुशोचतु) वह काम मेरे कारण शोक करे ॥ १ ॥

हे (अनुमते) अनुमति ! (इदं अनुमत्यस्व) इसको तू अनुमत्त माय । हे (आकृते) सकल्य ! तू (इदं नमः स्वं) वह मेरा वसन स्वीकार कर । हे देवो ! कामको दूर करो और वह मेरे कारण शोक करे ॥ २ ॥

(यत् त्रिषोऽनं धायसि) जो तीन योग्य होउता है, अथवा (आश्रितं पञ्चयोऽनं) पोटेपरसे पाँच योग्य जाना है, (ततः त्वं पुनः आयसि) वहाँसे तू पुनः आता है (नः पुत्राणां पिता जन्मः) हम पुत्रोंका तू पिता है ॥ ३ ॥

यह सूक्त भी पूर्ण सूत्रके समान ही कामविकारको दूर करनेकी सूचना देता है । कामविकारको दूर करना चाहिये । जिस किसीके विषयमें काम विकार उत्पन्न हुआ हो, वह चाहे शोक करता रहे, या वदता रहे परन्तु स्वयं उस कामके बशमें नहीं होना चाहिये ।

तृतीय मात्रका कमन यह है कि चाहे शिकना भी दूर-धरसे बहुत दूर-कामकात्रने लिये उसके अनुष्य क्यों न जाँये, उनको अपने घर भवस्थ ही वापस जाना चाहिये और तबके बाह्यवर्तिका पालन करना चाहिये । अर्थात् अपने घरमें भाकर सोना चाहिये । बाहर दूरीके घरमें सोना उचित नहीं । इस मंत्रका अर्थ प्रकरणातुल्य समझना चाहिये, अर्थात् धर्म सोनेसे कामयसताकी सम्भावना कम होती है ।

## कामको वरुणस्य धर्मेण

कां. ६, सू. १३२

(अग्निः-अथर्वहिराः । देवता-सरः ।)

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्स्वर्ध्वन्तः शोशुचानं महाप्या । तं तं तपामि वरुणस्य धर्मेणा ॥ १ ॥

यं विश्वं देवाः स्मरमसिञ्चन्स्वर्ध्वन्तः शोशुचानं महाप्या । तं तं तपामि वरुणस्य धर्मेणा ॥ २ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्स्वर्ध्वन्तः शोशुचानं महाप्या । तं तं तपामि वरुणस्य धर्मेणा ॥ ३ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्स्वर्ध्वन्तः शोशुचानं महाप्या । तं तं तपामि वरुणस्य धर्मेणा ॥ ४ ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चन्स्वर्ध्वन्तः शोशुचानं महाप्या । तं तं तपामि वरुणस्य धर्मेणा ॥ ५ ॥

अर्थ—(देवाः, विश्वेदेवाः, इन्द्राणी, इन्द्राणी, मित्रावरुणौ) देव, सब देव, इन्द्राणिक, इन्द्र और अग्नि तथा मित्र और वरुण ये सब देव (यं शोशुचानं स्मरं) जिस शोक करनेवाले कामकी (आप्या सह) व्यापकता साथ (अप्सु अन्तः अस्मिञ्चन्) जलके प्रतिनिधित्व लीये लीये हैं, (वरुणस्य धर्मेणा) वरुण नामक जल देवके धर्मसे (तं तं तपामि) केरे उस कामकी तथाता है । अर्थात् उस आपसे वह जल होकर गूर होये और कभी न सताये ॥ १-५ ॥

सब देवोंने, शरीरके अंदर रहनेवाले देवमें कामकी रक्षा है । वहाँ रहता हुआ मनुष्यको सदावा है और विशिष्ट कष्ट देता है । यह काम जो उस देवके स्वाममें रहता है उसके साथ (आप्या सह) अनेक भाषिणी अर्थात् मानसिक व्यापक रहती हैं । काम जहाँ होता है वहाँ मानसिक कष्ट बहुत होते हैं । इसका तिलसिद्धा देता है—

सङ्गात्संजायते कामः कामात्तोषोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

प्रोषाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिविभ्रमाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ (म. गी. २)

“ प्रियोंक संगसे काम उत्पन्न होता है, कामसे प्रोष, प्रोषसे मोह, मोहसे भ्रम, भ्रमसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे सर्वप्रणश्य होता है । ”

इस प्रकार कामके साथ साथ जुड़ा हुआ है । अतः उसको दूर करना चाहिये । जिसका धर्मानुसृत काम हो उतना ही देता चाहिये । धर्मविहिन कामको छोड़ देना चाहिये । इसलिये कहा है कि कामके साथ अनेक विपत्तियाँ जुड़ी हुई हैं और विपत्तियोंसे मनुष्य (शोशुचानं) शोकाहक हो जाता है । यह काम सबको शोकसागरमें डालनेवाला है । (आप्या सह) जो साथ हैं, वेगरी होना और शोकयुक्त होना । ये दोनों इसके कर्म हैं । नये केजसी पीसता हुआ सबको शोकमें डाल देता है । इसलिये मन संयमसे उसको लपाना या सुखाना चाहिये, जिससे वह दूर हो और कष्ट न दे सके ।

## कंकणका धारण

कां. ६, सू. ८१

( कविः— अथर्वा । देवता— आदित्या, त्वष्टा । )

यन्तासि यच्छसि हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धारये । मर्यादे पुत्रमा घेहि सं त्वमा गर्भपाप्मने ॥ २ ॥

यं परिहस्तमधिमुखादितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तर्पस्या आ भञ्जाघया पुत्रं जनादिति ॥ ३ ॥

अर्थ— ( यन्ता अस्ति ) १ निषामक है, ( हस्तौ यच्छसे ) दोनों हाथोंका व निषमन करता है और उनसे ( रक्षांसि सेधासि ) निरुकारियोंको हटाता है । ( अयं परिहस्ताः ) यह कंकण ( प्रजां धनं च गृह्णानां ) प्रजा और धनका ग्रहण करनेवाला ( अभूत् ) है ॥ १ ॥

हे ( परिहस्त ) कंकण ! ( गर्भाय धातये ) गर्भको धारण करनेके लिये ( योनिं विधातय ) योनिको धारण कर । हे ( मर्यादे ) मर्यादे ! ( पुत्रं आघेहि ) पुत्रको धारण कर । ( सं त्वं आगमे आयमय ) उसको व आगमने आयमय ) उसको व आगमनके समय बाहर आनेके लिये प्रेरणा कर ॥ २ ॥

( पुत्रकाम्या अदितिः ) पुत्रको हृष्य करनेवाली अदितिने ( यं परिहस्तं अधिभः ) जिस कंकणको धारण किया था, उस कंकणको ( यथा पुत्रं जनात् इति ) जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हो इसलिये ( त्वष्टा सं भर्त्य आयभ्यात् ) रक्षाने इस लीको पढ़ाया है ॥ ३ ॥

भाष्यार्थ— कंकण नियममें रखा है, उसे हाथोंमें पहननेसे हाथोंका निषमन होता है और विश दूर होते हैं । इसलिये इसको रक्षणका धारण करनेवाला कहते हैं । तथा यह धनका भी धारक है ॥ १ ॥

गर्भधारणके योग्य गर्भाशयकी अवस्था यह बताता है । इसके धारण करनेसे गर्भधारण होता है और योग्य समयमें प्रसूति भी होती है ॥ २ ॥

पुत्रको हृष्य करनेवाली अदितिने इसको प्रथम धारण किया था । काशीगर इसका निर्माणकरे और पुत्रोत्पत्ति होनेकी इच्छासे कियोंकि दोनों हाथोंमें कंकण धारण करावे ॥ ३ ॥

### कंकणधारण

१ किसी हाथमें कंकण धारण करती है । इसका संबंध गर्भाशय कीक रहने, उत्तम सेवाग उत्पन्न होने और सुखसे प्रसूति होनेके साथ है । वेद लोग इसका विचार तद्विज्ञानकी दृष्टिसे करें और निश्चय करें कि, किस प्रकारका कंकण और कौनसी लीकी किस विधिसे धारण करना चाहिये । यह दृष्टान्तविशेष विचारने योग्य बात है ।

## मातापिताकी सेवा करे

कां ६, सू. १२०

( अग्नि - क्षौद्रिक । देवता - मन्योक्ता । )

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत चां यन्मातरं पितरं वा जिहंसिम ।

अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदितं याति सुकृतस्य लोकम्

॥ १ ॥

भूमिर्मातादितिनो अग्निश्च आत्मान्तरिक्षमभिवर्जस्तथा नः ।

घोर्नः पिता पिश्याच्छं भञ्जति जामिमुरवा मावं पस्ति लोकात्

॥ २ ॥

यत्रा सुहादैः सुकृतो मर्हन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।

अश्रोणा अश्रून्नुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्

॥ ३ ॥

अर्थ— ( या अन्तरिक्षं पृथिवीं उत चां ) यदि हम अन्तरिक्ष, पृथिवी और पुण्ड्रिकी तथा ( यत् मातरं पितरं वा जिहंसिम ) यदि हम माता और पिताको हिंसा करें, ( अयं गार्हपत्यः अग्निः ) यह हमारा गार्हपत्य अग्नि ( नः तस्मात् इत् सुकृतस्य लोकं उपगच्छति ) हमें उस पारसे उपगच्छ पुण्ड्रिकीमें पहुँचाने ॥ १ ॥

( अविहितः भूमिः माना नः जनिश्च ) जन्म मा भूमि हमारी जगती है । ( अन्तरिक्षं आता ) अन्तरिक्ष हमारा भाई है और ( घोः नः पिता ) पुण्ड्रिकी हमारा पिता है । यद् ( अभिवर्जस्तथा नः शं भजति ) विपक्षिते हमें पचाकर कल्याणकारी होवे । ( जामि क्रव्य पिश्यात् लोकात् ) संकेपीके मांस कर विप्लोकेसे ( मा अयपस्ति ) मत गिर ॥ २ ॥

( यत्र सुहादैः सुकृतः ) जहाँ उत्तम हृदयवाले पुण्ड्रिकी पुर ( स्वायाः तन्वः रोगं विहाय ) अपने शरीरसे रोगको दूर कर ( मर्हन्ति ) भागदित होते हैं, ( अंशः अश्रोणाः अश्रून्नुताः ) अंशसे अविहृत और अश्रुजिह्व होकर ( तत्र स्वर्गे पितरौ च पुत्रान् पश्येम ) उस स्वर्गमें पितरों और पुत्रोंको देखे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— हम शरीरसे उत्पन्न हम करि भी हो, यदि हम बड़ा अपने मातापिताको कष्ट पहुँचावे, तो तेजस्वी देव ज्यों उस पारसे मुक्त करे और पुण्ड्रिकीमें जाने योग्य पशिय हमें भजाने ॥ १ ॥

हमारी माता यह भूमि है और हमारा पिता यह पुण्ड्रिकी है, अन्तरिक्ष हमारा भाई है । इस प्रकार जगती हमारा संबंध है । यह सब जगत् हमारा कल्याण करे और हमें विपक्षित बचावे । कोई देता संकेपी न होने कि जितने कारण हैं विप्लोकेसे गिरता रहे ॥ २ ॥

जहाँ शारीरिक रोग नहीं होते और जहाँ हृदय उत्तम भावसे पुण्ड्रिकी करनेवाले लोग आनन्दसे रहते हैं, वहाँ हम पहुँचे और सुख भोगें रहें और अपने पिता और पुत्रोंको देखें ॥ ३ ॥

कोई अनुप्य अपने मातापिताको किसी प्रकारका कष्ट न देवे । मातापिताको कष्ट देनेवाले गिरते हैं । परंतु जो मातापिताको सुख देता है तो वेन भेद लोकमें पहुँचता है कि जहाँ कभी रोग नहीं होते और जहाँ स्वस्थ रहता है । इसलिये हमको सुख देवे ।

## धन और सद्बुद्धिकी प्रार्थना

कां. ७, सू. १७

( अग्नि - भृगु । देवता - धाता, सविता, अश्विनी । )

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगत्स्पातिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥

धाता दधातु दानुषे प्राचीं जीवातुमर्षिताम् । वपं देवस्य धीमहि सुमतिं विशराधसः ॥ २ ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दानुषे दुरोणे ।

तस्मै देवा अमृतं सं ध्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

धाता रातिः सवितेदं लुप्तानां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

स्वष्टा विष्णुः प्रजया संराधो यज्ञमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

अर्थ— ( धाता जगतः पतिः ईशानः ) धारणकर्ता, जगत्का स्वामी, ईश्वर ( नः रयिं दधातु ) हमें धन देवे । ( सः नः पूर्णेन यच्छतु ) वह हमें पूर्ण रीतिसे देवे ॥ १ ॥

( धाता दानुषे ) धारणकर्ता ईश्वर दानुषे लिये ( प्राचीं अक्षितां जीवातुमर्षिताम् ) प्राप्त करने योग्य अक्षय जीवनावधि देवे । ( वपं धिभरभरतः देवस्य सुमति ) हम संपूर्ण धनके स्वामी ईश्वरकी सुमति ( धीमहि ) ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

( धाता प्रजाकामाय दानुषे ) धारक ईश्वर प्रजाकी इच्छा करनेवाले दाताके लिये ( दुरोणे विश्वा वार्या ) उसके धर्म संपूर्ण वाणीय पदार्थोंकी ( दधातु ) देवे । ( विश्वे देवा ) सब देव, ( सजोषाः अदितिः ) अक्षिपुत्र जर्मत ईषीराक्षि, तथा ( देवाः ) अन्य ज्ञानी ( तस्मै अमृतं सं ध्ययन्तु ) उसके लिये अमृत महान करें ॥ ३ ॥

( धाता रातिः सविता ) धारक, दाता, उत्पादक, ( निधिपतिः अग्निः ) विधिक पालक, प्रचारक, प्रकाशक देव ( नः इदं लुप्तानां ) हमें यह देवे । तथा ( प्रजया संराधो स्वष्टा विष्णुः ) प्रजाके साथ आनन्दमें रहनेवाला सुख पदार्थोंकी रक्षानेवाला व्यापक देव ( यज्ञमानाय द्रविणं दधातु ) यज्ञकर्ताको धन देवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ— जगत्का धारण और पालन करनेवाला ईश्वर हमें पूर्ण रीतिसे विभूत कर देवे ॥ १ ॥

हम हां दीर्घ जीवनकी प्राप्ति देवे । हम उसकी सुमति का ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

संतानकी इच्छा करनेवाले दाताको उसके धर्म-गृहस्थके धर्म-रहने योग्य सब पदार्थ प्राप्त हों । सब देव दाताकी आज्ञाकारी प्राप्ति करावें ॥ ३ ॥

सब जगत्का धारक, धनदाता, संपूर्ण विश्वका उत्पादक, संसाररूपी छात्राके रक्षक, सबका पालक, एक प्रकारा स्वरूप देव है, वह हमें सब प्रकारका सुख देवे । सब सुखमें सुख पदार्थोंका निर्माता, व्यापक देव जगत्का रक्षक पदार्थ देवे ॥ ४ ॥

॥ प्रार्थना सुबोध है, अतः इसके स्वरूपकी कोई आवश्यकता नहीं है ।



## गृह-निसर्ग

कां. ३, सू. १२

( ऋषि—महा । देवता—शाला, वास्तोष्पति । )

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां धेमे तिष्ठाति धृतमुक्षमाणा ।

तां त्वा शाले सर्वपीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम

॥ १ ॥

इहैव ध्रुवा प्रथिं तिष्ठ शालेऽस्मावती गोमती सुनृतावती ।

ऊर्जस्वती धृतवती पर्यस्वत्युच्छ्रेयस्य महते सौमगाय

॥ २ ॥

धृरुष्पति शाले बृहच्छन्दाः पूर्तिधान्या ।

आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायसास्पन्दमानाः

॥ ३ ॥

हमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।

उक्षन्तुद्वा मरुतो धृतेन भगो नो राजा नि कृषिं र्त्नोतु

॥ ४ ॥

अर्थ— ( इह एव ध्रुवां शालां निमिनोमि ) इती स्थानपर सुख रहनाको बतलाव हू । यह शाला ( धृत उक्ष-  
माणा धेमे तिष्ठाति ) धी सींचती हुई हमारे कल्याणके लिये स्थिर रहे । हे ( शाले ) पर ! ( तां त्वा सर्वपीराः  
अरिष्टवीराः सुवीराः उप संचरेम ) हेरे पक्षी और हम सब वीर विपद न होते हुए उत्तम पराक्रमी बनकर फिरते  
रहें ॥ १ ॥

हे शाले ! हे ( ध्रुवावती गोमती सुनृतावती ) धौल्यवाली, गौर्जस्वती और मधुर भावपूर्णवाली होकर ( इह  
एव ध्रुवा प्रथिं तिष्ठ ) वहीं स्थिर रह । तथा ( ऊर्जस्वती धृतवती पर्यस्वती ) अक्षवाली, दीवाली और धूपवाली  
होकर ( महते सौमगाय उच्छ्रेयस्य ) बड़े सौभाग्यके लिये उंची बनकर रखी रह ॥ २ ॥

हे शाले ! ( धृरुष्प-छन्दाः पूर्तिधान्या ) बड़े छन्दवाली और पवित्र धान्यवाली तथा ( चरणी भसि ) धान्यादि  
का भण्डार धान्य करनेवाली रह । ( त्वा वत्सः कुमार आ धेनवः ) हेरे भदर बछड़ा और बाछक भाने ।  
( आस्पन्दमाना धेनवः साय सा ) इदानी हुई गौयें सायकालके समय आगएँ ॥ ३ ॥

( हमां शालां ) इस शालाका सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति ( प्रजानन् नि मिनोति ) अथवा हुमा  
निर्माण करे । ( मरुतः उक्षा धृतेन उक्षन्तु ) मरुत यान जलसे और धीसे सींचे, तथा ( भगः राजा नः कृषिं नि  
र्त्नोतु ) भाग्यवान् राजा हमारे लिये कृषिको बढावे ॥ ४ ॥

भारार्थ— इस उत्तम स्थानपर मैं उत्तम और सुख घर बनावा हू, जिसमें धी जादि करने पीनेक पदार्थ बहुत  
रहें और जो सब प्रकारक स्वास्थ्य साधनोसे परिपूर्ण हो । हम सब प्रकारके शौर्यवीर्यादि गुणोसे युक्त होकर और किसी  
प्रकार कष्टोंको प्राप्त न होते हुए इस घरके पक्षी और घूमा करें ॥ १ ॥

इस घरमें गोधे, गौ, बैल आदि पशु बहुत हों, यह घर उत्तम मीठे भक्षणोसे युक्त हो, अक्ष, धी, धूप आदि साध वेप  
इसमें बहुत हों और इसमें रहनेवालोंको बड़े सौभाग्यकी प्राप्ति हो ॥ २ ॥

इस घरमें धान्यादिका बड़ा भण्डार हो, उस भण्डारमें शुद्ध और पवित्र धान्य भरा रहे । ऐसे घरमें बाछक और  
बछड़े घूमते रहें और सायकालमें आनेवाले भान्सी हुई गौयें आएँ ॥ ३ ॥

इस शालाक निर्माणमें सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति ये देव सहायता दें । मरुत यान इस घरमें विपुल धी देनेमें  
सहायक हों तथा राजा भग कृषि बढानेमें सहायता देवे ॥ ४ ॥

मानस्य परितः शरणा स्मोना देवी देवेभिर्निर्मितास्त्रे ।

वृणं वसाना सुमना असुस्त्वमपासम्य सहवीरं रविं दाः

॥ ५ ॥

कृतेन स्पृणामभि रोह वंशोशो विराजन्मपे वृद्धस्व अर्धनू ।

मा ते रिपञ्चुरसचारो गृहार्णो जाले श्वं अर्धेन शरदुः सर्ववीराः

॥ ६ ॥

एमां कुमारस्तरुण आ वरसो जगता सह । एमां परितुतः कुम्भ आ द्रुमः कृतयैरगुः

॥ ७ ॥

पूर्वो नारि प्र मेर कुम्भमेतं पृतस्व धारामृतेन संमृताम् ।

इमां पातूनमृतेना समङ्गधीरापृतमभि रक्षास्थेनाम्

॥ ८ ॥

इमां आपः प्र मराम्पयक्ष्मा वंशमनाशनी । गृहानुप प्र सीदाम्पमृतेन सहामिनां

॥ ९ ॥

अर्थ— हे (मानस्य परितः) समाजकी रक्षक ! तू (शरणा स्मोना देवी) समुद्र लापव करने योग्य, सुखदायक, दिव्य प्रकाशमान, ऐसी तू (देवेभिः अनेक निमिषा अस्ति) देवीं द्वारा बहने बनायी हुई है। (वृणं वसाना स्य सुमनाः असः) पासकी पहने हुए तू उत्तम मणवारी हो (अथ अपासम्य सहवीरं रविं दाः) और हम सबके विपे वीरोत्ति युक्त धन है ॥ ५ ॥

हे (वंश) वीर ! तू (कृतेन स्पृणामधिरोह) अपने सीधेपवने अपने लापारपर चढ़ और (उमः दित्वा पान् शशून् अपयुद्धदय) उम बनकर प्रकाशता हुआ शत्रुओंको हरा दे। (ते गृहार्णो उपसचारः मा रिपन्) तेरे माँके भागपते रहनेवाले हिंसित न होंगे। हे शत्रु ! हम (सर्ववीराः शतं शरदुः अर्धेन) सब वीरोंसे युक्त होकर सी बर्ष जीते रहें ॥ ६ ॥

(इमां कुमारः आ) इस लालने पास बालक भाये, (तरुणः आ) लफा दुरव भाये, (जगता सह पतसः आ) चरने वालोंके साथ बल्लभ भी भाये। (इमां परितुतः कुम्भः) इसल पास मधुर रससे भरा हुआ घटा (द्रुमः कृतयैः आ अगुः) दहीके कटारोंके साथ भापये ॥ ७ ॥

हे (नारि) स्त्री ! (एतं पूर्णं कुम्भं) इस पूर्ण और घड़ेको तथा (अमृतेन संमृतां पृतस्व धारं) अमृतसे भरी हुई पीकी धाराको (प्रमर) अपनी प्रकार भर कर ला। (पातून अमृतेन सं भृग्विष) पीनेवालोंको अमृतम बन्धी प्रकार भर दे। (इष्टापूर्त एमां अभिरक्षति) वह और लज्जाम इन् सबकी रक्षा करे ॥ ८ ॥

(इमां पक्ष्मनाशनीं अपयक्ष्माः आपः) ये रोगनाशक और स्वयं रोगहर्ति जल (प्र मराम्पयामि) मैं भर लाता हूँ। (अमृतेन अग्निना सह) अमृत अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) परोंमें जाकर बैठता हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ— धर्मों में रह निगाह करने योग्य, सुखदायक है, यह एक समाजका साधन भी है। बहने पर देवीं द्वारा बनाया गया था। पासके छप्परसे भी यह बनता है। ऐसे भस्मे हमारा मन शुभ सकलवस्तु देने और हमें वीरोत्ति युक्त पन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

सीधे लोभ पर सीधे बल रसे जड़ें और इस रीतिसे निरोधियोंको दूर किया जरे। धर्मिक भागपते रहनेवाले अनुप्य दु की, कही या जितत न हों। इससे रहनेवाले सब वीर होकर सी सर्वैक जीवित रहें ॥ ६ ॥

हम घड़े पास बालक, लफा लादि सब भाये। बड़ों और अन्य चरने पशु पक्षी भी घुमने रहे। हम चरने शरदर भीते रससे भरे हुए घटे तथा दहीसे भरे हुए जड़े बहुत हों ॥ ७ ॥

कियां इन घड़ेको भर कर लावे और पीते घड़े भी बहुत लायें और पीने वालोंको यह दूध, दही, पी मारि सब रस, भरकर पिलावे। क्योंकि इनका पान ही वाक्ये रसता करता है ॥ ८ ॥

भस्मे पीनेके लिये ऐसा कर लाया जाये कि जो रोगनाशक और लातेमर्याक हो। चरोंमें अग्नि भी हो अग्निके पास जाकर लोग पीकरा नियामक करने लावे ॥ ९ ॥

## गृह-निर्माण

### घरकी बनावट

जो गृहस्थी हैं उसको घर बनाना रहना आवश्यक है, फिर यह घर घाससे बनी हुई (गुणं घसताना । सं. ५) शोषवीके समान हो बग़ाया बढा हो। घर किसी भी प्रकारका हो, परंतु गृहस्थीके लिये वह अवश्य चाहिये, नहीं तो गृह-स्थका "गृह-स्थ-यत्" ही नहीं मिलेगा।

### घर बनाने योग्य स्थान

घरके लिये स्थान भी योग्य होना चाहिये, रमणीय होना चाहिये और आरोग्यकारक होना चाहिये, इस विषयमें इस सूत्रमें निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं—

१ होमे ( सं. १ ) = सुरक्षित, शांति देनेवाला, सुख-कारक, आरोग्यदायक, निर्मल, ऐसा स्थान घरके लिये हो।

२ ध्रुवा ( सं. १, २ ) = स्थिर, सुरक्षित, जहाँ धुनिपाद स्थिर और रह हो सकती है।

इस प्रकारकी भूमिपर तब बनाना चाहिये और वह घर अपने सामर्थ्यके अनुसार सुरक्षित, (ध्रुवा) स्थिर और मजबूत बनाना चाहिये, शांति कारक वस्तुकी प्रशंसा करनेका समय उचित न पड़े।

### घर कैसे बनाया जाये ?

घरके करने जहाँ तक हो सके बड़ातक विछोली बनाये जायें। "गृहस्थ-छंदाः ( सं. ३ )" अर्थात् बड़े बड़े छत-वाले कमरोंसे युक्त घर हो। घरमें संकुचित स्थान न हो क्योंकि छोटे छोटे कमरोंमें रहनेवालोंके विचार भी संकुचित बनते जाते हैं। इसलिये मज्दुरी कार्यात्मक शक्तिके अनुसार बड़ातक विछोली बनाना संभव हो जहाँ तक प्रशस्त घर बनाया जाये, जहाँ बहुत दृष्टमित्र गतिविधि आदि (शरणा। सं. ५) जाये और (स्पोला। सं. ५) विप्राप्त हो सके।

### समानका स्थान

घर गृहस्थीके लिये बड़ा रिमानका ( शाला मानस्य पत्नी। सं. ५ ) स्थान है, अपना निम्न घर होनेसे वह एक महिमाका स्थान होता है। दृष्टमित्रोंको सुख पहुंचा-वेवा वह एक बड़ा स्थान होता है। इसलिये पूर्वाशंका पर बनाना चाहिये। घर बनते ही घरमें अग्न्याग्न्य साधन दृष्टि करने चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित संकेत विचार करने योग्य हैं—

१ अश्वत्थी ( सं. २ )— घरमें चोटे हों, अर्थात् गृहस्थीके पास चोटे, चोखियां हों। यह शीर्षका साधन है।

२ गोमती ( सं. २ )— घरमें गीर्ह हों। यह दुष्टिका साधन है, यीसे दूध मिलाता है जिसको पीकर मनुष्य पुष्ट होते हैं। चैलेसे खेती होती है। धेनुवः आस्पन्दमानाः सार्यं वा ( सं. ३ )— सार्यकाटके समय गीर्ह आनंदसे गायत्री हुई घरमें भाँपे।

३ पयस्वती ( सं. २ )— घरमें बहुत दूध हो।

४ पृतवती ( सं. २ )— घरमें मिश्रण भी हो।

५ धृतं उक्षमाणा ( सं. १ )— जो देनेवाला, अर्थात् गतिविधि आदिके लिये विपुल धी देनेवाला घर हो। घरके लोग मजदूरोंमें क्यूरी न करें।

६ ऊर्जस्यती ( सं. २ )— घरमें बहुत मजदूरी हो, फाल-पात्रके पदार्थ विपुल हों।

७ धरुषी ( सं. ३ )— जिसमें धान्यादिका बड़ा भंडार हो, जिसमें समृद्धिवादा हो और वहाँ तक प्रकारके पदार्थ वस्तुमय अवस्थामें मिलें।

८ पूतिधान्या ( सं. १ )— घरमें पवित्र धान्य हो, जो रोमादि उत्पन्न करनेवाला न हो, उत्तम अवस्थामें हर एक प्रकारके पदार्थ हों, जिन्हें पानेसे शरीरकी दुष्टि और मज्जा समाधान हो। घरमें धान्य कानिसे समय यह केवळ सत्ता मिरता है इसलिये खाना न जाय, परंतु छात्रोंके समय देना जब कि वह पवित्र, शुद्ध, नीरोग और पोषक है या नहीं।

९ परिश्रुतः कुम्भः ( सं. ७ )— मधुर शहदसे भरा हुआ पड़ा बग़ाया बनेक बड़े घरमें सदा रहें।

१० दुग्धा कलशी ( सं. ७ )— बहोते परिपूर्ण मो दुध कट्ठा घरमें हों।

११ पृतस्य कुम्भम् ( सं. ८ )— उत्तम चीते मो दुध घट घरमें हों।

१२ अयदमा यक्ष्मनाशनीः आपः ( सं. ९ )— भीरुव और रोम दूर करनेवाले शुद्ध अन्न धनोंमें भरकर घरमें रखा जाये।

इत्यादि अर्थों द्वारा इस सूत्रमें धरका वर्णन किया है। इन शब्दोंके मननसे ज्ञान या सकता है । घरमें कैनी व्यवस्था रखनी चाहिये और घर देना धन धान्यसंपन्न बनाना चाहिये। तथा—

१ वरसः आगमेत् ( मं ३, ७ )— वरसों बगले सेछोटे रहें, घरक पास बगले बाधते रहें।

२ पुमारः आ गमेत् ( मं ३, ७ )— घरके और बाहर बाधबधे, कुमरत और कुमारीकाद मानदसे सेर बूढ़ करते रहें।

३ तरणः आ गमेत् ( मं ७ )— युवा, तरण पुत्र और महुनिपां घरमें और बाहर प्रथम की।

### प्रसन्नताका स्थान

अर्थात् घर देखा हो कि जिसमें बाधबधे सेछोटे रहें और तरण तथा अमृत्यु प्राप्तुशाले की पुरष अपने अपने कार्यमें आनंदसे दक्षिण हो। सचरे सुखपर आनंद हीले और घरका प्रत्येक अनुप्य प्रसन्नताकी सृष्टि दिखाई देवे। हरणक मनुष्य ऐसा कहे कि—

गृहान् उप प्रसीदामि । ( मं २ )

“ मैं प्रपन्न करके अपने घरको प्रसन्नताका समीप स्थान बनाऊंगा। ” यदि घरका प्रत्येक अनुप्य अपने घरको “ प्रसन्नताका स्थान ” बनावेका प्रयत्न करे तो सचमुच वह घर प्रसन्नताका हेमन्त अवस्थामें बन जावेगा।

अपने प्रपन्नसे अपने घरको “ प्रसन्नताका स्थान ” बनाना है, यह कार्य दूसरेपर सौंपा नहीं जा सकता, यह तो हरपुत्रको ही करना चाहिये। घरको प्रसन्नताका स्थान बनानेके लिये ऊपर लिखे हुए साधन इकट्ठे हो करने ही चाहिये परंतु हेबल इतनेही ही वह प्रसन्नता नहीं आयेगी कि जो वेदको अभीष्ट है, इसलिये वेदने और भी निर्दिष्ट दिये हैं, देखिये—

१ सन्नुतायती ( मं ३ )— घरमें सम्बन्धन तथा भावना हो, प्रेमपूर्ण वातावरण होना हो, सभी उच्छ्रितका सख भाषण हो। छल, कपट, बोझा आदि भाषण न हो।

२ सुमता ( मं ५ )— उत्तम मनसे उत्तम व्यवहार करनेवाले मनुष्य घरमें कार्य करे।

घरको मंगलमय बनानेके लिये जैसे स्नानपात्र अपने पदार्थ घरमें बहुत चाहिये उसी प्रकार घरके बीजुल्लोके का करण भी भेद विचारोंसे युक्त होने चाहिये। सभी को घर प्रसन्नताका स्थान बन सकता है। घरमें धन वीर्य हो बहुत हो पर घरवालोंके मन एही और कधी हुए जो उस घरको घर कोई नहीं कहेगा, वह तो एक दुःखका स्थान होगा। दीन कालमें तथा पृथिके दिनोंमें सर्वां बहुत होती है, इसलिये दीनके निवारणके लिये घरमें योगी शक्ती चाहिये जिससे दीनसे प्रत्येक मनुष्य आनंद प्राप्त कर सके।

दूसरी बात यह है कि “ अमृत भस्त्रि ” ( मं १ ) जो परमेश्वर है उसकी उपासनाका एक स्थान घरमें बनना चाहिये, जहाँ अग्निहोत्र द्वारा अमृतपासनासे लेकर ध्यान-भाषणा द्वारा परमात्मोपासनाका सच प्रकारकी उपासना करके मनुष्य परम आनन्दको प्राप्त करे। जिस घरमें ऐसी उपासना होती है वही घर सचमुच “ प्रसन्नताका केन्द्र ” हो सकता है।

महते सौमगाय उच्छ्रयस्य । ( मं १ )

“ बड़े सुमंगलकी प्राप्तिके लिये यह घर बनाया जाये। ” अर्थात् यह घर इस प्रकारसे बना सौमगाय प्राप्त करे। जिस घरमें पूर्वोक्त प्रकार जंतुर्वाह व्यवस्था रहेगी वहाँ वहाँ सुमंगल निवास करेगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

### वीरतासे युक्त घन

सौमगाय प्राप्तिक अथ “ अथ ” अर्थात् यह अथान भी संमिश्रित है। वस्तु धन कमजोर पक्षान् उसकी रक्षा करनेकी शक्ति चाहिये और उसका वायुमंडल ही रक्षाने लिये शीघ्र, धैर्य, वीर्य आदि गुण भी चाहिये। अथवा कमाया हुआ धन दूसरे लोग लूट लेंगे। इसलिये इस लूटने सावधानीकी सूचना दी है—

अस्मभ्यं सहवीरं रयि वार । ( मं ५ )

“ हमारे लिये वीरतासे युक्त धन दे। ” धन प्राप्त हो और साथ साथ उसका रक्षानेके लिये आवश्यक वीरता भी प्राप्त हो। इसका घर वीरतासे वायुमंडलसे युक्त हो—

१ सर्ववीरः सुवीर्य अरिघवीरा उप सचरेम ॥ ( मं १ )

२ वरतं जयिम शतदा सर्ववीरा ॥ ( मं १ )

“ हम सच प्रकारसे वीर, उत्तम वीर, नाशकी व प्राप्त होनेवाले वीर, सौ वर्ष जीवित रहकर धर्मकी रक्षा करके लिये सैवार रहनेवाले वीर होकर अपने अपने पारोंमें संचार करें। ” ये श्रेष्ठ सच वरतों द्वारा प्राप्त रहे हैं कि धर्मका वायुमंडल “ वीरताका वायुमंडल ” होना चाहिये। वीरताका विचारतक वहाँ जाता नहीं चाहिये। परंतु पुरष धर्मवीर हों और कियां वीरतावाला हों, ऐसे ही पुरषोंमें जो संतानें होंगे वे “ कुमार वीर ” ही होंगे इससे क्या संदेह है ? इसीलिये वेदमें पुत्रका नाम “ वीर ” आता है।

### अतिथि सत्कार

ऐसे मंगलमय वीरतासे युक्त घरमें रहनेवाले धर्मवीर पुरष अतिथि सत्कार करेंगे ही। इस विषयमें कहा है—

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेत धृतस्थ धाराममृतेन  
समृताम् । इमा पातूनमृतेना नमद्धीष्टापूर्तमभि  
रसात्येनाम् ॥ ( म ८ )

‘ गृहपती अतिथियोंको परोसनेके लिये पीका घटा लावे,  
मधुररससे मरा घटा लावे और पीनेवालोंको मिलना चाहिये  
उतना पिनावे, क्यूँकी न करे । इस प्रकारका भव दान  
करना ही धरकी रक्षा करता है ।’

अतिथि सकारमें अन्नदान अथवा अन्य पदार्थोंका दान  
सुखे हाथसे देना चाहिये, इससे क्यूँकी करना योग्य नहीं  
है । क्योंकि दान ही धरका संरक्षण करता है । जिस घरमें  
अतिथियोंका सत्कार होता है, उस घरका भव बढ़ता  
जाता है ।

यहाँ अतिथिविशेष जिस भव परीक्षणका कार्य करता  
है उसका कार्य ठिक्का है । यहाँ धरकी नदी है । पड़ेकाटे परोमें  
अतिथियों भोगन देनेका कार्य घर को मोकर करता है अथवा  
धरका नाशिक करता है । यह अतिथि सत्कारही अनेक  
प्रकार है । अतिथि लिये भोगन खान पान आदि गृहपतीको  
देना चाहिये यह देका आदेश यहाँ है ।

### देवों द्वारा निर्मित घर

घर देवोंने मातेमें बनाया, इस विषयमें यह निश्चित  
मन्त्र देना चाहिये—

धारणा स्योना देवी ( धारणा ) देवेभिर्मिमिता  
व्यग्रे तुण घत्ताता सुमता ॥ ( म ५ )

‘ अर्ध आशय करने योग्य, सुखदायक, गामके उपर  
बाधा, परंतु उत्तम विचारोंसे युक्त दिव्य घर प्रारम्भमें देवों  
बनाया ।’ दिव्य धीर दुरसेठ द्वारा जो पहला घर निर्मित

हुमा वह देता था । यद्यपि इसपर धारणा उपर धा तथापि  
उत्तम अर्ध उत्तम विचार होते थे, अर्ध जानेसे धारणा  
मित्रता था और सुख भी होता था । इसका तात्पर्य यही है  
कि घर धारणा ही क्यों न हो, परंतु वह दिव्य विचारोंका  
विषय घर होना चाहिये वह अर्ध विचारका ‘ राक्षसभवन ’  
नहीं होना चाहिये । ‘ देवोंका घर ’ बनने नहीं होता है,  
अपुन्य धरकी काति और प्रसन्नतासे होता है ।

### देवोंकी सहायता

घर देते स्थानमें बनाया जाये कि जहाँ सूर्य, चन्द्र, वायु,  
इन्द्र आदि देवोंसे सहायक ठाकि विपुल प्रमाणमें प्राप्त  
होती रहे—

इमां शालां स्वकिता वायुरिन्द्रो गृहस्पतिर्नि  
मिनोतु प्रजानम् । उस्तन्तुमा मरुतो घृतेन  
मगो नो राजा नि हविं वनोतु ॥ ( म ४ )

‘ सूर्य, वायु, इन्द्र, गृहस्पति आनेसे हुप इस धरकी सहा  
यका कर । मरुत् नामक बर्तावी वायु असे सहायता करें  
और भग राजा हवि वेदानमें सहायक हो ।’

घरके लिये सूर्य प्रकाश विपुल मिले, छुट वायु मिले,  
इन्द्र पृथि द्वारा सहायता करे, पृथि कनेपत्ने वायु योग्य  
वृष्टिसे सहायता करें और इन्द्रिका देव भूमिसे हविकी योग्य  
उत्पत्ति करते द्वारा सहायक हो । घर देते स्थानमें अथवा  
देवोंमें बनाया चाहिये कि जहाँ सूर्यादि देवताओं द्वारा योग्य  
अतिथियोंसे सहायता अच्छी प्रकार मिल जाय, भूमि उप  
युक्त हो, वायु निर्दोष हो, उक्त मातृग्यदायक और पाचक  
हो, इस प्रकार उत्तम देवोंमें गृहका निर्माण करना  
चाहिये ।

## गृह-निर्माण

कां. १, सू. ३

( अग्नि - मुख्यद्वार । देवता - जाला । )

उपमिता प्रतिमिताभ्यो परिमितामूव । शालांश मिश्वाराया नृदानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

अर्थ—( मिश्वाराया शालाया उपमिता ) सब मकके निवाले घरके स्तंभों, ( प्रतिमिता ) स्तंभोंके  
नोनों ( अथो उक्त परिमिता ) और अन्त्य पेशवों ( नृदानि वि चृतामसि ) अतिथियोंके दान पायते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ— बहुत कशोंका दूर करनेके लिये घर बनाया जाता है । उस घरके स्तंभों, गहराईकी एकदिव्य, अतिथियों  
तथा उपरकी पेशवोंको इस उन्त्य स्थिति सफल जोष देते हैं ॥ १ ॥

यत्ते नृद्वं विश्ववारे पाशोऽं ग्रन्थिश्च यः कृतः । बृहस्पतिरिवाहं वलं वाचा वि संसयामि तत् ॥ २ ॥  
 आ ययाम सं ययर्हं ग्रन्थीर्धकार ते दृढान् । परंपि विद्वाच्छस्तेवेन्द्रेण चृतामसि ॥ ३ ॥  
 यंशानां ते नद्वंशानां प्राणादस्य तृणस्य च । पश्यामां विश्ववारे ते नृद्वानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥  
 संदुशानां पलदानां परिध्वज्जल्पस्य च । इदं मानस्य पत्न्यां नृद्वानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥  
 यानि तेऽन्तः शिक्पान्पान्पान्पान्पान्पान् कम् ।  
 प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नीं न उद्धिता तन्वेमिव ॥ ६ ॥  
 हविर्धानमभिशातं पत्नीनां सदर्शनं सदर्शनं । सदर्शनं देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अर्थ— हे ( विश्व-वारे ) सब हु लोका निवारण करनेवाले पर ! ( यत् ते नृद्वं ) जो तेरा मन्त्र है, ( आ ययाम सं ययर्हं ग्रन्थीर्धकार ते दृढान् ) जो पास और ग्रंथियों हैं, ( बृहस्पतिः वाचा वलं इव ) बृहस्पति अपनी वाणीसे द्वारा कैले वायु-संस्था काय करता है, उसीप्रकार ( तत् परिध्वज्जल्पस्य ) उनको मैं खोलता हूँ ॥ २ ॥

( आययाम ) एकट्ठा किया, ( सं ययर्हं ) जोड़ दिया और ( ते दृढान् ग्रन्थान् चकार ) केरे गाँठोंको सुपट्ट कर दिया है । ( परंपि विद्वाच्छस्तेवेन्द्रेण चृतामसि ) इन्द्रकी सहायतासे हम बांध देते हैं ॥ ३ ॥

हे ( विश्व-वारे ) सब कहोके निवारण करनेवाले पर ! ( ते यंशानां नद्वंशानां ) केरे बाँसों और बंधनों तथा ( प्राणादस्य तृणस्य च ) जोड़ों और घासको तथा ( ते पश्यामां नृद्वानि ) केरे दोनों औरके बंधनोंको ( वि चृतामसि ) मैं बांधता हूँ ॥ ४ ॥

( मानस्य पत्न्याः ) प्रमत्त होनेवालेके द्वारा पालित हुए घरके ( संदंशानां पलदानां ) कैचियोंके और पटाइ-घोरे ( य परिध्वज्जल्पस्य ) तथा विस्तररथानके ( इदं मन्त्रानि विचृतामसि ) इस प्रकारके बंधनोंको मैं बांधता हूँ ॥ ५ ॥

( पानि ते अन्तः शिक्पानि ) जो केरे अन्दर छिक्के ( रणाय च आरेधुः ) रणवीरणाके लिए गुल्लके बांधे गए हैं, ( ते तानि प्रचृतामसि ) केरेसे उनको हम बाँधते हैं । व ( मानस्य पत्नी ) प्रमत्त होनेवालेके द्वारा पालित होनेवाली ( उद्धिता ) ऊपर डकायी हुई ( नः तन्वे शिया अय ) हमारे शरीरके लिए कम्बलकारिणी हो ॥ ६ ॥

हे ( शाले देवि ) गृहस्त्री देवते ! व ( हविर्धानं ) हविष्य ब्रह्मका स्थान, ( अभिशातं ) अभिशातक मधवा पशुशाखा, ( पत्नीनां सदर्शनं ) शिवोंके रहनेका स्थान, ( सदर्शनं ) रहनेका स्थान और ( देवानां मन्त्रः ) देवताओंका स्थान ( अस्ति ) है ॥ ७ ॥

आयार्थ— जो बंधन और ग्रंथियों तथा जो और पास पहिने बांधे थे, उनको मैं अब ढीला करता हूँ । इस प्रकार शानी अपनी वाणीसे शत्रुसैन्यको ढीला बना देता है ॥ २ ॥

पहिने सब सामान एकट्ठा किया, उसको बगलस्थान जोड़ दिया, उनसे जोड़ बंधे मजबूत रिये । जोरनेके स्थानोंको पयायोप रीतिसे काटनेवाले सामान ही काटा और सबको प्रमुखक साथ बाँधा है ॥ ३ ॥

घरके बाँसों, बंधनों, जोड़ोंके स्थान, घास और दोनों औरके बंधनोंको बांध रीतिसे मैं मजबूत बांध देता हूँ ॥ ४ ॥ प्रमागसे बांधे हुए इस घरके कैचियों, पटाइयों और आन्तरिक स्थानोंके सब बंधनोंको मैं अच्छी प्रकार बांधता हूँ ॥ ५ ॥

घरके अन्दर जो छिक्के हैं, जिनपर गुल देनेवाले पशुधर्म भरकर रखे हुए हैं उनको हम उत्तम रीतिसे बांध देते हैं । इस प्रकार बनाई यह उच्च शाला हमारे शरीरोंको मुख देनेवाली हो ॥ ६ ॥

घरके अन्दर घाम्यका स्थान, हवनका कमरा, शिवरि बैठनेका स्थान, अन्य अनुष्णोंके लिए बैठनेका स्थान और देवोंके लिए स्थान होते हैं ॥ ७ ॥

अधुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषुवति । अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥  
 यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासिं मिता त्वम् । उभौ मानस्य पत्न्यौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥  
 अमुत्रैतन्मा गच्छताद् दृढा नृद्धा परिष्कृता । यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुषरुः ॥ १० ॥  
 यस्त्वा शाले निमिमाय संजमार वनस्पतीन् । प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥  
 नपस्तस्यै नमो दात्रे शालापतये च कुम्भः । नमोऽध्वर्ये प्रचरति पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥  
 गोम्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते । विजायति प्रजायति वि ते पाशोश्चृतामसि ॥ १३ ॥

अर्थ—( विषुवति ओपशं ) आकाश रेखापर आभूषण रूप हुआ हुआ और ( विततं सहस्राक्षं अधुं ) फैला हुआ  
 हजारों छिद्रोंवाला जाल ( अवनद्धं अभिहितं ) बंधा और लगा हुआ है उसे हम ( ब्रह्मणा वि चृतामसि ) ज्ञानले  
 पापते हैं ॥ ८ ॥

हे ( मानस्य पत्नी शाले ) प्रमाण देवेवाले द्वारा पालित घर ! ( यः त्वा प्रतिगृह्णाति ) जो तुझे केता है,  
 ( येन च त्वं मिता असि ) जिसने तुझे माया है, ( उभौ तौ ) दोनों ने ( जरदष्टी जीवतां ) दृढावस्थातक  
 जीवित रहें ॥ ९ ॥

( यस्याः ते ) जिस तेरे ( अंगं अंगं पुरुः पुरुः ) प्रत्येक भाग और प्रत्येक जोड़को ( विचृतामसि ) हमने मज-  
 द्दत बनाया है, ॥ १० ॥ ( अमुत्र दृढा नृद्धा परिष्कृता ) वहाँ सुरक्षित, यथोक्त और सुसिद्ध होकर ( एनं भागच्छताद् )  
 इससे प्राप्त आ ॥ १० ॥

हे शाले ! ( यः त्वा निमिमाय ) जिसने तुझे बनाया और जिसने ( वनस्पतीन् संजमार ) हड्डियों को काटकर  
 बनाया है, हे शाले ! ( परमेष्ठी प्रजापति ) परमेष्ठी प्रजापतिने ( त्वा प्रजायै चक्रे ) तुझे प्रजा के छिद्र निर्माण  
 किया है ॥ ११ ॥

( तस्मै दात्रे नमः ) उस काटनेवालेको नमस्कार : ( शालापतये नमः कुम्भः ) शाला के स्वामीको नमस्कार  
 करते हैं । ( नमः अध्वर्ये अश्वेभ्यः ) चरनेवाले अश्वोंके लिए नमस्कार और ( ते पुरुषाय च नमः ) छेरे पुरुषके लिए  
 नमस्कार है ॥ १२ ॥

( यद् शालायां विजायते ) जो शाला में होते हैं उन ( गोम्यः अश्वेभ्यः नमः ) गौओं और घोड़ोंके लिए नमस्कार ।  
 हे ( विजायति प्रजायति ) उत्पादक और सत्तापनुक घर ! ( ते पाशोश्च वि चृतामसि ) छेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ— ऊपरके भागमें मूलकाके समान दिखाई देवेवाला, हजार छिद्र छिद्रोंवाला फैला हुआ जाल हम उसमें  
 रीतिसे फैलाकर और जानकर बांधते हैं ॥ ८ ॥

यद् प्रमाणसे बंधा हुआ घर है, जिसने इसका मांस छिद्र और जिसने यह बनाया वे दोनों दीर्घकालतक जीवित  
 रहें ॥ ९ ॥

इस घरका प्रत्येक भाग और हर एक पुर्जा अच्छी प्रकार सुरक्षित बनाया गया है, इस प्रकार सुरक्षित बना हुआ यह घर  
 इससे भावीन होने ॥ १० ॥

प्रजाका पाठन करनेकी इच्छा करनेवाले, उस स्थानमें स्थिर रहनेवाले बड़े कर्त्तामानने इस प्रमाणसे बनाया और उस  
 कार्यके छिद्र अनेक पुरुषोंको काट्य है ॥ ११ ॥

पुरुषोंको काटनेवाले, घरका रखन करनेवाले, अश्वोंको मज्दूर रखनेवाले तथा अन्य अनुषंगोंके छिद्रों में नमस्कार  
 करता है ॥ १२ ॥

घरमें बाणधर होनेवाले सब छोटे और गौलोंके छिद्रों में नमस्कार करता है । इस घरको सुरक्षित बनाया है ॥ १३ ॥

अग्निमन्तश्छादुगतिं पुरुषान्धुमिं । ॥१॥ विज्ञावति प्रज्ञावति वि ते पार्थाश्रुतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा घां च पृथिवी च यज्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृष्वेऽहमुदरं वेद्यधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

ऊर्जस्वती परस्वती पृथिव्या निमिता मिता । विश्वानं विभ्रती आले ॥ हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

हृणैरावृता पलदान्यसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्या तिष्ठसि हस्तिनीव पृथ्वी ॥ १७ ॥

इदं स्य ते वि चतुर्भ्यपरिन्दमपोर्जुवन् । वर्कणेन समुञ्जितां मित्रा प्रातर्गुं व्रजतु ॥ १८ ॥

अर्थ— ( पशुभिः सह पुरुषान् ) पशुओं के साथ मनुष्यों को और ( सति ) अग्नि के ( भन्तः छादयति ) मन्दरगुल रखती है । ये ( विज्ञावति प्रज्ञावति ) उत्पन्नक और सम्पन्नक धर । वेरे पार्थों को हम बाँधते हैं ॥ १४ ॥

( घां च पृथिवी च अन्तरा ) पृथ्वी और पृथिवी के मध्यमें ( यत् व्ययः ) को विस्तृत नक्काश है, ( तेन ते इमां शालां प्रति गृह्णामि ) उससे तेरे इस घरको मैं स्वीकार करता हूँ । ( यत् अन्तरिक्षं एजसः विमानं ) जो अन्तरिक्षलोकका बीचमें परिमाण है, ( तत् कृष्वेऽहमुदरं वेद्यधिभ्यः ) उसे मैं अग्नि के लिए उदर जैसा बनाता हूँ । ( तेन तस्मै शालां प्रति गृह्णामि ) उससे उसके लिए मैं इस घरको स्वीकार करता हूँ ॥ १५ ॥

हे शाले ! ( ऊर्जस्वती परस्वती ) अन्नपुष्प और वनपालपुष्प सेना ( पृथिव्या निमिता मिता ) पृथ्वी पर माघ केकर निर्माण किया गया । ( विभ्रती विभ्रती ) सब प्रकारके अन्नको धारण करनेवाली दू ( प्रतिगृह्णतः मा हिंसीः ) तेनेपाड़ेका नाश न कर ॥ १६ ॥

( तृणैः आवृता ) घाससे आवृताहित, ( पलदान्यसाना ) चटाईयेंसे ढकी हुई ( मिता शाला ) माघी हुई शाला ( रात्री इव ) रात्रीके समान ( जगतो निवेशनी ) जगत्को आगम देनेवाली दू ( पृथ्वी हस्तिनी इव ) वनपाल पौरवाजी हथिनीके समान ( पृथ्वी पृथिव्यां तिष्ठसि ) उज्ज्वल स्तंभोंवाली होकर पृथ्वी पर स्थिर है ॥ १७ ॥

( ते इदं स्य अपिन्दं ) तेरी चटाईसे कंच इपको ( अपर्जुर्जुवन् ) आवृताहित करता हुआ ( पिपृतामि ) मैं बाँधता हूँ । ( यदणेन समुञ्जितां ) क्या द्वारा जलते सोयी बनायी गई धातुको ( मित्राः प्रातः पशुभ्यजतु ) सूर्य सेवेरी सोयी बना देये ॥ १८ ॥

भावार्थ— इस घरके मन्दर मनुष्य, पशु और भस्म रहते हैं, अतः इस सम्पन्नकपुष्प और वनपाल धरके अन्नकों में सुख करता हूँ ॥ १४ ॥

पृथ्वी और पृथ्वीके जो अन्तर है उसमें इस घरका निर्माण हुआ है । इसके मध्यभागमें मैं धनसंग्रह करनेका स्थान बनाता हूँ । इस अजानेके स्थानके साथ जो घर होगा उसीको मैं खूना ॥ १५ ॥

धरमें सब प्रकारका अन्न, रसधानका साधन, ऊँट आदि सदा उपस्थित हो । घर प्रमाणसे बनाया जाये । सब प्रकारका मत्त उसमें लिट हो । यह घर कभी किराया नाश नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

इस घरपर घासका ऊपर है, चारों ओर चटाईयोंका घेराव है, सब स्थान प्रमाणसे बनाये गये हैं, इस प्रकारका घर घर सुख स्तंभोंपर उसी प्रकार सुरक्षित रहता है, जिस प्रकार हथिनी अपने चार पायोंपर सुरक्षित रहती है ॥ १७ ॥

यह स्थान पहिले चटाईसे आवृताहित था, उसीको अब मैं सुख बनाता हूँ । रात्रीके समय इस घरको अन्न और दूधके साथ सूर्य सरकताका मार्ग दिखाते हैं ॥ १८ ॥



नक्षत्राणां शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालांमृतौ सौम्यं सदैः ॥ १९ ॥  
 कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुन्मिजतः । तत्र मृतो वि जायते यस्माद्विषं प्रजायते ॥ २० ॥  
 या द्विपक्षा चतुष्पक्षा पदपक्षा वा निर्मायते ।  
 अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमधिर्ममै ॥ २१ ॥  
 प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यार्हिसतीम् । अग्निर्ह्यन्तराप्यर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥  
 इमा आपः प्र भर्मायशस्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुष प्र सीदाम्यमृतेन महाग्निना ॥ २३ ॥  
 मा नुः पाशुं प्रति मुचो गुरुमसौ लघुर्भय । यधुर्भय त्वा शाले यत्रकर्म भरामसि ॥ २४ ॥

अर्थ— ( द्रव्यणा निर्मितां शालां ) स्त्रीके द्वारा निर्माण की हुई शालकी और ( कविभिः मितां निर्मितां ) कवियों द्वारा प्रमाणित की हुई ( शालां ) शालकी ( अमृता इन्द्राग्नी रक्षतां ) अमर इन्द्र और अग्नि रक्षा करें । यह ( सौम्यं सदैः ) सोम-व्यसक्तियों-का हय है ॥ १९ ॥

( कुलायेऽधि कुलायं ) पोसकेपर पोसका और ( कोशे कोशः समुन्मिजतः ) कोशपर कोश सीधा रखा हुआ है । ( तत्र मृतं विजायते ) वहां मरने उत्पन्न होता है । ( यस्मात् विषं प्रजायते ) जिससे लक्ष उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

( या द्विपक्षा ) जो दो पक्षवाली ( या चतुष्पक्षा पदपक्षा निर्मायते ) और जो चार तथा छ. पक्षोंवाली बनानी जाती है, ( अष्टापक्षां दशपक्षां ) आठ पक्षों तथा दशपक्षोंवाली ( मानस्य पत्नीं शालां ) प्रमाणित माननेवाले के द्वारा पाठित शाळाका ( गर्भ- अग्निः इय ) गृहस्थाध्याय स्थित अग्निके समान मैं ( आशये ) आश्रय लेता हूँ ॥ २१ ॥

हे शाले ! ( प्रतीचीनः ) पश्चिमकी ओर मुख करनेवाला मैं ( प्रतीचीं अर्हिसतीं ) त्वा प्रैमि ) पश्चिमामिदुक्त शाली और मैं दत्ता करनेवाली तुझ शालके पास आता हूँ । ( अग्निः आपः च अमृतः ) अग्नि और जल अमर हैं जो ( जलस्य प्रथमा द्वाः ) पहले पहिले दत्त हैं ॥ २२ ॥

( इमाः अपश्मः यक्ष्मनाशनीः जायः ) मैं रोगरहित, रोगनाशक जल ( प्रमरामि ) शालामें भरता हूँ । ( अमृतेन अग्निना सह ) एक और अग्निके साथ ( गृहानुष प्र सीदामि ) घरमें प्रति मैं जाता हूँ ॥ २३ ॥

हे शाले ! ( नः पाशुं मा प्रसिमुचः ) हमपर पास न छोड़, ( गुरुः भारः, लघुः भय ) बड़े भारको हलका करनेवाली हो । ( यधुं इय ) कष्टके समान ( त्वा यत्र कर्म भरामसि ) तुझे इच्छाके अनुसार नर देते हूँ ॥ २४ ॥

भाषार्थ— जानी और कविोंने इस घरकी रचना प्रमाणमें की है । इसकी रक्षा इन्द्र और अग्नि करें । यह धा शान्ति देनेवाला हो ॥ १९ ॥

पोसकेपर पोसका अथवा कोशपर कोश रखनेके समान वहाँ पहिले अमरकेपर दूसरा अमर बनाया है । इसमें मनुष्य का रूप होता है, इसीसे सबकी उत्पत्ति होती है ॥ २० ॥

यह घर दो, पाद, उ, बाइ या दश कक्षावाला होता है, जैसे केटमें गर्भ सुरक्षित रहता है उसी प्रकार मैं, इसके आश्रयमें रहता हुआ सुरक्षित रहता हूँ ॥ २१ ॥

पहले पश्चिमकी ओर मुख करने घरमें मनुष्य प्रवेश करे । घरमें अग्नि और जल सदा रखा जावे । ये ही दो पदार्थ गृहस्थाध्यायके यज्ञकी सिद्ध करनेवाले हैं । इस प्रकारका घर सदा सुख देनेवाला होता है ॥ २२ ॥

जहाँ रोग दूर करनेवाला शक्ती हो, वहाँसे उसे घरमें भरना चाहिये । घरमें जल और अग्नि सदा रहने चाहिये । ऐसे घरमें मनुष्य निवास करे ॥ २३ ॥

इस प्रकारके घरमें रहनेसे कलहका बड़ा भार बहुत हलका होता है । जिस प्रकार कुटुम्बका संरक्षण और पोषण सोम करते हैं, इसी प्रकार ऐसे शाली रक्षा करनी चाहिये और इस घरमें उत्तमोत्तम पदार्थ लाकर रखने चाहिये ॥ २४ ॥

प्राच्यां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २५ ॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २६ ॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २७ ॥
उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २८ ॥
ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २९ ॥
कुर्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३० ॥
दिशोर्दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३१ ॥

अर्थ— ( शालायाः प्राच्याः दक्षिणायाः ) पृथ्वी पूर्व और दक्षिण ( प्रतीच्याः उदीच्याः ) पश्चिम और उत्तर ( ध्रुवायाः कुर्वायाः ) ध्रुव और ऊर्ध्व ( दिशोर्दिशः ) दिश और उपदिशाओंके ( महिम्ने नमः ) महिमाके लिये नमस्कार हो, तथा ( स्वाहोभ्यः देवेभ्यः स्वाहा ) उत्तम वर्जन करने योग्य देवोंके लिये ( स्वाहा नमोभ्यः ) उत्तम वर्जना कहते हैं ॥ २५-३१ ॥

पृथ्वी चारों दिशाओं और उपदिशाओंमें जो सुन्दर घरोंकी मदिमा हो, उसको उत्कारपूर्वक प्रसन्नता बढ़ानी चाहिये। उत्तम वर्जनीय वृष्ठी, आप, अग्नि, वायु, ऋतु, सूर्य, आदि देवोंकी प्रसन्नता इस घरपर रहे, ऐसा भाषा स्पष्टकरना चाहिये ॥ २५-३१ ॥

## सह-निर्माण

### पृथ्वी प्रसन्नता

सहनिर्माण करनेका और उसकी आभेदित, प्रसन्न तथा उत्तम स्वास्थ्यसंरक्ष रखनेका उपदेश इस सूत्रमें है। पर उत्तम प्रमाणसे निर्माण दिया जावे उसके स्थान, उत्तरकी लक्ष्मिणी, उत्तरका लक्ष्मीका सामान सब सुन्दर तथा सुख-वर्धित होवे और सब जोड़ मध्ये प्रकार मजबूत क्रिये जावे। किसी स्थानपर कमजोरी न रहे। क्योंकि सब घरवालोंका स्वास्थ्य पृथ्वी सुरक्षितता पर निर्भर है। ऐसा सुन्दर और मजबूत घर रहनेवालोंके कष्टोंको दूर कर सकता है, परंतु कमजोर और अस्वस्थ तथा वैकल्याणसे बनाया गया घर रहने-वालोंका सब मात करेगा, इसका भी चला नहीं होता।

बहु और अन्य कारीगर ऐसे लगाने जाते कि जो संविधानोंको ( परंपरि विद्वान् शस्त्रा ) अच्छी प्रकार कहते और सोइनेकी कला जानतेवाले हों। कौशल, लक्ष्मिणी, धाम, चतुर्धा आदि जो भी सामान घरमें रखनेका अवकाश प्राप्त होवे सो सब उत्तम, निर्मल और सुखकरवाले रखा जावे।

सहनिर्माण करनेकी विद्या ज्ञानेश्वरोंको ' मानसति ' कहते हैं। वह घरके प्रमाणसे मकान तैयार करता है और उसी प्रमाणसे भूमिपर रखना कराता है। इसके लिये प्रमाणोंसे प्रमाणवृक्ष जो पर होता है वह सुखदायी होता है। ' मानसति ' ( ईशितियर ) को ' सुखदा ' भी कहते हैं क्योंकि वह सूत्रसे सबको प्रसन्न है। इस ' मानसति ' द्वारा बनाये जानेके कारण इस गाथाकी ' मान-दानी ' कहते हैं।

यहों लीके ही हों और उनपर वृष्टिपादि पड़ाये लगे जाय। यहाँ रखनेसे पड़ाये चीटियों और चूरोसे बचने दें। और इस कारण व्यायोग देनेवाले होते हैं।

पर ( उदित ) ऊंचे स्थानपर और ऊँचा हो। नीचे न हों क्योंकि ऊंचे घरमें सुखवासु जाती है जो मनुष्योंकी नीतोग बना देती है। अतः कहा है कि—

उदितो गाला लभ्ये श्री मण्डति । ( म. १ )

' ऊँचा घर नीचेके लिये सुखदायक होता है। ' ऐसा भीना बन नहीं होता। यहाँ उत्तमकरनेका ध्यान, संस्था

हवन करनेके योग्य कमरा, भोजनशाला, शिथिलि के लिए स्थान, अतिथियों और धावाओंके रहनेका स्थान, धाम्पादिके समग्र स्थान ऐसे बहुत बहुत कमरे हों। घरकी ऊपर सुन्दर कचरा शाना बाड़े, जिससे कमरेकी शोभा बढती है। घरमें रहनेवाले ऐसा कहें, कि घरका निर्माण करनेवाला "मानपति" (इतिविषय) और बनानेवाले कारीगर दीर्घ आयुवत्क जीवित रहें। यह धमी हो सकता है, जब उसमें रहनेवाले सुखपूर्वक रहें। अतः घर बनानेवाले शेष कुशलका-पूर्वक गृहनिर्माणका कार्य करें और घरमें रहनेवालोंको सुख हो, इस विचारसे घर बनायें। केवल देवताके लिए बनाया जाय तो तब मात्र नहीं बनेगी। यह तो एक परस्पर प्रेमका विचार है। इसी विचारसे प्रामेय कारीगर और गृहके स्वामी इनमें परस्पर दिव्यी बुद्धि प्राप्त रहेगी।

घर काटनेवाले, विविध एकटिपां बनानेवाले, अन्य गृहो-पयोगी सामान संमहोष्ठ करनेवाले, जोड़नेवाले और घरमें रहनेवाले इन सबकी सहाकारितासे धरका निर्माण होगा है, मत. प्राममें इनकी सहाकारिता होती चाहिए और एकका हित दूसरेको करना चाहिये, परका स्वामी धनवान् और प्रतिष्ठित भले ही क्यों न हो, परंतु जिस समन वह लकड़ी काटनेवालेको मिले, वह ( तस्मै दाधे नमः ) उस लकड़ी काटनेवालेको नमस्कार करे, वह लकड़ी काटनेवाला निर्वहन ही क्यों न हो, परंतु यह धरके माटिकसे मिले तो यह ( दान्वापत्ये नमः ) धरके स्वामीको नमस्कार करे। इस प्रकार ये लोग परस्पर सम्मान करें, एक दूसरेका भाद्र करें। कोई किल्ला निराद्र न करे।

प्राकृतिक भाद्र दर्शाता चाहिए कि धरका स्वामी अपने घोडा, गीधो, बैल आदि पशुओंका भी उचित प्रकार भाद्र साकार करे। इस प्रकार नई लकड़ा साकार होता है ऐसे घरमें रहनेवाले मनुष्य उच्च ज्ञानन्दका अनुभव करेंगे, इसमें संदेह ही क्या हो सकता है।

पर ऐसा बनाया गये कि जो पीछेके भाग्यशर सुंदर दिखाई देवे। धरके भासपासकी सोमा धृष्टादिकोले सुंदर दिखाई देवे और प्रचलते अथिष्ठ सौदम्य बनाया जावे। धरके मध्यमें अत्यंत सुरक्षित स्थानमें धन, जेवर आदि रख-नेका स्थान- धाननेका वस्त्रा-बनाया जावे। ( दोषविम्व्याः उदरं ) जैसे मनुष्यके नाभिमें पेट बीचमें होता है, अति सुरक्षित स्थानपर होता है, उन्नी प्रकार यही धरके मध्यमें पशुशेका कमरा बनाया जावे। धरमें धान्यके स्वामिों सब प्रकार ( ऊर्जः ) धान्य, ( विम्व्यां ) जन्तु की सामग्री

संग्रहित की जावे, ( पराः ) जल, देव पदार्थ, रसपात्रके साधन धरमें भरपूर हों ऐसा घर सब रहनेवाले पारिवारिक जनोंको सुख देता है।

घरके स्तंभ ऐसे बढाना हों जैसे हमिनीके पांव होते हैं, क्योंकि इन्हींपर बरका छप्पर आदि रहता है। दूसरी मंडि बनानी हो तो एकके ऊपर दूसरी बनायी जावे, जैसे ( कुलाये अधि कुलायं ) शीतला एकपर दूसरा बनाते हैं और ( कोशे कोशः ) एक कोश पर दूसरा कोश रखा जाता है। नीचेका स्थान मज्जत हो, नहीं तो ऊपरके भागसे निचला स्थान दृक् आसक्त। ऐसे उत्तम घरमें मनुष्यका जन्म होवे। सभी प्राणियोंके लिए ऐसे स्थान बनाये जावें। पक्षी भी प्रसूतिके पूर्व उत्तम घोंसले निर्माण करते हैं, पशु भी सुरक्षित स्थान देखते हैं, यह देखकर मनुष्योंको अपने घरमें प्रसूतिके लिए उत्तम स्थान बनाने चाहिये।

घरमें दो, चार, छ, आठ, दस कमरे भवया चौक बनाये जा सकते हैं। बंदू रहनेवाले मनुष्योंकी संख्यासे अनुसार तथा उस घरमें होनेवाले कार्योंके अनुसार घर छोटा या बड़ा होना चाहिए।

अग्निर्वान्द्रापयार्तस्य प्रथमा द्वाः। ( मं. ११ )

" घरमें अग्नि और जल अवश्य रहे, क्योंकि इन्होंने सब प्रकारके पत्र रोके हैं।" कोई अतिथि आगम्य हो उसको श्रमपरीहारेके लिए कमसे कम जलपान दिया जावे और शीतनिवारणके लिए आगके स्थानसे पाठ उसको दिखवाया जावे। ये दो पदार्थ शरीरसे शरीर और धनीसे धनी मनुष्य के घरमें अवश्य रहें और इनसे आदरातिथ्य होवे। मनु-सृष्टिमें भी कहा है कि—

गृणानि भूमिचरुके वाक्चतुर्थी च सृजता।

पतान्वयि सतां रोदे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।

( मनु. १।१०१ )

" वेदोंके लिए प्याह, भूमि, जल और मीठा भासपात्र पाठ बाँधे अतिथिों के भाद्रके लिए सज्जनोंके घरमें कमी न्यून नहीं होती।" यही उद्धृत है। वेदके ऊपरके मंत्रमें एक पीनेके लिए और भाग सेकनेके लिए प्रत्येक घरमें अवश्य रहें ऐसा कहा है। अतिथिोंके समादरके ये प्रकार ध्यानसे देखने योग्य है। घरमें जल रखना हो तो उत्तम निर्दोष रखत चाहिए इस विषयमें सूचना यह है—

अथयमा यदमनादानीः आपः प्रभराणि।

गृहान् उपप्रसृज्यामि। ( मं. ११ )

‘ मैं घरमें ऐसा जड़ भरता हूँ कि जो रुख रोय उलझ करनेवाला न हो और जो रोगोंको दूर करनेवाला हो । इस रीतिसे मैं घरकी प्रसन्नता बढ़ाता हूँ । ’ इतनाक गृहस्त्री देखा ही कहे और अपने घरकी अधिनसे अधिक प्रसन्नता करनेका यत्न करे । ( ‘ धर्षं ह्य ’ ) जैसे स्त्रीकी रक्षा की जाती है, वसी प्रकार गृहकी भी रक्षा करनी योग्य है । वहाँ वधूकी प्रसन्नता रखना, उसको हठदुष्ट रखना, सुरक्षित रखना आदि बातें जानने योग्य हैं और इस दृष्टिकोसे घरकी सुरक्षितताकी बातें भी जानी जाती हैं । सादा ( घर ) भी एक कुलवधु

है ऐसा मानकर उसकी सुरक्षितता और सोमाके बढ़ानेके लिए प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करनेसे ही ( गुरुः भारः लघुः ) संसारका बोझ भारी बोझ बहुत हलका हो जाता है । वहाँ ऐसे बंधनसे कुछबहुत समान घरकी सुखवस्था भी जाती है, वहाँ घरके चारों ओरकी दिसा भीर उपदिशार्थ प्रसन्न होती है और वहाँ देवताओंके निवासके योग्य स्थान बनता है और घरकी मदिमा पथ जाती है ।  
इतनाक गृहस्त्री अपने घरकी मदिमा इस प्रकार बढ़ाये और अपना घर देवताओंके निवासार्थ योग्य करे और अपने निरपरवा संसारका बोझ हलका करे ।

## घरकी शोभा

कां. ६, सू. १०६

( कवि - प्रयोगः । देवता- दर्शाया । )

आर्यमे वे परायणे दूर्वा रोहनु पुष्पिणी । तस्मै वा तत्र जार्यता ह्रदो वा पुण्डरीकान् ॥ १ ॥  
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् । मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः परार्चीना मुखा कृधि ॥ २ ॥  
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि म्ययामसि । शीतह्रदा हि नो ह्रवोऽभिष्कृणोतु मेपमम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( ते आर्यने परायणे ) तेरे घरके आगे और पीछे ( पुष्पिणीः दूर्वाः रोहनु ) फूलोंसे पुष्प दूर्वा बास करे, ( तत्र वा तस्मै जार्यता ) और वहाँ एक हीन हो, ( वा पुण्डरीकान् ह्रदः ) अपना वहाँ कमलोंवाला तालाब करे ॥ १ ॥

( ह्रदं अपामिदं न्ययनं ) यह जलोंका प्रवाहस्थान होवे, ( समुद्रस्य निवेशनं ) समुद्रके समीपका स्थान हो, ( ह्रदस्य मध्ये ना गृहाः ) तालाबके बीचमें हमारे घर हों, ( मुखाः परार्चीना कृधि ) घरके आगे परस्पर विपक्ष दिशामें कर ॥ २ ॥

हे शाले ! ( त्वा हिमस्य जरायुणा ) तुझे शीतके आवरणसे ( परि म्ययामसि ) घेरते हैं । ( नः शीतह्रदाः भुवः ) हमारे लिये शीतल जलवाले स्थान बहुत हों, और हमारे लिये ( अग्निः मेपमं कृणोतु ) अग्नि दीन निवासनका उपाय करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— घरके आगे और पीछे दूर्वाका उद्यान हो, उसमें बहुत प्रकारके पुष्प लगाए हों, वहाँ पानीका हीन हो व कमलोंवाला तालाब हो ॥ १ ॥

घरके बाग जलके प्रवाह पीछे, घरका स्थान समुद्रके किनारेपर हो अथवा तालाबके आगममें हो और घरके दरवाजे वा लिङ्गकिर्पा आगने सामने हों ॥ २ ॥

घरके चारों ओर जड़ हो, शीत जलके हीन हों और यदि सदी अधिक हो तो शीतनिवासके लिये घरमें अग्नि जलाने-का स्थान हो ॥ ३ ॥

घरके आसपासकी सोमा कैसी हो, यह इस सूत्रने उत्तम रीतिसे बताया है । घरके चारों ओर बाग हो, कमलोंमें भरपूर तालाब हो, जलकी सदी बहें, उद्यान उत्तम हो और चारों ओर रमणीय सोमा बने । ऐसा सुख घरके आनन्दनका स्थान होना चाहिये । घरके द्वार और लिङ्गकिर्पा आगने सामने हो, अग्निके घरमें गुप्त बापु रिया शोपटोके आ भेटे । घरमें अग्नि जलती रहे । शीत जलने पर घरके लोग अग्निसे बाग तालाब शीतनिवासनका उपाय करें ।

## रमणीय धर

कां. ७, सू. ६०

[ (अपि-प्रहा । देवता-गृहा, वास्तोष्पतिः । )

ऊर्ध्वं विभ्रदसुवर्णिः सुमेधा अपोरेण चक्षुषा मिश्रियेण ।

गृहानैर्मि सुमना चन्दमानो रषध्वं मा विमीतु मत् ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोऽसुव ऊर्ध्वस्वन्तः पयस्वन्तः । पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वापृतः ॥ २ ॥

येषामभ्येति प्रवसन्त्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुषं ह्यामहे ते नो जानन्त्वापृतः ॥ ३ ॥

उपहृता भूरिधनाः सरतायः स्वादुसंमुदः । अक्षुष्या अशुष्या स्तु गृहा मास्मद्विमीतन ॥ ४ ॥

उपहृता इह गाव उपहृता अज्जवयः । अपो अजस्य क्रीडाल उपहृतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

मर्थ— ( ऊर्ध्वं विभ्रद ससुवर्णिः ) अक्षको धातल कल्लेवला, धनका धान करेवाला, ( सुमेधाः ) उत्तम बुद्धिमान् ( अपोरेण मिश्रियेण चक्षुषा सुमनाः ) ज्ञान्त और मित्रकी दृष्टि धारण करके उत्तम मनवाला होकर तथा ( चन्दमानः ) सब श्रेष्ठ पुरषोंको नमन करण हुआ, मैं ( गृहान् एमि ) अपने घरके पास प्राप्त होता हूँ । यहाँ तुम ( रमण्यं ) आनन्दसे रहो, ( मत् मा विमीत ) मुझसे मत दरो ॥ १ ॥

( इमे गृहाः ) ये हमारे घर ( मयो-असुवः ऊर्ध्वस्वन्तः पयस्वन्तः ) सुखवासी, बलदायक धान्यसे युक्त और दूधसे युक्त हैं । ये ( वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः ) तुझसे परिपूर्ण हैं, ( ते आपृतः नः जानन्तु ) ये जानेवाले हम सबको जालें ॥ २ ॥

( प्रवसन् येषां अभ्येति ) अन्दर रहण हुआ जिनके विषयमें जानता है, कि ( येषु बहुः सौमनसः ) जिनमें बहुत सुख है, ऐसे ( गृहान् उपहृतामहे ) वहाँ प्रति हम इष्ट कियोंको डराते हैं, ( ते नः आपृतः जानन्तु ) ये जानेवाले हम सबको जालें ॥ ३ ॥

( भूरिधनाः स्वादुसंमुदः सरतायः उपहृताः ) बहुत धनवाले, मीरेपनसे आनन्दित होनेवाले अनेक मित्र कुलाये गए हैं । हे ( गृहाः ) घरों ! तुम ( अक्षुष्याः अशुष्याः स्तु ) क्षुधावाले और तृणावाले न हो, तथा ( मास्मत् मा विमीतन ) हमसे मत दरो ॥ ४ ॥

( इह गावः उपहृताः ) यहाँ गौयें कुछाई गई तथा ( अज्ज-अवयः उपहृताः ) बकरियाँ और भैंसें भी काई गई ( अपो अजस्य क्रीडालः ) और अक्षका सचमाय भी ( नः गृहेषु उपहृतः ) हमारे घरमें लाया गया है ॥ ५ ॥

भाषार्थ— मैं स्वयं उत्तम मन, विपुल धन, श्रेष्ठ बुद्धि और मित्रकी दृष्टिको धारण करके उत्तम विचारके साथ पत्नीयोंका सत्कार करता हुआ घरमें प्रवेश करता हूँ, सब लोग यहाँ आनन्दसे रहें और किसी प्रकार यहाँ मेरेसे दूर नलाय न हो ॥ १ ॥

इन घरोंमें हमें सुख मिले, मन प्राप्त हो, और सब आनन्दसे रहें ॥ २ ॥

इन घरोंमें रह कर हमें सुखका अनुभव हो, हम यहाँ इष्टमित्रोंको कुछाई और सब आनन्दसे रहें ॥ ३ ॥

बहुत धनी, आनन्दपूर्वकसे बहुत मित्र घरमें कुछाये गए हैं, उनको यहाँ जितना चाहे उतना खानपान प्राप्त हो, यहाँ सबकी विपुलता रहे और कोई मुला प्यास न रहे ॥ ४ ॥

हमारे घरमें गौयें, बकरियाँ और भैंसें रहें, सब प्रकारका सबबला आनन्द रहे, किसी प्रकारकी भूलता न रहे ॥ ५ ॥

सुनृतावन्तः सुमगा इवन्तो हसामुदाः । अतृप्या अतृप्या स्त गृहा मास्मर्दिभीतन ॥ ६ ॥  
 इहैव स्त मानुं यातु विश्वा रूपाणि पुष्यत । ऐष्यामि भद्रेणा सह भूपांसो भवता मया ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (गृहाः) पत्ते ! तुम (सुनृता-यन्तः सुमगाः) सखतुक्त और उत्तम भाग्यवाले, (इरायन्तः हसा-मुदाः) अथवात् और हास्य विनोद युक्त तथा (अतृप्याः अतृप्याः) धुषा और तृषाके मयसे रहित (स्त) होये । (अस्मत् मा विभीतन) हमसे मय डरो ॥ ६ ॥

( इह पय स्त ) यहीं रहो, ( मा अतु यात ) हमसे दूर मत भागो, ( विश्वा रूपाणि पुष्यत ) विविध रूपवाले भाग्यवोको पुष्ट करो, ( भद्रेण सह आ ऐष्यामि ) कल्याणके साथ मैं तुम्हें साथ होगा हूँ । ( मया भूपांसः भवत ) मेरे साथ बहुत हो जाओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ— पर परमें राख, माग्य, मग, मानन्द, हास्य और खान और पानकी विपुलता रहे ॥ ६ ॥  
 पर सुख हों, अस्थिर न हों, परमें सबका उत्तम पोषण होगा रहे । कल्याण और सुख सबको प्राप्त हो और हमारी वृद्धि होती रहे ॥ ७ ॥

रमणीय घर कैसा होना चाहिये, यह विषय इस सूत्रमें सुबोध सिद्धिसे कहा है । परमें प्रेम रहे, द्वेष न रहे, राग लोग मानवहो रहे, वारपर भय न हो, यहाँ धनधान्यकी सुख समृद्धि हो, गोरस विपुल हो, कितनी प्रकार सुखभोगकी मूलता न हो । इहमित्र भायें, मानन्द करें, कोई कमी भूला न रहे, अन्नपान उत्तमवाला हो, हरएक सुखयुक्त हो, कोई किसी कारण पीड़ित न हो । इस प्रकारके घर होने चाहिये । यही गृहस्थाश्रम है ।

## गाय

कां. ७, सू. ८२

( भाषा— गौतमः ( संस्काराः ) । देवता— अग्नि । )

अभ्यर्च्य सुष्टुतिं गव्यमाजिमुस्मासु भद्रा द्रविणानि घत्त । ॥ १ ॥  
 इमं यज्ञं संपत्त देवतां नो युतस्य धारा मधुमत्पवन्ताम् ॥ २ ॥  
 मयप्रैर् अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्षेसा यज्ञेन । मयि प्रज्ञां मय्यापुर्दधामि स्वाहा । मय्यग्निम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( सु-ष्टुतिं गव्यं आजि अभ्यर्च्य ) उत्तम स्तुति करने योग्य गौ संबंधी प्रगतिही तीमाका भादुर करो । ( अस्मासु भद्रा द्रविणानि घत्त ) हममें कल्याणकरी घन प्राप्त काओ । ( नः इमे यज्ञं देवतां संपत्त ) हमने इस यज्ञको देवताभोगक पहुंचाओ । ( युतस्य धाराः मधुमत् पवन्तां ) घोड़ी पाराने यधुरवाके साथ बहें ॥ १ ॥

( अमे मयि क्षत्रेण वर्षेसा यज्ञेन सह अग्निं गृह्णामि ) पहिले मैं करने अन्नर क्षात्रवीर्य, शानके देव और बरके साथ रहनेवाले अग्निको ग्रहण करता हूँ । ( मयि प्रज्ञां ) करने अन्नर प्रज्ञाको, ( मयि आयुः ) करने अन्नर आयुको, ( मयि अग्निं ) करने अन्नर अग्निको ( दधामि ) पारण करता हूँ, ( स्वाहा ) यह ठीक कहा है ॥ २ ॥

भाषार्थ— गौनोंकी उज्ज्वल विचार करो, क्योंकि यही उत्तम गौंसाके योग्य कार्य है । घोड़ी गौरी पाराने विपुल हों मयपर परमें भी विपुल हो, कल्याण करनेवाला विपुल घन प्राप्त करने और इन सबका विविधोपग्रह सुष्टुतिं लिए यज्ञमें किया जावे ॥ १ ॥

मेरे अन्नर शौर्य, ज्ञान, बल, संवत्ति, आयु आदि स्थिर रहे ॥ २ ॥

दुहैवाग्ने अग्निं धारया रयिं मा स्वा नि ऋन्पूर्वेचिचा निकारिणः ।

क्षुप्रेणाग्ने सुयमं यस्तु तुभ्यं यूपसत्ता वर्धतां ते अग्निं दृतः

॥ ३ ॥

अन्वसिक्तपसा मग्ने मत्स्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यं उपसो अनु रदमीन् प्रति धावापृथिवी आ विवेश

॥ ४ ॥

प्रत्यसिक्तपसा मग्ने मत्स्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुषा च रदमीन् प्रति धावापृथिवी आ रतान

॥ ५ ॥

धृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्ये धृतेन त्वां मनुं द्या सधिम्ये ।

धृतं ते देवीर्नित्यं आ यदन्तु धृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने

॥ ६ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( इह एव रयिं अधिधारय ) यहां ही धनको धारण करना । ( पूर्वचिचाः निकारिणः स्या मा निक्त्र ) पूर्वकावसे मन उगानेवाले अपकारी लोग तेरे सम्मुखमें अपकार न करें । हे अग्ने ! ( क्षुप्रेण तुभ्यं सुयमं यस्तु ) शाय बत्से तेरे शिथे उत्तम नियमन होवे । ( उपसत्ता अनिपृतः वर्धतां ) तेरा सैवक अहिंसित होगा हुआ बडे ॥ ३ ॥

( अग्निः उपसां अग्ने अनु अक्षयत् ) अग्नि-सूर्य-उप कावोंके अग्रभागमें प्रकाश करता है । ( प्रथमः जातवेदाः अहानि अनु अक्षयत् ) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । वही ( सूर्यः अनु ) सूर्य अनुकूलताके साथ ( उपसः अनु ) सब कार्योंके अनुकूल, ( रदमीन् अनु ) किरणोंके अनुकूल, ( धावापृथिवी अनु आ विवेश ) प्रभुको और पृथ्वीकोके बीचमें अनुकूलताके साथ व्याप्त होगा है ॥ ४ ॥

( अग्निः उपसां अग्ने प्रति अक्षयत् ) अग्नि-सूर्य-उपकावोंके अग्रभागमें प्रकाशता है । ( प्रथमः जातवेदाः अहानि प्रति अक्षयत् ) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । ( सूर्यस्य रदमीन् पुरुषा प्रति ) सूर्यकी किरणोंको विशेष प्रकार प्रकाशित करता है । तथा ( धावापृथिवी प्रति आ रतान ) धावापृथिवीको उसीमें फैलाता है ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! ( ते धृतं दिव्ये सधस्ये ) तेरा धृत दिव्य स्थापन है । ( मनुः त्वां धृतेन अथ सं हन्ये ) मनुष्य हमसे धीसे आत प्रशंसित करता है । ( नित्यः देवीः ते धृतं आ यदन्तु ) न गिरानेवाली दिव्य शक्तियों को धृतकों के आएँ । हे अग्ने ! ( गायः तुभ्यं धृतं दुहतां ) गायें तेरे शिथे पीको देंगे ॥ ६ ॥

मायार्थ— मुझे धन प्राप्त हो । अपकारी लोग अपकार न कर सकें । क्षुप्रेणसे सर्वत्र नियमनवत्ता उत्तम रहे । प्रभुका अतसेवक-पृथिवीको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

सूर्य जबकि पश्चात् प्रकट होता है और दिक्में प्रकाश करता है । प्रकाशसे सुखेक और पृथ्वीके बीचमें व्याप्त होता है ॥ ४-५ ॥

मनुष्य धीसे अग्निमें यजन करे, क्योंकि धीही उत्तम दिव्य स्थानमें रहनेवाला है । गौर्वे हवनके शिथे उत्तम भी तैयार करे ॥ ६ ॥

इस शुक्ले गोरक्षाकी अहिंसाका वर्णन है । साथ ही गौके पूर्वक हवनका भी साहाय्य इसमें बताया है । पूर्वके हवनसे रोगोंके मूर होनेकी बात इससे पूर्व ( अथर्व कां० १३१ ) कही है । अथ. रोग मूर होनेके बाद दीर्घ आयु, वृद्ध, तेजस्विता, ज्ञान, धन आदिका प्राप्त होना संभव है ।

कां. ४, सू. २१

( अग्नि - महा । देवता - गाय । )

आ गावो अग्नयन्तु अद्रमं कन्तसीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुषां इह स्पृशन्द्राव पूर्वीरुषो दुहानाः

॥ १ ॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिञ्जते उपेहं दाति न स्वं मुपायति ।

भूयोभूयो रयिषिर्दक्ष वर्धयन्मित्रो खिल्ये नि दधाति देवयुम्

॥ २ ॥

न ता मशन्ति न दभाति तस्करो नासांमामित्रो व्यधिरा दधर्षति ।

दुषांश्च याभिर्पज्जते ददाति च ज्योतिर्वाभिः सचते गोपतिः सह

॥ ३ ॥

न ता अवा रेणुककाटोऽश्रुते न संस्फुटन्नमुप यन्ति वा अग्निः ।

उरुगायममयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य चरन्ति यज्वनः

॥ ४ ॥

अर्थ— ( गाय । आ अग्नयन्तु ) गोवें आगई हैं और ( उत मद्रं अद्रमन् ) उगड़ने कल्याण किया है । ( गोष्ठे सविन्तु ) वे गोशालमें बैठें और ( अक्ष्मे रणयन् ) हमें सुख दें । ( इह प्रजावतीः पुरुषा स्तु ) वहाँ वे उत्तम मन्त्रोंसे सुख और बहुत रूपवाली हो । ( इन्द्राय उपसः पूर्वीः दुहानाः ) और परमेश्वरके यज्ञमंडलिये उप करके पूर्व दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

( इन्द्रः यज्वने गृणते च शिञ्जते ) ईश्वर यज्ञकर्ता और सनुपदेश कर्ताको सारा ज्ञान देता है । वह ( इत् उप दधाति ) निष्कमपूर्वक धनदाि देता है ( स्वं न मुपायति ) और अपनेको नहीं छिपाता । ( अस्य रयि भूयोः भूयोः इत् वर्धयत् ) इसके धनको अधिकधिक बढ़ाता है और ( देयुम् अभिषे खिल्ये निवधाति ) देवच प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालोंको अपनेसे अभिषे और स्थिर स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

( ताः न मशन्ति ) वह यज्ञकी गोवें नष्ट नहीं होतीं, ( तस्करः न दभाति ) चोर उनको दबाता नहीं, ( नासां व्यधिरा न वा दधर्षति ) घृषा देनेवाला शत्रु हमपर अपना अधिकार नहीं करता, ( याभिः देवाश्च यजते ) तिनसे त्रेवोंका यज्ञ किया जाता है और ( ददाति च ) दान दिया जाता है ( गोपतिः वाभिः सह ज्योष् इत् सचते ) गोपालक उनके साथ चिरकाल तक रहता है ॥ ३ ॥

( रेणुक-काटः अवा ताः न अश्रुते ) पांशोसे धूँह उड़ानेवाला योधा हथ पाँशोंकी बोधवा प्राप्त नहीं कर सकता । ( ताः संस्फुटन् न अग्नि उप यन्ति ) वे गोवें पाकादि संस्कार करनेवालेके पास भी नहीं आतीं । ( ताः गायः ) वे गोवें ( तस्य यज्वनः मर्तस्य ) उस यज्ञकर्ता सनुपदेशकी ( उरुगायं अमयं अनु विचरन्ति ) वही प्रशस्तनीय निर्मलपद्मों विचारी हैं ॥ ४ ॥

आधार्य— गोवें हमारे घरमें आगई हैं और उगड़ने हमारा कल्याण किया है । ये गोवें इस गोशालमें बैठें और हमारा भोजन बढ़ावें । ये गोवें वहाँ बहुत मन्त्रोंसे सुख और अनेक रूपरूपवाली होकर ईश्वरके यज्ञमें लिये प्राप्त काल दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

ईश्वर साकर्मकर्ता और सनुपदेश दाताको उत्तम ज्ञान देता है और धनादि भी देता है तथा उसके समुप अपने आपको प्रकट करता है । वह ईश्वर इत उपालसके धनकी वृद्धि करता है और देवत्वकी इच्छा करनेवाले साकर्मको अपने ही मंत्रोंके स्थित स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

हम गोवेंका पास नहीं होता, चोर उनको नहीं लूटा और न हमको कोई कष्ट ही देता है । इनके दूधसे ईश्वरका यज्ञ किया जाता है । इस प्रकार गोवेंका पालनकर्ता गोवेंके साथ चिरकाल जायँदूरी रहता है ॥ ३ ॥

जुर्मति घोरोंकी भी गायकी बोधवा प्राप्त नहीं होती । ये गोवें अन्न पकानेवालोंकी पाकशालामें नहीं आतीं । ये गोवें यज्ञमानकी निर्मल पद्मों विचारी हैं ॥ ४ ॥



गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य मधुः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि इदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥

युयं गावो मेदयथा कुशं चिदश्रीरं चित्कणुया सुप्रतीकम् ।

भद्रं गृहं कणुय भद्रवाचो गृहहो वर्ष उच्यते समासु ॥ ६ ॥

प्रजावर्तीः सुयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपाः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ७ ॥

अर्थ—(गावः भगः) गौवं धन है, (गावः इन्द्रः) गौवं प्रभु है, (गावः प्रथमस्य सोमस्य मधुः) गौवं पहिले सोमरसका मध है (मे इच्छात्) यह मैं जानना हूँ। (इमा या गावः) ये तो गौवं हैं। हे (जनाः) लोगो! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है। (इदा मनसा चित् इन्द्र इच्छामि) इदधसे और मनसे निम्नपूर्वक मैं इन्द्रको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ ॥ ५ ॥

हे (गावः) गौगो! (युयं कुशं चित् मेदयथ) तुम कुशको भी पुष्ट करती हो, (अ-श्रीरं चित् सुप्रतीकं कणुय) निलोकको भी हृदय बनाती हो। हे (भद्रवाचः) उत्तम सम्बन्धी गौगो! (गृहं भद्रं कणुय) घरको कल्याणकर बनाती हो, इसलिये (समासु यः गृहम् यथा उच्यते) समाजोंमें गुह्यता बना यथा गाया जाता है ॥ ६ ॥

(प्रजावर्तीः) उत्तम कल्याणी (सु-यवसे रुशन्तीः) उत्तम दासके लिये भ्रमण करनेवाकी, (सु-प्रपाणे शुद्धाः अपाः पिबन्तीः) उत्तम जल स्थानमें शुद्धजल पीनेवाली गौगो! (स्तेनः अघदांसः यः मा ईशत) चोर और पारो हुनकर अधिकार न करे। (यः रुद्रस्य हेतिः परिवृणक्तु) गुह्यारी रक्षा शत्रुके हाथसे पारों ओरसे होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—गौवं ही मनुष्यके धन, बल और उत्तम धन है। इसलिये मैं सदा गौगोकी उन्नति वृद्धि और मनसे चाहता हूँ ॥ ५ ॥

अत्यंत पुर्वक मनुष्यको गौवं अपने दूधसे पुष्ट बनाती है। निस्तेज वाहरोमीको सुपर तेजस्वी करती है। गौगोका शब्द बना आह्लाददायक होता है। ये गौवं हमारे घरको कल्याणका स्थापन बनाती हैं, इसीलिये समाजोंमें गौगोके यशवां वर्णन किया जाता है ॥ ६ ॥

गौवे उत्तम बर्तनमें दूध हों, वे उत्तम वास साधें, शुद्ध स्थानका पवित्र जल पीवें। कोई पापी या चोर उनका शस्त्री न बने और वे सर्वदा सुरक्षित रहें ॥ ७ ॥

## गौ

### गौका सुंदर काव्य

यह सदा गौका अत्यंत सुंदर काव्य है। इतना उत्तम वर्णन बहुत ही थोड़े स्थानपर मिलेगा। गौका महान इस काव्यमें अति उत्तम शब्दों द्वारा बताया है। जो लोग गौका यह काव्य पढ़ेंगे, वे गौका महान जल सकते हैं। गौ घरकी शोभा, कुटुंबका आरोग्य, बल और पराक्रम तथा पवित्रता धन है, यह इस रूपमें स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है।

### गौ घरकी शोभा है

इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रमात्र देखिये—

(१) गावः भद्रं लभन् । (मं. १)

(२) गावः ! भद्रं गृहं कणुय । (मं. ६)

‘गौवं घरको कल्याणका स्थापन बनाती है।’ अर्थात् जिस घरमें गौवं रहती है, वह कल्याणका धाम होता है।

## पुष्टि देनेवाली गौ

मनुष्यकी पुष्टि पशुदेवकी गौ है, इसलिये हर एक घरमें गौका निवास होना चाहिये। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र-भाग देखिये—

( १ ) गावः अरुमे रणयन् । ( मं. ३ )

( २ ) गावः । सूर्यं कुरां धित् मेदयथ । ( मं. १ )

अभीरं चित् सुमतीकं हृणुथ । ( मं. १ )

‘ गौयें हमें समशील बनाती हैं । इस मनुष्यको गौयें पुष्ट बनाती हैं । निरुतेजको घरेलू करती हैं । ’ इसीलिये घरमें गौ रखनी चाहिये और हर एकको उस गौ माताका दूध पीना चाहिये । तथा उसकी उत्तम सेवा करनी चाहिये । हर एक पशुस्त्रीका यह भावश्यक कर्तव्य है ।

## गौ ही धन, बल और अन्न है

मनुष्यको धन, बल और अन्न गौ ही देती है । सब पशु गौसे प्राप्त होता है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिये—

( १ ) गावः भगः । गावाः इन्द्रः ।

गावः सोमस्य ममः ।

इमा याः गावाः स इन्द्रः । ( मं. ५ )

‘ गौयें धन हैं, गौयें ही इन्द्र ( बलके देवता ) हैं, गौयें ही ( दूध देनेके कारण ) भग हैं । जो गौयें हैं वही इन्द्र हैं । ’ गौयोंको ‘ धन ’ कहा ही जाता है । महामाद्यों गौका नाम ‘ धन ’ है, यह धन सम्पत्ति ही अप्रमत्त रूप है । धनका देवता देवमे भग है, गौके रूपमें हमारे पास आया है । तो छोड़ गौको अपने घरमें रखना नहीं देते, वे मानो, धनको ही अपने घरसे बाहर निकाल देते हैं ।

‘ इन्द्र ’ देवता बल, पराक्रम और विजयका है । वही गौके रूपमें हमारे घरमें आता है । जो कोई अपने घरमें गौका पालन नहीं करता, वह मानो, बल, पराक्रम और विजयको ही दूर करवा दे ।

अन्नका देवता ‘ सोम ’ है । वही गौके रूपमें हमारे पास आता है । गौ स्वयं दूध देती है जिससे दही, छाउ, मक्खन, घी आदि अमूल्य पदार्थ बनते हैं । बैलके बलसे अन्न उत्पन्न होता है । इस प्रकार गौ हमारे अन्नका प्रबंध करती है । ऐसी उपयोगी गौको जो छोड़ अपने घर नहीं पाउते वे, मानो, अन्नको ही दूर करते हैं । इस प्रकार गौके पाल

नसे धन, बल और अन्न प्राप्त होता है और गौको न पालनेसे शक्ति, मज्जीलाव और योग्य अन्नका अभाव होता है । यदि बछवान्, घनवान्, यशस्वी और प्रशंसी होनेकी इच्छा है, तो गौको पालना चाहिये और गौका दूध प्रतिदिन पीना चाहिये ।

## पशुके लिये गौ

परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये एक और पशुकी पूर्णताके लिये गौ होती है । वैदिकधर्ममें जो कुछ किया जाता है वह परमात्माके नामसे और पशुके नामसे ही किया जाता है । सब कर्मका अन्तिम काल मनुष्यकी उन्नति ही है, परन्तु उसका सब प्रयत्न ‘ पशु ’ के नामसे होता है । गौका दूध जो मनुष्य ही पीते हैं, परंतु घरमें गौका पालन यहकी पूर्णताके लिये किया जाता है, अपना देव करनेके लिये नहीं । यह स्वामी शिक्षा वैदिकधर्ममें इस प्रकार दी जाती है । प्रथम मंत्रों ‘ उपाके पूर्व यी दूध देती है और उस दूधसे इन्द्रके लिए बल किया जाता है, ’ ऐसा जो कहा है इसका हेतु यही है । पशुका लेप घृष दूध, आदि मनुष्य पीते हैं । परंतु वह भोगके हेतुसे नहीं पीते, अनिष्ट ‘ ईश्वरका प्रसाद ’ मानकर पीते हैं । गौ परमेश्वरके पशुके लिये है, उसका प्रसाद रूप दूध पीना आज्ञा है । इससे विश्वाससे और भविष्ये परि दूध पीना मात्र, जो वह निःसंदेह संप्रभु लाभकारी होगा ।

इस पशुके ‘ देव भी मनुष्यके लिये धन, धान, शाल आदि देता है और अपने पासके स्थिर धानमें उसकी रखता है । ’

( मं. २ )

यह द्वितीय मंत्रका कथन है । पशुके भावस सब कर्म करनेसे वह लाभ होता स्वभाविक है । तृतीय मंत्रका कथन है कि ‘ पशुके लिये गौ होती है, इसलिये उसका नाम गदा होता, सोय उसको कह नहीं देता, चोर उसको चुराता नहीं, शत्रु उसको सताता नहीं, ऐसी सुरक्षित अरण्यामें गौयें यजमानके पास रहती हैं, यजमान देवोंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करता है और उससे उसका प्राप्त गौयोंकी सुरक्षा बच पाती है । ’ अतः मंत्रमें गौ गौयें महत्त्वका ही वर्णन किया है । ‘ छोटा जो जैसे मनुष्यके लिये उपयोगी नहीं है, गौयें पाण्डित्यकर करनेवालेके पास कभी नहीं जाती, वे गौयें यजमानकी विस्तृत इच्छामें रहती हैं और भानुदेव रिखाता हैं । ’ यह सब कथन, गौका अपने लिये उपयोग होता है, यही बात बता रहा है ।

## अवध्य भौ

ऐसी उपयोगी गौ है, इसलिये यह अवध्य होती ही चाहिये। इस विषयमें शंका नहीं हो सकती। इस अनुषंग में हमें यही बात विशेष स्पष्टतापूर्वक कही है। देखिये—

तस्य यजमानः मर्त्यस्य उरुगात्रं अवध्यं ताः गावः  
अनु विचरन्ति । ( मं. ४ )

‘उस याजक मनुष्यके बहुत प्रसांसनीय निर्भवतामें वे गौमें विचरती हैं।’ अर्थात् यज्ञकर्ता यजमानके पास गौयें निर्भवतासे रहती हैं, वहाँ उनकी किसी भी प्रकार कोई पीड़ा है नहीं सकना। यौर्वेकि छिये यदि कोई मानव निर्भव स्थाव हो सकता है, तो वह यजमानका घर ही है। यह वर्णन देखतेसे स्पष्ट हो जाता है कि ‘यजमानगौको काटकर उसके मांसका हवन करता है’ यह कल्पना मिथ्या है। गोमेयमें भी गोमांससे हवनका कोई संबंध नहीं है, इस विषयमें इसी मंत्रका तृतीय अरण देखने योग्य है—

ताः गावः संस्क्रुतम् न अग्नि उपपन्ति । ( मं. ४ )

‘वे गौयें मांससंस्कार करनेवालेके पास नहीं जाती।’

अर्थात् गौके मांसका पाकसंस्कार कोई नहीं करता। यहाँ ‘संस्क्रुतम्’ शब्द है। ‘संस्क्रुतः’ का अर्थ है अप्पकी प्रकार ‘काटनेवाला’ यहाँ ‘कृद्’ धातुका अर्थ काटना है। काटे हुए मांसको पकानेवाला जो होगा है, उसका नाम ‘संस्क्रुत+म्’ है। जो पशुको काटते हैं और जो पशुको पकाते हैं उनके पास कभी गौ नहीं पहुँचती। अर्थात् गौके मांसका यज्ञमें या यज्ञमें कहीं भी संस्कार नहीं होता है। गोमांसके हवनका तथा गोमांसके अक्षणका यहाँ पूर्ण निषेध है। गौयें यजमानकी विस्तृत रक्षामें रहती हैं, इसलिये यज्ञमें गोवध, गोमांस हवन अपना गोमांससंस्कार भी संभवनीय नहीं है। इस मंत्रसे दृढ़ी स्पष्टतासे गोमांस-संस्कारका निषेध किया है कि इसकी देखनेके पक्का कोई यह नहीं कह सकता कि वेदके गोमेयसे गोमांस हवनका संबंध है।

## उत्तम घास और पवित्र जलपान

यजमान यज्ञके छिये गोकी रक्षा करता है इसलिये वह उनके पालनका इस प्रबंध करता है। यह प्रबंध किम

प्रकार किया जाय, इस विषयमें अन्तिम मंत्र देखने योग्य है—

( गावः ) सुययसे यशन्तीः ।

सुप्रपाणे शुद्धा अथः पिबन्तीः ॥ ( मं. ४ )

‘गौयें उत्तम घास खायें और उत्तम जलस्थानमें शुद्ध जल पीयें।’ शुद्ध घास खाने और शुद्ध जल पीनेसे गौकी उत्तम रक्षा होती है। इस प्रकार गौकी रक्षा करें और गौके दूधसे सब द्रव्यपुष्ट, वलिष्ठ, यशस्वी, वेतस्वी, प्रतापी और दीर्घायु हों।

## गौकी पालना

गौका पालन कैसे करना चाहिये, इस विषयका उत्तम उपदेश भी हम ही मंत्रोंसे हमें मिलता है। ‘उत्तम स्वावका शुद्ध जल गौको रिकाना चाहिये’ यह वेदकी आज्ञा है। शुद्ध जल हो और यह उत्तम स्थानका हो। गौ जो खाती है और जो पीती है उसका परिणाम भाव इस घण्टीमें उसके रूपपर होता है, यह नियम है। अतः भी यह नियम है कि यह स्वावके गुणक्षेप अपने लाभ के लिये है। हिमालयके पहाड़ोंसे आनेवाला जल दूध छानेवाला होता है, कई स्थानोंका सत्र करनेवाला और कई स्थानोंका स्वर उत्पन्न करनेवाला होता है। इस कारण गौको अच्छे भारोगर्भस्थानका शुद्ध जल ही पिकाना चाहिये, जिससे रूपमें अच्छे अच्छे गुण आयें और उस दूध पीनेवालोंको अधिक लाभ प्राप्त होवे।

घास भी अच्छी भूमिकी होनी चाहिये और ( सु-यवस् ) उत्तम शी आदिकी होनी चाहिये। जुरे स्थानकी जुरे प्रकारसे उत्पन्न हुई नहीं होनी चाहिये। कई लोग गौको ऐसी जुरी चीजें खिलाते हैं कि, उससे अनेक दोषोंसे युक्त दूध उत्पन्न होता है। गौयें मनुष्यके शौच आदिकी भी खाती हैं। यह सब दोष उत्पन्न करनेवाला है। उत्तम घास और शुद्ध जल खा पीकर गौसे जो दूध उत्पन्न होगा, वही आरोग्यवर्धक होगा।

## वैशाखाय

कां. १२, सू. ४

(अपि - कर्मण । देवता - यज्ञ ।)

दद्यामीत्येव ग्र्यादनु चैनामर्षस्तत् । यथां ब्रह्मभ्यो यार्चयस्तत्प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥  
 प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिर्धोषं दस्वति । य आर्पेभ्यो यार्चयो देवानां गां न दिस्सति ॥ २ ॥  
 कूटपांस्य स र्घिर्वन्ते श्लोणयां कूटमर्दति । वृण्डया दहन्ते गृदाः क्राणया दीपते सप्त ॥ ३ ॥  
 विलोहितो जधिष्ठानाच्छुक्नो विन्दति गोपतिम् । तथा वज्रायाः संविद्य दुरदभा मुंन्यसे ॥ ४ ॥  
 पुदोरस्या अधिष्ठानाद्विह्विन्दुर्नाम विन्दति । अनामनास र्घिर्वन्ते या मुयेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥  
 यो अस्याः कर्णावास्तुनोत्या स देवेषु वृथते । लक्ष्मं कुर्व इति मन्यते कर्नायाः कुण्ठते स्वम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (देवता इति यच्च गृह्यात्) देवा इति देवा ही कहे । च एना अनु अभुत्तत) भीर इत्ये विपयमे भनुकृत भाव एति । (याचन्नय प्रहम्य एना यज्ञा) भागनेवाले प्राकणोको यज्ञ गी देवे, (तत् प्रजायत् अपत्यवत्) यह दास प्रजा भीर संतान देवेवाला हो ॥ १ ॥

(या याचन्नय आपयेभ्य देवानां गां न दिस्सति) ये भागनेवाले अपिपुत्रको देवांसी गी नहीं देता, (स प्रजया विधीणीते) यह अपने प्रजाको ही बेचना है, और (पशुभि न उपवस्वति) पशुओं से ताप नागको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

(कूटपांस्य स र्घिर्वन्ते) विना लौकिक वस्तुते भी इस दासवर्ति भनुकृत श्लोण मारे पापना भीर (श्लोणया कूट मर्दति) काही छलीके द्वारा भी गेहम इसक जेम मितये भवते । (वृण्डया गृदा दहन्ते) बिकर गीसे हमारे घर गहने र्घियों भीर (क्राणया द्य दीयते) एक भावसे हीन गी द्वारा इसका धन नष्ट किया जायगा ॥ ३ ॥

(विलोहित शफन अधिष्ठानात् गोपतिं विन्दति) रत्नमय यावरक म्यानम गीव कर्म स्वामीका बहवता है । (तथा वज्राया संविद्य) वैसी गीका नाम है (हि दुरदभा उच्यते) इसी कारण यह हमन करनक भिये कतिन है, देता कहा जाता है ॥ ४ ॥

(अस्या परो अधिष्ठानात्) इस गीक पाव रत्नमय म्यानम (विह्विन्दु नाम जायते) विह्विन्दु नामक राग होता है । (या मुयेन उपजिघ्रति) पित्रका सुखसे मृषती है (अनामनात् र्घीर्वन्ते) न जानने हुए ही शीन होकर नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

(य अस्या कर्णावास्तुनोति) य इस गीक कानका दुख देता है, (स देवेषु आपृथ्यते) ॥ माला देवों पर भागान करता है, जो गायत्र (लक्ष्मं कुर्व इति मन्यते) धिक्क करता है ऐसा मानता है, यह (स्य कर्नाय कुण्ठते) भवना धन म्यून करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ— इसक गृह्यणी कर्मण भनुकृत 'दान देवा' यज्ञा ही सदा कह । दानक विपयमे तथा गीक विपयमे मनमे भनुकृत भाव धारण करे । शानी भनुकृतोंका भीशका दान करनेसे दानका माय्य बढता है ॥ १ ॥

जो गीका दान विज्ञातक भागनेपर भी नहीं करता, उसका कष्ट प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

जहासे भयका सम्भव नहीं वहासे उमको भय प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

गीक गायत्रसे रत्नमय उत्तरक हाव्य वह कर्त्तव्य मायिका मान करता है । भाव्य उस अनेक व्याधिओं सगर्ता है ।

नष्ट गीक विपयमे सदा बाहर रत्नका चाहिये । क्योंकि गीका भगवान् क्षमा नहीं किया जाता ॥ ४ ॥

गीक पाँच स्थानमे विह्विन्दु नामक राग पैठता है । किम यच्च मृषती है उस वह दावा है और वह मरणा है ॥ ५ ॥

गीक कानोंपर धिक्क करनेसे जो गीको देवता होती है, उसका गीक स्वामीका धन कम होजा है ॥ ६ ॥

यदस्याः कस्मै चिद्गोत्राय बालान्कथितप्रकृन्तति । ततः किशोरा प्रियन्ते वत्साश्च यातुको वृकः ॥७॥  
 यदस्या गोपती सत्या लोम भ्रातृश्च अर्जोहिहत् । ततः कुमारा प्रियन्ते यस्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥  
 यदस्याः पत्न्यूलनं शकुन्तासी समस्वति । ततोऽप्येषा जायते तस्मादव्यैष्यदेनसः ॥ ९ ॥  
 जायेमानामि जायते देवान्सम्राजगान्वशा । तस्माद्ब्रह्मभ्यो देवेषा उदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥  
 य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा । ब्रह्मज्येषु तदनुवृण्य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥  
 य आप्येभ्यो याचन्तो देवानां गां न दित्सति । आ स देवेषु वृषते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥  
 यो अक्ष्य स्याद्दशभोगो अन्वामिच्छेत तर्हि सः । हिंस्ते अर्द्धा पुर्वं याचितां च न दित्सति ॥१३॥

अर्थ— (यत् कश्चित् कस्मैपितृ गोत्राय) जो किसी गोत्रविशेषके लिये (अस्याः बालान् प्रकृन्तति) इस लौके जातेको कारना है, उससे (ततः किशोराः प्रियन्ते) उससे बालक मरते हैं तथा (युक्तः वत्सान् च यातुकाः) भविष्य वर्षोंका यात करता है ॥ ७ ॥

(यत् अस्याः सत्याः गोपती) यदि इसके साथ गोरक्षकके रहते हुए भी यदि (भ्यातृः लोम अर्जोहिहत्) लोम अर्जोको गोत्रे, तो (ततः कुमाराः प्रियन्ते) उससे बच्चे मर जाते हैं और (अनामनात् यस्मि विन्दति) सङ्गृहीते क्षयभोग पकड़ लेता है ॥ ८ ॥

(यत् अस्याः पत्न्यूलनं शकुन्ता) इस लौका मृत और गोबर (दासी समस्वति) नीकानी केँ, तो (ततः तस्मात् पतताः अ-अप्येषा) उस पापसे न कृत्मेके कारण वह (अप रूपं जायते) विकृत होता है ॥ ९ ॥

(जायेमाना वशा स-ब्राह्मणान् देवान् अभिजायते) उत्पन्न होते ही वो ब्राह्मणोंके साथ देवोंके मिली होती है । (तस्मात् एषा ब्रह्मभ्यः देवा) इसलिये वह भी ब्राह्मणोंको देवी धरिये । (तत् स्वस्य गोपनं आहुः) वह अपनी सुरक्षितता है देसा कहते हैं ॥ १० ॥

(ये एनां वनिं मायन्ति) जो ब्राह्मण इस लौको आगते जाते हैं (तेषां देवकृता वशा) उनके लिये ही यह भी देवोंके बनाई है । (यः एनां नि प्रियायते) जो इसको अपनी प्रिय है करने अपने ही पास रखता है, मर्दाप पाप नहीं देता, (तत् ब्रह्मज्येषु अन्वयन्) वह उसका इन्त ब्राह्मणोंपर बलापार जैसा ही है ॥ ११ ॥

(यः याचन्तः आप्येभ्यः) जो मांगनेवाले कविपुत्रोंके (देवानां गां न दित्सति) देवोंकी तो नहीं देता, (सः ब्राह्मणानां मन्यवे) वह ब्राह्मणोंके कोपके लिये (देवेषु आहृष्यते) देवोंके आघात करता है ॥ १२ ॥

(यः अक्ष्य वशभोगः स्यात्) जो इस लौका अवभोग लेता है, (सः तर्हि अन्वामिच्छेत) वह जो दूसरी लौके प्राप्त करे । (अर्द्धा पुर्वं हिंस्ते) दान न दी हुई गो उस पुरुषकी हिंसा करती है, कि (याचितां च न दित्सति) जो याचना करनेपर भी नहीं देता ॥ १३ ॥

भाषार्थ— यदि कोई मनुष्य अपनी सजायके लिये लौके जाकर करेगा, तो उसके बादबच्चे मर जायेंगे ॥ ७ ॥

यदि किसीके लौके रखवाली करनेपर भी लौको कोया नष्ट देवे, तो उस व्यक्तिके बच्चे मर जायेंगे ॥ ८ ॥

यदि लौकी परिवारिका लौका मृत और गोबर दूधर उत्पन्न पकड़ दें, तो उस पापसे उसका रूप बिगड़ जायगा ॥९॥  
 लौ जो उत्पन्न होती है वह ब्राह्मणोंके लिये ही उत्पन्न होती है । इसलिये उसका दान ब्राह्मणोंको देना उचित है । उससे दावाकी ही रक्षा होती है ॥ १० ॥

ब्राह्मणोंके याचना करनेके लिये जानेपर उसको लौ प्रदान न करना, उत्पन्न बलापार करनेके समान है । क्योंकि देवोंके दावा ही उसके लिये यह बनाई हुई होती है ॥ ११ ॥

अव. जो मांगनेपर भी ब्राह्मणोंको लौ नहीं देता, वह मान्य देवोंपर ही बलापार करता है । उससे उत्पन्न ब्राह्मणोंका कोप और देवोंका सताप होता है ॥ १२ ॥

यदि लौसे किसीको लाभ होता हो, तो दूसरी लौसे वह प्राप्त करे । क्योंकि जो लौको मांगनेपर भी नहीं देता, वह लौ ही उसकी नाशक बनती है ॥ १३ ॥

यथा श्रेयधिनिर्हितो ब्राह्मणानां तथा वरा । समेतदुच्छार्पन्ति यस्मिन्कक्षिथ जायते ॥१४॥  
 समेतदुच्छार्पन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि । यथैतानुन्यस्मिन् विनीयादेवास्यां निरोधनम् ॥१५॥  
 चरेद्विवा त्रैहापणादविज्ञातमदा सत्तौ । वशां च विधाचारद ब्राह्मणास्तर्क्षेष्वाऽऽ ॥१६॥  
 य एनामकश्चाह देवानां निर्हितं निधिम् । तस्यै तस्यै भवाद्यर्थे परिक्रम्येयमस्त्वतः ॥१७॥  
 यो अस्या ऊधो न वेदायो अस्या स्तनानुत । उभयैनेवास्यै दुहे दातुं वेदयकद्रुशाम् ॥१८॥  
 दुरदभेनमा ययि पाचितं च न दिस्तति । नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदद्या चिकीर्षति ॥१९॥  
 देवा वशामपाचमुत्तं कृत्वा ब्राह्मणम् । तेषां सर्वेषामददुहेदं न्येति मानुषः ॥२०॥

अर्थ— ( यथा श्रेयधिः निर्हितः ) जैसे ब्राह्मण सुरक्षित होता है, ( तथा ब्राह्मणानां वरा ) वैसी ही ब्राह्मणोंकी यह भी है । ( यस्मिन् कस्मिन् च जायते ) जहां कहीं उत्पन्न हुई हो ( एनं अन्त आयाति ) उसके पास वे ब्राह्मण पहुंचते ही हैं ॥ १४ ॥

( यत् ब्राह्मणाः वरां अभि ) यदि ब्राह्मण गौके पास आते हैं तो ( एतत् स्वं अष्ट्य आयन्ति ) वे अपने अपने पास ही आते हैं । ( अस्याः निरोधनं ) इस गौको प्रतिबंध करना मानो ( यथा एतान् सम्यास्मिन् विनीयात् ) इनको दूसरे अर्थमें कह देना ही है ॥ १५ ॥

( अभिज्ञात-नादा सती आ भेदायथात् परेत् एव ) अज्ञात नामधारी गौ तीन वर्ष होने तक माताके साथ पूरे । दे नरत् । ( यथा विधात्, तर्हि ब्राह्मणाः पथ्याः ) गौ देने योग्य होनेपर उसके जिसे ब्राह्मण दूँ दे ताँव ॥ १६ ॥

( यः देवानां निर्हितं निधिं एतां अवशां आह ) देवोंके निधि पर लावे रूप ॥ गौको न देने योग्य कहे, ( भवाद्यर्थे परिक्रम्य इत्तु अस्त्वतः ) उसे भय और सर्व दोनों भेद पर चल मारते हैं ॥ १७ ॥

( यः अस्याः ऊधो अयो उत अस्याः स्तनान् न येद् ) जो इसके दुग्धशयको और इसके स्तनोंको नहीं जानता, ( चेत दातुं अशक्यत् ) वह यदि दान देनेमें समर्थ हुआ तो ( उभयेन अस्मै दुहे ) वह गौ उसे उभय दोनोंसे दूध देवी है ॥ १८ ॥

( पाचितं न दिस्तति ) माँनेपर भी ब्राह्मणकी ओ नहीं दी जायी, वह गौ ( दुः-अद्वन्ता एतां आशये ) वश होनेमें कठिन होकर इसके साथ रहती है । ( अस्मै कामाः न समृध्यन्ते ) इसके मनोरथ सफल नहीं होते ( यो अदत्ता चिकीर्षति ) जिसे दान न करके कमाना चाहता है ॥ १९ ॥

( ब्राह्मणं मुत्तं कृत्वा ) ब्राह्मणका मुत्त बना कर ( देवाः यथां अयाचन् ) देव गौकी याचना करते हैं । ( अदत्त् मानुषः ) न देनेवाला अनुष्य ( तेषां सर्वेषां हेदं नि पयति ) उन सबके बोधको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

भावार्थ— यह गौ ब्राह्मणोंकी ही है जैसे सुरक्षित रखना होता है वैसी ही यह है । कहीं किसीके पास भी उत्पन्न हुई हो जिसकी दर होनी वे ब्राह्मण उसे माँने लायें ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस गौको माँने हैं वह उनकी ही होती है । अतः उनको उस गौका दान न करना अपराध है ॥ १५ ॥ तीन वर्ष तक गौको उसका स्वामी पावे, पचास कोई माँने न आये तो सुयोग्य ब्राह्मणों को दान करे और उसे देवे ॥ १६ ॥

गौ देवोंका सत्त्व है । तो उसे नहीं दान करना, उसका दात अब और सर्व करते हैं ॥ १७ ॥

जो गौको दान करता है उसको दूध आदि पर्याप्त मिलता है ॥ १८ ॥

जो माँनेपर भी गौका दान ब्राह्मणोंको नहीं करता, उसके घरमें गौ वशमें नहीं रहती । गौ न देनेवालेकी कामना पूरा नहीं होती ॥ १९ ॥

ब्राह्मणके मुत्तसे ही देव माँने हैं । अतः दान न देनेवाला अनुष्य देवोंके आँवको अपने ऊपर लेता है ॥ २० ॥

हेडं पशुनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्भक्षाम् । देवानां निहितं भागं मर्त्येभ्योऽभिप्रियायते ॥२१॥  
 यदुन्ये श्रुतं याचैर्पुत्राक्षणा गोपतिं वशाम् । अथैनां देवा अन्नवन्नेवं हं विदुषो वशा ॥२२॥  
 य एवं विदुषेऽदुनवाधान्येभ्यो ददद्भक्षाम् । दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथ्वी सहदेवता ॥२३॥  
 देवा वशाम्वाचन्त्यस्मिन्ने अजायत । तमेतां विद्यानारदः सह देवैरुदाजत ॥२४॥  
 अन्नपत्यमल्पपशुं वशा कुणेति पूर्यम् । ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५॥  
 अर्धपोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च । तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेभ्यो वृश्चतेऽददत् ॥२६॥  
 यावद्दस्या गोपतिर्नोपशृणुयादर्थः स्वयम् । चरेदस्य तावद्रोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

अर्थ—( मर्त्यः ) देवानां निहितं भागं निप्रियायते चेत् ) मनुष्य देवोक्त निहित भाग अपने पास यदि रखेगा और ( ब्राह्मणेभ्यः यदां अददत् ) ब्राह्मणों को भी न देगा तो ( पशूनां हेडं नि पति ) पशुर्भेद कोपको भी प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

( यत् गोपतिं शतं लभ्ये यदां याचेयुः ) यदि गौके स्वामीके पास दूसरे सौ जाकर गौकी मांगि, ( अथ एनां देवाः एवं अनुयन् ) इस विषयमें देवोंने देखा कहा है कि ( विदुषः वशा ह ) विद्वान्की ही गौ है ॥ २२ ॥

( यः एवं विदुषे अदस्या ) जो इस तरह विद्वान्को भी न देकर ( अन्येभ्यः यदां ददत् ) दूसरे मर्त्य-जनोंको भी देवे, ( तस्मै अधिष्ठाने सह देवता पृथ्वी दुर्गा ) उसके लिये उसके स्थानमें सब देवताओंके साथ पृथ्वी हुआवी होती है ॥ २३ ॥

( यस्मिन् अग्रे अजायत ) जिसमें गौ पीछे हुई, ( देवाः यदां अयाचन् ) देवोंने उसीके पास गौकी पाचना की । ( नारदः विधात् ) नारद समझे कि ( तां एतां देवैः सह उदाजत ) उस गौकी देवोंके साथ उदाजित होती है ॥ २४ ॥

( ब्राह्मणैः याचितां एनां नि प्रियायते ) ब्राह्मणोंके द्वारा याचना होनेपर भी जो उसको म्रिय समझकर अपने पास रखता है वह ( यदा पुर्यं अन्नपत्यं अल्पपशुं कुणोति ) गौ उस मनुष्यको सन्तानहीन और मत्स्यपशुवादा करती है ॥ २५ ॥

( अग्नी-सोमाम्भ्यां मित्राय वरुणाय कामाय तेभ्यः ) अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम इनके लिये ही ( ब्राह्मणाः याचन्ति ) ब्राह्मण गौकी याचना करते हैं, अतः ( अददत् तेषु बाधुश्चते ) न देनेवाला उक्त देवोंपर आघात करता है ॥ २६ ॥

( याचत् भस्याः गोपतिः ) जबतक इस गौका स्वामी ( स्वयं भ्रातः न उपशृणुयात् ) स्वयं भ्रातृ नहीं सुनेगा, ( तारत् अस्य गोषु चरेत् ) तबतक इसकी गोदीमें गौ चरा करे, परन्तु ( श्रुत्वा अस्य गृहे न वसेत् ) सुननेके पश्चात् वह गौ उसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

आचार्य— कोई मनुष्य इस देवोंके भागको ब्राह्मणोंको दान न देगा, तो पशुर्भेद कोपको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

गौके स्वामीके पास सैकड़ों याचक गौके लिये जायें तो भी देवोंकी आज्ञा है कि विद्वान् ब्राह्मणको ही गौ देनी चाहिये ॥ २२ ॥

जो विद्वान् ब्राह्मणको गौ न देकर दूसरेको देता है, उसको बड़े बड़े प्राण होते हैं ॥ २३ ॥

यदां गौ उलख होगी है, भग्नो नहीं देव उसकी याचना करते हैं और देवोंको याप देनेसे सबकी उन्नति होती है ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंकी याचना पर भी जो मनुष्य गौत्र दान नहीं करता, उसके सन्तान नहीं होती और उसके पास पशु भी कम होजाते हैं ॥ २५ ॥

ब्राह्मण को गौकी याचना करते हैं, वे केवल अग्नि आदि देवताओंके लिये ही याचना करते हैं, अपने लिये नहीं, अतः उनको न देना देवताओंका अपमान करना है ॥ २६ ॥

जबतक गौका स्वामी वह या मंत्रषोष नहीं सुनता, तबतक उसके पास गौ रहे । मंत्रषोष सुननेके पश्चात् उसके घरमें गौ न रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपधृत्याह गोपचीवरत् । आर्यश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीहिता ॥२८॥  
 वृशा चरन्ती यदुवा देवानां निहितो निधिः । आविष्कृत्य रूपानि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥  
 आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति । अथो ह ब्रह्मभ्यो वृश्ना याज्जगाम कृणुते मनः ॥३०॥  
 मनसा सं कल्पयति तदेवो अपि गच्छति । ततो ह ब्रह्माणो वृशानुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥  
 स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः । दानेन राज्ञ्यो वृश्नायां मातुर्हेह न गच्छति ॥३२॥  
 यथा माता राज्ञ्यस्य तथा संभृतमग्रशः । तस्या आहुरनर्षणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

अर्थ— ( य अस्या [ गोपति ] ऋच उपधृत्य ) जो इस गौका स्वामी ऋचाय हुनकर ( अथ गोपु अचीवरत् ) जो गौभान ही अपने गौको चरना करता है, ( देवा हीहिता तस्य आयु च भूतिं च वृश्चन्ति ) देव कोषित होकर उसकी आहु और सपत्तिको विनष्ट करते हैं ॥ २८ ॥

( यथा वृद्धा चरन्ती देवता निधि निहित ) गौ बहुत स्थानोंमें भ्रमण करती हुई देवोंका सुरक्षित खाता ही है । ( यदा स्थाम जिघांसति ) जब वह रहनेके स्थानके पास जाता चाहती है, तब ( कृणुति आविष्कृत्य ) अनेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥

( यदा स्थाम जिघांसति ) जब रहनेके स्थानके पास जाता चाहती है, तब ( आत्मानं आनि कृणुति ) अपने आपको प्रकट करती है । ( अथो ह ब्रह्मभ्य याज्जगाम मन कृणुते ) ब्रह्मणोंकी पाचनाके लिये वह गौ अपना मन करती है ॥ ३० ॥

वह गौ ( मनसा संकल्पयति ) मनसे संकल्प करती है, ( तद् देवान् अपि गच्छति ) वह संकल्प देवोंके पास पहुँचता है, ( तत ह ब्रह्माण यथा याचितु उच प्रयन्ति ) उसके पश्चात् ही ब्रह्मण गौकी पाचना करनेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

( पितृभ्य स्वधाकारेण ) पिताओंके लिये स्वधाकारसे, ( देवताभ्य यज्ञेन ) देवताओंके लिये यज्ञसे, तथा ( दानेन ) दानसे ( राज्ञ्य यथाया मातु हेह न गच्छति ) क्षत्रिय गौ माताका क्रोध प्राप्त नहीं करता ॥ ३२ ॥

( यथा राज्ञ्यस्य माता ) गौ क्षत्रियकी माता है, ( तथा अग्रश च भूत ) ऐसा पीछेले ही हुआ है । ( यद् ब्रह्मभ्य प्रदीयते ) जो गौ ब्रह्मणोंके लिये दी जाती है ( तस्या अवरपण आहु ) उसका वह दान नहीं कहलाता ( क्योंकि वह गौ ब्रह्मणकी ही होती है ) ॥ ३३ ॥

भाषार्थ— मन्त्रोप हुननेके पश्चात् भी यदि गौका स्वामी गौ अपने घरमें रखता है तो उसके ऊपर देव क्रोध करते हैं ॥ २८ ॥

गौ वह देवोंका सुरक्षित खाता है । जब वह अपने स्थानपर जाता चाहती है तब वह अनेक भाव प्रकट करती है ॥ २९ ॥

जब वह गौ अपने स्थानके पास जाता चाहती है, तब अपने आपको प्रकट करती है क्योंकि उसकी ब्रह्मण पाचना को ऐसा भाव मनमें राती है ॥ ३० ॥

गौ जो संकल्प मनमें ठाकी है, वह संकल्प देवोंके पास पहुँचता है, देव ब्रह्मणोंको प्रेरणा देते हैं और ब्रह्मण गौको माननेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

स्वधाकारसे पिताओंकी वृत्ति, भग्नसे देवोंकी सहायता और दानसे कर्मोंकी वृत्ति होती है, इसलिये गौका दान कर नेसे उसकी माताका क्रोध क्षत्रियपर नहीं होता है ॥ ३२ ॥

गौ क्षत्रियकी माता कही जाती है, इसका ब्रह्मणोंको मदान करना दान नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मणोंकी ही होती है ॥ ३३ ॥



यथाज्यं प्रगृहीतमातुम्रेत्सुचो अग्नये । एवा हे ब्रह्मर्ष्यो वृक्षामग्रय आ वृश्चतेऽदत्त ॥३४॥  
 पुरोडाशवत्सा सुदुषा लोकेऽस्या उप तिष्ठति । सासौ सर्वान्कामान्वृशा प्रदुषे दुहे ॥३५॥  
 सर्वान्कामान्प्रमराज्ये वृशा प्रदुषे दुहे । अथाहुर्नारिकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥  
 प्रयीषमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वृशा । वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु वध्यताम् ॥३७॥  
 यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वृशाम् । अर्पस्य पुत्रान्पौत्राथ याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥  
 महदुषाव तपति चरन्ती गोषु गौरिषि । अयो ह गोपतये वृशादुषे विषं दुहे ॥३९॥  
 प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते । अयो वृशावास्तस्मिन् यदेवृशा हविः स्यात् ॥४०॥

अर्थ— ( यथा अग्नये प्रगृहीतं माज्यं सुचः आहुतेत् ) जैसे अग्नि के लिये ऋषि हुवा पी सुचसे गिरा है, ( एवा यथा ब्रह्मभ्यः अदत्त ) ऐसे ही पी ब्राह्मणों को न देनेवाला ( अग्नये गामुदात् ) अग्नि के लिये अग्नयी होना है ॥ ३४ ॥

( पुरोडाशवत्सा सुदुषा लोके अस्मै उपतिष्ठति ) मरुत्सी वत्सा जिसके पास है, ऐसी उत्तम दूध देनेवाली गौ परलोकमें इस दावाके पास नाकर खड़ी होती है । ( सा यश्च अस्मै प्रदुषे सर्वान् कामान् दुहे ) वह गौ इस दावाके लिये सब कामनाएं पूर्ण करती है ॥ ३५ ॥

( यथा यमराज्ये प्रवदुषे सर्वान् दुहे ) गौ यमराज्यमें दावाके लिये सब कामनाएं देती है, ( अथ याचितान् निरुन्धानस्य नारिकं लोकं आहुः ) और याचना करनेपर भी न देनेवालेके लिए नरक लोक है, ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥

( प्रयीषमाना वृशा गोपतये क्रुद्धा चरति ) सन्तान उत्पन्न करनेवाली गौ अपने स्वामीके लिये क्रुद्ध होकर विचरती है । यह कहती है कि ( मा वेहतं मन्यमानः मृत्योः पाशेषु वध्यतां ) मुझे मर्त्यपादिकी कहनेवाला मृत्युके पाशोंसे बाधा पावे ॥ ३७ ॥

( यः यशां वेहतं मन्यमानः ) जो गौको मर्त्य गिरालेखकी मानकर ( अमा च यशां पचते ) घरमें गौको पकाता है ( अस्य पुत्रान् पौत्रान् अपि बृहस्पतिः याचयते ) इसके पुत्रों और पौत्रोंसे बृहस्पति भीख मागता है ॥ ३८ ॥

( गोषु यशा गौ चरन्ती अपि ) गौमें गौ चरती हुई भी ( एषा महत् अवतपति ) यह वृषा दाव देती है । ( अथो अदुषे गोपतये विषं दुहे ) मांको दाव न करनेवाले गौके स्वामीके लिये यह विष देती है ॥ ३९ ॥

( यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ) जो ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है, वह ( पशूनां प्रियं भवति ) पशुओंके लिए भी हितकारिणी होती है ( अथो ) और ( यद् देवेषा हविः स्यात् ) जो देवोंके लिये हवि दी जाती है ( यशायाः तद् प्रियं ) यह गौके लिये भी प्रिय होती है ॥ ४० ॥

भावार्थ— जैसे सुचसे पी अग्निमें गिरा है, वैसे ही गौका दाव न करनेवाला गिरा है ॥ ३४ ॥

दानमें दी हुई गौ दावाकी परलोकमें हर एक प्रकारकी कामना सफल करती है ॥ ३५ ॥

गोदान करनेवालेकी समस्त कामनाएं यमराज्यमें सफल होती हैं, परंतु दाव न देनेवालेको तो नरक ही प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

गौका लयमान करनेवालेसे गौ क्रुद्ध होकर दाव देती है, कि यह सूर्युके पाशोंसे बाधा पावे ॥ ३७ ॥

जो गौको अपना मानकर उसे अपने घरमें पकाता है, उसके पुत्र-पौत्रोंसे ईश्वर भीख मांगता है ॥ ३८ ॥

जो गौका दाव नहीं करा उसके लिये उसकी गौ विष दुहती है ॥ ३९ ॥

गौका दाव करनेसे पशुओंका हित होता है, गौओंका हित होता है । क्योंकि गौसे दूधद्वारा देवताओंके लिये मिष्ठे हैं ॥ ४० ॥

या वृक्षा उदकस्वपन्द्रेषा वृक्षादुदेत्य । वासां विलिप्सं भीमामुदाकुलत नारदः ॥४१॥  
 तां देवा अमीमांसन्त वधेयाश्मन्त्रेति । ताम्रवीजान् एषा वृक्षानां वृक्षतमेति ॥४२॥  
 कति नु वृक्षा नारद यास्त्वं येत्थं मनुष्यवा । वास्तां पृच्छामि विद्वांस कस्या नार्शीयादमाह्वयः ॥४३॥  
 विलिप्स्या बृहस्पते या च सूतवशा वृक्षा । तस्या नार्शीयादमाह्वयो य आशसेत भूत्याम् ॥४४॥  
 नमस्ते अस्तु नारदानुष्टु त्रिदुपे वृक्षा । कृतमासां भीमर्क्षमा यामदृषवा पराभवेत् ॥४५॥  
 विलिप्सी या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वृक्षा । तस्या नार्शीयादमाह्वयो य आशसेत भूत्याम् ॥४६॥  
 श्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्सी सूतवशा वृक्षा । ताः प्र यच्छेद् मन्त्रम्यः सोऽनाम्रस्कः प्रजापतौ ॥४७॥

अर्थ—(या वृक्षा देवा) जिन गौर्षोके देवताओं ने (यज्ञात् उदेत्य उदकस्वपयन्) पक्षसे आकर सकलित किया था (तासां भीमा विलिप्सं नारद उदाकुलत) उनमें बड़ी और अधिक बीजवाली गौको नारदने प्रकट किया ॥४१॥  
 (ता देवा अमीमांसन्त) उस विषयमें देवोंने विचार किया, (वशा इय अयदा) यह गौ आपने वरामें रखने योग्य नहीं है । (नारद ता अग्रवीज) नारदने उसके विषयमें कहा कि (एषा वृक्षानां वंशतमा इति) यह गौर्षोके अधिक बड़ा होवेवाली है ॥४२॥

हे नारद ! (या त्व मनुष्यजा येत्थ) जिसको तू मनुष्योंमें उत्पन्न हुई समझता है वे (कति नु वृक्षा) गौर्ष कितनी बड़ी है । (त्या विद्वांस पृच्छामि) तुम विद्वांस मैं पूछता हू कि (अमाह्वय कस्या न अर्शीयात्) ब्राह्मणोंपर अधिक किस यापका दूध न पीने ? ॥४३॥

हे बृहस्पते ! (विलिप्स्या या च सूतवशा वृक्षा) अधिक धी देनेवाली गौ है, जो उसके ही वरामें जाती है, और जो उसके वरामें जाती है (तस्या अमाह्वय मात्सीयात्) ऐसी मायका दूध ब्राह्मण न पीने, (य भूत्या आशसेत) जो देवर्ष आहता है ॥४४॥

हे नारद ! (ते नम अस्तु) तेरे लिये नमस्कार हो । (अनुष्टु त्रिदुपे वृक्षा) अनुष्टुपको विद्वांसों गौ प्रदान करनी चाहिये । (आसा कृतमा भीमरक्षमा) दण्ड कीवसी बड़ी है (या अदृषवा पराभवेत्) जिसका दान न करनेसे परामर्श होगा ? ॥४५॥

हे बृहस्पते ! (या विलिप्सी यथो सूतवशा वृक्षा) जो अधिक धी देनेवाली और उसके वरामें जानेवाली गौ है, (तस्या अमाह्वय न अर्शीयात्) उसका ब्राह्मण ब्रह्म न खाने (य भूत्या आश सेत) यदि वह ऐश्वर्यसन्धिकी इच्छा करता है ॥४६॥

(श्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्सी सूतवशा वृक्षा) गौकी तीन जातियाँ हैं—एक धी देनेवाली, दूसरी बीकरके वरामें रहनेवाली और तीसरी सबके वरामें रहनेवाली, (ता य अग्रम्य प्रयच्छेत्) उन्हें जो ब्राह्मणोंको देना, (स प्रजापतौ अनाम्रस्क) वह प्रजापतिके पास निरपराधी होगा ॥४७॥

आचार्य—यज्ञसे आकर सब देवताओंने मिलकर गौकी रचना की, उनमें जो अधिक धी देनेवाली है उसकी योग्यता मिले है ॥४१॥

वृक्षने निश्रय किया कि वह रक्षामें वरामें रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वह उदृष्ट गौ है, अतः वह दानके योग्य है ॥४२॥

मनुष्योंके पास जो गौर्ष होती है उनमेंसे कौनसी गौर्ष अथ ब्राह्मण स्वामी न खाने ? ॥४३॥

निश्रय यह हुआ कि अधिक धी देनेवाली, सर्वदा वरामें रहनेवाली और बीकरके वरामें रहनेवाली, ये तीन गौर्ष दानके योग्य हैं, अतः दण्डका अथ ब्राह्मण स्वामी न खाने ॥४४॥

जिस गौका दान न करनेसे अधिक हानिकी सम्भावना है, वह कौनसी गौ है ? ॥४५॥

गौर्षकी तीन जातियाँ हैं, एक अधिक धी देनेवाली, दूसरी सबके वरामें रहनेवाली और तीसरी बीकरके द्वारा वरामें रहनेवाली ये तीन प्रकारकी गौर्ष हैं जिसका अथ गौका स्वामी न खाने । स्वामी ने गौर्ष ब्राह्मणको दान देने, जिससे वह निर्दोष होगा ॥४६-४७॥

एतद्वै ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचिता । वृक्षां चेदेनं याचैयुर्या मीमाददुषो गृहे ॥४८॥  
 देवा वृक्षां पर्यवदुष नोऽदिति हीहिताः । एतामिर्गन्धिभेदं तस्मादि स पराभवत् ॥४९॥  
 उवैनो भेदो नाददाहृशामिन्द्रेण याचिताः । तस्माच्च देवा आगुसोऽवृथन्नहमुचरे ॥५०॥  
 ये वृशाया अदानाय वदन्ति परिराविणः । इन्द्रस्य मन्थवे जाल्मा आ वृथन्ते अचिरया ॥५१॥  
 ये गोपतिं पराणीपायाहुर्गो ददा इति । रुद्रस्यास्तां ते इति परिं युन्त्यचिरया ॥५२॥  
 यदि हुतां यद्यहुतामृमा च पचते वृक्षाम् । देवान्सब्राह्मणानृत्वा जिहो लोकात्रिमच्छति ॥५३॥

अर्थ— हे ब्राह्मणो ! ( याचिता मन्वीत ) याचना करनेपर गीका स्वामी कहे कि ( एतात् वा हविः ) यह आपकी हि है ( एनं वृक्षां चेत् याचेयुः ) अब इससे गीकी याचना की जाती है ( पर दी नहीं जाती ), तप ( या मीमा अदुषः गृहे ) यह भयेकर होकर ब्रह्मणाके घरमें रहती है ॥ ४८ ॥

( नः न अद्वात् इति हीहिताः वेद्याः ) हमें इसने दिया नहीं इस कारण क्रोधित हुए देव ( वृक्षां ) गीके ( एताभिः प्राग्भिः भेदे पर्यवदुषन् ) इस भेदके द्वारा भेदके विषयमें कहने लगे ( तस्मात् ये सः पराभवत् ) इस कारणसे उसका पराभव हुआ ॥ ४९ ॥

( उत पर्जा वृक्षा इन्द्रेण याचिताः वेदः ) और इस गीको इन्द्रकी याचना करनेपर भी भेदने ( न अद्वात् ) नहीं दिया ( तस्मात् आगसः देवाः सः अहमुचरे अदुषन् ) उस पापके कारण वैश्वेने उसे युद्धमें काट डाला ॥ ५० ॥

( ये परिराविणः वृशायाः अदानाय वदन्ति ) जो हुए लोग गीका दान न करनेके लिए कहते, ये ( जाल्माः अचिरया इन्द्रस्य मन्थवे आबृथन्ते ) हुए मनुष्य मतिहीनताके कारण इन्द्रके क्रोधके लिये काटे जाते हैं ॥ ५१ ॥

( ये गोपतिं पराणीय ) जो गीके स्वामीको दूर के जाकर ( अथ आहुः आ दः इति ) कहते हैं कि मत दान कर, ( ते अचित्ता यद्रस्य मस्तां देति परि यन्ति ) वे न समझते हुए रुद्रके पेटके हुए इधियारको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

( यदि हुतां यदि अहुतां ) यदि हवन की गई अथवा न की गई ( वृक्षां अमृ च पचते ) गीकी अपने घरमें जो पकाता है, यह ( स ब्राह्मणान् देवान् कृत्वा ) ब्राह्मणों और देवोंका अपराधी बनकर ( जिह्वाः ) टुटित होकर ( लोकात् मिश्रच्छति ) इस लोकसे गिरता है ॥ ५३ ॥

भावार्थ— मांगनेपर गीका स्वामी कहे कि ' हे ब्राह्मणों ! यह आपका अन्न है । ' मांगनेपर भी जो न देवे उसके घरमें यह भी भयंकर क्षति करनेवाली होती है ॥ ४८ ॥

गीका दान न करनेसे देव क्रोधित होकर उसके घरमें भेद करते हैं और इस कारण उसका पराभव होता है ॥ ४९ ॥

गीकी याचना करनेपर भी जो नहीं देता, उसके घरमें वेद उत्पन्न होकर युद्धमें उसका पराभव होता है ॥ ५० ॥

जो गीके दान न करनेके विषयमें उपदेश करते हैं उनका भी इन्द्रके क्रोधसे नाश होता है ॥ ५१ ॥

जो लोग गीके स्वामीको दूर के जाकर भी दान न करनेका उपदेश देते हैं, उनका नाम रुद्रके शत्रुते होता है ॥ ५२ ॥

जो गीके शत्रुको घरमें पकाते हैं उनपर देवों और ब्राह्मणोंका क्रोध होता है और वे गिरते हैं ॥ ५३ ॥

# सप्तमोऽध्यायः

कां. १०, सू. १०

( कवि - कश्यप । देवता - यमा । )

नमस्ते जायमानाय जातायां उत ते नमः । बालेभ्यः क्षेमभ्यो रूपायाम्भ्ये ते नमः ॥१॥  
 यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः । शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥  
 वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः । शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चारवां विचक्षणम् ॥३॥  
 यया यौर्यया पृथिवी यथापौ मुनिता इमाः । वशां सदसंभारा ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥  
 श्वतं कुंसाः श्वतं दोग्धारः श्वतं गोमारा अर्वि पृष्ठे अस्याः ।  
 ये देवास्तस्या प्राणन्ति ते वशां विदुरेक्षया ॥५॥  
 यज्ञपदीराक्षीरा स्वधामाणा महीलुका । यथा पर्जन्यपत्नी देवो अर्ध्वेति ब्रह्मणा ॥६॥  
 अनु त्वामिः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा । ऊर्वस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्वना वशे ॥७॥

अर्थ— हे ( कश्यपे ) हवन करनेके अयोग्य गौ ! ( ते जायमानायै नमः ) उत्पन्न होनेवाली तुझे नमस्कार है ।  
 ( उत जातायै ते नमः ) उत्पन्न हुई तुझको नमस्कार है । ( ते बालेभ्यः क्षेमभ्यः रूपायाम्भ्यः नमः ) तेरे बालों, सुखों और रूपके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

( य सप्त प्रवत विद्यात् ) जा सात प्रवाद-जीवनप्रवाद जानता है ( य च सप्त परावत विद्यात् ) और जा सात भन्तरोको-स्वताक्षी-जानता है, तथा जो ( यज्ञस्य शिर विद्यात् ) यज्ञका शिर जानता है, वही ( यथा प्रति गृह्णीयात् ) यथा गौको स्वीकार करे ॥ २ ॥

( अहं सप्त प्रवत वेद ) मैं सात गौवचनवादाको-यागोको-जानता हूँ, ( सप्त परावत वेद ) सात स्थावका-द्रव्य स्थावको-भी जानता हूँ । ( यज्ञस्य शिर च अहं वेद ) यज्ञका शिर भी-यज्ञका मुरप साथ भी जानता हूँ । ( अस्या विचक्षण सोम च वेद ) इसमें विशेष ज्ञानकेबारे सोमको भी मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥

( यया यौर्यया पृथिवी यथापौ मुनिता इमाः ) जिसने सुलोक, पृथिवी और सप्त नवोंकी सुरक्षा की है, उस ( सहस्रधारा यथा ) उस हजारो अमृतधारा देनेवाली यथा गौकी ( ब्रह्मणा जन्तुम यदापामसि ) गानडारा जन्म रीतिसे प्रदत्त करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

( अस्या अर्ध्वपृष्ठे ) इसकी रथा करनेके लिये इसकी पीठपर ( शत दोग्धारः शत ऊसा ) सौ मनुष्य दूध रोदनेवाले, सौ उत्तम पात्रोकी लहर, साथ साथ ( शत गोमारा ) सौ टाक रथक भी इस गौके साथ चले हैं । ( ये देवा तस्या प्राणन्ति ) जो देव उस गोसे जीवित रहते हैं ( ते यक्रथा यथा विदुः ) वे एकप्रवतसे गौका महत्त्व पथा वत् जानते हैं ॥ ५ ॥

( यज्ञपदी आक्षीरा ) यज्ञको जिसको स्थान प्राप्त हुआ है, जा दूध देती है, ( स्वधामाणा महीलुका ) यज्ञरूप प्राणको धारण करनेवाली होनेके कारण इस पृथ्वीपर जो प्रसिद्ध है । यद् ( पर्जन्यपत्नी यथा ) वृष्टि द्वारा प्राप्त यदि उत्पन्न होनेसे जिसका पक्षप्रयोग होता है, वद् गौ ( ब्रह्मणा येषान् जय्येति ) यज्ञरूप यज्ञसे देवोंको प्राप्त करती है ॥ ६ ॥

हे ( यज्ञे ) गौ ! ( त्वा अग्निः अनु-प्राविशत् ) तुझे अग्नि प्राप्त हुई है, ( सोमः अनु ) सोम भी प्राप्त हुआ है । हे ( भद्रे ) कश्यप करनेवाली गौ ! ( ते ऊर्वः पर्जन्य ) तेरा दूधस्थान पर्जन्य ही है । हे यथा गौ ! ( ते स्वना विद्युत ) तेरे स्वतः विद्युत हैं । इस तरह अग्निवादि देवताओंकी शक्तियाँ तेरे अन्दर हैं ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुंसे प्रथमा उर्वरा अपरा वसे । तृतीयं राष्ट्रं धुंसे क्षीरं वसे त्वम्	॥८॥
यदादित्यैर्द्वयमानोपातिष्ठ कृतावरि । इन्द्रः सहस्रं पात्रान्तसोमं त्वापाययद्वशे	॥९॥
यदुनूचीन्द्रमैराचं क्षपमोऽह्वयत् । तस्मांते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे	॥१०॥
यत् क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे । इदं सदुष नाकाक्षिषु पात्रेषु रक्षति	॥११॥
त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा । अथवा यशे दीक्षितो वहिष्पास्तं हिरण्यये	॥१२॥
सं हि सोमेनायतु समु सर्वेण पदतां । वशा समुद्रमर्ष्यष्टाद्वन्धवैः कलिभिः सह	॥१३॥
सं हि वातेनायतु समु सर्वैः पतत्रिभिः । वशा समुद्रे प्रानृत्यद्वचः सामानि विभ्रती	॥१४॥
सं हि सूर्येणायतु समु सर्वेण चक्षुषा । वशा समुद्रमर्ष्यक्यद्वद्रा ज्वोतिषि विभ्रती	॥१५॥
अभीवृता हिरण्येन यदातिष्ठ कृतावरि । अथः समुद्रे भूत्वाभ्यस्कन्दद्वशे त्वा	॥१६॥

अर्थ— हे ( यशे ) यश गौ ! ( त्वं प्रथमः अपः धुंसे ) तू सबसे प्रथम जलको दुहती-देती है, ( अपरा उर्वरा ) पश्चात् उपशान्ना भूमिक समान धान्य देती है । ( तृतीयं राष्ट्रं धुंसे ) तीसरे राष्ट्रीय शक्ति देती है, ( एवं अथ क्षीरं ) तू अन्न और क्षीर-दूध-देती है ॥ ८ ॥

हे ( यशे ) गौ ! हे ( कृतावरि ) दूधरूपी जल देवेवानी गौ ! ( यत् आदित्यैः द्वयमाना ) जब तू आदित्यों द्वारा शक्ति प्राप्त करती हुई ( उपातिष्ठः ), समीप जाती है, तब ( इन्द्रः सहस्रं पात्रान् ) इन्द्र इतारों बर्तनोंको लेकर ( त्वा सोमं अपाययत् ) तुझे सोमरस पिलवा है ॥ ९ ॥

हे ( यशे ) गौ ! ( यत् अनूचीः इन्द्रं येः ) तब तू अनुकूलतासे इन्द्रको प्राप्त हुई, ( त्या क्षपमः आत् मद्रयत् ) तब तुझे क्षपम समीपसे कुम्भजने शक्त । हे यश गौ ! ( तस्मात् क्रुद्धः वृत्रहा ) इस कारण क्रोधित हुए इन्द्रने ( ते पयः क्षीरं अहरत् ) तेरा दूध और अन्न हर लिया ॥ १० ॥

हे यश गौ ! ( यत् क्रुद्धः धनपतिः ) जब श्रेष्ठित हुआ धनपति ( ते क्षीरं अहरत् ) तेरा दूध लेता है, तब समझो कि ( इदं तत् अथ ) यह वह अन्न ( नाकः त्रिषु पात्रेषु रक्षति ) स्वर्गधाम ही सोमने रूपसे तीन बर्तनोंमें रक्ता है ॥ ११ ॥

( यश दीक्षितो अथवा ) जहां दीक्षायो लिये हुए ( अथर्ववेदी ) यज्ञकर्ता ( हिरण्यये वहिषि आस्ते ) सुवर्णमय आसनपर बैठा है, ( तं ) उसके पास ( त्रिषु पात्रेषु सोमं ) तीनो बर्तनोंमें रक्ता सोम ( यश देधी अहरत् ) देवी यश गौ से जाती है, दूध रूपसे षडुंचा देती है ॥ १२ ॥

( यश सोमेन सं आगत ) जो सोम कीपर्वणसे प्राप्त हुई और ( सर्वेण पदता सं उ ) सब पांचवालों-मनुष्योंको भी प्राप्त हुई । ( यश कलिभिः संधवैः सह ) वह गौ कल्प करनेवाले संधवोंके साथ ( समुद्रं मध्यष्टात् ) समुद्रपर अभिगमन करती रही । अर्थात् समुद्रपर भी गौका माल बैसा ही है, जैसा मान्यवेदि है ॥ १३ ॥

( यश अथः सामानि विभ्रती ) गौ यज्ञमें कृपा और सामोंको धारण करती हुई ( वातेन सं आगत ) वायुसे सगल हुई, ( सर्वैः पतत्रिभिः हि सं ) सब पतत्रियोंसे गिरकर ( समुद्रे प्रानृत्यत् ) समुद्रपर नाचने लगी । इस तरह गौका समान सर्वत्र होता है ॥ १४ ॥

( यश सूर्येण सं आगत ) गौ सूर्यसे मिली, ( सर्वेण चक्षुषा सं उ ) सब आंखवालोंसे मिली । ( भद्रा यश ज्योतिषि विभ्रती ) कल्याणकारिणी गौ अनेक तेजोंका धारण करती हुई ( समुद्रं अत्यस्यत् ) समुद्रके पारे देखने लगी । दूरतक उसकी प्रविष्टा हुई है ॥ १५ ॥

हे ( कृतावरि ) हे मन्त्रको देवेवानी गौ ! ( हिरण्येन अभीवृता यत् जतिष्ठः ) सुवर्णानूपणोंसे युक्त होकर जब दू लगी हुई, हे ( यशे ) गौ ! ( त्वा यधि समुद्रः जगज् भूत्वा अस्कन्दत् ) तेरे पास समुद्र अथ पतकर भागा, यह तेरा महत्त्व है ॥ १६ ॥

तद्भद्रा। समगच्छन्त वशा देष्टृष्यो स्वधा । अथर्वा यत्र दक्षितो नृहिष्यास्तं हिरण्यये ॥१७॥

वशा माता राजन्मस्य वशा माता स्वधि तव । वशायां यज्ञ आपुंघं तवक्षितमजायत ॥१८॥

ऊर्ध्वो विन्दुरुदचरद्भक्षणः ककुदादधि । तवस्त्वं जक्षिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥

आस्नस्ते गाथा अमवन्नुष्णिहाम्यो वलं वशे । पात्रस्याज्जिज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तवं ॥२०॥

ईर्माभ्यामर्पणे जातं सविमभ्या च वशे तवं । आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥

पददरं वरुणस्यानुप्राविंशथा वशे । तवस्त्वा ब्रह्मोदह्यस्स हि नेत्रमवेत्तवं ॥२२॥

सर्वे तमोदयेपन्त जायमानादसृस्वाः ।

ससृध हि तामाहुर्यधेति ब्रह्मभिः फलतः स ह्यस्या वन्धुः ॥२३॥

युध एकः संजति यो अस्या एक इद्वशी । तरांसि वशा अभवन्तरासां चक्षुरमवदुशा ॥२४॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णादुशा सूक्ष्मधारयत् । वशापामन्तरावितदोदुनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥

अर्थ— (यत्र दक्षितः अथर्वा) जहाँ जिस यज्ञमें दक्षित अथर्ववेदी (हिरण्यये दक्षिणि आस्ते) सुरगनिय आसनपर बैठा वहाँ (भद्राः समगच्छन्त) भद्र पुरुष एकद्वे हुए और वहाँ (वशा देष्टृ अथो स्वधा) धान देनेवाली गौ स्वयं भक्षणरूपमें उपस्थित हुई ॥ १७ ॥

(राजान्यस्य वशा माता) क्षत्रियकी माता गौ है, दे (स्वधे) अन्न! (तव माता वशा) तेरी भी माता गौ ही है। (वशायां आपुंघं अवे) गौसे धान आपन्न हुआ है और (ततः पितुं यजायत) उससे पित्त बना है। मर्मान् गौसे बल और बुद्धि दोनों पैदा होते हैं ॥ १८ ॥

(ग्रहणाः ककुदादधि) ग्रहणके उच भागसे (विन्दुः ऊर्ध्वः उदचरत्) एक बूंद ऊपर पड़ गया, है (परो) गौ! (ततः त्वं जक्षिषे) उससे तू उत्पन्न हुई है। और (ततः होता अजायत) उससे ही पश्चात् होता जनकता-उत्पन्न हुआ। मर्मान् गौमें ग्रहणतक अधिक है, क्योंकि वह पहिले हुई है ॥ १९ ॥

दे (परो) गौ! (ते भ्रातः गाथाः अमवन्) तेरे मुससे गाथान् बनीं, (उष्णिहाम्यो वलं) तेरे गर्दनके भागसे बल उत्पन्न हुआ है, (पात्रस्यात् यज्ञः जज्ञे) तेरे मुखभागतसे यज्ञ हुआ, और (तव) तेरे (स्तनेभ्यो रश्मयः) स्तनोंसे किरणें हुई हैं। इस तरह गौसे यह सब उत्पन्न हुआ है, इतनी गौकी महिमा है ॥ २० ॥

(तव ईर्माभ्यां) तेरे बाहुओंसे तथा (सविमभ्यां) गायमें जाते) योंगसे गति पैदा हुई। दे (परो) गौ! तेरे (आन्त्रेभ्यः अत्राः) आंतोंसे अनेक पदार्थ और (उदरात् वीरुधः) पेरसे धरस्रक्षिधा उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

दे (परो) गौ! (यत् वरुणस्य उदरं) जब वरुणके उदरमें तू (अनु प्रविशथाः) प्रविष्ट हुई, (ततः ब्रह्मा तथा उत् सृजयत्) तब ब्रह्मने तुझे ब्रह्मणा। (सः हि तव नेत्रं अवेत्) वह तेरा नेत्र जानता है। मर्मान् गौका महान् ज्ञानी ही जानता है ॥ २२ ॥

(असृस्वः जायमानात्) प्रसवमें जन्मगर्भ गौकी (मर्मात् स्वयं अवेपन्त) नर्मस्त्रिजिसे सब काशने छगटे हैं। (तां आहुः वशा ससृध इति) उसीको कहते हैं कि यह गौ प्रसवके लिये ससर्ग्य है। (सः हि ब्रह्मभिः अस्याः वन्धुः फलतः) वही ब्रह्मणोंने इसका वधु बना है ॥ २३ ॥

(या अस्याः इत् एकः वशी) जो इस गौकी अवेण ही वसने कर लेता है। (युधः युधः संजति) यही एक सोदा ध्ववस्थाके उत्पन्न करता है। (यशाः तरांसि अमवन्) यह पार करनेवाले हैं, और (तरासां चक्षुः वशा अमवत्) पार होनेवालोंकी आँखें गौ है। गौकी सहायतासे सब लोग गुजरोते पार होते हैं ॥ २४ ॥

(वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात्) वशा गौने यज्ञको स्वीकार किया, (वशा सूर्यं अक्षरयत्) वशा गौने सूर्य धारण किया। (वशायां अन्तः औदनः अविशत्) गौमें अन्न प्रविष्ट है और वह (ग्रहणा सह) जानने साथ प्रविष्ट हुआ है। गौके आधारसे यज्ञ, अन्न और शत्रु सुरक्षित रहते हैं ॥ २५ ॥

वृक्षामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते । वृक्षेदं सर्वमभवदेवा मनुष्याश्च असुराः पितरः ऋषयः ॥२६॥  
 य एवं विधात्स वशां प्रति गृह्णीयात् । तथा हि यज्ञा सर्वपादुहे द्वात्रिंशन्पशुरान् ॥२७॥  
 तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीधत्यात्तनि । तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥  
 चतुर्धा रेतो अभयद्रवायाः । आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥  
 वशा दीर्घा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः । वशायां दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥  
 वशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये । ते वै अन्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥  
 सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते । य एवं विदुषे वशां द्रुदुस्ते गतास्त्रिदिवं द्विवः ॥३२॥  
 ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाहोकांस्तमश्नुते । ऋतं क्षत्रिणामपि तमपि ब्रह्मार्थो तपः ॥३३॥  
 वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत । वृक्षेदं सर्वमवधात्सूर्यो निपश्यति ॥३४॥

अर्थ—(देवाः वशां अमृतं आहुः) देव गौको मघव कहते हैं, (वशां मृत्यु उपासते) गौकी मृत्यु समझकर उपासना करते हैं । (वशा इदं सर्वं अभयत्) गौ ही यह सब है, अर्थात् (देवाः मनुष्याः असुराः पितरः ऋषयः) देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि ये वशाके ही रूप हैं ॥ २६ ॥

(यः पश्ये दिधात्) जो यह लक्षण जानता है, (सः वशां प्रतिगृह्णीयात्) वह वशा गौका दान लेवे । तथा वशा गौके दाताको (यज्ञः सर्वपात् अनपशुरान् दुहे) यज्ञ सब प्रकारसे एकत्र होकर विचलित न होगा हुआ सुयोग्य फल प्रदान करता है ॥ २७ ॥

(वरुणस्य आसनि अन्ताः तिस्रः जिह्वाः) वरुणके मुखमें तीन जिह्वाएँ (बीधति) चमकती हैं । (तासां मध्ये या राजति) उसके बीचमें जो विशेष चमकती है, (सा वशा) वह वशा गौ ही है, अर्थात् उसे (दुष्प्रतिग्रहा) दानमें स्वीकार करना कठिन है ॥ २८ ॥

(वशायाः रेतः चतुर्धा अभयत्) वशा गौका चार प्रकारसे विभक्त हुआ है । (आपः तुरीयं) आप चतुर्थ भाग है, (अमृतं तुरीयं) अमृत अन्न चौथा भाग है, (यज्ञः तुरीयं) यज्ञ चौथा भाग है और (पशवः तुरीयं) पशु चौथा भाग है । यह सब वशाका चतुर्धा विभक्त है ॥ २९ ॥

(वशा दीः) वशा धी है, (वशा पृथिवी) वशा ही पृथिवी है, (वशा प्रजापति विष्णुः) वशा ही प्रजापति-रूप विष्णु है । (ये साध्याः वसवः च) जो साध्व और वसु हैं, ये (वशायाः दुग्धे अपिबन्) वशा गौका दूध पीते हैं ॥ ३० ॥

(ये साध्याः वसवः च) जो साध्व और वसु हैं ये (वशायां दुग्धे पीत्वा) वशा गौका दूध पीकर (ते वै अन्नस्य विष्टपि) वे स्वर्गके स्वानमें (अस्याः पयोः उपासते) इससे दूधकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३१ ॥

(एनां सोमं एके दुहे) इससे सोमका कर्बबेन दोहन किया है, (एके घृते उपासते) कहे इससे घृतकी प्राप्ति करते हैं । (एवं विदुषे वशां ददा) जो इस प्रकारसे विद्वान्को जो प्रदान करते हैं, (ते दिवः त्रिदिवं गताः) वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ३२ ॥

(ब्राह्मणेभ्यः वशां दत्त्वा) ब्राह्मणोंको वशा गौ देकर (सर्वान् लोकान् सं श्रुते) सब लोकोंको प्राप्त करते हैं । (अस्य ऋतं ब्रह्म अयो तपः हि आर्षितम्) इसमें ऋत, ज्ञान, तप आश्रित होते हैं ॥ ३३ ॥

(देवाः वशां उपजीवन्ति) देवता वशा गौपर जीवित रहते हैं (उत मनुष्याः वशां) और मनुष्य भी वशा गौपर ही जीवित रहते हैं । (यावात् सूर्यः निपश्यति) जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है (वशा इदं सर्वं अभयत्) वशा गौ ही यह सब है ॥ ३४ ॥

## वशवर्ती गाय

### गाय

दशम सूक्तमें भी ऐसा ही गौका वर्णन है। गौका दान देनेका अधिकारी कौन है, इस विषयमें द्वितीय मंत्रकी सूचना अत्यंत महत्वकी है। जो पशुका दान जानता है, वही गौका दान लेवे। गौ दानने ओगने लिये सेवी नहीं है, प्रत्युत पशुके लिये सेवी है, यह जो जानता है, वही दान लेवे और उसीको दान दिया जावे। ( मं. ३-३ )

इस सूक्तमें गौका नाम बता है। क्या गौ यह है कि जो सुखसे दुही जाती है। दूसरी 'मूलवधा' है, अर्थात् जो गौकरके बरामें रहती है। अन्य गौमें बरामें नहीं रहती। क्या गौ सबसे उत्तम है, क्योंकि वह न मासती है, न छलें लगती है और हर समय दूध देती है।

संपूर्ण दुग्धी, तथा भाग इन सबकी रक्षा यह गौ करती है। सहस्र धारासि दूध देकर यह गौ हरपक्षका संरक्षण करती है। ( मं. ४ )

### गौका उत्तम

जो उत्तमसे उत्तम गौ होती है, उसका महोत्सव करते हैं। गौ आगे चलायी जाती है, उसके पीछे सी मनुष्य पात्र लेकर चलते हैं, सी मनुष्य होइन करमेवले चलते हैं, सी मनुष्य उसकी रक्षा करनेवाले गोपके रूपमें चलते हैं; गौके पीछे इस तरह ३०० मनुष्य बड़े मानवसे चलते हैं। ( मं. ५ ) धाने बगाये जाते हैं और नगर भरमें इसका यह उत्सव मनाया जाता है। यह द्वारा गौके दूधसे सबका जीवन उत्तम रीतिसे होता है, इसलिये उत्तम गौका यह धार्मिक उत्सव किया जाता है।

गौकी 'यमपदी' अर्थात् पशुका जापार कहा जाता है, क्योंकि इसके दूध और पुरसे पशु होता है, पर्यन्तसे पशुकी उपरि होकर इस गौकी रक्षा होती है। ( मं. ६ ) सोमवर्ती

गौ काही है और उसका परिणाम दूधपर होता है, यह दूध पीनेसे मनुष्यों भी सोमका पद प्राप्त होता है। दूध, दही, घृत ये गौके वधीय ही हैं, परंतु वैद्यके ऐसी होती हैं, जिससे सब शस्त्री रक्षा होती है, इस तरह गौ रक्षा करती है। ( मं. ७-१० )

गौ क्षत्रियकी माता है, नरकी भी वही माता है ( मं. १८ ), अक्षकी विशेष वशवर्त राक्षसे गौकी उपरि दुर्ग है ( मं. १९ ), गौके व्यवर्थोंको विशेष बंध प्राप्त होता है, उससे सब विश्वका धारण होता है। गौ पशु हीका स्व है। ( मं. २०-२५ )

गौ अष्टकको धारण करती है, जो मनुष्यके मार्गपर होते हैं वे गौकी उपसमा काके दीर्घजीवी होते हैं। गौ ही सब कुछ बनी है; देव, मायव, जमुव, रितर और अग्नि गौके दूधसे ही पुष्ट होते हैं ( मं. २६ )। इस तरहका सब धार जो ज्ञाना है वही यज्ञ गौका दान है। ( मं. २७ )

( मं. २८ ) वरुण राजकी शिवा तैसे वही ऐश्वर्यकी होती है, कोई वराका विशेष नहीं कर सकता, उसी तरह वरा गौका प्रतिग्रह कठिन होता है। अज्ञानी मनुष्य उसका दान नहीं के सकता ( मं. २९ )। विश्वामाका धीरे पार वरुण-जोमें विभक्त हुआ, उसमें एक पगारे रूपमें मरुत हुआ है। अन्य तीन भाग पशु, जल और वस्तुके रूपमें मरुत हुए हैं।

सत्य वस्तु आदि देव वशाका दूध पीकर ही सिद्धिकी प्राप्त हुए। यथा गौ ही पृथ्वीपर भूमि, सी और मगारविका कार्य कर रही है ( मं. ३०-३१ )। यह सब ज्ञान जो जानने है वे ज्ञात्रीको गौ दान देकर स्वर्गके भागी हुए हैं। ( मं. ३२-३३ )

वशा पीपर देव उन्नयन करते हैं, गौका दूध पीकर मनुष्य भी जीवन रखते हैं। उर्ध्वरूप मकागता है, वहां तकका विश्व मानो बराकाही रूप है, इन्द्रा महान गौका है।



## ब्राह्मणकी गौ

कां. १२, सू. ५

( ऋषिः—अथर्वान्यः । देवता—ब्रह्मण्यी । )

धमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा विचरते भिता	॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यज्ञसा परीवृता	॥ २ ॥
स्वधया परिहिता अदया पर्युदा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोक्यो निधनम्	॥ ३ ॥
यज्ञं पदचार्यं ब्राह्मणोऽधिपतिः	॥ ४ ॥
तामाददानस्य ब्रह्मण्यी जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य	॥ ५ ॥
अपे कामसि सुनृता वीर्ये पुण्या लक्ष्मीः	॥ ६ ॥

[ २ ]

ओजश्च तेजश्च सहश्च यज्ञश्च वाक्चैन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च	॥ ७ ॥
ब्रह्म च सूर्यं च राष्ट्रं च विश्वश्च त्विषिश्च यज्ञश्च वचश्च द्रविणं च	॥ ८ ॥
आयुश्च रूपं च नामं च कीर्तिश्च प्राणधोपानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च	॥ ९ ॥
पर्यश्च रसश्चाद्यं चाकार्यं च त्वं च सत्यं चेत्तं च पूर्णं च यज्ञा च पशवश्च	॥ १० ॥
तानि सर्वाण्यपि कामन्ति ब्रह्मण्यीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य	॥ ११ ॥

अर्थ—( धमेण तपसा सृष्टा ) अम और तपसे उत्पन्न हुई ( ब्रह्मणा विद्या ) जगत्से प्राप्त हुई और ( अन्ते भिता ) सत्यके आश्रयपर रह रही है ॥ १ ॥

( सत्येन आवृता ) सत्यसे आच्छादित ( श्रिया प्रावृता ) भीते भरी हुई और ( यज्ञसा परीवृता ) यज्ञसे घिरी हुई है ॥ २ ॥

( स्वधया परिहिता ) अपनी अपनी धर्मजगत्से सुरक्षित हुई ( अदया पर्युदा ) अदायकिते हुए ( दीक्षया गुप्ता ) दीक्षामन्त्रसे सुरक्षित हुई ( यज्ञे प्रतिष्ठिता ) यज्ञमें प्रतिष्ठित हुई और ( लोक्यो निधनम् ) इस लोकमें आश्रयको प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥

जो ( ब्रह्म पदचार्य ) गुरुवर्य पदसमूह है उसका ( अधिपतिः ब्राह्मणः ) स्वामी ब्राह्मण है ॥ ४ ॥

( तामाददानस्य ) उस ब्राह्मणकी गौको देनेवाले और ( ब्राह्मणं जिनतोः क्षत्रियस्य ) ब्राह्मणका नाम करनेवाले क्षत्रिय की ॥ ५ ॥

( सुनृता वीर्ये पुण्या लक्ष्मीः अपकामन्ति ) सत्य वीर्यवती पुण्यवती लक्ष्मी दूर होती है ॥ ६ ॥

[ २ ] ओज, तेज ( सहः ) सहनसामर्थ्य, बल, वायु, इन्द्रियबल, ( श्रीः ) शोभा, धर्म ॥ ७ ॥

( ब्रह्म ) शान, ( शस्त्रं ) शौर्य, राष्ट्र, ( विशाः ) प्रजा, ( त्विषिः ) तेज, यज्ञ ( वचः ) पराक्रम, ( द्रविणं ) धन ॥ ८ ॥

आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राण, अपाण, चक्षु, श्रोत्र ॥ ९ ॥

( पयः ) दूध, रस, अन्न, ( अश्वाद्यं ) खाद्य पदार्थ, कठ, सत्व, ( हृष्टं च पूर्णं च ) इष्ट वस्तु, पूर्णता, प्रजा, पशु ॥ १० ॥

( तानि सर्वाणि ) ये सब ॥ ११ पदार्थ ( ब्राह्मण्यीमाददानस्य ब्राह्मणं जिनतोः क्षत्रियस्य अपकामन्ति ) ब्राह्मणकी गौको देनेवाले और ब्राह्मणका नाम करनेवाले क्षत्रियसे दूर होते हैं ॥ ११ ॥

[ ३ ]

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यं धर्षिणा साक्षात्कृत्या कृत्स्नमावृता	॥ १२ ॥
सर्वाण्यस्यां घोरानि सर्वे च मृत्यवः	॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः	॥ १४ ॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीपमाना मृत्योः पङ्क्तिं आ यति	॥ १५ ॥
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा	॥ १६ ॥
तस्माद्वै प्राक्पानां गौरुराधर्षा विजानता	॥ १७ ॥
वज्रो धारयन्ती वैशानर उद्धीता	॥ १८ ॥
हेतिः शफातुत्तिदन्ती महादेवोद्देशमाणा	॥ १९ ॥
धुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति	॥ २० ॥
मृत्युर्हिष्कृत्युत्पुं प्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती	॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कर्णां वरीर्जयन्ती राजयद्मो मेहन्ती	॥ २२ ॥

- अर्थ— [ १ ] ( सा एषा ब्रह्मगव्यं भीमा ) यह यह माझगदी गी सवानक है, यह ( मघ-यिपा, साक्षात् कृत्या ) विप्रेकी और साक्षात् पाठ करनेवाली ( कृत्स्नं आवृता ) विचारक करनेसे स्वाक्ष है ॥ १२ ॥
- ( अस्यां सर्वाणि घोरानि ) इसमें सब मरनेवाले हैं ( सर्वे च मृत्यवः ) इसमें सब मृत्यु हैं ॥ १३ ॥
- ( अस्यां सर्वाणि क्रूराणि ) इसमें सब क्रूर हैं ( सर्वे पुरुषवधाः ) सब पुरुषोंके वध हैं ॥ १४ ॥
- ( सा ब्रह्मज्यं आदीपमाना ) यह माझगदी गी पकड़ी जानेपर ( ब्रह्मज्यं देवपीयुं मृत्योः पङ्क्तिं आ यति ) देवकी देवतापुत्री मृत्युके पातमें डाल देती है ॥ १५ ॥
- ( सा शतवधा मेनिः ) यह बीका वात करनेवाली इतिहास ही है ( सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिः हि ) यह माझपाठ-कीका विचार ही है ॥ १६ ॥
- ( तस्माद्वै प्राक्पानां गौरुराधर्षा ) इसलिये ही ज्ञानीको समझना चाहिये कि माझगदी गी धर्षण करनेके लिये कठिन है ॥ १७ ॥
- ( धारयन्ती वज्रः, उद्धीता विजानता ) यह जब होखती है तब वज्र बनती है, जब उद्धीत है तब वह भाग मैत्री होती है ॥ १८ ॥
- ( उपान् उत्तिदन्ती हेतिः ) धुरेति मतवी हुई यह हाथिलदे समान है और ( अपेक्षमाणा महादेवः ) देवकी हुई महादेवके समान होती है ॥ १९ ॥
- ( ईक्षमाणा धुरपयिः ) धुरेके समान लोदन होती है और ( वाश्यमाना अभिस्फूर्जति ) वायु करनेपर गरजना करनेके समान बनती है ॥ २० ॥
- ( हिष्कृत्य मृत्युः ) हिंसा करनेपर मृत्यु होती है, और ( पुच्छं पर्यस्यन्ती उग्रः देवः ) ईश्वर करनेवाली उग्र देवके समान मरकर होती है ॥ २१ ॥
- ( कर्णां वरीर्जयन्ती सर्वज्यानिः ) कर्ण ऊपर करनेपर सबका नाम करनेवाली होती है और ( मेहन्ती राज-यद्मः ) मूत्र करनेपर क्षययोग ही बनती है ॥ २२ ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षांक्तिर्दुग्धा	॥ २३ ॥
सेदिरूपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा	॥ २४ ॥
अरुच्युक्ते मुखेऽपिनुद्वर्मान् अर्तिर्हन्त्यमाना	॥ २५ ॥
अथर्विषा निपतन्ती तमो निपतिता	॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्यै	॥ २७ ॥

[ ४ ]

धैरं विकल्पमाना पौत्राद्यं विम्राज्यमाना	॥ २८ ॥
देवहेतिर्द्विषमाणा वृष्टिर्द्विहता	॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना	॥ ३० ॥
विषं प्रपस्यन्ती तपमा प्रयस्ता	॥ ३१ ॥
अधं पृच्यमाना दुष्यन्त्यै पृक्ता	॥ ३२ ॥
मूलवर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पुर्याकृता	॥ ३३ ॥

अर्थ— ( दुह्यमाना मेनिः ) दुधों इत्या दुध को समस्त लक्ष्य होती है ( दुग्धा शीर्षांक्तिः ) दुध को जानेपर सिरपीठा लक्ष्य बनती है ॥ २३ ॥

( उपतिष्ठन्ती सेदिः ) पास करी होनेपर विनाशक होती है और ( परामृष्टा मिथोयोधः ) स्वर्श होनेपर इन्द्रयुद्ध करनेवाले शत्रुके समान होती है ॥ २४ ॥

( मुखे अपिनुद्वर्माने शरद्व्या ) मुखमें जोभी जानेपर शरीरे समान और ( हन्त्यमाना प्रातिः ) तादृश होनेपर विनाशक होती है ॥ २५ ॥

( निपतन्ती अथर्विषा ) बैठी हुई भयानक विषरुपी और ( निपतिता तमः ) बैठी होनेपर साक्षाल, मृगपुरुषी अथर्वकारके समान होती है ॥ २६ ॥

( अनुगच्छन्ती ) ब्राह्मणकी गी ( ब्रह्मज्यस्य प्राणान् उपदासयति ) ब्राह्मणपात्रवांके प्राणोंका नाश करती है ॥ २७ ॥

[ ४ ] ( विहृत्यमाना धैरं ) गौको काट देनेपर धैर करती है और ( विम्राज्यमाना पौत्राद्यं ) कपटकर विमिश्र करनेपर पुत्रादिकोंको जानेवाली होती है ॥ २८ ॥

( द्विषमाणा देवहेतिः ) के जानेपर देवोंका वध बनती है और ( इता द्युद्धिः ) हाथ होनेपर विपति बनती है ॥ २९ ॥

( अधिधीयमाना पाप्मा ) काष्ठों रखनेपर पापसदृश होती है और ( अवधीयमाना पादध्यं ) शिरस्कृत होनेपर कठोरता बनती है ॥ ३० ॥

( प्रपस्यन्ती विषं ) दुग्धी होनेपर विष होती है और ( प्रयस्ता तपमा ) सवनेपर स्वरके समान होती है ॥ ३१ ॥

( पृच्यमाना अधं ) पृक्कनेपर पाप रूप बनती है और ( पृक्ता दुष्यन्त्यै ) पृक् जानेपर दुष्ट स्वामके समान दुःखदायिनी बनती है ॥ ३२ ॥

( पर्याक्रियमाणा मूलवर्हणी ) धुमाई जानेपर मूलका नाश करनेवाली और ( पुर्याकृता क्षितिः ) परोसी जाने पर विनाशक बनती है ॥ ३३ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुशुद्धियमाणाधीविष उद्धृता	॥ ३४ ॥
अभूतिरुपद्वियमाणा पराभूतिरुपहृता	॥ ३५ ॥
शुर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना विमिदा पिशिता	॥ ३६ ॥
अवतिरिश्यमाना निष्कतिरक्षिता	॥ ३७ ॥
अक्षिता लोकाच्छिनत्ति अक्षगवी ब्रह्मज्यमस्मात्प्राप्तमुष्माच्च	॥ ३८ ॥

[ ५ ]

तस्या आहनने कृत्या मेनिरासनेन बलुग ऊर्ध्वपम्	॥ ३९ ॥
अस्वगता परिहृता	॥ ४० ॥
अग्निः क्रुद्धाश्रुत्वा ब्रह्मज्यं प्रविद्वत्सि	॥ ४१ ॥
सर्पास्याह्वा परा मूलानि वृक्षति	॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा मावपति मातृबन्धु	॥ ४३ ॥
विवाहां प्रातीन्सर्पानपि क्षापयति ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेषामनुदीयमाना	॥ ४४ ॥

अर्थ— ( गन्धेन असंज्ञा ) वह गंधसे बेहोश करती है, ( उद्धृतिरुपहृता ) उड़ाई जानेपर शोक पैदा करती है और ( उद्धृता आशीषियः ) उड़ाई गयी सांघके समान होती है ॥ ३४ ॥

( उपद्वियमाणा अभूतिः ) इसे जाने पर विपत्ति बनती है, ( उपहृता पराभूतिः ) प्राप्त भागके रखनेपर परा-भवरूप होती है ॥ ३५ ॥

( पिश्यमाना क्रुद्धः शर्वः ) पीसी जाती समय जोधित रखके समान और ( पिशिता विमिदा ) पीसने पर मुलका मारा करनेवाली होती है ॥ ३६ ॥

( अक्षयमाना अवतिः ) खाकी जाती हुई विषदा होती है और ( अक्षिता निष्कतिः ) लाई जानेपर गिरावट बनती है ॥ ३७ ॥

( अक्षिता अक्षगवी ) साई हुई ब्राह्मणकी गी ( ब्रह्मज्यं अस्मात् अमुष्मात् च लोभ्यात् छिनत्ति ) ब्राह्मण-घातकीली इस कीकले और परकीकले उखाड़ देती है ॥ ३८ ॥

[ ५ ] ( तस्याः आहनने कृत्या ) उसका बंध पात करनेवाला है ( आसनेन मेनिः ) उसके दुकड़े करना ब्रह्मणके समान है । और ( ऊर्ध्वं वलुगः ) उसका पकर अन्न शिनामक होता है ॥ ३९ ॥

बह ( परिहृता अस्वगता ) ही जानेपर भी अपने पास नहीं रहती क्योंकि बंधन खाल करती है ॥ ४० ॥

( ब्रह्मज्यं अश्रुत्वा अग्निः भूत्वा ब्रह्मज्यं प्रविद्वत्सि ) ब्राह्मणकी गी मांसमलक आग बनकर ब्राह्मण-घातकीले प्रवेश करके उसे खा जाती है ॥ ४१ ॥

( अस्य सर्पा अंगा परा मूलानि वृक्षति ) इसके सब अंगों और मूलोंको काट खाती है ॥ ४२ ॥

( अस्य पितृबन्धु छिनत्ति ) इसके पिताके बन्धुनोंको काटती है और ( मातृबन्धु पराभाषयति ) माताके बन्धुओंको परास्त करती है ॥ ४३ ॥

( क्षत्रियेषामनुदीयमाना ब्रह्मज्यस्य ब्रह्मज्यगवी ) क्षत्रियके द्वारा पुनः वापस न दी गयी ब्राह्मणकी गी ( विवाहान् सर्पान् प्रातीन् अपि क्षापयति ) क्षत्रियके सब विवाहों और सब जलवाहोंका भाग करती है ॥ ४४ ॥

अवास्तुमेनमस्वंगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति स्त्रीयते

॥ ४५ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादुत्ते

॥ ४६ ॥

[ ६ ]

क्षिप्रं वै तस्याहर्नने गृध्राः कुर्वत ऐलवम्

॥ ४७ ॥

क्षिप्रं वै तस्याहर्नने परि नृत्यन्ति केञ्चिनीराध्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलवम्

॥ ४८ ॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलवम्

॥ ४९ ॥

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासीरिदिदं नु वादिदि

॥ ५० ॥

छिन्ध्या छिन्धि म छिन्ध्यापि क्षापय क्षापय

॥ ५१ ॥

आददानमाहिरसि ब्रह्मज्यमुषं दास्य

॥ ५२ ॥

वैश्वदेवी क्षुच्यसे कृत्याः कृत्येक्ष्मावृता

॥ ५३ ॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्राह्मणो वज्रः

॥ ५४ ॥

क्षुरपविर्मुस्युर्मुस्या पि धोम स्वम्

॥ ५५ ॥

आ दंसे जिनुता यर्व इष्टं पूर्वं जाशिषः

॥ ५६ ॥

अर्थ— ( एवं अवास्तुं अस्वंगं अप्रजसं करोति ) इसे बरके बिना, आधरहित और प्रनारहित करती है, ( अपरापरणः भवति, स्त्रीयते ) सदावकसे गड़ित होता है और गड़ गड़ होता है ॥ ४५ ॥

( यः क्षत्रियो विदुषः ब्राह्मणस्य गां एवं आदत्ते ) जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणकी गौको इसी तरह छीनता है ॥ ४६ ॥

[ ६ ] ( तस्य आहर्नने गृध्राः क्षिप्रं वै ऐलवं कुर्वते ) उस गृध्रे हानन होनेपर भीष शीघ्र ही कोराइल मचलते हैं ॥ ४७ ॥

( तस्य आहर्नने ) उसकी जगती चिताको डेककर ( केचिनीः पाणिना उरसि अध्नानाः पापं ऐलवं कुर्वाणाः परिनृत्यन्ति ) माल गेडकर हाथोंसे आतिथियोंको पीट पीट कर कुरा शब्द करती हुई क्षियां हलस्ततः मचली हैं ॥ ४८ ॥

( तस्य वास्तुषु वृकाः ऐलवं क्षिप्रं कुर्वते ) उसके घरोंमें मेरिने शीघ्र ही भयना शब्द करने लगते हैं ॥ ४९ ॥

( क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति ) शीघ्र ही उसके विषयमें पूछते हैं कि ( यात् तत् आसीत् ) कैसा यह था ( इदं नु तत् इति ) क्या यह नहीं है ॥ ५० ॥

( छिन्धि आच्छिन्धि प्रच्छिन्धि ) उसको काटो, काट दखो और टुकड़े करो । ( अपि क्षापय क्षापय ) त्रास करो, उसका नाश करो ॥ ५१ ॥

हे ( आंगिरसि ) भगवत्की शक्ति । ( आददानं ब्रह्मज्यं उपदास्य ) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले पातकीका नाश करो ॥ ५२ ॥

ह ( वैश्वदेवी हि कृत्या ) सब देवोंकी बिनाशक शक्ति ( कृत्यजं आवृता उच्यसे ) बिनाशिनी है ऐसा कहते हैं ॥ ५३ ॥

( ओषन्ती समोषन्ती ब्राह्मणः वज्रः ) वाषट्वाक नष्ट करनेवाली यह ब्राह्मणकी वज्ररूप शक्ति है ॥ ५४ ॥

( त्वं क्षुरपविः मृत्युः स्वाया विधाय ) ह क्षुरकं समान तीक्ष्ण बनकर उसका मृत्यु करनेमें लिये दीक्ष ॥ ५५ ॥

( जिनुतां यर्वः इष्टं पूर्वं च जाशिषः आदत्से ) बिनाश करनेवालेके तेज हृष्टपूर्वक और आतिथियोंको ह छीनती है ॥ ५६ ॥

आदाय जीतं जीताय लोकेषुऽमुषिन् प्र यच्छति	॥ ५७ ॥
अह्ये पदवीर्मय ब्राह्मणस्याभिज्ञेस्त्या	॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भयाघादुपविषा मव	॥ ५९ ॥
अह्ये प्र शिरौ जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागंसो देवपीयोराधसः	॥ ६० ॥
त्वया प्रपूर्णं मृदितमग्निर्देहतु दुश्चितम्	॥ ६१ ॥
[ ७ ]	
बुध प्र बुध सं बुध दह प्र दह सं दह	॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यह्य आ मृतादनुसंदह	॥ ६३ ॥
यथायाधमसादनात्पापलोकां परावताः	॥ ६४ ॥
एषा त्वं देव्यह्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागंसो देवपीयोराधसः	॥ ६५ ॥
वज्रैः शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरमृष्टिना	॥ ६६ ॥
प्र स्तुन्धान् प्र शिरौ जहि	॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचंमस्य वि वेष्टय	॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य ज्ञातय सायान्यस्य सं बृह	॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानंमस्य निर्जहि	॥ ७० ॥
सर्वास्याह्ना पर्वाणि वि श्रेष्ठय	॥ ७१ ॥

अर्थ— ( जीतं आदाय अमुषिन् लोके ) हितक बातकी उपरको पकड़कर परकोमें ( जीताय प्रयच्छति ) उसको बापके लिये दू देती है ॥ ५७ ॥

हे ( अह्ये ) मरधम गी ! तू ( ब्राह्मणस्य अभिज्ञेस्त्या ) ब्राह्मणकी मज्जितारी तयकी प्रतिष्ठा करेवाली हो ॥ ५८ ॥

तू ( मेनिः शरव्या भय ) विनाशक शरक बन, ( अघात् अघविषा भय ) वापसे पाररूपी बन ॥ ५९ ॥

हे ( अह्ये ) मरधम गी ! तू ( ब्रह्मज्यस्य कृतागंसः देवपीयोः अराधसः शिरः प्रजहि ) ब्रह्मपाठकी पावी शेषनिष्ठक भदानी पावीका शिर काट दाह ॥ ६० ॥

( त्वया प्रपूर्णं मृदितं दुश्चितं भग्निः वहतु ) तेरे हाथ मने मने और नष्ट भष्ट हुए दुष्टदुष्टि शत्रुको जालि जला दे ॥ ६१ ॥

[ ७ ] ( बुध प्रबुध संबुध ) काट, अधिक काट, अच्छी तरहसे काट, ( दह प्रदह संदह ) जला, अधिक जला, अच्छी तरहसे जला ॥ ६२ ॥

हे ( अह्ये देवि ) महिम्नीय गी देवि ! ( ब्रह्मज्यं आमृतात् अनुसंदह ) ब्रह्मपाठकीको समूह जला दाह ॥ ६३ ॥

( यथा यमसदनात् परावतः पापलोकां जयात् ) जैसा यमसदनसे बरसे पावी लोकें प्रति वह जारे ( यथा कृतागंसः देवपीयोः अराधसः ब्रह्मज्यस्य ) जैसा पावी देवशत्रु कृत्स ब्रह्मपाठकी मनुष्यका ( शिरः कन्धान् ) शिर और कंधे ( शतपर्वणा क्षुरमृष्टिना तीक्ष्णेन वज्रेण प्रजहि ) सौ मोकवाले क्षुरके समान धारावाले तीक्ष्ण वज्रेसे काट दाह ॥ ६४-६७ ॥

( अस्य लोमानि सं छिन्धि ) इसके लोग काट दाह, ( अस्य त्वचं वि वेष्टय ) इसकी त्वचाको उधेड़, ( अस्य मांसानि ज्ञातय ) इसके मांसको काट दाह, ( अस्य म्नायानि संबृह ) इसके स्नायुओंको बुधध, ( अस्थीनि पीडय ) इसकी हड्डियोंको पीडा दे, ( अह्यं मज्जानं निर्जहि ) इसकी मज्जाको नाश कर, ( अह्यं सर्वा पर्वाणि विश्रेष्ठय ) इसके सब पर्वोंको अलग कर ॥ ६८-७१ ॥

कोई भी मनमें न भास्य करे, हान देनेसे कल्याण और न देनेसे दुःख होना है यही धर्म है ।

इन में-में कई स्थानों पर 'गौ-दास' न देकर 'गो' खरों अपने लिये (पचते चूड़ा) गौको पकावा है' ऐसे वाक्य हैं । शिल्पको वेदकी भावना परिचय नहीं है वे इससे ऐसा अनुमान करेंगे कि 'गौको पकावा, अर्थात् गोमयसका पकावा ही यहाँ अभीष्ट है ।' ऐसे सत्के विरक्तके लिये यहाँ बोधना विज्ञानेकी आवश्यकता है ।

वेदमें तुल्यद्वित अर्थात्प्रयोग होता है जिससे 'गौ' शब्द 'गौसे उत्पन्न दुग्ध पदार्थोंका वाचक होता है । अर्थात् 'चूड़ा पचति' का अर्थ 'गौसे उत्पन्न दूध, घृत, दही, छाछ' आदि पकावा है, गोदुग्धसे तैयार करता है, ऐसा है । इसी प्रकार 'गौ' या 'गसा' के अर्थ जैसे 'दूध, दही, छाछ, घृत' आदि पदार्थ हैं, वैसे ही इस शब्दके अर्थ 'मांस, रक्त, हड्डी, चमड़ा, बाल, गोबर, गोमूत्र,' आदि भी हैं । हमारे विचारसे 'दूध, दही, छाछ, घृत' आदि अर्थ ही यहाँ लेना चाहिये ।

## ब्राह्मणकी भूमि

कां. ५, सू. १८

(अभिः-अधोन्ः । देवा-ब्रह्मणी ।)

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते असवे । सा ब्राह्मणस्य राजन्यं गां विधत्सो अनाथा ॥ १ ॥  
अक्षत्रुघ्नो राजन्यं । पाप आत्मपराजितः । स ब्राह्मणस्य गार्मपादुय जीवामि मा श्वः ॥ २ ॥  
आविष्टिपाविष्टा वृद्धाकृष्टि चर्मणा । सा ब्राह्मणस्य राजन्यं वृष्टिपा गौरनाथा ॥ ३ ॥

अर्थ—हे नृपते ! (ते देवाः एतां तुभ्यं असवे न ददुः) उन देवोंने इस गौकी तुम्हारे सत्केके लिए नहीं दिया है । हे (राजन्यं) क्षत्रिय ! (ब्राह्मणस्य अनाथां गां मा विधत्सः) ब्राह्मणकी न जाने योग्य गौको सत्केकी इच्छा मत कर ॥ १ ॥

(अक्ष-द्रुग्धः पापः) गुनाही, पापी (आत्म-पराजितः राजन्यः) अपने कारण पराजित हुआ गुना क्षत्रिय (ब्राह्मणस्य गां अनाथा) यदि ब्राह्मणकी गौको खाने, तो (सः अथ जीवामि, मा श्वः) वह भान ही खींचे, फल नहीं ॥ २ ॥

हे (राजन्यं) क्षत्रिय ! (एषा ब्राह्मणस्य गौः अनाथा) वह ब्राह्मणकी गौ खाने योग्य नहीं है । क्योंकि (सा चर्मणा आविष्टा) वह चर्मसे ढकी हुई (वृद्धा वृद्धाकृष्टि अथवा) प्यारी सन्धिके समान भवेकर विपत्ति भरी होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे क्षत्रिय ! हे राजा ! वह सब तेरे ही उपभोगके लिये तेरे पास देवोंने नहीं दिया है । ब्राह्मणकी भूमि, गाय आदिको बलसे हारण करना तुझे योग्य नहीं है ॥ १ ॥

गो भूमि हारा हुआ, शरीर, दुरायारी और आत्मभक्षणकी क्षत्रिय होगा यही ब्राह्मणकी भूमि और गौ आदिका बलसे हारण करने योग्य करेगा, पर यह भान ही खींचित रह सकता है फल नहीं, अर्थात् वह नीच ही मर जाएगा ॥ २ ॥

हे क्षत्रिय ! ब्राह्मणकी भूमि अपना यी तेरे उपभोगके लिये नहीं है । चर्मसे ढकी हुई, विपत्ति, क्रोधी सन्धिके समान वह गाय तेरे लिये आत्म ही शिख होगी ॥ ३ ॥

निर्दे स्रत्रं नयति इन्ति वचोऽग्निर्वारन्धो वि दुनोति सर्वम् ।  
 यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विपस्यं पिबति वैमातर्यं ॥ ४ ॥  
 य एवं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीपुर्धनकामो न चित्तात् ।  
 सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं दियो नमंसी चरन्तम् ॥ ५ ॥  
 न ब्राह्मणो हिसितव्योऽग्निः प्रियतेनोरिव । सोमो अस्मि दायाद् इन्द्रो अस्माभिश्चस्तिषाः ॥ ६ ॥  
 श्रुतापांशं नि गिरति तां न शक्नोति निःशितम् ।  
 अन्नं यो ब्राह्मणां मन्त्रः स्वाहंतीति मन्यते ॥ ७ ॥  
 जिह्वा ज्या भवति कुर्मलं चाह्नादीका दन्तास्तपसाभिर्दिग्धाः ।  
 तेभिर्भिक्षा विष्पति देवपीपुर्धनैर्धनुर्मिदुवर्जैः ॥ ८ ॥

अर्थ— ( यो ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते ) जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना भक्ष ही मानता है, ( स वैमातर्यं विपस्यं पिबति ) वह सोचका विप ही पीता है । वह अपमानित ब्राह्मण ( अन्नं यै निः भवति ) क्षत्रियको नि क्षेप करता है, ( यचं हन्ति ) तबका नाश करता है, ( आरघ्यः अग्निः इध ) प्रदक्ष हुप अग्निके समान ( सर्वं विदुनोति ) वह सब कुछ नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

( यो देवपीपुः धनकामः ) जो देवपात्र धनलोभी ( यत्नं मृदुं मन्यमानः न चित्तात् हन्ति ) ब्राह्मणको कोमल मानता हुआ बिना विचार मारता है । ( इन्द्रः तस्य हृदये अग्निं सं हन्धे ) इन्द्र उसके हृदयमें अग्नि जला देता है ( उभे नमंसी चरन्तं यत्नं द्विष्टः ) दोनों मूलोक और पुनोक विचारते हुए इससे द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

( प्रियतनोः अग्निः इध ) प्रियतनुरुप अग्निके समान ( ब्राह्मणः न हिसितव्यः ) ब्राह्मणकी हिंसा नहीं करनी चाहिये । ( सोमः हि अस्य दायाद् ) सोम इसका संबंधी है और ( इन्द्रः अस्य अभिचस्तिषाः ) इन्द्र इसको शापसे बचानेवाला है ॥ ६ ॥

( यः मन्त्रः ब्राह्मणां अन्नं ) जो बीच पुरा ' ब्राह्मणोंका भक्ष मैं ( स्वाहं अग्नि इति मन्यते ) स्मरणसे खाता हूँ ' ऐसा समझता है वह ( शत-मपांशं निगिरति ) सैकड़ों प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त होता है और ( निःशितम् तां न शक्नोति ) उसको प्राप्त करने वह सक्षम नहीं बन सकता ॥ ७ ॥

ब्राह्मणकी ( जिह्वा ज्या भवति ) जीभ धनुषकी सीरी हो जाती है । ( यद् कुर्मलं ) पापी धनुष्यका इन्द्र हो जाता है ( तपसा अभिर्दिग्धाः दन्ताः नाडीयाः ) तपसे धीला बने हुए दाँत बालरूप हो जाते हैं और तब ( मन्त्रा ) ब्राह्मण ( तेभिः देवपूतैः हृदयैः धनुर्मिः ) उन देवसेवित भक्तमन्त्रों धनुष्योंसे ( देव-पीपुर्धनं विष्पति ) देवोंके धनुषोंपर आपात करता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ— जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपने भोजका विषय मानता है, वह माने सोचका विप ही पीता है । उस प्रकार अपमानित हुआ ब्राह्मण क्षत्रियका नाश करता है, उसका तैज नष्ट करता है, और जलवी जलपरे समान सब तद्को दिला देता है ॥ ४ ॥

जो क्षत्रिय धनलोभसे देवोंका भक्तमान स्वयं खाता है और ब्राह्मणको निर्बल मानकर उसको कष्ट देता है, हमने हृदयमें अग्नि जलाकर इन्द्र उसका नाश करता है और सब धातुधुविवीके निचामी उसकी निन्दित करते हैं ॥ ५ ॥

अग्निके समान ही ब्राह्मण है, जिसको देवता उषित नहीं हैं । क्योंकि सोम उसका संबंधी और इन्द्र उसका रक्षक है ॥ ६ ॥

जो पापी क्षत्रिय ब्राह्मणका भक्ष अपने भोजके लिये है ऐसा मानता है और उसका मैं उन्नत भोग करता हूँ, ऐसा समझता है, उसपर सैकड़ों आपत्तियाँ आती हैं और उसका सामर्थ्य भी नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

उस समय ब्राह्मणकी जिह्वा रोधी, पापी धनुष्य और उसके तपसे जुग दाँत बाग हो जाते हैं । इन धनुष्यों में सब ब्राह्मण देवताओंका भक्ष स्तानेवालेका नाश करता है ॥ ८ ॥



तीक्ष्णेष्वो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्वन्ति श्रुष्यांते न सा मृषा ।

अनुदाय तपसा मन्थुनां चोत दुरादवं भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥

ये महस्रमराज्जासन्दश्रुता उत । ते ब्राह्मणस्य गां जग्न्वा चैतद्व्याः पराभवन् ॥ १० ॥

गौरिव तान्दन्पमाना चैतद्व्यां अवातिरत् । ये केसरप्रवन्धाभाश्चरमानामपेचिरन् ॥ ११ ॥

एकशतं वा जग्न्वा या भूमिर्व्याधुनुव । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभवं पराभवन् ॥ १२ ॥

देवपीयुश्चरति मत्पेषु शरणीणो भवत्यस्थिभूयान् ।

यो ब्राह्मणं देवर्षेणुं हिनस्ति न स पितृपाणमपैति लोकम् ॥ १३ ॥

अर्थ— (तीक्ष्ण-क्षुब्धः हेतिमन्तः ब्राह्मणाः) तीक्ष्ण बलवति युक्त, नष्टवति युक्त माह्व (यां शरण्यां अस्थिति) शिव बाणप्रहारको भेकते है ( न सा मृषा ) यह प्रवाद स्वर्ध नहीं होता । ये प्रवाद ( तपसा च उत मन्थुना अनुदाय ) उनके भीरु मोक्षके साथ पीडा करके ( एवं दुरात् अवभिन्दन्ति ) इसको वृत्ते ही भेद काटते हैं ॥ ९ ॥

( ये पैत-दृष्ट्याः सहस्रं भयजन् ) जो देवोंका हथ खानेवाले सहस्रों राजा हो गये थे ( ये उत दशशताः आसन् ) भीरु जो वल सी थे, ( ते ब्राह्मणस्य गां जग्न्वा ) वे माह्वणकी गी खाकर ( पराभवन् ) पराभवको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

( हन्यमाना गीः एव ) भारी खाती हुई गीने ( तान् पैतद्व्याम् अवातिरत् ) उन देवताओंका मद्य खानेवालोंका ही विनाश किया है । ( ये केसरप्रवन्धायाः चरम-प्रजां अपेचिरन् ) जो केतोकी रस्तीसे बाँधी हुई जन्तुम जमाकी भी मचा जाते हैं, हथ कर जाते हैं वे भी विनष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

( ताः जग्न्वा एव-शतं ) वे जगत्के लोग एकसी एक थे ( याः भूमिः व्यधुनुव ) जिन्होंने भूमिको हिका दिया है । ( ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा ) माह्वणकी प्रजाको कट देकर ( असंभवं पराभवन् ) विना संभावनाके ही वे पराभवको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

( देव-पीयुः गद-गौरिः मत्पेषु चरति ) देवधनु बहर पीधे मनुष्यके समान मनुष्योंके बीचसे घूमता है और ( अस्थि-भूयान् भवति ) यह बेजल इन्ही ही हड्डीबारा होता है । ( याः देव-वर्णुं ब्राह्मणं हिमस्ति ) जो देवोंके मनुष्य पर माह्वणकी कट देता है ( सः पितृपाणं अपि लोकं न धति ) यह पितृपाण लोकको भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

भाषार्थ— वे माह्व षडे पील्ल गच्छाओंवाले होते हैं, इसलिये उक्त भद्र वे जिसपर चढ़ते हैं वे बंधे नहीं होते । अपने घर और मोक्षसे पीडा करके वृत्ते ही वे जलका नाश करते हैं ॥ ९ ॥

देवताओंके उद्वेगसे सहन रखा हुआ मद्य रथ भोग करनेवाले सहस्रों राजा लोग माह्वणकी मृमि मधवा गी हथ करे, उसका अपने लिये भोग करनेसे परामृष्ट होयें ॥ १० ॥

यह कटको प्राप्त हुई माह्वणकी माध ही उन देवताबन्धोंकी क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये कारण होती है ॥ ११ ॥

सैकड़ों क्षत्रिय भूमिपर बसा पराक्रम करनेवाले होते हैं, परन्तु यदि कन्हि माह्वणोंको कट देना शुरू किया तो वे सद्य हीमें परामृष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

देवोंका मनुष्य बलकर पृथ्वीपर संचार करनेवाला हुए मनुष्य विष पीने जलिकुल मनुष्यके समान निरंक होता है और जो देवोंके मनुष्य माह्वणकी हिला करता है उसको पितृलोक भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

अग्निव नः पदवायः सोमो दायद उच्यते । इन्ताभिस्तुन्दस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ १४ ॥  
 ह्युरिव दिग्धा जृपते पृदाह्वीव गोपते । सा माहापस्येषुर्षोता तथा विध्यति पीपतः ॥ १५ ॥

अर्थ— ( अग्निः धे नः पदवायः ) यमि ही हमारा मार्गदर्शक है । ( सोमः दायदः उच्यते ) सोम संबंधी है, ऐसा कहा जाता है । ( इन्द्रः अभिस्तुता इन्ता ) इन्द्र आप देनेवालेका नासकर्ता है ( तथा वेधसः तत् विदुः ) उस प्रकार शानी वह बात जानते हैं ॥ १४ ॥

हे ( जृपते गोपते ) जृपते और गाघेके स्वामिन् ! हरम की हुई गाय ( ह्युरा ह्युर दिग्धा ) बागके समान लीक्य और ( पृदाह्वीः इव ) सांघितके समान अवेकर होती है । ( माहापस्य स्या ) माहापसी वह गाय ( घोरा ह्युरः ) अवेकर बागके समान होती है । ( तथा पीपतः विध्यति ) उससे दिसक नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

आवार्थ— सब शानी जानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक, सोम हमारा संबंधी और इन्द्र हमारा रक्षक है ॥ १४ ॥

अपहरण करनेवालेके लिए गाय अवेकर सांघितके समान होती है । वह लीक्य बागके समान है । जो माहापसी गायकी दिसा करता है, वह दिसक सब ही नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥



## शतौदना गौ

कां. १०, सू. ९

( अग्नि- अथर्व । देव- शतौदना । )

अघायतामपि नद्या मुखानि सपरनेषु यजमर्षयेष्टम् ।

इन्द्रेण दुत्ता प्रथमा शतौदना आरुव्यसी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु वहिलोमानि यानि ते । एषा त्वा रक्षनाश्रीमद्व आत्वा त्वेयोऽधि नृपतु ॥ २ ॥

बालास्ते प्रोर्धणीः सन्तु जिह्वा सं माद्विज्ये । बुद्धा त्वं यज्ञिणा मूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कैत्वते । प्रीता कृत्स्विजः सर्वे यन्ति यथापथम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अघायतां मुखानि अपि नद्या ) पापी लोगके मुख नष्ट कर । ( सपरनेषु यत्तं यजं अर्पय ) शत्रु-भोंपर यह यज्ञ फेंक । ( इन्द्रेण दुत्ता प्रथमा शतौदना ) इन्द्रके द्वारा ही हुई पहिली सैकरी भोग देनेवाली ( आरु-व्यसी यजमानस्य गातुः ) शत्रुका नास करनेवाली, यजमानका मार्ग दर्शनीवाली गौ ही है ॥ १ ॥

( ते चर्म वेदिः भवतु ) तेषा चर्म वेदी बने, ( यानि ते लोमानि यानि ) जो वेदे रोम हैं वे चर्म हों ( एषा रक्षना त्या लपामीत् ) जो रस्सी तुझे बांधी है, हे ( औपयि ) सोमबली ! ( एषः आत्वा त्या अधिभूत्यतु ) यह प्राया वेदे ऊपर मानंदसे नाचे, तेषा रस निकालनेके लिये यनस्पतिपर पाथर नाचे ॥ २ ॥

हे ( अज्ये ) आईसनीय गौ ! ( ते बालाः प्रोर्धणीः सन्तु ) वेदे बाल प्रोर्धनी हों, ( जिह्वा सं माद्वि ) वेदी जिह्वा मोधन करे, ( त्वं यज्ञिणा बुद्धा मूत्वा ) तू यज्ञ और बुद्ध होकर, हे शतौदना गौ ! ( त्वं दिवं प्रेहि ) शूलोर्ध्व ॥ ३ ॥

( यः शतौदनां पचति ) जो शतौदनाका परिपक्व करता है, ( सः कामप्रेण कल्पते ) वह संकष्टोंको हर्ष करता है । ( अस्य सर्वे प्रीताः कृत्स्विजः ) इसके सब संतुष्ट हुए कृत्स्विज ( यथापथं यन्ति ) यथायोग मार्गसे यापस जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यज्ञादस्त्रिदिवं दिवः । अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

स ताल्लोकान्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पुक्तारो ये च ते जनाः ।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मेरुर्वा भेषीः शतौदने ॥ ७ ॥

यस्यस्या दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा । आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति सामिष्टोममर्तिं द्रव्य ॥ ८ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सावित्रमर्तिं द्रव्य ॥ ९ ॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिक्षः ।

लोकान्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥

धृतं प्रोक्षन्तीं सुमगां देवीं देवानामभिष्यति । पुक्तारमज्ये मा हिंसीदिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदृक्ष ये ये चेमे मूयामधि ।

तेभ्यस्त्वं धुक् सवर्धा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

अर्थ—(यः शतौदनां अपूपनाभिं कृत्वा ददाति) जो शतौदनाको माछएवोंके रूपमें करते दान देता है (सः स्वर्गं आरोहति) यह स्वर्गपर चढ़ता है (यम अदः त्रिदिवं दिवः) जहापर स्वर्गप्राप्त है ॥ ५ ॥

(यः शतौदनां हिरण्यज्योतिषं कृत्वा ददाति) जो शतौदना चौको सुवर्णसे तेजस्वी करके दान देता है (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो दिव्य और जो पार्थिव भोग हैं उनके और (ताम् लोकान् सः समाप्नोति) उन सब लोकोंको भी वह प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

(ये शमितारः ये च पुक्तारः जनाः) जो शमिता और जो पकनेवाले लोग हैं, (ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति) वे सब तेरी रक्षा करेंगे । हे (शतौदने) सी मनुष्योंका मोहन देनेवाली गौ ! (पम्भः मा मैरी) इनसे तू नप न कर ॥ ७ ॥

(दक्षिणतः त्वा यस्यः) दक्षिणकी ओरसे वज्रदेव, (उत्तरात् त्वा मरुतः) उत्तरकी ओरसे मरुत देव, (आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति) आदित्य पीछेसे तेरी रक्षा करेंगे, (स त्वं सामिष्टोममर्तिं द्रव्य) वह तू सामिष्टोम पशुके पार जा ॥ ८ ॥

(ये) जो देव, पितर, मनुष्य और गन्धर्व-अप्सरालोग हैं, (ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति) वे सब तेरी रक्षा करेंगे, (सः अतिरात्रं अति द्रव्य) वह तू अतिरात्र पशुके पार जा ॥ ९ ॥

(यः शतौदनां ददाति) जो शतौदनाको देता है, (सः सर्वान् लोकान् आप्नोति) यह सब लोकोंको प्राप्त करता है, (अन्तरिक्षं दिवं भूमिं आदित्यान्) जो लोक अन्तरिक्ष, पु, भूमि, आदित्य, मरुत और दिशाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥

(धृतं प्रोक्षन्तीं सुमगां देवीं) पीका सिंचन करनेवाली मायवाली देवी (देवान् अभिष्यति) देवताओंको प्राप्त होगी । हे शतौदने (अज्ये) नहिंसनीय गौ ! (पुक्तारं मा हिंसी) पकनेवालेकी हिंसा मत कर, (दिवं प्रेहि) स्वर्गको मत छोड़ ॥ ११ ॥

(ये दिवि-सदा देवाः) जो सुखोद्यम करनेवाले देव हैं, (ये च अन्तरिक्ष-सद्यः) जो अन्तरिक्षमें रहते हैं, (ये ॥ इमे मूयामधि) जो भूमिपर रहते हैं, (तेभ्यः त्वं सवर्धा) उनके लिये तू सवर्धा (क्षीरं सर्पिः अथो मधु धुक्) दूध, पी और मधु दे ॥ १२ ॥

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हन् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥  
यौ तु ओष्ठौ ये नासिके ये गृह्णो ये च तेऽक्षिणी ।

आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥

यत्ते जलोमा यदृष्टं पुरीतस्तदकण्टिका । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥

यत्ते यक्ष्मे मत्स्ने यदान्त्रं यात्रं ते गुदाः । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥

यत्ते प्लाशियो रंतिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥

यौ ते प्राग् ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पञ्चैव । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

यौ त ऊरू अष्टीयन्तौ ये धोणी या च ते भस्त्र । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥

यत्ते पुच्छं ये ते घाला यदूधो ये च ते स्तनाः । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥

यास्ते जङ्घा याः कुट्टिका कृच्छरा ये च ते शफाः ।

आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥

यत्ते चर्म यतौदने यानि लोमान्यज्ये । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

श्रोढौ ते स्तां पुरोद्वाजावाज्येनामिषारिती । तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पृक्कारं दिवं वह ॥ २५ ॥

अर्थ— (यत् ते शिरः) जो तेरा सिर है, (यत् ते मुखं) जो तेरा मुख है, (यौ च ते कर्णौ) जो तेरे कान हैं, (ये च ते हन्) जो तेरी गोदी है, ये सब (दात्रे आमिशां क्षीरे सर्पिः अथो मधु दुहतां) दादाको दही, दूध, घी और मधु देवें ॥ १३ ॥

(यौ ते ओष्ठौ) जो तेरे ओठ हैं, (श्रीमे अक्षिणी) जो ॥ ॥ संजि और बांछ हैं, (ते जलोमा इष्टं पुरीतत् सह कण्टिका) जो फेफड़ा, इष्ट, मलाशय और कण्ठका मांस है, (ते यक्ष्म मत्स्ने यान्त्रं गुदाः) जो तेरा पृष्ठ, गुद, आंठ और गुदा है, (ते प्राग् दोषणी रंतिष्ठः कुक्षी, चर्म) जो तेरी बाँके मांस गुदामांस, कोल और चर्म हैं, (ते मज्जा, अस्थि, मांस लोहितं) जो तेरी मज्जा, अस्थि, मांस और खरिरे हैं, (ते प्राग् दोषणी रंतिष्ठः ककुत्) जो तेरे बाहु, बाँह, कण्ठ और कोहनिका हैं, (ते ग्रीवा स्कन्धाः पृष्टीः पञ्चैव) जो तेरी गर्दन, कंधे, पीठ और पसलियां हैं, (ते ऊरू अष्टीयन्तौ धोणी भस्त्र) जो तेरी ऊँचाई, भुज्ये, कुह्ये और गुदांग हैं, (ते पुच्छं घालाः ऊधः स्तनाः) जो तेरी पूँछ, घाल, दुग्धशय और स्तन हैं, (ते जङ्घाः कुट्टिकाः कृच्छराः शफाः) जो तेरी जङ्घा, रोम, कड़ाईक भाग और खुर हैं, (ते चर्म लोमानि) जो तेरे चर्म और लोम हैं, हे (शतौदने) गौ ! (दात्रे क्षीरे आमिशां) दादाको दूध, दही, घी और मधु देवे रहें ॥ १३-२४ ॥

हे शतौदने गौ ! (ते श्रोढौ) तेरे शर्षपमास (अज्येन अमिषारिती पुरोद्वाजां स्तां) ॥ ॥ द्वारा सिंघित पुरोद्वाजा हैं । हे देवि ! (तौ पक्षौ कृत्वा) उनके रंग बनाकर (सा त्वं पृक्कारं दिवं वह) वह वृ पक्षानेवासेको स्वर्गपर ले जा ॥ २५ ॥

उत्सले मुसले यथ चर्मणि यो वा धूपे तण्डुलः कणः ।

यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममायाधिश्रद्धोता सुहृवं कृणोत

॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्धृतश्रुतो मृदाणां हस्तेषु प्रपृथक्पादयामि ।

यस्कांम इदमभिपिञ्चामि योऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पर्वतो रथीणाम्

॥ २७ ॥

अर्थ—(उत्सले मुसले) जोखली और मूसल, (चर्मणि शूरे वा वा धः तण्डुलः कणः) चर्मपर तथा शूर्प में जो चावल के कण रहते हैं, (यं वा वातो मातरिश्वा पवमानः ममाय) जिसको पवित्र करनेवाले वायुने मया था, (तत् होता अग्निः सुहृवं कृणोत) उसे होता अग्नि उत्तम मातृविरूप बनावे ॥ २६ ॥

(मधुमती। धृतदधुतः देवीः आपः) मधुपुष्प बीजों के देनेवाली दिव्य जलधाराएं (मृदाणां हस्तेषु म पृथक् साधयामि) पालाणों के हाथों में अलग अलग देना है। (यत् कामः इदं वाः अहं अभिपिञ्चामि) तिलकी इच्छा करता हुआ, मैं यह आपका अभिषेक करता हूँ, (तत् मे सर्वं संपद्यतां) यह मुझे सब प्राप्त हो, (वयं रथीणां पतयः स्याम) हम सब धनें के पति बनें ॥ २७ ॥

## शतौदना गौ ।

गौ ।

गौका यहां नाम 'शतौदना' है। सैंकड़ों मनुष्योंका अन्न देनेवाली गौ शतौदना कहलाती है। कल्पना करिये कि प्रतिदिन १० सेर दूध गौ देती है। इस हिसाबसे प्रतिदिन पांच मनुष्योंका पेट भरती है, एक मासमें १५० मनुष्योंका पेट भरती है और छ साठ महीनोंमें एक सहस्र मनुष्योंका पेट पाठन करती है। इस हिसाबसे एक भागमें गौ दस हजार मनुष्योंका पेट पाठन कर सकती है और उसकी संतानों और भक्षिकों गौका यह महत्त्व है। गौका दूध बीमारों और अशक्तोंको तो अमृत जैसा है, पालकोंके लिये तो गौ माताका स्थान धारण करती है। गौके दूधसे बछ, भेड़ा और छुदिया बृद्धि होती है। शतौदना गौका यह महत्त्व है।

यह गौ समीप वस्तु है। कामधेनु कही है। जब भी आवश्यकता पड़े तभी दूध देनेवाली गायको 'कामदुधा' कहते हैं। गौ विद्वान् माहात्म्यको दान देनेसे बढ़ा लाभ है, यह दान अन्न और सुवर्णके साथ, (अपूप, तिरिष्य)

होना चाहिये। (मं. ७-८) यज्ञके शमिता, अन्नके वाचक, देवोंके वस्तु, महत् और आहित्य के सब गौके संरक्षक हैं। देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व और अमररागण ये सब गौकी रक्षा करनेवाले हैं, क्योंकि गौके दूधसे ही अग्निहोम और अग्निराज ये यज्ञ होते हैं। (मं. ९)

जो शतौदना गौका दान विद्वान्को करता है, उसको अन्तरिक्ष, सूर्य, विद्या, महत् तथा अन्य सब लोकोंमें उत्तम स्थान प्राप्त होता है। (मं. १०) सबकी परित्रता करती हुई यह गौ देवोंको धन द्वारा प्राप्त करती है। त्रिलोक्यें जो देवता हैं वे सब गौके दूधसे रक्त होते हैं, दूध, गौ इसीसे जनको प्राप्त होता है। (मं. ११-१२)

भाग्य मं. १३ से २४ तक कहा है कि इसी तरह गौका वर्णन है कि यह गौके व्यवहार और गौ दाताका कल्याण करे और दूध, दही, घृत आदि सब वस्तु उसको पर्याप्त हो और दाता स्वर्गको प्राप्त हो।

भाग्य २७ संरक्तक प्राज्ञोंको दूध दूध गौ दान करनेका वर्णन है।

## गौका विश्वरूप

कां. ९, सू. ७

( कवि - ब्रह्मा । देवता - गौः । )

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृण्वे इन्द्रः शिरों अम्रिल्लोटं युमः कृकाटम्	॥ १ ॥
सोमो राजा मस्तिष्को घोरुत्तरहनुः पृथिव्याधरहनुः	॥ २ ॥
विद्युजिह्वा मूततो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृचिका स्कन्धा घर्षो बहः	॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विषरणी निषेप्यः	॥ ४ ॥
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्व्यं बृहस्पतिः ककुद्मृतीः कीकसाः	॥ ५ ॥
देवानां पत्नीः पुष्टयं उपसदः पश्येयः	॥ ६ ॥
मित्रश्च परेणर्थासौ स्वर्षा चार्थमा च दोषणी महादेवो बाहू	॥ ७ ॥
इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः	॥ ८ ॥
मक्षं च क्षत्रं च ओणी बलभूक	॥ ९ ॥
घाता च सविता चाग्नीवन्तौ जह्या मन्धर्वा अम्बरसः कुष्ठिका अदितिः शुक्राः	॥ १० ॥
चेतो हृदयं यकुन्मेधा मृतं पुरीतत्	॥ ११ ॥

अर्थ— ( प्रजापतिः च परमेष्ठी च शृण्वे ) प्रजापति और परमेष्ठी के लौके जो सींग हैं, ( इन्द्रः शिरः ) इन्द्र सिर है, ( अमिः कृकाटं ) अमि दण्ड है, ( यमः कृकाटं ) यम गलेकी चेंदी है ॥ ( सोमः राजा मस्तिष्कः ) राजा सोम मस्तिष्क है, ( घोरः उत्तरहनुः ) घुलोक ऊपरका अवध और ( पृथ्वी अधरहनुः ) पृथ्वी नीचेका अवध है ॥ १-२ ॥ ( विद्युत् जिह्वा ) बिजली जीभ है, ( मूततो दन्ताः ) मूत दंत है ( रेवतीः ग्रीवाः कृचिका स्कन्धाः ) रेवती गर्दन और कृचिका कंधे हैं । ( घर्मः बहः ) बज्रका देनेवाला सर्व बहनेका ककुदके पातका भाग है । ( वायुः विश्वं स्वर्गः लोकः कृष्णद्रं ) वायु सब जगत् और स्वर्गलोक कृष्णद्र है और ( विषरणी निषेप्यः ) धारणतामि पुष्टयका सीमा है ॥ ३-४ ॥

( श्येनः क्रोडः ) श्येन उसकी गोद है, ( अन्तरिक्षं पाजस्व्यं ) अन्तरिक्ष बेट है, ( बृहस्पतिः ककुद् ) बृहस्पति ककुद है, ( मृहतीः कीकसाः ) बृहस्पति कोदबीज भाग है ॥ ( देवानां पत्नीः पुष्टयः ) देवोंकी पत्नियों पीरके भाग है, ( उपसदः पश्येयः ) उपसद दृष्टियां पसलियां हैं ॥ ५-६ ॥

( मित्रः च यदयाः च अर्थो ) मित्र और यदया कहे हैं, ( स्वर्षा अर्थमा च दोषणी ) स्वर्षा और अर्थमा बाहुभाग हैं और ( महादेवः बाहू ) महादेव बाहु हैं । ( इन्द्राणी भसत् ) इन्द्राणी शुक्रभाग हैं, ( वायुः पुच्छं ) वायु पुच्छ है और ( पवमानः बालाः ) पवमान वायु बाल हैं ॥ ७-८ ॥

( मक्षं च क्षत्रं च ओणी ) मक्ष और क्षत्रिय कहे हैं, ( बलभूक ) बल जंघे हैं ॥ ( घाता च सविता च अग्नीवन्तौ ) घाता और सविता ये उलने हैं, ( मन्धर्वाः जह्याः ) मन्धर्व कहे हैं ( अम्बरसः कुष्ठिकाः ) अम्बरसे सुरभाग हैं, ( अदितिः शुक्राः ) अदिति सुर हैं ॥ ( चेतो हृदयं ) चेतना उसका हृदय है ( मेधा यकुत् ) मेधाकुदि पकृद है, ( मृतं पुरीतत् ) मृत उसकी अति है ॥ ९-११ ॥

क्षुत्कुक्षिरिं वनिन्दुः पर्वताः प्लाशयः	॥ १२ ॥
क्रोधो वृक्षो मन्युराण्डौ श्रवा श्रेयः	॥ १३ ॥
नदी सूत्री वर्षस्य पर्वस्य स्तनां स्तनयित्स्वरूपः	॥ १४ ॥
दिश्वर्ष्याक्षर्मर्षिघयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम्	॥ १५ ॥
देवजना गुदां मनुष्याः आन्त्राण्यश्वा उदरम्	॥ १६ ॥
रक्षांसि लोहितमितरजना ऊर्ध्वस्य	॥ १७ ॥
अन्न पीबो मुञ्जा निघर्मस्य	॥ १८ ॥
अभिरासीन् उद्विग्नोऽश्विनः	॥ १९ ॥
इन्द्रः प्राह् तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन्ध्रुवः	॥ २० ॥
प्रत्यह् तिष्ठन्धातोदुह् तिष्ठन्सविता	॥ २१ ॥
वृणानि प्राप्तः सोमो राजा	॥ २२ ॥
मित्र ईक्षमाण आभुञ्च आनुन्दः	॥ २३ ॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम्	॥ २४ ॥

अथ—(क्षुत् कुक्षि) क्षुधा कोश है, (इहा वनिन्दु) नक्षत्र की भाँति है, (पर्वताः प्लाशय) पहाड़ छोटी भाँति हैं ॥ (क्रोध वृक्षको) क्रोध उसके गुण है, (मन्यु आण्डौ) उत्साह अण्डकोश है, (श्रवा श्रेय) प्रशमननेत्र है ॥ १२-१३ ॥

(नदी सूत्री) नदी सूत्रगती है, (वर्षस्य पर्वस्य स्तना) वर्षापति मेघ उसके लज है, (स्तनयित्स्वरूप) गर्भनेत्रा नक्षत्र रूपसे वृक्ष लज है ॥ (दिश्वर्ष्याक्षर्म) सर्वत्र फैला आकाश चर्म है, (क्षोपघ्न लोमानि) औपधियाँ लोम हैं, (नक्षत्राणि रूपं) नक्षत्र रूप हैं ॥ १४-१५ ॥

(देवजना गुदा) देवजन गुदा है, (मनुष्या आन्त्राणि) मनुष्य भाँति हैं, (अश्वा उदरं) नक्षत्र प्राणी उदर हैं ॥ (रक्षांसि लोहित) राक्षस रक्त है (इतरजना ऊर्ध्वस्य) इतर जन ऊपरस्थि अक्ष है ॥ (अन्न पीवः) मेघ मेदा है (निघन भञ्जा) निघन भञ्ज है ॥ (अभि आसीन्) अभि आसक्त है और (अश्विनौ उद्विग्न) अश्विदेव उद्विग्न है ॥ १६-१९ ॥

(इन्द्र प्राह् तिष्ठन्) इन्द्र प्राणी दिशामें बहरना है, (यम दक्षिणा तिष्ठन्) यम दक्षिणदिशामें अवस्रवान है, (प्रत्यह् तिष्ठन् धातु) पवित्र दिशामें बहरना धातु है और (सविता उदुह् तिष्ठन्) सविता उत्तर दिशामें बहरना है ॥ २०-२१ ॥

(सोम राजा वृणानि प्राप्त) जब वृक्षमें प्राप्त होता है, तब वह सोम राजा होता है, (ईक्षमाण मित्र) मयटाकन करनेवाला सुर्म और (आभुञ्च आनुन्द) पराभु होनेपर गदी आनन्द है ॥ (युज्यमान वैश्वदेव) जब जोता जाता है तब वह सब देवोंके संवधका होता है, (युक्त प्रजापति) ज्येष्ठनेपर प्रजापति और (विमुक्त सर्वम्) छाँटनेपर सब कुछ बगला है ॥ २२-२४ ॥

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं योरूपम्

॥ २५ ॥

उपेनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पञ्चवसिष्ठान्ति य एवं वेद

॥ २६ ॥

अर्थ—( एतत् वै योरूपं ) यह विश्वरूप ही योका रूप है, यही ( विश्वरूपं सर्वरूपं ) योका विश्वरूप और सर्वरूप है ॥ ( यः एवं वेद ) जो इस बातको जानता है ( एवं ) उसके पास ( विश्वरूपाः सर्वरूपाः पञ्चवः उपसिष्ठन्ति ) विश्वरूपी और सर्वरूपी सब पञ्च रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

### योका महारम्भ ।

इस सूत्रमें योका महारम्भ दर्शाया गया है । यहाँ योका महारम्भ नाम और बैलका महारम्भ करना चाहिये यह स्पष्ट है । योकाके अंगोंमें सूर्य देवताओंका निवास है और योका ही सब देवोंका रूप बन जाती है । इतना योका अधिकतर इस सूत्रमें दर्शाया गया है । वैदिक धर्ममें योकाका इतना महारम्भ है । योकाका दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि सेवन करनेसे देवताओंका सत्त्व सेवन करनेका भेष प्राप्त होता है । इसी प्रकार योकाका और योकाका सेवन करनेसे शरीर शुद्ध होता है । इस तरह योकाका महारम्भ ज्ञानकर वैदिकधर्ममें योका योकाका सेवा करें ।

### बैल

#### कां. ९, सू. ४

( कति- मत्ता । देवता- कपमा । )

साहस्रत्वेप मप्रमः पर्यस्वान्निष्ठा रूपाणि वृक्षान्ति विभ्रत् ।

॥ १ ॥

सुप्रं दात्रे यजमानाय शिषन्वाहस्यत् उतिमुस्तन्तुमावात्

अपि यो अत्रे प्रतिमा वधूव प्रमः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।

पिता वृक्षानां पतिरुध्म्यानां साहस्रे पोपे अपि कपोत ।

॥ २ ॥

अर्थ—( साहस्रः त्वेपः ) हजारों गतिकोसे सुक तेजस्वी, ( पर्यस्वान् कपमाः ) वृषपादा बैल ( वृक्ष-  
पास्तु विभ्रत् रूपाणि विभ्रत् ) नदी तीरोंपर बहुत रूपोंको धारण करना हुआ ( वाहस्यत् उतिपः ) वृक्षपादोंके  
संबंधका यह बैल ( दात्रे यजमानाय मदं शिषन् ) दात्र देवताके यजमानके लिए अर्घ्योंको भिक्षा देता हुआ ( सन्तु-  
मावात् ) यज्ञके पादोंको पैदाला है ॥ १ ॥

( यः अत्रे ) जो पहिले ( अपि प्रतिमा वधूव ) जलके बैलकी उपासना हुआ है ( देवी पृथ्वी इव ) पृथिवी  
देवीके समान ( सर्वस्मै प्रमः ) सब पर प्रभाव चलावेवाला, ( वृक्षानां पिता ) वृक्षोंका स्वामी ( अज्म्यानां पतिः )  
गोवोंका पति ( नः ) हमें ( साहस्रे पोपे अपि कपोत ) हजारों प्रकारकी पुष्टिमें बने, रहे ॥ २ ॥

भावार्थ— बैल हजारों गतिकोसे सुक है । बैल ही वृषपादा है । नदीतीरोंके तीरोंपर इसके विविध रूप दीखते हैं ।  
इसका दान करनेसे हित होता है और यज्ञका प्रचार होता है ॥ १ ॥

इसको जलदायी मेघोंकी उपासना ही मानी है । पृथ्वी देवीपर यह अधिक प्रभावपाता है, यह वृक्षोंका पिता और  
गोवोंका पति है । इससे हमारी हजारों प्रकारकी पुष्टि होती है ॥ २ ॥



पुमानुन्तर्धान्स्थविर्ः पर्यस्थान्वसोः कर्षन्वमृषमो विमर्ति ।

समिन्द्राय पथिमिदं वृषानैर्हुतमृषिर्वेदतु जातवेदाः ।

॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरप्यनामयोः पिता महतां गर्गदाम् ।

वत्सो जरायुं पतिषुक्पीयूषं आमिक्षां घृतं तद्वत्स्य रेतः ।

॥ ४ ॥

देवानां माग उपनाह एषोऽेषां रस ओषधीनां घृतस्य ।

सोमस्य भृक्षमवृणीत शुक्रो बृहन्नद्रिरभवृषच्छरीरम् ।

॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं विमर्षि त्वष्टां रूपाणां जनिता पशुनाम् ।

शिवास्ते सन्तु प्रजन्त्य इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ।

॥ ६ ॥

अर्थ— (पुमान् अन्तर्धान्) पुनः प्रायश्चित्त करने अन्तर ध्यान करनेवाला, (स्थविर्ः पर्यस्थान्) बड़ा वृषाला (शुभमः पथिः) कर्षण विमर्ति) बेल धनके शरीरको धारण करता है। (देवयानैः पथिभिः हुतं तं) देवयान मार्गसे समर्पित हुए हुए उसको (जातवेदाः आग्निः इन्द्राय वहतु) जातवेद अग्नि इन्द्रके दिये दे जाये ॥ ३ ॥

(वत्सानां पिता) बघोंका पिता, (अप्यनामोः पतिः) गौबोंका पति (अथो) और (महतां गर्गदाम् पिता) बड़े प्रजाहोंका पावक, (मासः जरायुः) बच्चा जेससे यादर भाकर (प्रतिषुक् पीयूषः) प्रतिदिन अमृतका दोहन करना हुआ (आमिक्षा घृतं) दही और घी देना है (तत् त अम्य रेतः) वह किसल्लेह इसका मीप है ॥ ४ ॥

(यस्य देवानां उपनाहः मागः) वह देवोंका समीप स्थित भाग है, (अपां ओषधीनां घृतस्य रसः) जलका औषधियोंका और घीका यह रस है, (सोमस्य भृक्षं दाता अनुर्णीत) यही सोमका रस इन्द्रने प्राप्त किया, इसका (यद् शरीरं बृहत् अग्निः अमयत्) जो शरीर था बड़ी बड़ा मेघ बना है ॥ ५ ॥

(सोमेन पूर्णं कलशं विमर्षि) सोमरससे परिपूर्ण कलशको तू धारण करता है और तू (रूपाणां जनिता) रूपोंका बनानेवाला और (पशूनां जनिता) पशुओंका उत्पादक है, (याः इमाः ते प्रजन्त्यः) जो ये ठेरी सन्तानें हैं वे (शिवाः सन्तु) हमारे दिये शुभ हों । हे (स्वधिते) अम्भ ! (याः अमूः अस्मभ्य नि यच्छ) जो वही हैं वे हमारे दिये दे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह पुरुष है, इसके अन्दर शक्ति है, यह सामर्थ्यवाला और वृषाला है। यह धनको धारण करता है। उस समर्पित हुये जातवेद अग्नि इन्द्रके दिये देवयानके मार्गोंसे ले जाता है ॥ ३ ॥

बघोंका पिता और गौबोंका पति, बड़ी कलशरामोंका स्वामी, जन्मसे ही अमृतका दोहन करके देता है, तथा दही और घी देता है, मानो यह इसीका बच्चा है ॥ ४ ॥

यह वृष देवोंका भाग है, माग औषधियोंका रस है, यह सोमरसके साथ मिला जाता है। इसके शरीरको मेघकी दी उपमा है ॥ ५ ॥

सोमरससे भरा हुआ कलश यह धारण करता है, यह घी आदिका उत्पन्नकर्ता, विविध रूपोंका बनानेवाला है, इसकी सन्तानें हमें कल्याणदायी हों, अम्भ इनकी रक्षा करके हमें देदे ॥ ६ ॥

आज्यं विमर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषुस्तर्षु यज्ञगाहुः ।  
 इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतं दत्ता ॥ ७ ॥  
 इन्द्रस्योजो वरुणस्य बाहु अधिनोऽंशौ मरुतामियं ककुत् ।  
 बृहस्पतिं संमृतमेतमाहुर्ध्वं धीरांसः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥  
 वैवीविशः पर्यस्वाना वनोपि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।  
 सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषमर्षाजुहोति ॥ ९ ॥  
 बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टृर्वायोः पर्यात्मा तु आर्मृतः ।  
 अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे धावाप्रथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥  
 य इन्द्र इव देवेषु गोष्ठेति विचार्यदत् । तस्य ऋषमस्याङ्गानि ब्रूया सं स्तौतु भद्रपा ॥ ११ ॥

अर्थ— (अस्य घृतं अज्यं) इसका घी और आन्व (रेतः विमर्ति) बीरको धारण करता है । (साहस्रः पोषः) जो हजारोंका पोषक है (ते उ यज्ञे आहुः) उसको बलि करते हैं । (सः दत्तः वृषभः इन्द्रस्य कर्षं वसानः) यह शान बिना हुआ बैल इन्द्रका रूप धारण करता हुआ, है (देवाः) देवों ! (अस्मान् शिवः आ यतु) हमारे पास जुग होकर प्राप्त होने ॥ ७ ॥

(ये धीरांसः) जो धैर्यशाले और (ये मनीषिणः कवयः) जो गव्यगीक कवि हैं वे (परं संमृतं बृहस्पतिं आहुः) इस समारपणको बृहस्पति कहते हैं तथा यह (इन्द्रस्य ओजः) इन्द्रकी शक्ति, (वरुणस्य बाहु) वरुणके बाहु, (अधिनोः अंशौ) अधिदेवोंके कन्धे, (मरुतां इयं ककुत्) मरुतोंकी कोहली दे देता कहते हैं ॥ ८ ॥

८ (पर्यस्यान् वैषीः विशाः आ तनोपि) दूधवाला दिग्गुणी प्रजाको उत्पन्न करता है । (त्वां इन्द्रं) तुझे इन्द्र और (त्वां सरस्वन्तं आहुः) सारवाज्य कहते हैं (यः ब्राह्मणः) जो ब्राह्मण (ऋषं मा जुहोति) बैलका शान करता है (सः एकमुखाः सहस्रं ददाति) यह एक स्थानपर मुख करता हुआ हजारोंका दान करता है ॥ ९ ॥

(बृहस्पतिः सविता) बृहस्पति और सविता (ते वयो दधौ) वेही धातुको धारण करते हैं । (ते आत्मा) तेरी आत्मा (त्वष्टुः धावोः परि आर्मृतः) त्वष्टा और बालुके परिणम है । (मनसा त्वा अन्तरिक्षे जुहोमि) मनसे तुझे अन्तरिक्षमें अर्पण करता हूँ, (उभे धावाप्रथिवी ते बर्हिः स्ताम्) दोनों तुलोक और भूलोक तेरे भाग्य हैं ॥ १० ॥

(देवेषु इन्द्रः इव) वैरीमें इन्द्रके समान (यः गोषु विचार्यदत् पति) जो गौषोमें चन्द कराता हुआ चववा है । (तस्य ऋषमस्य अंगानि) उस बैलके अंगोंकी (भद्रया ब्रूया संस्तौतु) प्रशंसा सुमध्यांसे प्रज्ञा की ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह घी और घीय धारण करता है, हजारों प्रकारकी पुष्टि देता है तथा इसको बलि करते हैं । यह इन्द्रका रूप धारण करके हमारे सिन्धु जुग होने ॥ ७ ॥

जो धैर्ययुक्त कवि और शानी है वे इसको देवताओंकी शक्तियोंसे युक्त मानते हैं, इसमें बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अधिनो, मरुत् इनकी शक्तियाँ हैं ॥ ८ ॥

यह दूध देनेवाला बैल उत्तम प्रजा उत्पन्न करता है, उसको सारवाज्य इन्द्र कहते हैं । जो बैलका समर्पण करता है उसको हजारों दानोंका श्रेय प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बृहस्पति और सविताने उसकी धातुको धारण किया है । त्वष्टा और बालुका सत्य इसमें है । इसका मनसे अन्तरिक्षमें समर्पण करनेसे भूमिपर और आकाशके नीचे यह रहता है ॥ १० ॥

देवोंमें इन्द्रके समान यह बैल गौषोमें है । शानी ही इसके अवयवोंके महत्त्वका कथन कर सकता है ॥ ११ ॥

पार्थे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनुवृजौ । अग्नीवन्तावज्वीन्मित्रो ममैतौ केवलविर्ति ॥ १२ ॥  
 भसदासादादित्यानां श्रोणीं आस्तां वृहस्पतेः । पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोऽयोर्षधीः ॥ १३ ॥  
 गुदां आसन्तिस्निनीचाल्याः सूर्यायास्त्वचं गन्धवन् । उत्थातुरेन्द्रवन्द्यं ऋषमं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥  
 क्रोड आसीज्जामिहंसस्य सोमस्य कलशो धृतः । देवाः संगत्य यत्सर्वं ऋषमं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥  
 ते कुष्ठिकाः सरमापे कर्मभ्यो अदधुः शक्रान् । ऊर्ध्वमस्य क्रीडेभ्यः श्वतेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥  
 शृङ्गाभ्यां रक्षं ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा । शृणोति मद्रं कर्णभ्यां गवां यः पतिरभ्यः ॥ १७ ॥  
 श्रुतपाजं स यजते नैनं दुन्वन्स्पृश्यः । जिह्वन्ति विधे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषममाहुतिं ॥ १८ ॥

अर्थ— (पार्थे अनुमत्या आस्तां) दोनों पक्षे अनुमतिके हैं, (अनुवृजौ भगस्य आस्तां) एकद्विपक्षे दोनों भाग मपने हैं, (मित्रः अज्वीत्) मित्रने कहा कि (अग्नीवन्तां केवलौ पतौ मम इति) दो पुरने केवल मेरे हैं ॥ १२ ॥

(भसदा आदित्यानां आसीत्) बृहस्पतस्य अन्तिम भाग आदित्योका है, (श्रोणीं वृहस्पतेः आस्तां) कूले वृहस्पतिके हैं, (पुच्छं वातस्य देवस्य) पुच्छ वायु देवका है, (तेन ओषधीः धूनोति) उसने औषधियोंको हिलाया है ॥ १३ ॥

(गुदां तिनीचाल्याः आसन्) गुदाभाग तिनीचालीके हैं, (त्वचं सूर्याया गन्धवन्) त्वचा सूर्यमासी है, ऐसा कहते हैं । (पदः उत्थातुः अयन्) पैर उत्थातारके हैं ऐसा कहा है, (यत् ऋषमं व्यकल्पयन्) इस प्रकार बैलकी कल्पना विहायले की है ॥ १४ ॥

(क्रोडः जामिहंसस्य आसीत्) गोद जामिहंसकी थी, (कलशः सोमस्य धृतः) कलश सोमके द्वारा धारण किया गया है, इस प्रकार (सर्वं देवाः संगत्य) सब देव मिलकर (यत् ऋषमं व्यकल्पयन्) बैलकी कल्पना करते हैं ॥ १५ ॥

(कुष्ठिकाः सरमापे ते अदधुः) कुष्ठिकोंको सरमाके लिए उन्होंने धारण किया और (शक्रान् कर्मभ्यः) शृङ्गोंको कक्षुषोंके लिए धारण किया । (अस्य ऊर्ध्वं) इसका अण्ड अर्ध (अवर्तिभ्यः क्रीडेभ्यः आधारयन्) कुत्ते साम रहनेवाले कीड़ोंके लिए रख दिया ॥ १६ ॥

(यः शृङ्गाभ्यां रक्षं पतिः) जो शृङ्गोंका हगनेके अवयव पति अर्थात् बैल है, वह (कर्णभ्यां मद्रं शृणोति) कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, (शृङ्गाभ्यां रक्षः श्रवति) सीपोंसे शङ्खसोकी हवा देता है और (चक्षुषा अवर्तिं हन्ति) आँखसे जलाटकी नष्ट करता है ॥ १७ ॥

(यः ब्राह्मणे ऋषमं आहुतिं) जो ब्राह्मणोंको बैलका समर्पण करता है (तं विधे देवाः जिह्वन्ति) उसको सब देव तृप्त करते हैं । (सः श्रुतपाजं यजति) वह बैलको पाजको द्वारा यज्ञ करता है और (पते अन्नयः न दुन्वन्ति) इसको भक्षि बच नहीं देते ॥ १८ ॥

भावार्थ— इसके अवयवोंमें अनुमति, भग, मित्र, आदित्य, वृहस्पति, वायु आदि देवताओंका अधिष्ठान है ॥ १२-१८ ॥

तिनीचाली, सूर्यप्रभा, उत्थाता, जामिहंस, सोम हवा देवताओंके लिए क्रमशः गुदा, त्वचा, पैर, गोद, कलश ये इसके अवयव माने गये हैं । इस तरह सब देवोंने इस बैलके विषयमें कल्पना की है ॥ १३-१५ ॥

सरमा, कूर्म, अवर्ति, जिमी आदिके लिए इसके कुष्ठिका, शुर और अपवित्र अन्नमाग रखे गए हैं ॥ १६ ॥

बैल शोका पति है । वह कानोंसे शङ्ख शब्द सुनता है, सीपोंसे शृङ्गोंकी हवा देता है और आँखसे जलाटकी नष्ट करता है ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मणोंके बैल दान देता है, उसकी सब देव तृप्ति करते हैं । वह सैकड़ों प्रकारके पाजों द्वारा यज्ञ करता हुआ भक्षिके भक्षे तूर रहता है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं द्रुवा वरीषाः कृणुते मनः । पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽर्चं पश्यते ॥ १९ ॥

वावः सन्तु प्रजाः सन्तस्थो अस्तु तनूचलम् । तत्सर्वमनु मन्यन्ता देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥

अयं पिपां इन्द्र इद्रिं दधातु चेतनीम् ।

अयं धेनुं सुदुषां नित्यवस्तां वर्यं इहा विपश्चितं पुरो दिवः ॥ २१ ॥

विश्वरूपो नमसो धयोषा ऐन्द्रः शुभ्यो विश्वरूपो न आगन् ।

आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥

उपेहोर्पर्वणासिन्गोष्ठ उयं इह नः । उप ऋषभस्य यदेव उपैन्द्र त्वं वीर्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ— ( ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं द्रुवा ) ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना ( मनः परीषः कृणुते ) मन भेद करता है । ( सः स्वे गोष्ठे ) वह अपनी गोशालामें ( अघ्न्यानां पुष्टिं अयं पश्यते ) गौओंकी पुष्टि देखता है ॥ १९ ॥

( वावः सन्तु ) गौमें हों, ( प्रजा सन्तु ) प्रजा ॥ ( अघो तनूचलं अस्तु ) भीरु शारीरिक बल हो । ( तत् सर्वं ) वह सब ( ऋषभदायिने ) बैल देनेवालेके लिये ( देवाः अनुमन्यन्तां ) देव अपनी अनुमतिके साथ देवे ॥ २० ॥

( अयं पिपां इन्द्र इद्रिं दधातु ) यह इन्द्र ( चेतनीं रायं दधातु ) चेतना देनेवाले धनको धारण करे । तथा ( अयं ) यह इन्द्र ( सुदुषां ) उग्रम होइये योग्य ( नित्यवस्तां ) सदाके साथ उपस्थित, ( वर्यं इहा ) वर्यमें इहका इहने योग्य, ( विपश्चितं धेनुं ) शलघुक्त भेगुको ( पुरः दिवः ) मेघ गुच्छके परेसे धारण करे ॥ २१ ॥

( विश्वरूपः ) लाल रंगवाला, ( नमसः ) आकाशसे ( ऐन्द्रः शुभ्यः ) इन्द्रके संबंधी बल धारण करनेवाला ( विश्वरूपः धयोषाः नः आगन् ) समस्त ऋषीसे पुक्त अन्नका धारण करनेवाला हमारे पास आया है । यह ( आयुः प्रजां च दायः च ) आयु, प्रजा और धन ( अस्मभ्यं दधत् ) हमारे लिए धारण करना हुआ ( पोषैः नः अभिलक्षन्तां ) पुष्टिके लिये हमें प्राप्त होवे ॥ २२ ॥

( इह अस्मिन् गोष्ठे ) यहाँ इस गोशालामें ( उप उप पर्वणं ) समीप यह और ( वः उपपुष्ट्य ) हमें प्राप्त हो । ( ऋषभस्य यत् रेतः ) वृषभका जो बीर है, हे इन्द्र ! ( त्वं वीर्यं उप ) यह तेरा बीर हमारे पास आजावे ॥ २३ ॥

अर्थ— जो ब्राह्मणोंको बैल दान करके अपना मन भेद करता है, वह अपनी गोशालामें बहुतसी पुष्ट गौयें देखता है ॥ १९ ॥

बैलका दान करनेवालेको देवोंकी अनुमतिके लिये मिलती है, प्रजा उत्पन्न होती है और शरीरका बल भी प्राप्त होता है ॥ २० ॥

यह प्रभु धैर्यशुक्ल गोरूपी धन हमें देवे । यह गुच्छके परेसे ऐसी गौ लाये कि जो उग्रम दूध देनेवाली, नियम बलके साथ रखनेवाली, विना कट दूध देनेवाली और स्वामीकी पहचाननेवाली हो ॥ २१ ॥

आकाशसे बैल देता आया है कि जो लाल रंगवाला, यशस्व, लम्बे रागसे कुत्त, लक्ष्यके देनेवाला है । यह हमें आयु, प्रजा और धन हमारे लिए देवे और हमें पुष्टि देवे ॥ २२ ॥

यह बैल इस गोशालामें रहे, हमारे पास रहे । इस बैलका जो बल है वह इन्द्रकी शक्ति है, यह हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

एतं यो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीभरत वशं अनु ।

मा नो हासिष्ट अनुषा सुभाया राबश्च पोषैरमि नः सचध्वम्

॥ २४ ॥

अर्थ— ( एत युवान् ए. प्रतिदध्मः ) इस युवाको हम आपके द्विपु समर्पित करते हैं, ( अत्र तेन क्रीडन्तीः भरत ) यहा उसके साथ खेलती हुई विष्णो और ( धम्यान् अनु ) इच्छित स्वार्थोंके प्रति जानो । हे ( सुभाया ) भाग्यवुक्त गौयो ! ( अनुषा नो हासिष्ट ) जन्मके साथ हमारा साथ न करो, ( च पोषैः रायः ) दुष्टियोंके साथ रहनेवाले धन ( न. अभिसचध्वम् ) हमें दो ॥ २४ ॥

आध्याय— इन गौयोंके पास हम इस बैलको बांधते हैं । इसके साथ ये गौयें खेलें, घूँदें और विचरें । जहा बांधे यहा घूमें । गौयें हमारा साथ न करें, हमारी पास रहें । पुष्ट हों और हम सबको पुष्ट करें ॥ २४ ॥



## बैल

### बैलकी महिमा

इस लूकमें बैलकी महिमाका वर्णन है । उद्यमसे उद्यम बैलका घासमें घाटन करनेसे कितने लाभ होते है इसका वर्णन इस लूकमें पाठ्य है—

साहक्यस्वयेव प्रापमः पयस्वान् । ( म १ )

“ हमाराँ ऐतनेसे और बर्तनेसे युक्त यह बैल है और यह ( पयस्वान् ) दूध देनेवाला है । ” पाठ्य यही आशय कोरे कि बैल दूध देनेवाला किस प्रकार हो सकता है । प्रथम और दूसरे मन्त्रमें इस बैलकी ( पयस्वान् ) दूधवाला कहा है । अतः इस वर्णनमें उक्त है । बैसा बैल होता है बैसा उसकी गौरव सदाकिस दूध श्रुताधिक होता है । अर्थात् गौमें दूध उत्पन्न करनेकी शक्ति बैलपर निर्भर है । कई जातिके बैल कम दूध देनेवाली सत्तान पैदा करते हैं और कई जातिके बैल विशेष दूध देनेवाली सत्तान उत्पन्न करते हैं । अतः यदि अधिक दूध देनेवाली गौयें उत्पन्न करानेकी इच्छा हो, तो अधिक दूध देनेवाली गौयोंके साथ उस जातिका बैल रखना चाहिये कि जो अधिक दूध देनेवाली जातिका हो । ऐसी गौयें और ऐसे बेल एक स्थानपर रखनेचाहिए । अर्थात् कम दूध देनेवाली जातिके बैल अधिक दूध देनेवाली गौयें साथ कदापि नहीं रखना चाहिये क्योंकि इससे उत्पन्न होने वाली गौका दूध घट जायगा । अतः २४ वें मन्त्रमें कहा है—

एतं यो युवानं प्रतिदध्म तेन अत्र क्रीडन्तीभरत वशं अनु । ( म २४ )

“ इस युवा बैलको गौयोंके साथ रखते हैं, इसके साथ ये गौयें खेलें और इष्ट प्रदेशमें विचरें । ” अर्थात् यह फलासी जातिका बैल है और ये फलासी जातिका गौयें हैं, जिन गौयोंका संवध रखा करवा चाहते हैं । इस संवधसे विशेष प्रकारकी सत्तान पैदा होगी । इस प्रकार गौयोंमें भी किसी भी गौका किसी भी बैलके साथ संवध होना इष्ट नहीं है । विशेष जातिकी गौके साथ विशेष जातिके बैलका ही संवध होना अर्थात् है । गौयोंमें जातिका सकार होने देना कदापि युक्त नहीं है । यदि भिन्न जातिमें संवध होना है तो उक्त जातिवाले नरके साथ संवध हो और मीन जातिवाले नरके साथ सम्बन्ध न हो । यदि दूध बढ़ानेकी इच्छा हो तो अधिक दूध देनेवाली जातिके बैलके साथ गौका सम्बन्ध हो, यदि बाहक जातिवाले बैल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो उद्यम बाहक जातिवाले बैलके साथ सम्बन्ध हो । गौयोंके आन्दरकी उप जातियोंकी भी रक्षा करना योग्य है और अत्यन्त विशेष जातिकी ही उत्पन्न करनेका परत होना चाहिये । जातिसंकर होनेसे गुणोंकी न्यूनता होती है और जातिकी शुद्धता रहनेसे गुणोंका संवर्धन हो जाता है । इस लूकके इस तरह गौयोंकी जातियोंकी रक्षा करके अथवा अनुलोम सम्बन्धसे उस नरके साथ सम्बन्ध रखके गौयोंका संवर्धन करनेका उपदेश है अतः बैलके देखमें दूध बढ़ानेका गुण है, यह बात कही है । इसका विचार पाठ्य करे । अस्तु, यह बैल—

उत्तमानु विभ्या रुषानि विभन् । ( म १ )

“ नदीके किनारोंपर यह बैल अपने विविध लूकोंके धारण

करता है।" अर्थात् यह नदीके किनारेपर रहकर घास आदि खाकर वधेष्ट पुष्ट होकर विचरता है और गौवर्मे विविध प्रकारके अपने रूपोंका आधान करता है। यदि यह खा पी कर पुष्ट न बने, तो उत्तम संग्रह निर्माण करनेमें असमर्थ होगा। इसलिये साइको महा पुष्ट बनाना चाहिये इस प्रकार—

उत्तियः तन्तुं आतात । ( म १ )

"अपने प्रशान्तुको फैलाता है।" अर्थात् गौवर्मे गर्वा-  
धान करके उत्तम संग्रह उत्पन्न करता है। यही रीति है कि जिससे गौवर्मे और बैलेंका उत्तम निर्माण हो सकता है। ऐसे उत्तम जालिके बैल—

वाग्रे भद्रं शिक्षन् । ( म १ )

"वाग्रेके लिए कल्याण देते हैं।" जो अनुपम ऐसे उत्तम बैल आपावर्को दान देता है उसका कल्याण होता है। अर्थात् आपावर्, ब्राह्मण आदिके पास बहुत शिष्य होते हैं, मद्यः उनके आश्रमोंमें अधिक दूध दूधेशाली गौवर्मे हैं, जो बहादे ब्रह्मचारी दूध पीकर पुष्ट रह सकते हैं। यह ऐसे उत्तम बैल और उत्तम गौवर्मेको ऐसे आपावर्को देना कल्याणकर है। इस सूत्रमें इस प्रकारके दानके शिष्ट प्रेरणा इस तरह की है—

सदृशं स एकमुखा ददाति

यो ब्राह्मणः श्रमममाहुहोति । ( म ९ )

जिन्मन्त्रि विभ्ये स देया

यो ब्राह्मणः श्रमममाहुहोति । ( म. १८ )

ब्राह्मणेभ्यः श्रमं दत्त्वा वरीयः कुरुते मनः ।

( म. १९ )

तत्सर्पमनुमन्यन्तां देयाः श्रममदायिने । ( म २० )

"जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मणको बैल समर्पण करता है वह एक रूपमें हजारों दान करता है। उसको सब देव संतुष्ट करते हैं जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मणके घरमें बैलका समर्पण करता है। ब्राह्मणोंको बैल दान देकर मन प्रेष्ट बनता है। जो बैलका दान करता है उसके लिए सब देव अनुकूल होते हैं।"

विद्वाद्, ज्ञानी, सदाचारी आपावर्को उत्तम बैल दान करनेकी प्रेरणा इस सूत्रमें की है। इसका तात्पर्य पूर्व स्वास्म्ये कैला बताया है वैसा ही समझना चाहिये। यही नियम महा-  
भारतमें निम्नलिखित रीतिसे स्पष्ट किया है—

दत्त्वा धेनुं सुमतां कांस्यदोहां

कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।

यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या-

स्तवद्वर्पाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ॥ ३३ ॥

३८ ( अथर्व. भा. ३ पु. हिन्दी )

तथाऽनसृवाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय

वान्तं धुर्यं वलवन्तं युवानम् ।

कुलानुजीव्यं वीर्ययुक्तं वृहन्तं

मुदके लोकांस्तस्मिन्तान्पुनरुदस्य ॥ ३४ ॥

गोपु क्षान्तं गोशल्पं कृतं

वृक्षिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।

वृद्धे म्लाने संप्रभे वा महाहृ-

रूप्यर्धे वा लोम्यहेतोः प्रसूत्याम् ॥ ३५ ॥

गुरवर्षे वा यावत्पुण्याभिपूजां

मां वै दातुं देशकावोऽपिशिष्टः ।

( म भा अनुवा. म ३१ )

"इस करनेके शिष्ट गौ देखी हो कि जो उत्तम स्वभाव-  
वारी, बड़े कांस्यके बर्तनमें पिसका दोहन होता हो, जिसके  
कले उत्तम होते हो, जो न भगती हो। इसी प्रकार ब्राह्म-  
णोंको दान करनेके लिए योग्य बैल पोसा दोनेवाला, उत्तम  
वस्त्राव, युवा, वीर्ययुक्त, बड़े शरीरवाला हो। ऐसे बैलका  
दान करनेवालेको स्वर्गदाम होता है। गौ ऐसे विशालको  
देनी चाहिये कि जो गौका मद्य हो, गोशल्प हो, गौके  
निषर्षमें कृच्छ्र हो, वृक्षिग्ल हो। उसके शिष्य उत्तम गौ  
दान देवे।" इस रीतिसे महाभारतमें गौदान और 'रूपम  
दानका विषय कहा है। हरएक ब्राह्मण गौका दान ऐतैला  
अधिकारी नहीं है। इस विषयमें महाभारत और अथर्ववेदमें  
सूत्रोंमें बहुत नियम हैं, उनका विचार पाठक अवश्य करें—

असदृशस्य पापाय लुब्धायावृतपादिने ।

हृष्यकण्ठयव्यपेतस्य न देया गोः कर्षणम् ॥ १५ ॥

भिक्षवे यद्वपुश्चाप धोत्रियायाहिताग्नेये ।

दत्त्वा दशगणां दत्ता कोऽरुनाज्योत्पुष्टमाह ॥ १६ ॥

( म भा अनुवा. म ३९ )

"दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यवादी, हृष्यकण्ठ न देने  
वालेको कभी गौ नहीं देनी चाहिये। भिक्षापर जीविका  
निर्वाह करनेवाले, बहुत पुत्रवाले, वेदज्ञानी, बलिहारीको  
गौदान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है।" इस प्रकार महाभारतमें  
वर्ण्य है। यह देखतेसे पता लगता है कि विद्वाद् सदाचारी  
आपावर्को ही गौ दान करना योग्य है। केवल ब्राह्मणद्वारमें  
उत्पन्न होनेसे गौदान लेनेका अधिकारी नहीं हो सकता।  
यदा अथर्ववेदमें बन्वत गौ कहा है देखिये—

यो ददाति शतौद्वयम् । ( अथर्व. १०।१।१५, ११० )

ब्राह्मणेभ्यो यज्ञां दत्त्वा शर्वालोकांस्तमश्नुते ।

( म. १०।१।१३३ )

आपो देवीर्मधुमतीर्धृतदक्षुतो  
ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक्सादकामि ॥

( अ. १-१५/२० )

‘सतीदना गौका दान करता है। ब्राह्मणोंको ब्रह्मा गौ दान करनेसे सब श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणोंके हाथोंपर दानका उदक दृक् दृक् छोड़ता हूँ अर्थात् दान करता हूँ।’ इन मंत्रोंसे स्पष्ट बोध होता है कि ब्राह्मणोंको गौदान करना चाहिये। वही विचार करना चाहिये कि कौनसे ब्राह्मणको इस प्रकार गौका दान करना चाहिये। निम्न-लिखित मंत्रोंसे इसका उत्तर मिलता है—

शिरो यशस्य यो विधात्स यशं प्रतिपृक्षीयात् ।  
अ एषं विधात्स यशं प्रतिपृक्षीयात् ॥  
य एषं पितुषे यशं वृत्स्ते यतास्त्रिविधं दिवः ॥  
सा यशो वृत्पुतिप्रदा ॥

( अथर्व. १-१०/१९; १०; ३२; २८ )

‘जो यशके शिरो अर्थात् मुख्य भागको छीक प्रसार जानका है वह गौका दान लेवे। जो इस ज्ञानसे युक्त है वह गौका दान लेवे। जो इस प्रकारके ज्ञानोंको गौका दान करते हैं वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं। अन्वोंको अर्थात् जो इस ज्ञानसे युक्त नहीं हैं उनको गौका दान नहीं देना चाहिये।’

इन मंत्रोंमें विशेष ज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी गौका दान करना योग्य है ऐसा स्पष्ट कहा है। इसलिए ब्राह्मणोंको गौदान करनेमें कोई पक्षपात नहीं है। जो ब्राह्मण बाह्यके मनुष्योंको ज्ञान देता है और जो धर्मकी मूर्ति है, उसको उत्तम गौओंका दान करना योग्य है। ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न सभी मनुष्योंको कदापि गौओंका दान करना योग्य नहीं है। गौके और बैलके हानके विषयमें यही समाज उप-देश है।

अर्पा यो अग्रे प्रतिमा यमृत

प्रभुः सूर्यस्मै पृथिवीय देवी । ( मं. २ )

‘बैलकी उपमा केवल मेघकी है, यह सबका अनु है और देवी पृथ्वीके समान यह सबका उपकारक है।’ जिस प्रकार जलदान करनेसे मेघ सबको जीवन देता है और अन्न देनेके कारण पृथिवी हेतु होता है, उस प्रकार बैल भी अन्न उत्पन्न करता है, कृषिको साधक है और गौके द्वारा अमृत रूपी जीवनरस देता है। इसलिए मेघ और बैल समानतया उपकारक हैं। अतः बैलको वेदमें मेघोंकी उपमा दी है। यह बैल हमें—

साहच्ये पोषे अपि नः कृणोत । ( मं. २ )

“इजार्तो प्रकारकी पुष्टिमें रहे।” अर्थात् हमारा उत्तम रीतिसे सहायक बने। इनके भागे मंत्र ३ और ४ में बैलके गुणोंका उत्तम वर्णन है यह अति स्पष्ट है। पंचम मंत्रमें ( सोमस्य मक्षः ) सोमका अन्न बनादेका वर्णन है। सोमरसके साथ दूध मिलातेसे उत्तम पेय होता है, ऐसा अन्यत्र वेदमें कई स्थानोंमें कहा है। उसी सोमके अन्नका यहाँ उल्लेख है। ( गोपधीनां रसः ) औरधियोंके रसके साथ यावके दूध पीनेकी यह वैदिक रीति यहाँ देखने योग्य है। बैलके कारण गौमें दूध उत्पन्न होता है, इसलिए इस पेयका हेतु बैल है ऐसा यहाँ कहा है, वह बात युक्तियुक्त है। यह बैल—

सौमेन पूर्णं कलशं विमर्ति । ( मं. १ )

“सोमरससे भरे हुए कलशको धारा करा दे।” यह अनुत्तर रसका कलश गौका स्तन या कष है, जिसमें विपुल दूध रहता है। यावका दूध भी सोमरसजिते युक्त होता है, वह सोमरसजि सोमादि शुद्ध द्रव्यविषयोंके भक्षणसे गौमें उत्पन्न होती है। इस रीतिसे देका आप जो गौ सोमरसका कलश धारण करती है और यह बैल गौके अन्दर इस सोमरसको धारण करता है, वह याव स्पष्ट होजाती है। इस प्रकार यह सोमरसका आधार बैल—

इन्द्रस्य रूपं यसावः । ( मं. ७ )

“इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।” यह बैल इन्द्रकी शक्तिको अपने अन्दर धारण करता है, इसीछिद्र इसके—

आज्यं विमर्ति पृतमस्य रेतः

साहच्यः पोषस्तमु पश्ममाहुः । ( मं. ७ )

“गौका धारक, गौरीका स्थान और इजार्तो प्रकारकी पुष्टियां देनेवाला करते हैं।” यदि यह बैल गौमें कुछ अधिक उत्पन्न करनेका हेतु है, तो यही धी और जीर्णका वर्णन भी निश्चयसे है, क्योंकि जो दूधका बढ़नेवाला है यही जीर्णका बढ़नेवाला होता है। गौके दूधको बैलक प्रयोगमें ( सक्तुं शुकरं स्वादु ) रीति जीर्ण बढ़नेवाला कहा है। इजार्तो अन्य उपायोंसे जो शरीरका पोषण होता है वह इस अर्थात् गौके दूधसे हो सकता है। यह सामर्थ्य यावके दूधमें है। गौका और बैलका इतना महत्त्व होनेसे इसका काम्यमय पालन इस सूक्तमें अति किया है। इसके द्रव्यक अथर्ववेदमें देवताका कंठ है यह वात मं. ८ से मं. १९ तक कही है। प्रत्येक मनुष्यमें

किस देवताका भंडा है यह वर्णन देवतासे गौका और बैलका शरीर देवतामय है, यह बात स्पष्ट हो जाती है। मानो गौका दूध देवतागोका सार है। यहां शब्द विचार करें कि वेदने गौके दूधका जो दूधना मादात्म्य वर्णन किया है वह इसलिये कि वैदिकधर्मी लोग गावका ही दूध विधि और गावका ही बी भादि सेवन करें। बैलका दूध कभी न विनं।

॥॥ वे मंत्रमें कहा है कि यह बैल संयोगसे राजासौकर मान करता है और आँखसे अकलका मान करता है। यद्यपि यह आलंकारिक वर्णन है, तथापि यह सत्य है। बैलके मानव आतिथर होने अनंत उपकार है कि उनका गणार्थ वर्णन करना भरोभव है। राजस मासक बैलका वर्णन सत-पथ बाह्यमें इस प्रकार आया है—

अनोदं या फ्रमम आस। तस्मिन्सुतस्मिन् सप-  
त्तस्मिन् वाक्मयिदास। तस्य हृत्स्वसधाप्रयथा-  
वसुतस्मात्तानि सूधमानानि यन्ति। ते ह्यसुराः  
सम्पदिरे पापं यत् नोऽयमृषभः सचते वयं

न्यिमं दुग्धुषामिति० ॥ (स० मा० १)

"तनुका एक बैल था, उसमें भसुरों और सरसोंकी नालक बाणो प्रविष्ट हुई थी, अतः उसके घासमें भसुर और राजस अर्चित होते हुए बट होजाते थे। वे भसुर मिलकर विचार करने लगे कि, 'यह बैल बड़ा पापी है, इसका कैसा नाश करें' इत्यादि। यह सब वर्णन आलंकारिक है। इससे पता चलता ॥ केना है कि बैलमें भसुरनाशक शक्ति है।

१८ वे मंत्रमें बाह्यको बैल दान करनेका महान् गुण कहा है। यह एक दान संकडों दानोंके समान है यह कथन भी विशेष मननीय है। आगेके तीन मंत्रोंमें बैलके दानका महान् वर्णन किया है, इस विषयमें इससे पूर्व बहुत लिखा गया है। इसी प्रकार अन्तिम तीन मंत्रोंमें बैलकी ऐश्वरी शक्तिका वर्णन है, ऐसे बैलको गौबोंके साथ रखनेका व्यव-  
हार अधिक मंत्रमें किया है। ये सब विचार गौ और बैल का महान् वर्णन कर रहे हैं।

## गौशाला

कां. ३, सू. १३

(भाषि—प्रजा। देवता—गावदेवता गोदेवता।)

सं वो गोष्ठेन सुपदा सं दृष्या सं सुधृत्वा। अहर्वातस्व यशाम् देनां वः सं सृजामसि ॥ १ ॥  
सं वः सृजत्स्वर्मा ॥ पूषा सं बृहस्पतिः। समिन्द्रो वो धनंजयो मयि पुष्पतु यवसु ॥ २ ॥

अर्थ—हे गौबो ! (वः सुपदा गोष्ठेन सं) तुमको उत्तम बैलके गोष्ठ गोशालासे पुनः करते हैं, (दृष्या सं) उत्तम गल्लेसे पुनः करते हैं और (सु—मूल्या सं) उत्तम रहने सहनेसे अथवा उत्तम प्रजननसे पुनः करते हैं। (यत् महर्जोतस्य नाम) जो दिनोंमें ब्रेष्ठ यत्न मिल जाय (तेन वः संसृजामसि) उससे तुमको पुनः करते हैं ॥ १ ॥

(अयंमा वः संसृजतु) अयंमा तुमको उत्तम करे, (पूषा सं, बृहस्पतिः सं) पूषा और बृहस्पति भी तुम्हें उत्तम करे। (यः धनंजयः इन्द्रः सं सृजतु) जो धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र है वह तुमको धनसे सपुनः करे। (यत् वसु) जो धन तुम्हारे पास है उसे (मयि पुष्पतु) मुझमें तुम पुनः करो ॥ २ ॥

भावार्थ—गौबोंके लिये उत्तम प्रशाल और स्वच्छ गोशाला बनानी चाह। गौबोंके लिये उत्तम गल गौबोंको दिया जाय, तथा गौबोंके उत्तम गुणगुण संरक्षण उपकरण बनानेकी दृष्टता सदा रखी जाय। गौबोंके दूधना प्रेम किया जाय कि दिनोंके समय गौके गोष्ठा उत्तमसे उत्तम पदार्थ प्राप्त करकर वह उनको दिया जाय ॥ १ ॥

अयंमा, पूषा, बृहस्पति तथा धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र भादि सब देवताएँ गौबोंकी पुष्टि करे। तथा इन्द्र गौबोंके गोष्ठा रस मिल सकना है ॥ दूध मेरी पुष्टिके लिये मुझे मिले ॥ २ ॥



संजग्माना अभिभूयसीरस्मिन्गोष्ठे कटीपिणीः । विघ्नतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥  
 इहैव गाव एतनेहो शकैव पुष्यत । इहैवोव प्र जायन्मं मयि सुहानमस्तु ॥ ४ ॥  
 शिवो वो गोष्ठो भवतु शरिशकैव पुष्यत । इहैवोव प्र जायन्मं मया वः सं सृजामसि ॥ ५ ॥  
 मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पौषदिष्णुः ।  
 रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुष वः सदेम ॥ ६ ॥

अर्थ-- ( आसिन् गोष्ठे संजग्मानाः ) इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, ( कटीपिणीः ) गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली तथा ( सोम्यं मधु विघ्नतीः ) शान्त भयुरास-दूध-को चारण करती हुई वे गौवं ' तुम ( अभिभूयसीः ) निर्भय होकर ( अन्- अमीयाः उपेतन ) बीरोग अवस्थामें हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

हे ( गायः ) गौसो ! ( इह एव पतन ) यहीं आओ और ( इहो शक इव पुष्यत ) यहां सागरे समान उठ होओ ( उत इह एव प्रजायध्वं ) और यहींपर बच्चे उत्पन्न करके, बचो । ( यः संजानं मयि अस्तु ) आपका लगन-प्रेम-मुहूर्तमें होवे ॥ ४ ॥

( वः गोष्ठः शिवः भवतु ) तुम्हारी गोशाला तुम्हारे लिये हितकारी होवे । ( शरि-शका इव पुष्यत ) शालिकी शाकके समान उठ होओ । ( इह एव प्रजायध्वं ) यहींपर बच्चा उत्पन्न करो और बचो । ( मया यः संसृजामसि ) अपने साथ तुमको भ्रमणके लिये के जाता हूँ ॥ ५ ॥

हे ( गायः ) गौसो ! ( मया गोपतिना सचध्वं ) मुझ गोपतिके साथ मिली रहो । ( यः पौषदिष्णुः मयं गोष्ठः ) तुमको मुझ करनेवाली यह गोशाला यहां है । ( रायः पोषेण बहुलाः भवन्तीः ) शोभाकी वृद्धिके साथ बहुत बढ़ती हुई और ( जीवन्तीः यः जीवाः उपसदेम ) जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ-- उत्तम खादरूपी गोबर उत्पन्न करनेवाली, दूध जैसा मधुर रस देनेवाली, बीरोग और निर्भय स्थानपर विचरनेवाली गौवं इस उत्तम गोशालामें मान्य निवास करें ॥ ३ ॥

गौवं इस गोशालामें आवें, यहां बहुत पुष्ट हों और यहां बहुत उत्तम संजान उत्पन्न करें और गौबोंके स्वामीके ऊपर प्रेम करती हुई मानदसे रहें ॥ ४ ॥

गोशाला गौबोंके लिये कल्याणकारिणी होवे । यहां गौवं पुष्ट होवें और संजान उत्पन्न करके बचें । गौबोंका स्वामी स्वयं गौबोंकी व्यवस्था ऐसे ॥ ५ ॥

गौवं स्वामीके साथ मानदसे मिलजुल कर रहें । यह गोशाला अत्यन्त उत्तम है इसमें रहकर गौवं पुष्ट हों । अपनी शोभा और पुष्टि बढ़ाती हुई यहां गौवं बहुत बचें । हम सब ऐसे उत्तम गौबोंको प्राप्त करें और पालें ॥ ६ ॥

### गौ संवर्धन ।

यह सूक्त अत्यंत सुगम है, इसलिये इसके अधिक श्रवण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसमें जो बातें कहीं हैं उनका धाराधन यह है कि ' गौबोंके लिये उत्तम गोशाला बनाई जावे और वहां उनसे रहने सज्जे, घास, दाला, पानी आदिका सब उत्तम प्रबंध किया जावे । स्वामी गौबोंसे प्रेम करे और गौवं दृष्टांशसे प्रेम करे । गौवं निर्भयतासे रहें उनकी अधिक मर्यादा न किया जावे, क्योंकि अवधीत गौबोंके दूधपर नुरा परीक्षण होता है । सदातन उत्पन्न करानेके समय अधिक दूधवादी और अधिक बीरोग संजान उत्पन्न करानेके निषेधमें दक्षता रखी जाव । गौबोंकी पुष्टि और बीरोगताके विषयमें विशेष दक्षता रखी जाव अर्थात् गौबोंकी पुष्ट किया जाव और उनसे बीरोग संजान उत्पन्न हो ऐसा सुप्रबंध किया जाव । गोपालनका उद्यमसे उत्तम प्रबंध हो, किसी प्रकारकी उनमें बीमारी उत्पन्न न हो । उनके गोबर आदिसे उत्तम खाद बना कर, उस खादका उपयोग शादी बर्वात् चाल आदि चान्चल लिये किया जावे । '

## मायकी फालना

कां. ७, सू. ७५

(अर्थ— उपरिब्रजकः । देवता- मध्या ।)

प्रजापतीः सुयवेसे रुधन्वीः सुद्धा अपः सुप्रपाणे विवन्तीः ।

मा ये स्तेन ईदत मायशंसुः परि वो रुधस्व हेविर्वृणक्तु

॥ १ ॥

प्रदत्ता स्य रमेवयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्दुवेभिरत् ।

इमे गोष्ठमिदं सदे पृतेनास्मान्समुद्यत

॥ २ ॥

अर्थ— (प्रजापतीः) उत्तम ब्रह्मदेवी (सुयपते चरन्तीः) उत्तम वाताके लिये विचरती हुई (सु-प्र-पाणे विवन्तीः) उत्तम अणुस्वात्मपर सुद्धा उद्यमान करनेवाली गौरी हैं। हे गौरी ! (स्तेनः यः मा ईदत) और तुमपर शासन न करे। (मा अयशंसुः) धापी भी तुमपर कुकृत न करे। (रुधस्व हेतिः यः परि वृणक्तु) रजका सब तुम्हारी रक्षा करे ॥ १ ॥

हे (रमेवयः) आनन्द देवताली गौरी ! (प्रदत्ताः स्य) अपने विश्वसंस्थाको जलनेवाली होदी। (संहिता विश्वनाम्नीः देवीः) इकट्ठी हुई बहुत नामवाली दिव्य गौरीं तुम (देवेभिः मा उप यत) दिव्य ब्रह्मेश साथ मेरे पास आओ। (इमे गो-स्थ, इवै नदी) इस गोष्ठानको और हम वारको तथा (अस्मान्) हम सबको (पृतेन मे उद्यत) पीले धुक करो ॥ २ ॥

भावार्थ— गौरी उत्तम पास खानेवाली और सुदृढ पीनेवाली हो। उनके बहुत बचने हो। कोई जोर भीर पापी उनकी अपने आधीन न करे। महावीरके साथ उनकी रक्षा करे ॥ १ ॥

गौरी हमें आनंद दे। ये अपने विश्वसंस्थाको पढ़ावें, मित्रकर रहें, अनेक नामवाली दिव्य गौरी अपने ब्रह्मेश साथ हमारे पास आवें। और हमें भरपूर पी दें ॥ २ ॥

इसमें भी गोपालके आदेश दिने हैं वे अत्यन्त रहने योग्य हैं।

## गौको समर्थ बनाना

कां. ७, सू. १०४

(अर्थ— मया । देवता- आत्मा ।)

कः पृथि पेनुं धरणेन दुष्तामर्थवेगे सुदुपां नित्यवत्साम् ।

मृहस्पतिना सुरुपं जुपाणो यथावशं तन्यः कल्पयाति

॥ १ ॥

अर्थ— (यरणेन अधवेगे दुष्तां) बलसे द्वारा अपराध अपराध निवृत्त कोपों की दी हुई (सुदुपां नित्यवत्साम्) पृथि पेनुं) मुझसे दुहनेयोग्य बलके साथ रहनेवाली मित्रि रणवाली गौरी, (मृहस्पतिना सुरुपं जुपाणः) जानीके साथ मित्रता करना हुआ (यथावशं तन्यः कः=प्रजापतिः कल्पयाति) इच्छासे अनुसार शरीर विषयों मत्ताका वाहन करनेवाला ही समर्थ करता है ॥ १ ॥

यह एक अभीष्टक स्पष्ट नहीं हुआ। गौरी शरीरका सामर्थ्य बलसेका विषय इसमें है। गौरीका रूप देनेकी शक्ति तथा अन्य शक्ति बलसेका उपदेश इसमें है। प्रजाका वाहन जानीके साथ मित्रता करना हुआ गौरीको समर्थ करता है। यह भाषण पदां दीखता है। पृथु सब अर्थ धीक प्रकार समझते नहीं जाता है।)

## गीर्वाणश्चिन्ह

कां. ६, सू. १४१

(कृतिः-विधामितः । देवता-मथितौ ।)

वायुरेनाः समर्कस्वष्टा पोषाय धियताम् । इन्द्र आभ्यो अर्धं ब्रवद्भुतो भूम्ने चिकित्सतु ॥ १ ॥

लोहेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अर्कतामभिना लक्ष्म उदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एषा सहस्रपोषाय कृणुवं लक्ष्माभिना ॥ ३ ॥

अर्थ— ( वायुः एनाः सं आकरत् ) वायु इन गीर्वाको इच्छा करे, ( त्वष्टा पोषाय धियतां ) त्वष्टा पुष्ट करे, ( इन्द्रः आभ्यः अधिष्ठत् ) इन्द्र इनको पुकारे और ( रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु ) रुद्र इनकी इच्छा के लिये चिकित्सा करे ॥ १ ॥

( लोहेन स्वधितिना ) लोहेकी चाकससे ( कर्णयोः मिथुनं कृधि ) कर्णोंके ऊपर लोहेका चिन्ह कर । ( अभियनौ लक्ष्म अर्कतां ) मथितेच चिन्ह करे, ( तत् प्रजया बहु अस्तु ) वह सन्ततिसे साथ बहुत वित्तकारी हो ॥ २ ॥

( यथा देवासुराः चक्रुः ) जिस प्रकार देवा और मनुष्योंने चिन्ह किये ( उत यथा मनुष्याः ) और मनुष्य भी करते हैं, हे मथितौ ! ( यथा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुवं ) इसी प्रकार हजार प्रकारकी इच्छा के लिये चिन्ह करो ॥ ३ ॥

गीर्वाको इच्छा किया जावे। इनको मथोपित जल, पात आदि देकर पुष्ट किया जावे और इनको रोगरहित रक्षा जाये। लोहेके चाकसे गीर्वाको कर्णोंपर चिन्ह करना योग्य है। वहचानेमें सुविधा होती है। यह चिन्ह कानवर तब वेशोंमें किया जाता है और इससे बहुत लाभ होते हैं। वेदमें अन्वय भी गीर्वाको कर्णोंपर चिन्ह करनेका उल्लेख आता है।

## गीर्वाणश्चिन्ह

कां. ६, सू. ७०

(कृतिः-कल्पावतः । देवता-अभ्यतः ।)

यथा मांसं यथा सुरा यथाशा अग्निदेवने । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्त्यते मनः ॥

एषा ते अघ्न्ये मनोऽर्धं वृत्ते नि हन्यताम् ॥ १ ॥

अर्थ— ( यथा मांसं ) जिस प्रकार [ मांसमोक्षिका ] मांसमें, ( यथा सुरा ) जैसे [ चरापीका ] सुरामें ( यथा अग्निदेवने अग्नाः ) जैसे [ जुगारिका ] जुगके पांसोंमें और ( यथा वृषण्यतः पूराः ) जैसे बकपार पुरुषका ( मनः स्त्रियां निहन्त्यते ) मन भीमें रत रहता है। हे ( अघ्न्ये ) गौ ! ( एषा ते मनाः वृत्ते अग्नि नि हन्यतां ) इसी प्रकार वेश मन बचनेमें रक्षा रहे ॥ १ ॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमृच्छते । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निह्न्यते मनः ॥

एवा तं अह्न्ये मनोजघि वृत्ते नि ह्न्यताम्

॥ २ ॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निह्न्यते मनः ।

एवा तं अह्न्ये मनोजघि वृत्ते नि ह्न्यताम्

॥ ३ ॥

अर्थ— ( यथा हस्ती पदेन ) जैसे हाथी अपने पाँवको ( हस्तिन्याः पदं उच्यते ) हाथिनीके पाँवके साथ जोड़ता है, और जैसा बछवान् पुरुषका मन स्त्री पर रख होता है, उसी प्रकार गौका मन चरने पर स्थिर रहे ॥ २ ॥

( यथा प्रधिः ) जैसे ओढ़का हस्त एक पर रहता है, ( यथा उपधिः ) जैसे एक आगेपर रहता है और ( यथा नभ्यं प्रधौ अधि ) जैसे एकनाभि आगेके बीच होती है, जैसे बछवान् पुरुषका मन स्त्रीमें रख रहता है, इसी प्रकार गौका मन उसके चरनेमें स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार गवर्मांस, तुला, शीघ्रसन आदिमें साधारण मनुष्यका मन रमता है, उसी प्रकार अपने मनुष्यका मन श्रेष्ठ कर्ममें रमे । गौका मन अपने चरनेमें रमे । गौ नाम इन्द्रियोंका माना जाय तो हर एक इन्द्रियकः बड़ा उसका कर्म है । उस धुन कर्ममें रहें ।



## गौ-रस

कां. २, सू. २६

( कविः— सविता । देवता— पशवः । )

एह पन्तु पशवो ये परैपुर्वापुयैकां सहचारं जुजोषं ।

स्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदासिन्धान्गोष्ठे संविता नि यच्छतु

॥ १ ॥

इमं गोष्ठं पशवः संस्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रज्ञानम् ।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेपामाङ्गमुषो अनुमते नि यच्छ

॥ २ ॥

अर्थ— ( ये परा-ईयुः ) जो परे बड़े गये हैं । ( पशवः इह सायन्तु ) पशु यहाँ आगये । ( येषां सहचारं यायुः जुजोषं ) उनका साथकर्यं वायु करता है । ( येषां रूपधेयानि स्वष्टा ये ) जिसके रूप स्वष्टा जानता है । ( गविमन् गोष्ठे तान् सविता नि यच्छतु ) इस गोतालयमें उनको सविता बाँधकर रखे ॥ १ ॥

( पशवः इमं गोष्ठं संस्रवन्तु ) पशु इस गोतालयमें मिलकर जा खेंच । ( बृहस्पतिः प्रज्ञानम् आनयतु ) बृहस्पति आनता हुआ उनको के भावे । ( सिनीवाली येषां अग्रं यानयतु ) गिनीवाली इनके अग्रभागको के भावे । ( अनुमते ) अनुमते ! ( आ जामुषः नि यच्छ ) आनेवालोंको नियममें रख ॥ २ ॥

भाषार्थ— जो पशु धुन जलवायुमें अग्रगण्ये होते गये हैं वे मिलकर पुनः गोतालयमें जाजेंच । इनके चित्तोंको स्वष्टा जानता है । सविता उनको गोतालयमें बाँधकर रखे ॥ १ ॥

सब पशु मिलकर गोतालयमें जाजेंच, आनेवाला बृहस्पति उनको के भावे । गिनीवाली अग्रभागको के भावे और अनुमते शेष आनेवालोंको नियममें रखे ॥ २ ॥

सं सं संवन्तु पशवः समन्थाः समु पूर्णाः । सं धान्यस्य वा स्फातिः संसाध्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समान्येन बलं रसम् ।

संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ

॥ ४ ॥

आ हरामि गवां क्षीरमाहर्षिं धान्यं रसम् । आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तंकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—(पशवः शब्दः च पुरुषाः सं सं सं स्यवन्तु) पशु, घोड़े और मनुष्य भी मिल जुलकर पकें। (या धान्यस्य स्फातिः सं) जो धान्यकी बगती है वह भी मिलकर पके। मैं (सं साध्येण हविषा जुहोमि) मिलानेवाले ऋषिसे हुक्म करता हूँ ॥ ३ ॥

(गवां क्षीरं ॥ सिञ्चामि) गौओंका दूध सिंचता हूँ। (बलं रसं आज्येन सं) गन्धर्वक रसको बीके साथ मिलावा हूँ। (अस्माकं वीराः संसिक्ताः) हमारे वीर लगे गये हैं। (मयि गोपतौ गावः ध्रुवा) मुझ गोपालनें गौबे स्थिर हों ॥ ४ ॥

(गवां क्षीरं आ हरामि) गौओंका दूध मैं हाव हूँ। (धान्यं रसं आहर्षिं) धान्य और रस मैं लाता हूँ। (अस्माकं वीरा आहृताः) हमारे वीर लगे गये हैं और (पत्नीः इदं अस्तंकं आ) पत्नी भी इस घरमें लापी गई है ॥ ५ ॥

भावार्थ—घोड़े आदि सब पशु तथा मनुष्य भी मिल जुलकर पके और रहें। धान्य भी मिलकर पके। सबको मिलानेवाले ऋषिसे मैं हुक्म करता हूँ ॥ ३ ॥

मैं गौबोंसे दूध लेता हूँ तथा गन्धर्वक रसके साथ बीको मिलाकर सेवन करता हूँ। हमारे वीरों और बालकोंको पढ़ी वेप दिया जाता है। इस कार्यके लिये हमारे घरमें गौबे स्थिर रहें ॥ ४ ॥

मैं गौबोंसे दूध लेता हूँ और गन्धर्वकबीजसे रस तथा धान्य लेता हूँ। अपने वीरों और बालकोंको इकट्ठा करता हूँ, घरमें परित्रवा भी लड़ि जाती है और सब मिलकर उक्त पीष्टिक रसका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

## गो-रस

### पशुपालन

घरमें बहुत पशु अर्थात् गौबें, घोड़े, बैल आदि बहुत पाले जायें। यह एक प्रकारका धन ही है। आज कल रथ-घोंको ही धन माना जाता है, परन्तु उपयोगकी दृष्टिसे देखा जाय तो गाय आदि पशु ही सच्चा धन है। इक्ष्वाकु पाण्डवा योग्य दृष्टिसे करनेके विषयमें बहुतसे आदेश इस सूक्तमें पहले दो मंत्रोंमें दिये हैं। आजकल प्रायः घरमें गौ आदि पशुओंकी पालना नहीं होती है, बल्कि किसीके घरमें एक दो गौएँ होंगी तो बहुत दुभा, नहीं तो प्रायः कोई भी नगरिक पशु पालता ही नहीं। नगरके लोग प्रायः दूध आदि मोल ही लेते हैं। रचना विज्ञान बढ़त जातेने कारण इस सूक्तके आदेश व्यर्थसे प्रतीत होंगे। परन्तु अविद्यालये अधि-योगेन प्राप्त द्रव्यों कीर्त होनी थी और वसी धनलये

अन्यान्त्र पशु भी बहुतसे होते थे। ऐसे घरोंके लिये वे आदेश समीप हो सकते हैं।

### भ्रमण और वापस आना

गाय आदि पशुओंको कुछ दायुमें भ्रमणके लिये लेजाना आवश्यक है, उनका प्रसन्न होनेका शिवा न तो उरक स्वास्व ठीक रह सकता है और न उनका दूध गुणकारी हो सकता है। इसलिये—

येषां सहचारं दायुः जुजोष । (मं १)

‘जिनका सहपर्यं जालू करता है’ यह प्रथममंत्रका वाक्य गौबोंके आलोचके लिये उनका कुछ दायुमें भ्रमण अवश्य आवश्यक है वह वाक्य बड़ा रदा है। तथा—

ये पशवः परा ईयुः ते इदं आपयन्तु ॥ (मं १)

'जो पशु भक्षणके लिये बसह मये हुए हैं वे मिलकर वापस आजायें।' इस मंत्रभागमें भी वही बात स्पष्टतासे कही है। पशु अपने स्थानसे मिलकर बाहर जाय और मिलकर वापस आजाय। आये पीछे रहनेसे उनको पुनः डूबना पड़ता है। इस कष्टसे बचानेके लिये सब प्राणु अन्नपूर्वक आच और स्रम दृष्टि वापस आजाय ऐसा जो इस मंत्रमें कहा है वह बहुत उपयोगी साधना है।

इसी प्रकार पशु होने वरु एक गोपालसे काम मई। यह प्रकृता। इस कार्यके लिये अपने अपने कार्यमें प्रवीण बहुतसे गीमल होने चाहिये। उनका कर्म सविज्ञा आदि नामोंसे इस सूत्रमें किया है—

- १ त्वष्टा येषां रुपाणि देह । ( मं. १ )
- २ सविता आस्मिन् गोष्ठे तान् विचरच्छतु । ( मं. १ )
- ३ बृहस्पतिः प्रजान् आनयतु ॥ ( मं. २ )
- ४ सिनीवाली येषां अन्न आनयतु । ( मं. २ )
- ५ अनुमतेः आजगमुषा विचरच्छतु । ( मं. २ )

इन मंत्रोंमें देवताओंके नाम प्रत्येक कार्यके लिये मान्य हैं। इन मंत्रोंके देवतावाचक अर्थ प्रसिद्ध ही हैं, पशु होनेसे मूल भावार्थ भी यहाँ देखिये—

- १ त्वष्टा—सूक्ष्म करनेवाला, कुशल कारीगर । ( त्वष्ट-तनुकरणे )
- २ सविता—देव । ( सु-प्रेरणे ) । कर्त्तव्यवाला ।
- ३ बृहस्पतिः—वातपद, ( बृहत् ) बड़ेका ( पति ) स्वामी । पुरोहित, निरीक्षक ।
- ४ सिनीवाली—( सिनी ) अन्नके ( वाली ) बरतने युक्त । भक्षणवाली थी ।
- ५ अनु-मतिः—अनुकूल मति रखनेवाली थी ।

इन पाँच देवतावाचक मंत्रोंके ये मूल सामर्थ्य हैं और इन मंत्रोंके साथ ही ये शब्द यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। ये मूल कार्य लेकर इन मंत्र भागोंका अर्थ देखिये—

" १ कुशल कारीगर गाव आदि पशुओंके आकारोंको जानना है । २ देवक इनको गीमलमें समर्पण निवेदन करने । ३ उनको जाननेवाला पशुओंको लाने । ४ भक्षणवाली की पशुओंके लाने चले । और ५ अनुकूल कार्य करनेवाली मानेवाले पशुओंके साथ चले ।

' यहाँ प्राणु वाजने के आदेश मिलते हैं। इनका विचार यह है—

' ( १ ) पशुओंके वापस कर्ममें एक ऐसा अधिकारी होने, कि जो पशुओंके सब कर्म जानना हो ।

( २ ) दूसरा कर्मकर्त्ता ऐसा हो कि जो निरीक्षण करने देखे कि सब पशु क्या स्थानपर आगये हैं वा नहीं, तथा उनका अन्य स्थानपानका संबंध सीक हुआ है वा नहीं ।

( ३ ) तीसरा निरीक्षक ऐसा होवे कि जो पशुस्वार्थ विचारको अपनी प्रकार जानेवाला हो, वही पशुओंको लाने के जानेका प्रयत्न देखे ।

( ४ ) जब पशु घरमें आजाय तो उनको स्थानपान देने-वाली की हो जो सबसे आगे चले, उनके साथ पशुओंको लेने योग्य सब हो ।

( ५ ) तथा उसके पीछे चलनेवाली पशुओंके अनुकूल कार्य करनेवाली पीछे पीछे चले ।

इस रीतिसे सब पशुओंका योग्य प्रबंध किया जाये । पुरोहिती अनेका विधा प्रेम पूर्वक उनका प्रबंध करती हैं इसलिये अस्मिन् दो कार्यमें विधाओंको नियुक्त करनेकी सूचना देनेसे ही है वह योग्य ही है ।

यहाँ तीनों और दूसरे तीनों वाली जाती हो ऐसे स्थानोंमें ऐसा सुयोग्य प्रबंध अत्यंत आवश्यक ही है। आसक्त यहाँ पशुओंका अभाव सा हो गया है वहाँ ऐसे बड़े प्रबंधकी आवश्यकता नहीं है, वह स्पष्ट ही है। यह मानककी प्रगति है जो हमें दुष्टिसे रहती है। तिम घरमें इस पाँच तीनों कर्मसे कम हो उस घरमें अनुकूल गोरस तथा पीरर कैरी दृष्टिसे होते हैं और तिम घरमें तीनों नहीं होयें, उस घरमें अनुकूल कैरी भरिल्ले होते हैं इसका विचार करनेसे गोपालनेके साथ अनुकूलताका संबंध किना प्रगति है इसका पता लग सकता है। यहाँ एक पीररे ही मनुका विचार हुआ । तृतीय मंत्रमें सबके मिलकर रहनेसे लाभ होगा यह बात कही है। पशु क्या और अनुकूल क्या सब मिलकर घरपर उपयोगी होकर अपनी दृष्टि करें, सब निष्कल प्राप्त करें अर्थात् वेही कार्य प्राप्तकी उत्पत्ति करें। प्राण प्रत्यक्ष, वनारसित और गोरस विपुल प्रमाणों प्राप्त करने उसके द्वारा अपनी दृष्टिको बढाने हुए अपनी उत्पत्ति करें । ( मं. २ )

### हृष और पोषक रस

हृष, हरी, मन्त्र, थी, द्रष्टा आदि सब प्रकार के सब तथा कर्मका पोषक रस विपुल प्रमाणों प्राप्त करने चाहिये और उनका लेकन भी पशुओंके प्रमाणों करना चाहिये, इस विषयमें मंत्र ४ और ५ स्पष्ट पशुओं द्वारा आदेश दे रहे हैं । इन मंत्रोंमें ' वीरः ' शब्द है, इस शब्दका अर्थ अर्ध प्रवीर है, सर्वत्र वेदमें इसका अर्थ, ' पुत्र, वाचक, मान '

भी है। वहाँ इन मंत्रोंमें 'पत्नी' के साथचर्के कारण यही अर्थ विशेषतः अर्थात् है।

'मै गोर्धोसि दूष हाता हु, वनस्पतियोंका बरकरार रख और धान्य लाता हु, पी भी लाया है। घरमें धर्म-पत्नियाँ हैं और बाहरसे भी इकट्ठे हुए हैं अथवा इष्ट मित्र वीर पुरुष भी जमा हुए हैं, इन सबको इच्छाके अनुसार यह सब साधयेप दिया जाता है।' (मं. ४-५)

इन दो मंत्रोंका यह भाव है। 'संस्तुता अस्मार्कं पीदाः' हमारे वीर या बाह्यशक्ति ऊपर यह रस सींचा गया, जिस प्रकार वृक्षोंमें जलसे मनुष्य भीग जाता है। उसी प्रकार बाह्यबोपर दूष, पी आदि सब रसोंकी वृष्टि की गई है। 'संस्तु' वादका अर्थ उच्चम प्रकारसे सिंचन करना, सिंचना है। बाह्यसे दूष, दही, मक्खन, पी, रस आदिमें पूरे पूरे भीग जाय इसका मोरस घरमें आदिये। इष्टपुरुष

को सब बाधकनी है। वैदिक धर्म वैदिक धर्मीयोंको यह उपदेश दे रहा है कि अपनी गृहस्थवस्था ऐसी करो कि जिससे घरमें इतना विपुल मोरस प्राप्त हो और उसका सेवन करके सब बाह्य इष्टपुरुष हों। मावकल नाना प्रकारकी योग्यताओं करनेका कारण ही यह है कि मोरस न्यून होनेके कारण मनुष्यमें जीवनशक्ति ही कम हो गई है। सब अन्न आरोग्य जीवनशक्तिकी वृद्धि होनेसे ही प्राप्त होगे। मोर-छाया, गोबर्धन तथा गोर्धोघन करनेकी किन्नरी आवश्यकता है और राष्ट्रीय किंवा जातीय जीवनको दृष्टिसे भी इस विषयकी किन्नरी आवश्यकता है यह विचारणीय है।

वैदिक आदेश व्यवहारमें कानेका विचार को छोड़ कर रहे हैं, उनको इस सूचना बहुत मदन करना योग्य है, क्योंकि यह आदेश ऐसा है कि हमारे व्यवहारमें छात्र ही काम होनेका प्रत्यक्ष अनुभव आवेगा।

## माघ और यज्ञ

कां. ७, सू. ७३

(कवि-अथवा। देवता-यमी, अधिवी।)

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तुतो पुर्मो दुसते वामिपे मधु।

ययं हि वां पुरुदमांसो अश्विना हवामहे सधमादेधु कारवांः

॥ १ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तुतो वां पुर्म आ मंथम्।

दुधन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दत्ता मदनन्ति वेधसः

॥ २ ॥

अर्थ—दे (वृषणी अभिनी) दोनों बरवान् अभिदेवो! (दिवा रथी अग्निः समिद्धः) प्रकारके रूप जैसे अग्नि प्रदीप्त हुआ है। यह (धर्मः तातः) लगी हुई गर्मी ही है। यह (वां इये मधु तुहते) आप दोनोंके लिये मधु रसका दान करना है। (ययं पुरु-दमांसः कारवाः सध-मादेधु वां दयामहे) हम सब बहुत धराले और कार्य करनेवाले पुरुष माघ साथ मिलकर आनंद करनेके समय तुम दोनोंको बुलाते हैं ॥ १ ॥

दे (वृषणी अभिनी) बरवान् अभिदेवो! (अग्निः समिद्धः) अग्नि प्रदीप्त हुआ है, (वां धर्मः तातः) आनंद लिये ही यह वृषण रहा है। इसलिये (आगतं) आओ। (नूनं इह धेनवः दुधन्ते) निश्चयसे यहाँ गौबे बुढ़ी जाती हैं। दे (दत्ता) दहीनीय देवो! (वेधसः मदनन्ति) जानी आनंद करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इसकी अग्नि प्रदीप्त हो चुकी है, गौका बोदन किया जाता है और हम सब कविज देवताओंको बुलाते हैं ॥ १ ॥

दे देवो! अग्नि प्रदीप्त हुई है, वृषण रहा है, हमलिये यहाँ आओ, यह गौबे बोढ़ी जाती है जिससे जानी आनंदित होते हैं ॥ २ ॥

स्वाहाकृतः शुचिर्दुषेयं यज्ञो यो अग्निर्नोऽभ्यसो देवपानः ।

तमु विमं अमृतासो जुपाणा गन्धर्वस्य प्रत्वास्ना रिहन्ति ॥ ३ ॥

यदुसियास्वाहुतं घृतं यपोऽयं स वाग्मश्विना आग आ गतम् ।

माध्वी धर्तारो विदयस्य सत्यतो तत्तं यमं पिबत रोचने दिवः ॥ ४ ॥

ततो वा यमो नक्षतु स्वहोता प्र वाग्मध्वपुंश्चरतु पर्यस्वान् ।

मघोर्द्विगधस्पाश्विना तुनाया धीतं पातं पर्यस उसियायाः ॥ ५ ॥

उप द्रव पर्यसा गोधुगोदया धर्मं सिञ्च पर्य उसियायाः ।

वि नार्कमरुपरसयिता वरेभ्योऽनुप्रवाणमुपसो वि रात्रवि ॥ ६ ॥

उप ह्ये सुदुधां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुव दौहदेनाम् ।

भेष्टं सुवं सविता सावित्रोऽभीक्ष्णो यमस्तदु पु प्र वीचत ॥ ७ ॥

अर्थ— ( यः अग्निर्नोः देवपानः यमसः यज्ञः ) जो अग्निदेवोंका देव जिससे रसपान करते हैं ऐसा यमसकपी पय है वह ( देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः ) देवोंके लिए स्वाहा किया हुआ है अतएव पवित्र है । ( यिथे अमृतासः स उ जुपाणाः ) सब देव उसीका सेवन करते हैं और ( तं उ गन्धर्वस्य आस्ना प्रत्यारिहन्ति ) उसीकी गंधर्वोंके मुक्ते पूजा भी करते हैं ॥ ३ ॥

हे ( अग्निर्नोः ) अग्निदेवो ! ( यत् उजियासु माहुतं घृतं पयः ) जो गौधोमें रखा हुआ घृतमिश्रित दूध है, ( अप सः वा भागा ) यह वह भागका भाग है, तुम दोनों ( आगतं ) आओ । हे ( माध्वी ) मधुरगन्धुक्त ( विदय-स्य धर्तारो ) पयके धारक, ( सत्यतो ) उत्तम पालको ! ( दिवः रोचने तत्तं यमं पिबत ) धुल्लोके प्रकाशमें क्या हुआ ॥ दूधस्वी लेन पीओ ॥ ४ ॥

हे ( अग्निर्नोः ) अग्निदेवो ! ( ततः यमः वा नक्षतु ) तथा हुआ वेगरूपी यह दूध तुम दोनोंको प्राप्त होवे । ( स्वहोता पयस्वान् अभ्यस्युः वा प्रचरतु ) हवनकर्मों भीर दूध लिये हुए अर्धयुं तुम दोनोंकी सेवा करे । ( तुनायाः उजियायाः मघोः गुग्धस्य पयसः ) इष्टगुह पीके हुए हुए मधुर दूधको ( धीतं पातं ) प्राप्त करो और पीओ ॥ ५ ॥

हे ( गोधुक् ) गायका दोहन करनेवाले ! ( पयसा ओर्प उपद्रव ) दूधके साथ अतिशीघ्र यहाँ भा, ( उजि-यायाः पयः धर्मं आसिञ्च ) गौका दूध धर्ममें रस और क्या । ( धरेष्यः सविता मार्कं वि अक्यत् ) भेष्ट सवित्र सुकपल स्वर्गपानको प्रकाशित कराया है और वह ( उपसः अनुप्रवाणं विप्राजति ) उपकारने समवन पश्चात् विशालता है ॥ ६ ॥

( सुहस्तः पतां सुदुधां धेनुं उपद्रवे ) उत्तम हाथवाला मैं इस मुखसे दोहनेबोध घेनुको मुलाया हूँ । ( उत गोधुक् पतां दौहत् ) और गायका दोहन करनेवाला इसका दोहन करे । ( सविता धेष्टं सचं नः सावित्र ) भेष्ट सवित्र यह भेष्ट मघ हमें देवे । ( अभीक्ष्णः धर्मः तत् उ सु प्रवीचत ) प्रदीप्त लेमरूपी दूध यह बतावे ॥ ७ ॥

भाषार्थ— यह वह देस है कि जिसमें देवतालोचन रसवान करते हैं और वे हृत्त पवित्र यज्ञका सेवन करते हैं और सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥

गौके दूधमें देवोंका भाग है, इसलिये इस यज्ञमें पपाओ और इस लिये हुए मधुर गोरसको पीओ ॥ ४ ॥

दे देवो ! यह क्या हुआ रस ॥ यह प्राप्त हो । गौके इस मधुर गोरसका पान करो ॥ ५ ॥

दे गौका दोहन करनेवाले ! दूध लेकर यज्ञमें आओ । गायका दूध कपाओ । हवन करो, भेष्ट सविताने यह सुसमय स्वर्ग मुहूर्त लिये मुला किया है ॥ ६ ॥

मैं दूध दोहनेमें मुला ॥ और गायका दोहनेके लिये मुलाया हूँ । दोहनेवाला इसका दोहन करे । सवित्रने इस भेष्ट रसको दिया है ॥ ७ ॥



हिहृक्पृन्ती वंसूपत्नी यस्मिन् वत्सपिच्छन्ती मन्सा न्यागन् ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्नयेयं सा वर्षतां महते सौमगाय

॥ ८ ॥

जुष्टो दम्ना अतिर्षिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्

विश्वो अग्रे अभियुजो विद्वत् शश्रूयतामा घरा भोजनानि

॥ ९ ॥

अग्रे शर्धं महते सौमगाय तव पुत्रान्युत्तमानि सन्तु ।

सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शश्रूयतामि विष्टा महसि

॥ १० ॥

सुयवसाङ्गोवती हि भूया अघो वृषं भगवन्तः स्याम ।

अद्वि वृणममपे विश्वदानीं पिबं शुद्धमुदकमाचरन्ती

॥ ११ ॥

अर्थ— ( हिहृक्पृन्ती वसुनां यस्तुपत्नी ) हीं हीं करनेवाली ऐश्वर्यका पालन करनेवाली ( मन्सा वत्सं पृच्छन्ती नि आगात् ) मनसे बछड़ेकी कामना करती हुई समीप भागई है । ( इयं अघ्नया अश्विभ्यां पयो दुहा ) यह गी दोनो अधिवृषोंके लिये दूध देवे और ( सा महते सौमगाय वर्षतां ) यह बड़े सौभाग्यके लिये बड़े ॥ ८ ॥

( वसूनां पिद्वान् अतिथिः दुरोणे जुष्टः ) दमन लिये दूध मनवाला यह शस्त्री अतिथि घरमें सेवित होकर ( न इमं यज्ञ उपयाहि ) हमारे इस यज्ञमें आवे । हे अग्रे ! ( विश्वो अभियुजो विद्वत् ) सब शत्रुओंका वध करे ( शश्रूयतां भोजनानि आभर ) शत्रुता करनेवालोंका भक्षण हमारे पास का ॥ ९ ॥

हे ( शर्धं अग्रे ) बछड़ा अग्रे ! ( तव उत्तमानि पुत्रानि महते सौमगाय सन्तु ) तेरे उत्तम तेज बड़े सौभाग्य बढानेवाले हों । ( जास्पत्यं सुयमं सं कृणुष्व ) क्षीररूप संवध उत्तम संपन्नपूँक होवे । ( शश्रूयतां महसि अभितिष्टा ) शत्रुता करनेवालोंका मुकाबला कर ॥ १० ॥

हे ( अघ्नये ) न मारने योग्य गी ! तू ( सु-पचस-अद् भगवती हि भूयाः ) उत्तम घास खानेवाली भाग्यशालिनी हो । ( अघा घयं भगवन्तः स्याम ) और इन भाग्यवान् हों । ( विश्वदानीं वृण अद्वि ) सब वृण भक्षण और ( आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब ) भक्षण करती हुई शुद्ध जल पीवे ॥ ११ ॥

भाष्यार्थ— हीं हीं करती हुई शर्धार्थ रक्षाही हुई, मनसे बछड़ेकी इच्छा करनेवाली गी यहाँ आई है । यह ब्रह्मणीय गी देवदेव लिये दूध देवे और बड़े सौभाग्यकी वृद्धि करे ॥ ८ ॥

यह इन्द्रियसंयमी अतिथि विद्वान् हमारे यज्ञमें आवे । हमारे सब शत्रुओंका नाश करके, शत्रुभोज भोग हमारे पास है आगे ॥ ९ ॥

हे देव ! जो तेरे उत्तम तेज है वह हमारा भाग्य बढावे । क्षीरुरसवर्धनं उत्तम नियममें रहे, अतिवमसे व्यवहार न हो । शत्रुता करनेवालोंका पराजय करे ॥ १० ॥

हे गी ! तू उत्तम घास खा और भाग्यवान् बन । तुझसे हम भाग्यवान् बने । पाव घास खावे और दुधर उभर भक्षण करती हुई शुद्ध पानी पीवे ॥ ११ ॥

## गाय और यज्ञ

### गौरक्षा

गीटी रक्षा कैसे की जाय इस विषयमें इस सूत्रके आदेश स्मरण रखने योग्य हैं । देखिये—

१ सूययम-अद्— उत्तम घास खानेवाली, अर्थात् घुरा घास भक्षण करे जो न मरनेवाली गी हो । गायके दूधमें खाव दूध पदार्थका साथ आवा दे, इसलिये यदि गाय

उत्तम घास खानेगी तो दूध भी मीरोग और पुष्टिकारक होगा । इसलिये यह आदेश स्मरण रखने योग्य है । साधा सा मनाही रोग प्राक्काङ्क्ष वापसके भक्षणके लिये दे जाते हैं और उस समय छोको मनुष्यका दूध-विष्टा भी मिलाने हैं । ऐसे पदार्थ क्षिणिकर उपपन्न हुवा दूध कैसा होगा ! निश्चय जो घुरे पदार्थ होंगे, जो दूध होंगे, उन सबका

परिणाम उस दूधपर होता और वह दूध रोगकरक होता।  
अतः यह वेदका सदेश गोपादन करनेवाले लोग नयन  
पानमें प्राण करें। (म ११)

२ शुद्ध उदकं पिबन्ती—शुद्ध जल पीनेवाली गौ हो।  
मधुर, मलिन, यदा, दुर्गन्धयुक्त अरु गौ न पीये। इसका  
कारण भी ऊपर दिये हुए के समान ही समझना चाहिये।  
(म ११)

३ आचरन्ती—भ्रमण करनेवाली। गौ दूध उधर  
कण्ठी प्रकार भ्रमण करे। गौ केवल घरमें बंधी नहीं रहनी  
चाहिये। वह सूर्यप्रकाशमें भ्रमण करनेवाली हो। सूर्यप्रकाश-  
में घूमनेवाली गौका दूध ही पीने योग्य होता है। (म ११)

४ यिभ्यश्चानां लूण भक्षि—गौ सदा लूण-वास-  
ही करे। दूसरे दूसरे पदार्थ न खाये। जौक लेकमें भ्रमण  
करे और ली खाये। इस प्रकारही गौका दूध उत्तम होता  
है। (म ११)

५ भगवती, भूया—कल्पवृक्ष, प्रेममयी, शुभगुणयुक्त  
गौ हो। गायपर प्रेम करनेसे वह भी घरबाह्योपर प्रेम  
करती है। इस प्रकार प्रेम करनेवाली गौका दूध पीनेसे पीने-  
वालेका कल्याण होता है। (म ११)

ये चान्द गायका पालन कैसे करना चाहिये, इस बातकी  
सूचना देते हैं।

६ सुदुधा—जो दिना भाषास हुई जाती है। दोहन  
करनेके समय जो कद नहीं देती। (म ७)

७ सुहस्तः गोभुक् एनां दोहत्—उत्तम हाथवाला  
मनुष्य ही गौका दोहन करे। अधार्ग दोहन करनेवाला मनुष्य  
अपने हाथ पहिने स्वच्छ करे, निर्मल करे और गीको हुरे।  
हाथमें कोई कुन्सी जो नहीं है, वह देखकर जैसे उत्तम  
हाथसे दोहन करे। इस आदेशका अन्तर्ग्रह महत्व है। जो  
दोष ग्राहिके हाथपर होगा, वह दोष दूधमें उतरिगा और वह  
सीधा पीनेवालेके पेटमें उतरेगा। अतः हाथ स्वच्छ रखकर  
गायका दोहन करना चाहिये। (म ७)

८ अभ्या—गाय भवक है, अतः उसका तादन भी  
नहीं करना चाहिये। अपनी माताका सम्मान प्रेमसे उसका  
पालन करना चाहिये। (म ८)

९ सा महते स्मैमगाय वर्षतां—ऐसी करी हुई

गौ बड़े स्तौभायके साथ बड़े। हाथक परमें ऐसी गोसाता  
रहे, इसीकी भी बड़ी इच्छा है। (म. ८)

१० वास इच्छन्ती—गौ बड़बोली हो। मृगवत्सा  
न हो। स्ववत्सा गौका दूध पीनेसे पीनेवालेके घरमें भी बड़ी  
बात बन जायगी। क्योंकि यदि गौके दूधसे दोषके कारण  
उसका बच्चा मरा हो, तो वह दोष पीनेवालेके पीनेमें भी  
बदेगा। अतः बड़बोली गाय हो और बड़बोली इच्छा  
करनेवाली होकर वह प्रेमसे चामे भाये। (म. ८)

११ गोभुक् पयसा उपद्रव, उन्निपाया. पयः धर्म  
सिन्धु—गायका दोहन करनेवाला मनुष्य दूध लेकर दीप्र-  
कासे भाये और वह गायका दूध भस्मिण रखे। इसका  
मतलब यह है कि बहुत देरतक दूध कदा न रखा जाये।  
चाहे मनुष्य घरारोण ही संघे, निचोरे ही पीये, परह  
रखना हो जो सीता ही अग्निपर ठाकर रखे। क्योंकि दूधमें  
जाना प्रकारके शिमी हवासे जाकर तम जाते हैं और बड़ा  
वे बड़ते हैं। अतः कभी अवस्थामें दूध बहुत देरतक रखना  
नहीं चाहिये। दीप्र ही अग्निपर रखना चाहिये। (म ९)

११ मधु दुहते—गायका दोहन करके जो निचोरा  
जाता है वह मधु भर्पाव सहज ही है। क्योंकि वह बड़ा  
मीठा होता है। (म ९)

११ तत पिबतं—कदा हुआ दूध पीओ। इसका कारण  
ऊपर दिया ही है। (म. ९)

इसी प्रकारसे दूधका देवोंके लिये समर्पण करना चाहिये।  
निवेदन अधिकारी देवोंका अन्न गायका दूध और घी ही है,  
यह बात चतुर्थ मंत्रमें कही है। अधिकारी देव स्वयं देवीय  
वैद्य हैं अतः उनको माद्वय है कि कीमता दूध अच्छा है  
और कीमता अच्छा नहीं है। अधिकारी देव दूसरा दूध पीते  
ही नहीं और दूसरा घी भी नहीं सेवन करते। यह बात  
इस अन्वयमें समझ रखने योग्य है। अतः मनुष्योंको गायका  
ही दूध और घीका उपयोग करना चाहिये, जिसका नहीं,  
यह बात भी इस प्रकार नहीं सिद्ध हुई। इसी प्रकार  
वायवका दूध भी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि वह दूध  
इतनी स्वच्छतासे रहता होगा कि इसमें कोई प्रमाण नहीं है।  
अतः परंपरासे गौ पादनी चाहिये और उसका दूध वस्त्रमें  
समर्पण करना चाहिये और दुग्धोप भक्षण करना चाहिये।

## पंचोदक उज्ज

कां. ९, सू. ५

( अति-सू. १ । देवता-पञ्चोदकोऽयं, संतोषा. १ )

आ नैवेतमा रमस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यग्नौ नाकृमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥  
 इन्द्राय भावं परि त्वा नयाम्यस्मिन्यग्नौ यजमानाय मुरिम् ।  
 ये वा द्विपन्थन् तात्रमस्वानांमसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥  
 प्र पदोऽयं नेनिग्धि दुर्वरितं यच्छचारं नृदिः शुक्लैरा क्रमतां प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपदपञ्चग्नौ नाकृमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( एतं आत्मन् ) इसको यहां का और ऐसे ( आरम्भस्व ) कमौका प्रारंभ कर कि जिससे यह ( प्रजानन् ) मार्गको ज्ञानवा हुआ ( सुकृतां लोकं अपि गच्छतु ) सर्वत्र वन्देवालोंके स्थानको प्राप्त होवे । मार्गमें ( महान्ति तमांसि बहुधा तीर्त्वा ) बड़े अंधकारोंको बहुत प्रकारसे तरेके यह ( अजः ) तृतीयं नाकं अजामतां ) अज्ञता तीसरे अज्ञानको प्राप्त होवे ॥ १ ॥

( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञमें शिव ( इन्द्राय यजमानाय भावं सूरिं त्वा ) इन्द्र और यजमानके लिए भागभूत बने हुए ज्ञानीको ( परि नयामि ) सब ओर लेजाता हूँ । ( ये वा द्विपन्थि ) जो हमारा द्वेष करते हैं ( ताव अजु-भस्व ) इनका नाश करना आरंभ कर और ( यजमानस्य वीराः अनागन्तः ) यजमानके पुत्र नथवा वीर प्राप्त-रहित हो ॥ २ ॥

( यद् दुर्वरितं चचार ) जो दुराचार इसने किया हो, वह सब ( यद् ॥ अयं नेनिग्धि ) इसके पाँचसे जो बल । इसके पश्चात् यह ( नृदिः शुक्लैः प्रजानन् आक्रमतां ) नृद पाँचोंसे मार्गको जानता हुआ चले । ( विपदपञ्च तमांसि बहुधा तीर्त्वा ) देवता हुआ अंधकारोंको बहुत प्रकारसे तरेके, ( अजः ) यह अज्ञता ( तृतीयं नाकं अजाम-तां ) तृतीय अज्ञानको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

मायार्थ— इसको यहां से जानो, तुम कमौका प्रारंभ करो, अपनी उन्नतिके मार्गको ज्ञान को और सर्वत्र करने-पाके जहां जाते हैं उस स्थानको प्राप्त करो । मार्गमें जो बड़े अंधकारके स्थान हैं उनको सांभना चाहिये, इस प्रकार यह अज्ञता आत्मा परम उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इस यज्ञमें तुम सब ओर ले जाता हूँ । तु जानो सबकर प्रभुके लिए आत्मसंशोधन कर और पशुपतिके साथ समभागी बन । जो द्वेष करें उनको दूर कर । इस तरह पशुपतिः कार्यसाग निष्पाद करें और वे उच्चम कार्य करें ॥ २ ॥

एवं समगमें जो दुराचार हुआ हो, उसको पों घाल, बागे शुद्ध पाँचोंसे अपनी मार्ग भाग्यल कर । चारों ओर मार्गको देख, सब अंधकारोंको धीरे कर ज्ञानमरणको दूर करने परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

अनु च्छद्य इपागेन स्वर्चमेतां विंशस्तर्यथापूर्वैः सिना मामि मस्याः ।

मामि द्रुहः पशुः कल्पयेनं तृतीयं नाके अपि वि श्रयैन्म्

॥ ४ ॥

क्रुचा कृन्मीमरूप्यौ श्रयाभ्या सिञ्चोदकयवं घेक्षेन्म् ।

पर्याघत्ताभिनां शमिताराः द्रुतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः

॥ ५ ॥

उत्क्रामातुः परि चेदतस्तस्माच्चारोधि नाकं तृतीयम् ।

अग्नेरभिरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमामि लोकं जयैतम्

॥ ६ ॥

अजो अभिरजम् ज्योतिराद्भुजं जीरता म्रक्षणे देयमाहुः ।

अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिन्लोके श्रदधानेन द्रुतः

॥ ७ ॥

अर्थ— हे (यिरास्तः) शिवेय साधक ! तू (एतां स्वर्चं यथा पशु) इस स्वर्चको जोड़के अनुस्तर (इपागेन असिना अनुच्छद्य) काके शस्त्रसे काट दाल । (मामि मस्याः) भूमिमान मत कर, (मा मामि द्रुहः) मोह मत कर । (पशुः एनं कल्पय) जोड़के अनुस्तर इसको समर्थ बना और (तृतीयं नाके अपि वि श्रयैन्म्) तीसरे स्वर्गपारमें इसको स्थापित कर ॥ ४ ॥

(क्रुचा कुन्मीं आग्ने अघिध्रयामि) मंत्रसे इस पाशको मैं अधिपर रक्ता हूँ । उसमें तू (उद्ग्रे आ सिञ्च) जल शक और (एनं अप धेहि) इसको वहीं स्थापित कर । हे (शमिताराः) शास्त्र करनेवाले ! तुम (ध्रिना पर्याघत्त) भूमि द्वारा पातों मोरसे इसका धारण करो । वह (द्रुतः गच्छतु) परिपक्व होकर वहाँ जावे कि (यत्र सुकृतां लोकः) वहाँ सत्कर्म करनेवालोंका स्थान है ॥ ५ ॥

(अतः तस्माद् पशुः) इस लिये हुए वर्तनसे (अतस्तः) न संभव होता हुआ तू (परि उत् क्राम) ऊपर चढ़ और (तृतीयं नाकं अपि) तीसरे स्वर्गपारमें प्राप्त हो । (अग्नेः अभि) भूमिसे ऊपर (अग्निः नं बभूविथ) भूमि प्रकट होती है, मतः (एतं ज्योतिष्मन्तं लोकं अभिजय) इस तेजस्वी लोकको जीत ॥ ६ ॥

(अजो अभिः) अजन्मा भूमि है (अजं उ ज्योतिः आहुः) य अजनेवाला तेज है देता कहते हैं । (जीयता अजं म्रक्षणे देयं आहुः) जीते मनुष्यके द्वारा अपनी अजन्मा आत्मा परमेश्वरके विष्णु समर्पण करने योग्य है देना कहते हैं । (अस्मिन् लोके मभ्रदधानेन द्रुतः) इस लोकमें अब्दा धारण करनेवालेके द्वारा समर्पित की हुई (अजः तमामि दूरं अप हन्ति) अजन्मा आत्मा अमरकालोंको दूर कर सकती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— योग शास्त्र किंवा छेदक जोड़के अनुस्तर तीक्ष्ण शस्त्रसे शस्त्रप्रयोग करे और रोगादि दोषोंको दूर करे । भूमिमान न चरे और किसीका द्रोह भी न करे । इसके अवयवमें ताम्रार्ध उत्पन्न की और शरम इत्थ स्थापनको प्राप्त करे ॥ ४ ॥

एकलेश वर्तन भूमिपर रक्ता जाय, उसमें पानी डाला जाय, पाशों ओरमें अच्छी प्रकार सेक दिया जावे, एकरेने पश्चात् वहाँ सुकृत करनेवाले बैठें हों वहाँ तेजोमय ठनको दिया जावे ॥ ५ ॥

लगे वर्तनसे देसा बाहर निकले कि जैसा न तथा हुआ होता है । और परम उच्च अवस्थामें प्राप्त हो । भूमिपर भूमि अर्थात् भारमापर परमात्मा विराजमान है । उस तेजोमय लोकको अपने शुभ कर्मसे प्राप्त करो ॥ ६ ॥

अजन्मा आत्मा भी भूमि कहलाती है, अजन्मा परमात्मा भी तेजोमय है देसा ज्ञानी कहते हैं । प्रीति देहपाती लोगोंके सम्प्र जो अजन्मा जीवमा है वह परमात्मा अथवा परमेश्वरके लिये समर्पित होने योग्य है देसा ज्ञानी कहते हैं । इस लोकमें अब्दावे यदि इसका समर्पण किया जाय, तो वह अजन्मा आत्मा मय अमरकालोंको दूर कर सकती है ॥ ७ ॥

पञ्चोदनः पञ्चधा वि क्रंपतामाक्रंस्पमानस्तौणि ज्योतींषि ।  
 ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥  
 अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शर्मो न च्चोऽति दुर्गाण्येषा ।  
 पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥  
 अजस्रिनाके त्रिदिचे त्रिपृष्ठे नाकस्य पुष्टे ददिर्वासं दधाति ।  
 पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुष्टास्पेका ॥ १० ॥  
 एतद्वे ज्योतिः पितरस्तृतीये पञ्चोदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।  
 अजस्तर्मास्यपं हन्ति दूरमस्मिस्तोके अधधानेन दुषः ॥ ११ ॥

अर्थ—( त्रीणि ज्योतींषि आक्रंस्पमानः ) तीनो वेदोंपर आक्रमण करनेवाला ( पञ्चोदनः ) पाँच भोजनोपाय। अजम्मा ( पञ्चधा विक्रमतां ) पाँच प्रकारसे पराक्रम करे। ( ईजानानां सुकृतां मध्यं प्रेहि ) बहकतां सत्कर्मा करनेवालों के मध्यमें मात हो। ( तृतीये नाके अधिविश्रयस्य ) तृतीय स्वर्गधाममें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

( अजः अरोह ) है अजम्मा । ऊपर पर ( यत्र सुकृतां लोकः ) जहाँ शुभ कर्म करनेवालोंका स्थान है। ( यस्तः दातव्यः स ) जिसे ब्रह्मण्यार्थे समान ( दुर्गाणि अनि एषः ) सत्कर्माके परे जा, ( पञ्चोदनः प्रह्मणे दीयमानः ) पाँचोंका भोजन करनेवाली आत्मा परमेश्वर के लिये समर्पित होती हुई ( सः ) वह ( दातारं तृप्त्या तर्पयाति ) दाताको तृप्तिसे संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

( अजः ) अजम्मा आत्मा ( ददिर्वासं ) अजस्रसमर्पण करनेवालेको ( त्रिनाके त्रिदिचे त्रिपृष्ठे ) तीनों सुक्तोंको देनेवाले, तीनों प्रकारोंमें पुण्य, तीन पीढ़ों भाषणोंमें पुण्य ( नाकस्य पुष्टे ) स्वर्गधामके स्थानपर ( दधाति ) धारण करती है। ( पञ्चोदनः प्रह्मणे दीयमानः ) पाँच भोजनोपायों जो परमेश्वरको समर्पित होकर है देता व स्वयं ( एका विश्वरूपा धेनुः अति ) एक विश्वरूप कामधेनुके समान होता है ॥ १० ॥

हे ( पितरः ) पिता ! ( यः एतत् तृतीयं ज्योतिः ) भाषण के लिये वह तीसरा वेद है जिसे ( पञ्चोदनं अजं प्रह्मणे ददाति ) पञ्च भोजन करनेवाले अजम्मा आत्मा धर्मात् परमेश्वर के लिये समर्पण करता है। ( अधधानेन दुषः अजः ) अज्ञानद्वारा समर्पित हुई अजम्मा आत्मा ( अस्मिन् लोके तर्मासि दूरे अवहन्ति ) इस लोकमें सब अशुभकारोंको दूर करती है ॥ ११ ॥

भाषार्थ— तीन वेदोंको प्रह्म करनेवाली यह आत्मा पाँच भोज प्राप्त करनेवाली है। वह पाँच काशंक्षेत्रोंमें पराक्रम करे। वत करनेवाले शुभकर्म करनेवालों के मध्यमें प्रमुखस्थान प्राप्त करे और परम उच्च अवस्थामें विराजमान हो ॥ ८ ॥

हे अजस्रदित जीवन्मात् ! उच्च मार्गमें चल और सत्कर्म करनेवाले लोग जहाँ पहुँचते हैं वहाँ तु पहुँच। जिस प्रकार जिना हुआ व्याघ्र होता है, वैसे तु सुरक्षित होकर सब कष्टोंके परे जा। पाँच भोजनोंका भोजन देनेवाली जीवन्मात् परमात्माके लिये समर्पित होकर समर्पण करनेवालेको संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

अजम्मा आत्मा अजस्रसमर्पण करनेवालेको सब प्रकारसे उच्च और सुखपूर्ण स्थानके लिए योग्य बनाती है। पाँच भोजनोंका भोजन जीवन्मात् परमात्माके लिए समर्पित होनेपर वह एक कामधेनु जैसा बनती है ॥ १० ॥

जो पाँच भक्षोंका भोजन जीवन्मात्का परमात्माको समर्पित करता है वह मरने, सब वितरोध के लिये तृतीय ज्योति देता रहमान है। वह समर्पण यदि धनार्थ के लिए पहुँच तो वह सब अज्ञानान्धकारको दूर करता है ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्पञ्चोदयं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

स क्वाप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु

॥ १२ ॥

अजो ह्येमेरजनिष्ट शोकादिभ्यो निम्रैरप्यु सहस्रो विपश्चित् ।

इष्टं पूर्वमभिपूर्वं वर्षट्कृतं तदेवा ऋतुशः कल्पयन्तु

॥ १३ ॥

अमोतं वासो दद्याद्विरण्यमपि दक्षिणां ।

तथा लोकान्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः

॥ १४ ॥

एतास्त्वान्नोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्धृतपृष्ठा मधुद्युतः ।

रत्नमानं पृथिवीमृतं यानाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तर्षिम्

॥ १५ ॥

अर्थ— (ईजानानां सुकृतां लोकं ईप्सन्) वलकर्मार्थों और अनुकर्म करनेवालोंके द्वारा प्राप्त किए जावेवाले लोककी मासिकी इच्छा करनेवाला जो अनुकर्म अपनी (पञ्चोदयं अजं ब्रह्मणे ददाति) कल्प भोग करनेवाले भगवन्मा आत्माको परब्रह्मके लिए समर्पित करता है । (सः क्वाप्तिमभि लोकं जयैतं) वह क्वाप्तिमभि इष्ट लोकको जीतता है, वह (प्रतिगृहीतः अस्मभ्यं शिवः अस्तु) प्राप्त किया लोक कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

(अजः अमोः शोकात् हि अजनिष्ट) भगवन्मा आत्मा आश्रित्य तेजस्वी परमात्माके तेजसे प्रकट हुई है । (विप्र-ह्य महताः) विषय ज्ञानी परमात्माकी चक्षिते (विपश्चित् विप्रः) वह ज्ञानी चेतन प्रकट हुआ है । (इष्टं पूर्वं) इष्ट और पूर्व (अभिपूर्वं वर्षट्कृतं तत्) कल्पी चक्रके द्वारा समर्पित उसको (देवाः ऋतुशः तत् कल्पयन्तु) देव ऋतुके अनुकूल समर्प बनाते हैं ॥ १३ ॥

(अमोतं विरण्यं धासः) सत्य वैद्यकर हुआ हुआ सुवर्णमय वस्त्र और (दक्षिणां अपि दद्यात्) दक्षिणा भी दी जावे । (तथा लोकान् समाप्नोति) इससे ये लोक बह प्राप्त करता है, (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो दुर्लोकमें और जो इस पृथ्वीपर हैं ॥ १४ ॥

हे (अज) भगवन्मा आत्मान् (धाराः सोम्याः देवीः) ये सोम तर्पणी शिव (धृतपृष्ठा मधुद्युतः) धी और शक्तिसे युक्त (धाराः त्वा उपयन्तु) रत्नधारणें तेरे पास पहुँचें और तू (सप्तर्षिम् आधि) सात त्रिगोत्राले सर्वत्रे ऊपर (माकस्य पृष्ठेऽधि) सर्वत्रे पृष्ठभागपर युक्तको (उत पृथिवीं तस्मान्) और पृथ्वीको तिरार कर ॥ १५ ॥

आचार्य— जिस लोकको प्राप्त करनेवाले तेज इष्ट प्राप्त करते हैं, वही कल्पभोगको जीवामाका परमात्माके त्रिदेव प्रसर्ग करनेवाला प्राप्त है । अतः तू इस क्वाप्त लोकको प्राप्त हो । वह लोक प्राप्त होनेपर सबके त्रिदेव कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

परमात्माके तेजसे भगवन्मा जीवामाका प्रकट होती है । महान् ज्ञानी परमात्माकी चक्षितसे वह चेतन जीवामाका प्रकट होती है । इससे सब प्रकारके कृतार्थोंके अनुकूल सब कर्म सब देव मिलकर पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

सर्व वैद्यकर हुआ हुआ वस्त्र सुवर्ण दक्षिणाके साथ दान करना उचित है । इस दानसे भौतिक और सभौतिक लोगोंकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

ये दिव्य सोमरत्नकी धाराएं धी और मधुके साथ मिलकर प्राप्त हों इनका सेवन करके तू इन भूमिकों सुपते भी परे स्वर्गभूमिमें स्थापित कर ॥ १५ ॥

अजोऽस्यर्जं स्मर्गेऽसि त्वया लोकमक्षिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र क्षेपम् ॥ १६ ॥  
 येना सहस्रं वहसि येनाये सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो बह स्वर्दिवेषु मन्तवे ॥ १७ ॥  
 अजः पक्षः स्मर्गे लोके दधाति पञ्चैदनो निर्भति वार्षमानाः । ॥ १८ ॥  
 तेन लोकान्स्वर्गवतो जयेम् ॥ १९ ॥  
 यं ब्राह्मणे निदधे यं च विष्णु या विष्णु ओदुनानामृजस्यं । ॥ २० ॥  
 सधे तदग्रे सुकृतस्य लोके जानीताश्वः संगमने पयिनाम् ॥ २१ ॥  
 अजो वा इहमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमेमवत् पौः पृष्ठम् । ॥ २२ ॥  
 अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षौ ॥ २३ ॥

अर्थ—हे (अज) भक्त्या! (अजः असि) कर्मरहित है, तू (स्वर्गः असि) सुखमय है, (त्वया अंगिरसः लोकं प्रजानन्) तू तेजस् लोकको अपनेवाला है। (तं पुण्यं लोकं प्र क्षेप) उस पुण्यकारक लोकको मैं जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

हे मने! (येन सहस्रं वहसि) जिससे तू सहस्रलोकों के ज्ञाता है और (येन सर्ववेदसं) जिससे सब ज्ञान तू पहुँचाता है, (तेन) उससे (नः इम यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवेषु स्वः गम्यते) देवोंके अन्दर विद्यमान तेजको प्राप्त करनेके लिये (यह) ठीक चल ॥ १७ ॥

(पञ्चैदनः पक्षः अजः) पक्ष भोजनवाली परिपक्व हुई भक्त्या भक्त्या (निर्भति वार्षमानाः) दुखत्याका नाश करती हुई (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोकमें (दधाति) धारण करती है। (तेन) उससे (स्वर्गपतः लोकान् जयेम) स्वर्गपते लोकोंको जीतकर प्राप्त करें ॥ १८ ॥

(यं ब्राह्मणे निदधे) जिसको ब्राह्मणमें रखा है, (यं च विष्णु) जिसको ब्राह्मणमें रखा है और (अनस्य ओदुनानां याः विष्णुः) जो भक्त्या भक्त्याके भोगोंकी पूर्तिवा है, हे भक्त्या! (नः सर्वं तत्) हमारा यह सब (सुकृतस्य लोके) सुकृत लोकमें, (पयिनां संगमने) भोगोंके संगममें है, ऐसा (जानीताम्) जानो ॥ १९ ॥

(अजो वै अग्रे इदं व्यक्रमत) भक्त्या भक्त्या ही पूर्वकालमें इस संसारमें विजय करती रही। (तस्य उरः इय अमवत्) उसकी छाती ॥ भूमि बनी और (पौः पृष्ठं) एलोक पीठ होगया। (अन्तरिक्षं मध्यं) अन्तरिक्ष मध्यभाग और (दिशः पार्श्वे) दिशाएं पार्श्वभाग तथा (समुद्रौ कुक्षौ) समुद्र कोल बने ॥ २० ॥

भाषार्थ—तू कर्मरहित और सुखपूरी है। तू सब तेजस्वी लोकोंको जानता है। तू तू पुण्यकारक लोकोंको मैं भी जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

हे तेजस्वी देव! त्रिम शक्तियों तू सहस्रलोकों उच्च अवस्थातक ज्ञाता है, सब ज्ञान सबको पहुँचाता है, उस महि-  
 मीय शक्ति ॥ मेरे यज्ञको तू सब देवोंके पास पहुँचा, जिससे मुझे दिव्य तेजकी प्राप्ति होवे ॥ १७ ॥

पक्षभोजन करनेवाली भक्त्या भक्त्या परिपक्व होती हुई भक्त्या बुर करती है और स्वर्गलोक प्राप्त करती है। हम सब उस परिपक्व भक्त्याके द्वारा प्रकृत्यवाले लोक प्राप्त करें ॥ १८ ॥

जो ज्ञानियोंके लिये हम समर्पित करते हैं, जो ब्राह्मणोंके लिये अर्पित करते हैं, जो भक्त्या भक्त्याके भोगोंकी पूर्तिवा है, वे सब पुण्यलोकमें पहुँचानेवाले भोगोंके सहायक हैं ऐसा जानो ॥ १९ ॥

इस जगत्में जो विजय है वह भक्त्या भक्त्या ही है ॥ भक्त्या भक्त्याकी छाती भूमि है, पीठ पृष्ठलोक है, अन्तरिक्ष मध्यभाग है, दिशाएं पार्श्व हैं और कोलें समुद्र हैं ॥ २० ॥

सत्यं चतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं अद्वा प्राणो विराट् शिरः ।

एष वा अपरिमितो यज्ञो यदुजः पञ्चोदनः

॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमर्षं रुन्धे ।

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २२ ॥

नास्यास्थीनि मिन्धात्र मज्जो निर्धयेत् । सर्वमेतं समादायेदमिदं प्र वैश्वयेत्

॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैतं सं गमयति ।

इयं मह ऊर्जमस्मै दहे योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २४ ॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वसूः पञ्चास्मै धेनुर्वाः कामदुष्टा भवन्ति ।

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २५ ॥

अर्थ— ( सत्यं च कृतं च चक्षुषी ) सत्य और कृत ये उसकी आँखें, ( विश्वं सत्यं ) सब विश्व अतिव, ( अद्वा प्राणः ) अद्वा प्राण और ( विराट् शिरः ) विराट् शिर बना । ( यत् पञ्चोदनः यज्ञः ) जो पञ्च भोग भजन्मा आत्मा है वह ( ययः ये अपरिमितः यसः ) यह सबसुख अपरिमित यज्ञ है ॥ २१ ॥

( यः पञ्चोदनः ) जो पाच भोजनोंवाले और ( दक्षिणाज्योतिषं अज्ञं ददाति ) दक्षिणाके तेजसे प्रकाशित भजन्मा आत्माका समर्पण करता है, वह ( अपरिमितं ययं आप्नोति ) अपरिमित यज्ञको प्राप्त करता है, तथा ( अपरिमितं लोकं अमर्षये ) अपरिमित लोकको अपने अर्पण करता है ॥ २२ ॥

( अस्य अस्थीनि न मिधात्र ) इसकी हड्डियोंको न तोड़े, ( मज्जः न मिः धयेत् ) मज्जाओंको न पीये, ( एतं सत्यं समादाय ) इस सबको लेकर ( इदं इदं प्रयेजयेत् ) इसको इसमें प्रविष्ट करे ॥ २३ ॥

( इदं इदं यय अस्व रूपं भवति ) यह यह ही इसका रूप होता है, ( तेन पूर्णं संगमयति ) उससे साथ इसको मिलाया है । ( यः दक्षिणाज्योतिषं पञ्चोदनं अज्ञं ददाति ) जो दक्षिणाके तेजसे साथ पञ्चभोजनवाले भजन्मा आत्माको समर्पण करता है । ( अस्मै इयं महः ऊर्जं दहे ) इसके लिए वह, तेज और वह मिठा है ॥ २४ ॥

( यः दक्षिणाः ) जो दक्षिणाके तेजसे साथ पञ्चभोजनवाले भजन्मा आत्माका समर्पण करता है । ( अस्मै ) इसने लिए ( पञ्च रुक्मा ) पाँच मोड़ों, ( पञ्च नवानि वसूः ) पाँच बड़े बस और ( पञ्च कामदुष्टा धेनुवः ) पाँच इह समयने दूध देनेवाली गीधें ( भवन्ति ) मिलती हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— उसकी आँखें सब और कृत है, उसका अतिव सब विश्व है, उसका प्राण अद्वा और शिर सपूर्ण अमर्षनेवाले लोक हैं । यह पञ्चभोजनी भजन्मा आत्मा भजन्मा यज्ञस्व है ॥ २१ ॥

यह पञ्चभोजनी भजन्मा जो समर्पित करता है उसकी उपा कालव अकाल वस करनेका पठ प्राप्त होता है और वह भजन्मा लोगको प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

इस यज्ञसे लिए किसीकी हड्डियोंको तोड़नेकी आवश्यकता नहीं और भजन्माको निषेधनेकी भी आवश्यकता नहीं है । अपना सर्वस्व लेकर मनुष्यको कुछ विशास्त्रमें प्रविष्ट होना चाहिए ॥ २३ ॥

यही इस यज्ञका रूप है । उस विशास्त्रके साथ इसका संवध जोड़ता है । जो पञ्चभोजनी भजन्मा आत्माका समर्पण करता है, इससे इसको अघ, बल और तेज प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

इस समर्पण करनेवालेको पाँच सुपर्ण, पाँच नवीन वस और पाँच कामधेनु प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥



पञ्च द्रुमा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्षं वासांसि तन्वे भवन्ति ।

स्वर्गं लोकमश्नुते योश्च जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं विद्याद्यान्यं चिन्दतेऽपरम् । पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥

समानलोको भवति पुनर्ह्वारपरः पतिः । योश्च जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुर्भेजद्वारहमपवर्हणम् । वासो हिरण्यं दृष्ट्वा ते यान्ति दिवमुत्तमम् ॥ २९ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप हृषे ॥ ३० ॥

अर्थ—( या दक्षिणा० ) जो दक्षिणादे तेजसे साथ पञ्चमोदवशके अन्नमा आत्माका समर्पण करता है ( अस्मै ) हमके लिए ( पञ्च द्रुमा ) पांच सुवर्ण द्रुमाएँ ( ज्योतिः भवन्ति ) प्रकाशित होती हैं । ( तन्वे ) धरीरके लिए ( वर्षं वासांसि भवन्ति ) वर्षाकाली वर्ष होती है और यह ( स्वर्ग लोकं अश्नुते ) स्वर्ग लोक प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

( या पूर्वं पतिं विद्या ) जो पहिले पतिको प्राप्त करके, ( अथ अपरं चिन्दते ) अर्थात् दूसरे मानवको प्राप्त करती है, ( तौ पञ्चौदनं अजं वदतः ) वे दोनों पञ्च भोजनकारे अन्नमा आत्माका समर्पण करके ( न वियोषतः ) विपुल नहीं होते ॥ २७ ॥

( याः पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं अजं ददाति ) जो पञ्च भोजनवाले दक्षिणां तेजसे युक्त अन्नमा आत्माका समर्पण करता है वह ( अपरः पतिः ) दूसरा पति ( पुनर्भेजा समानलोका भवति ) पुनर्विवाहिक पतिसे साथ समान स्थानवाला होता है ॥ २८ ॥

( अनुपूर्ववत्सां धेनुं ) आते पतिवर्ष बछ्मा देनेवाली गीको और ( अनर्ह्वाहं ) पैठको तथा ( उपवर्हणं वासः हिरण्यं ) भीरगी, वस्त्र और सोना ( दृष्ट्वा ) देकर ( ते उत्तमां दिव यन्ति ) वे उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

( आत्मानं पितरं पुत्रं ) अपने मापको, पिताको, पुत्रको, ( पौत्रं पितामहं ) पौत्रको और पितामहको ( जायां जनित्रीं मातरं ) स्त्री और अपनी माताको और ( ये प्रियाः तान् ) जो इस हैं उनके से ( उपहृषे ) पाप सुखाता है ॥ ३० ॥

भाषार्थ—इस समर्पण करनेवालेको साथ सुवर्ण और पांच प्रकार का द्रुम होकर धरीरके लिए करके जैसे वस्त्र प्राप्त होते हैं और स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

जो पहिले पतिको प्राप्त करके अर्थात् पुनर्विवाहसे दूसरे पतिको प्राप्त करती है, वह इस पञ्चमोदनी अन्नका समर्पण करके विपुल नहीं होती ॥ २७ ॥

जो पञ्चमोदनी अन्नमा आत्माका समर्पण करता है वह दूसरा पति पुनर्विवाहिक पतिसे समान ही होता है ॥ २८ ॥ प्रतिवर्ष बछ्मा देनेवाली गी, उत्तम पैठ, कोहनेका वस्त्र और सुवर्ण इन्का दान करनेसे उत्तम स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

भारती आत्मा, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, धर्मवाली, अन्नदेनेवाली माता और जो हमारे प्रिय हैं उन सबको से सुखाता है और यह बात सुनाता है ॥ ३० ॥

यो वै नैदापुं नामतु वेद । एष वै नैदापो नातृव्यदुजः पञ्चौदनः ।

निरेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयं दहति भवत्यात्मना । योऽज्ञं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्वन्तु नामतु वेद । कुर्वन्तीकुर्वतीमेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयमा दत्ते ।

एष वै कुर्वन्नातृव्यदुजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयं दहति भवत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३२ ॥

यो वै संयन्तु नामतु वेद । संयन्तीसंयतीमेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयमा दत्ते ।

एष वै संयन्नातृव्यदुजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयं दहति भवत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३३ ॥

यो वै पिन्वन्तु नामतु वेद । पिन्वन्तीपिन्वतीमेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयमा दत्ते ॥

एष वै पिन्वन्नातृव्यदुजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयं दहति भवत्यात्मना ।

योऽज्ञं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तु नामतु वेद । उद्यन्तीउद्यतीमेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयमा दत्ते ।

एष वा उद्यन्नातृव्यदुजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य आतृव्यस्य अयं दहति भवत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३५ ॥

अर्थ— (य पञ्चोद नञ ) नो पञ्चभोजनी भज है । ( एष वै नैदापुं नाम ऋतु ) यह निमग्नने निरापुं भजोद शीघ्र ऋतु है (य वै नैदापुं नाम ऋतु वेद ) जो इस शीघ्र ऋतुको जानता है और (य दक्षिणा-ज्योतिष पञ्चौदन नञ ददाति ) नो दक्षिणाके तेजसे पुन पञ्चभोजनी भजका समर्पण करता है यह (अप्रियस्य आतृव्यस्य अयि नि दहति ) अप्रिय शत्रुका शीघ्रो सर्वथा जग देता है और यह (भारतना भयति ) भवना भारभक्तिते मगावित होता है ॥ ३१ ॥

( एष वै कुर्वन्तु नाम ऋतु यत् अञ ० ) यह नि सदेह कथ नामक ऋतु है जो भज पञ्चभोजनी है । (य वै कुर्वन्तु नाम ऋतु वेद ० ) कथा नामक इस ऋतुका जानता है और नो दक्षिणाके तेजसे पुन इस पञ्चभोजनी भजका समर्पण करता है, यह (अप्रियस्य आतृव्यस्य ) अप्रिय शत्रुका ( कुर्वन्ती कुर्वती एव अयि आदत्ते ) मग्नमे प्राप्त शीघ्रो हर लेता है ॥ ३२ ॥

( एष वै पिन्वन्तु नाम ऋतु यत् अञ ० ) यह पापण नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी भज है । (य वै पिन्वन्तु नाम ऋतु वेद ० ) जो निमग्न पापक नामक ऋतुका जानता है और दक्षिणाके तेजसे पुन पञ्चभोजनी भजका समर्पण करता है, यह (अप्रियस्य आतृव्यस्य ) अप्रिय शत्रुका ( संयन्ती संयती एव अयि आदत्ते ) मग्नमे प्राप्त शीघ्रो हर लेता है ॥ ३३ ॥

( एष वै उद्यन्तु नाम ऋतु यत् अञ ० ) यह उद्यन्त नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी भज है । (य वै उद्यन्तु नाम ऋतु वेद ० ) जो निमग्न उद्यन्त नामक ऋतुको जानता है और दक्षिणाके तेजसे पुन पञ्चभोजनी भजका समर्पण करता है, यह (अप्रियस्य आतृव्यस्य ) अप्रिय शत्रुका ( उद्यन्ती उद्यती एव अयि आदत्ते ) उद्यन्तको प्राप्त होनेवाली शीघ्रो हर लेता है ॥ ३४ ॥

( एष वै उद्यन्तु नाम ऋतु यत् अञ ० ) यह नि सदेह उद्यन्त नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी भज है । (य वै उद्यन्तु नाम ऋतु वेद ० ) जो निमग्न उद्यन्त नामक ऋतुको जानता है और दक्षिणाके तेजसे पुन पञ्चभोजनी भजका समर्पण करता है, यह (अप्रियस्य आतृव्यस्य ) अप्रिय शत्रुका ( उद्यन्ती उद्यती एव अयि आदत्ते ) उद्यन्तको प्राप्त होनेवाली शीघ्रो हर लेता है ॥ ३५ ॥

यो वा अभिभूतं नामुतं वेद । अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाग्निपस्य आतृण्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वा अभिभूतंमूर्तुर्पदुज पचौदनः । निरेवाग्निपस्य आतृण्यस्य श्रियं ददति भवन्त्यात्मना ।

योऽज पचौदन दक्षिणज्योतिषं ददाति

॥ ३६ ॥

अजं च पचैत पञ्च चोदनान् ।

सर्वा दिशः समनसः सञ्जीचीः सान्तर्देसाः प्रति गृह्णन्तु त एतम्

॥ ३७ ॥

वास्तै रक्षन्तु सद्य तुभ्यमेतं लाभ्य आर्ज्यं हविर्दि जुहोमि

॥ ३८ ॥

अथ— (एर वै अभिभू नाम ऋतु ) यह निन्देह विजय नामक ऋतु है (यत् भज पञ्चोदन ) जो पञ्चभोजनी भज है । (य ये अभिभूय नाम ऋतु वेद ) ये विजय नामक इस ऋतुको जानता है और (य दक्षिणा ) या दक्षिणाई देकरसे युक्त पाचभोजनी अन्नका समर्पण करता है, यह (अग्निपस्य आतृण्यस्य ) अग्निप शत्रुके (अभिभवन्ती अभिभवन्ती) पच पच आदसे ) प्राप्त करनेवाली गोभाको हर देता है । इसका (अग्निपस्य ) अग्निप शत्रुकी श्रीको पच देता है और (आत्मना भवति ) भवती शक्तिसे रहता है ॥ ३६ ॥

(अज पञ्च ओदनाम् च पचत ) इस अन्न-माको और पाच भोजनीको परिपक्व करो । (ते पत) तेरे इस अन्नको (सर्वा दिशः) सब दिशाएँ (सान्तर्देसाः) वायविक प्रदेशोंक साथ (सञ्जीची समनसः) सहमत और एक विचारसे युक्त होकर (प्रतिगृह्णन्तु) स्वीकार करो ॥ ३७ ॥

(ता ते तुभ्य तप पत रक्षन्तु) ये तेरी तेरे लिए केर इस भक्षणकी रक्षा करें । (ताभ्य इदं लाभ्य हवि जुहोमि) उनके लिए इस ॥ और हवन सामग्रीका हवन करता हू ॥ ३८ ॥

आशय— उभयका, कर्म, समय, पुष्टि, उद्यम और विजय ये छ ऋतु हैं । ये छ ऋतु इस पचभोजनी भजका रूप है । ये इसका स्वरूप जानता है और इसका समर्पण करता है, यह ऋतुको पराज करता है और अपने आत्माकी शक्ति बढ़ावा अर्थात् आत्मिक पक्षसे युक्त होता है ॥ ३६-३९ ॥

इस अन्नकी और इसके पाँचों भोजनोंको परिपक्व बनाओ, सब दिशा और उपदिशाएँ इसको भक्षण अर्थात् यह सब विशालता भजे ॥ ३७ ॥

ये सब आत्माकी रक्षा कर और आभरणसे तेरा उन्नति हो । इसी उद्देशसे इस धीकी आहुति मैं देता हूँ, यह एक समर्पणकर उद्गाहरण है ॥ ३८ ॥



## पञ्चोदन अज ।

इस सूक्त 'पञ्चोदन अज' का सर्वाधिकार केसे प्राप्त होता है इसका वर्णन है । सबसे पहिले यह पञ्चोदन क्या कौन है इस बातका परिपक्व प्राप्त करना चाहिये । 'पञ्चोदन अज' (पञ्च+ओदन अज) का अर्थ पाच प्रकारक भोजनो वाला अज है । अर्थात् पाच प्रकारक अन्नका योग करनेवाला यह अज है ।

'अज' शब्दके अर्थ— = अजन्मा, सदासे रहनेवाला, सर्व शक्तिमान परमात्मा, नीच, आत्मा चालक, चक्रवा, धान्य' ये होते हैं । इनसेल क्या जिसका ग्रहण करना

चाहिये यह एक निवारणीय बात है । 'अज' शब्दसे यहाँ परमात्मा ग्रहण करना अयोग्य है, क्योंकि यह स्वभावसे परम उच्च लोकस सदा विद्यमान ही है उसको उच्च लोकमें जन्मेकी आवश्यकता ही नहीं है । यहाँ इस सूक्तमें जिस अज का वर्णन है उसका विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

सुष्टता लोकं गच्छन्तु प्रजानिन् ॥ (म १)

तीर्था तमासि अजस्तृतीय नाक आक्रमताम् ॥

(म १, ३)

तृतीये नाक अधि विध्रुयैतम् ॥ (म ४)

श्रुतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ( म ५ )

तृतीये नाके अधि विधायस्य ॥ ( यं ८ )

“यद् मार्गं जानता दुःखा पुण्यं कर्म करनेवालोंके लोकको प्राप्त करें। सम्प्रकार दूर करनेके तृतीय स्वर्गधामको प्राप्त होयें। परिपक्व होकर पुण्यवानोंके लोकको जायें। तृतीय स्वर्गधाममें आश्रय करें।”

ये मन्त्रभाष्य ऐसे आत्माके सूचक हैं कि जिसको पहिले स्वर्ग नहीं प्राप्त हुआ है, जो उत्तम लोकमें नहीं पहुँचा है, जो अपम लोकमें है पर स्वर्ग जाना चाहता है अर्थात् यज्ञका अन्त शब्द परमात्माका वाचक नहीं, अतः ऐसे आत्मका वाचक है, जो उत्तम लोकको अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। ‘अन्त’ शब्दके दूसरे अर्थ ‘घाम्य’ और ‘चक्रा’ ये हैं। इसमें घाम्यका स्वर्गधामको प्राप्त होना असम्भव है और चक्रा स्वर्गधामको जा सकता है ॥ नहीं, इस विषयमें शका ही है। क्योंकि स्वर्ग तो (सुकृतां लोकः) सत्कर्म करनेवालोंका लोक है। जो स्वयं सत्कर्म कर सकते हैं, वे ही अपने किये सत्कर्मोंके बदले स्वर्गधामको जा सकते हैं। अन्त घाम्य और चक्रा स्वयं सत्कर्म करनेमें समर्थ न होनेके कारण सुकृत-लोकको प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं।

यहाँ आइँ कहें कि जो चक्रा दूसरे समर्पित किया जाता है, वह समर्पित होनेके कारण स्वर्गका भागी हो सकता है। यहाँ विचारणीय बात यह है कि, जो स्वयं स्वेच्छासे दूसरोंकी भलाईके लिये समर्पित होते हैं, जो परोपकारके छिद्र आत्म-समर्पण कर सकते हैं, वे स्वर्गधाम प्राप्त करनेवा अधिकारी माने जा सकते हैं। जो लोग बन्देको एकड़ते हैं और उसके मासका हवल करते हैं, वे चक्राको एकड़का विचार ही नहीं करते। यदि इस प्रकारकी जबरदस्तीसे स्वर्गधामकी प्राप्ति होनेका संभव हो, तो जो गीबें और बकरियाँ ग्यात्रके जीवके छिद्र समर्पित हो जाती हैं, वे सबकी साथ स्वर्गको पहुँचेंगी, इच्छा ही नहीं, अन्त सत्कर्म घाम्य भी दशमिमें आहूति द्वारा समर्पित होनेपर सीधा स्वर्गको जायगा, समिधापु और वी भी यहाँ पहुँचेंगे। यह तो अन्वयवत्ता है। ज्ञानमें चौक्ये मारा और छाया, तो इसमें गायका अन्तमसमर्पण नहीं है। मूँ राजा प्रजाको छुटकर प्रजाकी घन सक्ति एकट्ठी करके ॥ जाता है, यज्ञ भी उस परदलित प्रजाको परोपकार, दान वा सर्वस्वका मेघ करनेका पुण्य नहीं मिल सकता। फल तब मिलेगा कि जब आत्मसर्वस्वका समर्पण स्वेच्छासे किया गया हो। पूर्वोक्त ‘अन्त’ के अर्थोंमें ‘घाम्य, चक्रा’ वे आत्म-समर्पणकी बात जान ही नहीं सकते, इसलिए आत्मसमर्पण

कर नहीं सकते। और वे स्वर्गधामको प्राप्त नहीं हो सकते। परमात्माके उत्तम लोकमें सदा उपस्थित होनेसे उसके कर्म विनिवृत्ति आत्मसमर्पण द्वारा वह लोक प्राप्त करनेका प्रश्न ही नहीं उठता अन्त शेष रहा ‘जीर आत्मा’, यही अर्थ यज्ञ अवेक्षित है। यह सुकृत करवा दुःखा स्वर्गधामको प्राप्त करता है और इसी कार्यके लिये सत्कर्म धर्मशास्त्र रचें गये हैं।

इस सूत्र ‘अन्त’ शब्दका प्रसिद्ध अर्थ ‘चक्रा’ लेकर कहते हैं चक्राको चक्रान्ता, चक्रान्ता, उत्तम अन्त सत्कर्म देना और उससे स्वर्गको भेजना ऐसे अर्थ किये हैं। वे उक्त कारण युक्तिवुक्त नहीं हैं। अस्तु, ॥ उरह यज्ञ इस सूत्रमें अन्त शब्दका अर्थ जीव, आत्मा किंवा जीवार्मा है।

अब देखना है कि इसको ‘चम्पौदन’ क्यों कहा है। यह वाच प्रकरका वाच लाता है इसीलिये इसको ‘चम्प-भोजनी’ अन्त कहा है। इसके वाच भोजन कीन्ते हैं। सन्ध, स्वर्ग, घम, रस और मध वे पाच विषय इसके पाच भोजन हैं, ये परस्पर विभक्त हैं और ये इसके उपभोगों विषय हैं। ॥ विषयमें कहा है—

ता सुपर्णा सयुजा सखाया समानं चूर्सं परिप-  
स्यन्ताते। तपोरन्य-विष्णुषं वृणात्यनश्नयोऽ-  
भिचारमतीति ॥ ( ऋ० १११६४२०, मध्वं ९/१५  
( १४ ) २० )

“एक ही ( शरीरवाली ) वृक्षपर दो यज्ञी ( दो आत्मा-जीवार्मा और परमात्मा ) बैठे हैं। उनमेंसे एक ( जीवार्मा ) इस वृक्षम सीढ़ा फल खाता है और दूसरा न खाया हुआ फल प्रकाशता है।”

इस सूत्रमें सन्ध, स्वर्ग, रूप, रस और मध ये पाच भोजनीय फल उल्लेख हैं। इनका भोग यह आत्मा आत्मा करता है। इसके चम्प-रहनेवालोंसे ये पाच फल इसके पास पहुँचते हैं। अतुल्य शाली हो अपना मशाली हो, यह हो या सुक हो, अवतक यह आत्मा शरीरमें रहती, तबतक इसके पास वे पाच प्रकारके भोज्य प्राप्त होते ही रहेंगे। वह स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आत्मचित्तसे विषय सेवन करेगी और जीवन-मुक्त स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आत्मचित्त छोड़कर उदासीन राखे दर्शन करेगी। दोनोंको कान्यसे सन्ध, रसपाते स्वर्ग, नेत्रसे रूप, शिद्धासे रस और नाकसे मध प्राप्त होगा। ॥ पाँच भोजन इसके पास जाँचेंगे, वेहें भोग करेगा और वेहें नहीं वह चाहे दूसरी है। ‘चम्पौदन राज’ वा यह अर्थ है और यह दृष्टक जीवार्मा विष्णुके अनुपममें आत्मक है।

इस 'अथ' का स्वप्रकाश निश्चय रूप इस सूत्रमें किया है,  
यद् अथ देखिये—

अजो अग्निं अजमु ज्योति आहु,

अज तमामि अपहन्ति ॥ (म० ७)

अग्ने अग्निं स यमूविध ॥ (म० ६)

अज हि अग्ने शोफात् अजनिष्ट (म० ३३)

विप्रस्य महस विपश्चित् विप्र अजनिष्ट ॥ (म० ३३)

एष वा अपातिमितो यद् अजं पश्येदैन ॥

(म० २३)

“अग्निः नाम अज है, ज्योतिः नाम अज है, यह सब अग्निः का ही रूप है। अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुआ है। अग्निः तेजस अज उत्पन्न हुआ है। ज्ञानको महिमामें ज्ञानी विद्वाद् जन्मा है। यह पश्येदैन अज अपरिमित वह है। यह सब मात्र भाग यद्वा अज सृष्टसे आत्माका भाव बनाते हैं। क्योंकि ज्ञाना, ज्योति, अग्नि, ज्ञानो, यज आदि सब ज्ञानात्मक हैं। वैदिक वाक्यमकरे आगे है। वेदी प्रविशत्यद्वा 'अज' शब्दका अर्थ यज्ञनेके छिप्ने देने रूप दिये हैं और अज शब्दके अर्थ यज्ञनेके सम्प्रेषित निवृत्ति को है। अज यद्वा अजका अर्थ 'बकरा' करना सर्वथा अनुचित है।

यद्वा उक्त पद्यमें कहा है कि इस सूत्रमें जिस अजका वर्णन है, यह अग्निः समान वेदस्थी, ज्योतिःके समान प्रकाश मय, दीप्तके समान अग्निः का ही रूप है, परमात्मा रूप महान् अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है, जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित होनेसे उसकी ज्वालासे स्फुटित चारों ओर उज्ज्वल है, वही प्रकाश परमात्माकी दीप्तिले जो स्फुटित चारों ओर फैले है, वही अज जीवात्मा है। परमात्मा चेतनस्वरूप है, उससे यह चेतनस्वरूप जीव आत्मा प्रज्जन्त हुई है। वही अज स्वरूप है। इस प्रकारका वर्णन उक्त मन्त्रमार्गमें है। यह देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यद्वा अज शब्दसे 'जीव आत्मा' का प्रमाण करना योग्य है।

“बकरा” अर्थ यद्वा अज शब्दका अर्थ अज मन्त्रोका सप्रति भी किसी छत्र सक्ती है। यद्वा बकरा अग्नि है और ज्योति है, यद्वा बकी यज्ञनेके द्वारा अजकार वृत्त हुआ है। यद्वा बकी अग्निः प्रकाशसे बकरा प्रकट हुआ है। अथवा अज शब्दका अर्थ बकरा करनेपर यज्ञका मन्त्रोका कोई मन्त्र अर्थ नहीं लग सकता। अज अज शब्दसे यद्वा 'जीव आत्मा' अर्थ लेना चाहिये। अज इसका उक्त अर्थ लेनेके विषयमें इस सूत्रमें स्पष्ट कहा है, देखिये—

अजो वा इदमग्ने यजमत् ॥ (म० २०)

अज एक स्वयं लोकें दधाति, निर्मितिं वाधमान ॥ (म० १९)

अज च गच्छत पञ्च चादनात् ॥ (म० ३०)

“यद्वा (अज) अग्निः आत्मा अजका उत्पत्ति आत्मासे परा मय कर रहा है। यह अजका आत्मा परिपक्व होनेपर अजनिष्टको दूर कर शरीरमें अग्ने आत्माका धारण करता है। अजसे और पाच अजोंको परिपक्व करे।” इस अजमें जो कुछ भी पराक्रम हुआ है वे इस आत्माके कारण ही हैं, इस अजमें जो चल रहा है वह आत्माका शक्ति ही है। शरीरमें शिवत्वा और विषम परमात्मा कार्य कर रहा है। जीवात्मा आत्मासे अपरिपक्व अवस्थामें होती है, यह सुप्त सत्कर्मों द्वारा परिपक्व बनता है और इसकी चित्ती परिवर्तना होती है, उतना यह अपनी ही शक्तिसे अजनिष्टको दूर करती रहती है। इसमें सिद्ध होता है, कि जीवात्माकी ही अवस्था है, कई तो परिपक्व स्थितिमें प्राप्त होते हैं, तोप जितने हैं उतने सब अपरिपक्व अवस्थामें हैं अथवा परिपक्व होनेके मार्गमें होते हैं। इसीको मुक्त और बद्ध अवस्था कहा है।

यद्वा 'अज पश्य' ये शब्द देखनेसे 'पकाया हुआ बकरा' ऐसा अर्थ कई लोग करते हैं, परन्तु पकाये हुए पकनेका स्वरूपमें जानेका अनुभव तो नहीं है, वह सीधा मांस भक्षणोंके देखने जाता है। परन्तु यद्वाका परिपक्व हुआ अज सीधे स्वयंवाचकी आत्मा है, अज यद्वाका अज अज है। दूसरी बात यह है कि, 'अज' शब्द कई मार्गोंमें प्रयुक्त होता है, अनुपपन्न विचार परिपक्व हुए हैं, उसका ज्ञान पक्व हुआ है, एक परिपक्व हुआ है, इस तरह इसका भाव यद्वा अज है। यह परिपक्व कैसे होता है इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र भाग देखिए—

नैदाघ क्षुर्यन्त सद्यन्त पिण्ड्यन्त उद्यन्त  
अभिमुख नाम मनु वेद धिय आदधे  
आत्मना भवति ॥ (म० ३१-३२)

“उद्यन्त, सद्यन्त, सद्यन्त, उद्यन्त और शत्रुत्प ये छ आत्माके क्रतु हैं। ये छ क्रतुओंसे काम लेना जानना है यह जीवोंका प्राप्त करना है और आत्माकी शक्तिसे मुक्त होता है।” ये छ मन्त्र आत्माको उद्यन्त करनेवाली शक्ति-योंके सूचक हैं। सद्यन्त पड़िये शत्रुत्पमें उद्यन्त-गर्मी चाहिये, इत्यन्त कार्य करनेकी स्फूर्ति इसीमें होती है, पश्चात् कर्म करने चाहिये, क्योंकि सुप्त कर्मोंसे हैं। मुक्त होकर प्राप्त होते हैं। शुभ कर्म करनेसे जिन् सद्यन्त चाहिये। बहुत बन्ने करनेके

लिय पुष्टि होनी चाहिए । सतत उद्यम करना चाहिए और भीषण जो विषम धार्मिक दूर हटनेका मत भी चाहिए । इन छ गुणोंके होने और इनके द्वारा योग्य शिक्षासे प्रयत्न करनेसे मनुष्यकी उन्नति होती है ।

वस्तुतः यह अजन्मा आत्मा मुक्त स्वरूप और स्वर्गका अधिकारी है, यह कोई अनधिकारी नहीं है, यह अशिक्षा विरहित है, अतः प्रकाशित होनेका अधिकारी है । यह परमात्माका समस्तपुत्र है इसलिए कहा है—

अजोऽसि, अज स्वर्गोऽसि । ( म १६ )

“ तू सम्प्रदाय है, तू स्वयं स्वर्ग है । ” तू अपने आपको पवित्र होने योग्य न मान, जन्ममरण चालन करते योग्य न समझ । तू वस्तुतः जन्म न धारण करनेवाला है और तू ही स्वर्ग है । फिर यह तू इस दुनारे कपर क्यों आता है ? इसका विचार कर, अपने पूर्व कर्म देख और अपने अपनी उन्नतिके लिए उद्यम करके अपनी उन्नतिका साधन कर । इसको उन्नतिके साधनका मार्ग यह है—

यत आ नय, धारमस्य प्रजानम्, सुकृता लोक गच्छन्तु ॥ ( म १ )

“ इसको उत्तम मार्गसे यहाँ सुख कर्मका प्रारम्भ कर उन्नतिके मार्गको जानकर पुण्यलोकको प्राप्त कर । ” इस उपदेशमें चार भाग हैं और ये महत्वपूर्ण हैं । सबसे पहिला भाग धर्ममार्गसे जानेका है, यह जो किसी उद्यम मुक्तके माथीन रहकर ही तब चिन्ता न लक्ष्या है, अतः पहिला ( यत नय ) यह वाक्य गुरुसे कहा कि “ हे गुरु ! तू इस सिष्यको सहाय दैकर योग्य मार्गसे ले चक । ” दूसरा वाक्य ऐसा है कि ( धारमस्य ) शुभ कर्मोंका प्राप्ति कर, जो पाद गुरुसे प्राप्त हुआ है उसने अनुसार कर्म करना प्रारम्भ कर । पदा कर्मोंका प्रारम्भ हो जाता है । कर्म करने करते मनुष्यका ज्ञान बढ़ता है और वह ( प्रजानम् ) ज्ञाने दीकर जाता जाता है । और अन्तमें ( सुकृता लोक ) पुण्य कर्म करने वालोंके लोकको प्राप्त करता है । सामान्यतः मनुष्यकी उन्नतिका सीधा मार्ग यही है । इस मार्गसे अनेकजनों अपने आपकी अजन्मा होनेका तथा स्वयं स्वर्गस्थ होनेका अनुभव मन्त्रमें आजाता है । इस प्रकार यह मार्गका अन्तर्धान करता हुआ—

अज महान्ति तमासि बहुधा तीर्त्वा । ( म १ )

अज विपश्यन् तमासि बहुधा तीर्त्वा । ( म २ )

अज तमासि दूर भवन्ति ( म ७, ११ )

३१ ( नवमे भा १ वृ हिन्दी )

“ यह अजन्मा आत्मा मार्गमें बड़े बड़े मन्थकारोंको ( विपश्यन् ) विशेष रीतिसे देखता है और उन सब मन्थकारोंको ( बहुधा ) अनेक रीतियोंसे ( तीर्त्वा ) ले कर, राय कर, दूर करक पास हो जाता है । ” इस तरह यह अपना मार्ग सुलभ करता है और भागे पड़ता है । भागे बड़े बड़े—

अज तृतीय माक आकमताम् ॥ ( म ३, २ )

सुकृता लोक गच्छन्तु ॥ ( म १ )

यत तृतीये नाके अधि विभय ( म ५ )

यत गच्छन्तु सुकृता यत्र लोक । ( म ६ )

अतः परितः तृतीय माक उत्तम । ( म ५ )

सुकृता मध्य मेहि तृतीय नाके अधि विभयस्य ।

( म ६ )

‘ शुभ कर्म करनेवालोंके मन्त्रमें आ और वे पुण्यलोक महात्मा लोगे जाते हैं, उस तृतीय स्वर्गधामन तक कर विराजमान हो । ’ इस प्रकार दूसरी वृत्ति होती है । तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त करनेकी योग्यताको प्राप्त करनेक पूर्व पहिले और दूसरे स्वर्गकी योग्यता मनुष्यको प्राप्त करनी चाहिए तभी मन्त्रमें उसको तृतीय स्वर्गधामकी प्राप्ति सगर है । ये तीन स्वर्ग कीमते हैं, इसका भी यहाँ विचार करना चाहिये ।

सब जानते हैं कि यह मनुष्यलोक है, जो धूप जगत् है इसीको मनुष्यलोक कहते हैं, क्योंकि यह वरिष्ठतरीक्षी है । इससे दूसरा परन्तु इतीमें गुप्त रूपसे स्थित दूसरा लोक है, इस स्थल अन्तर्गत प्रत्येक पदार्थकी प्रतिकृति इस स्थल सहित रहती है । आधुनिक बन्दर कार्य करनेवाला मन गुप्त होनेपर अनेक और विविध-वस्त्र-इससे भी अतिवैचित्र्य दृश्य देखता है । यह दूसरा स्थिति है । इसको कामस्थि भी कहते हैं । स्थूल जगत्की ही यह प्रतिकृति होनेके कारण ये सुख गुप्त स्थूल स्थितिमें होते हैं जैसे दी हलमें होते हैं, यद्यपि स्थूलके बन्दर और प्रतिबन्ध इसमें न होनेसे इसका महत्त्व स्थूलसे अधिक है । ये हमें अनुभव कर लेना है जो यहाँ है और कारण सारवाणी जब मनुष्य पदचक्र स्वतन्त्रतासे विराजता है, तो उसको स्वर्गधाम प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं । इसमें तीन दर्जे हैं । प्रथम, मध्यम और उत्तम ये तीन अवस्थाएँ इस स्वर्गमें हैं जिसके जैसे सुकृत होत है उसको वैसी अवस्था यहाँ प्राप्त होती है । सुकृतने अनुसार प्राप्त होनेवाली यह अवस्था होनेके कारण इसमें प्रत्येकका अनुभव सुखात्मक होनेके कारण प्राप्त प्राप्त होता है । प्राप्त प्रकार मुक्ति समाधि और मुक्ति मन्त्ररूपता होती है, परन्तु सुप

तिका निम्न कोटिरी और श्रुतिकी उच्च कोटिरी होती है, इसी प्रकार यहाँ सप्तसना उक्ति है।

द्वितीय स्वर्गधाममें पहुँचनेका आशय यह है। यही उत्तम स्थान, परमधाम, स्वर्ग या ओ कुछ धर्मधर्मोंमें वर्णित है वह यही है। सदाचारसे इसकी प्राप्ति होती है। परिषद्वत् आत्मा होनेपर साधक इसको प्राप्त कर सकता है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखने योग्य है—

सतात् चरोः अततः ( सन् ) उत्क्राम । ( मं. ९ )

‘तपे हुए पात्रमें रहता हुआ भी जो उस वहाँ होता, वह उत्क्राम होनेका अधिकारी है।’ ये ही विष्णु मित्र शब्दोंमें इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—‘दुःखी पात्रमें रहता हुआ भी ॥ उसे भक्ति रहनेवाला, योगियों के स्थानमें रहता हुआ भी नीरोन रहनेवाला, परमेश्वर लोगोंमें विचरता हुआ भी ओ परमेश्वर नहीं रहता, यही संतत प्रदेसमें जानितसे रह सकता है।’ इसीका नाम उपस्था है।

एक वर्तनमें लिखती एक रही तो उसमें रहनेवाले सभी चावल और ग्राहके दाने बचने लगते हैं, यदि एकत्र दाना पैसा ही कम्पा रह जाया है तो ॥ किसीके भी पैतृमें इजम नहीं होता। इसी प्रकार इस विषये वर्तनमें यह सप्तजगत्की लिखती एक रही है। इस तपे और उबलते हुए वर्तनमें ओ न चरता हुआ और न गलत या न उबलता हुआ रहेगा, यही हमके पात्र चला जाता है। यही उसकी उत्क्रामि है। आगे अथर्ववेद कां० ११ ( ३ ) में ही प्रह्लादके पकनेका इस दृष्टिके विचार पात्रमें लिखतीके पकनेका मनोवृत्त वर्तन अलकार रूपसे मायेगा। यहाँ रायका पात्र ही रहा है ऐसा कहा है। इस तपे पात्रमें यही रायकी ॥ तत्राह दुःख और कष्ट हो रहे हैं, यहाँ जो शान्त रहेगा उसीका चमत्कार प्राप्त हो सकती है। कमलपर जैसे पानीमें रहता हुआ भी पानीसे नहीं भीगा, उसी प्रकार परिषद्वत्को प्राप्त हुआ मनुष्य इस दुःखी जगत्के दुःखों और कष्टोंसे अलिप्त रहता है। यह उदासीन, वैराग्य, अलिप्ता, असंगृही अथवा अनापत्ति उक्तिका अर्थ साधन है।

मला जो लोग ‘बदरेके साँसको पकनेका भाव’ इन मन्त्रोंसे निकालते हैं, वे तपे हुए पात्रसे न तपे हुए पकनेके भावको किम प्रकार उक्तिका पद दिया सकते हैं और तपे हुए पात्रमें कौनसा बकनेका भाग अलकारकी विपत्तिमें रह सकता है। प्रस्तुत यह वर्तन ही अन्य विपत्ति है। पात्र वर्तनका भाव न समझनेके कारण कई लोगोंने इसका विपरीत अर्थ कर दिया है। धीमद्विपत्तिधामों जो अतंगभाज

और अनापत्तिका उपदेश है यही यहाँ इस मंत्रमें ‘तपे पात्रमें न तपते हुए रहना’ इन शब्दोंसे किया है। इस विषयमें आगे आत्मशुद्धिका एक अपूर्व उपाय भी बताया है—

यत् तुश्चरितं चचार, पदः ॥ अयनेनिग्धि,  
प्रजानन् दुद्वेः शफैः आक्रमताम् ॥ ( मं. १ )

यदि दुराचार है और यदि पांव मलिन हुए हैं, तो अपने पाँव ओ दाढ़ और इस बातको जान ले कि इस प्रकार चलनेसे पाँव मलिन हो जाते हैं। अतः शुद्ध पाँवोंसे जागे पद।’ दुराचारसे पाँव मलिन होते हैं उनको धोना चाहिये। अपने पांव स्वच्छ रखकर स्वच्छ भूमिपर पाँव रखनेसे जागे पद आचार होनेकी संभावना नहीं है। यहाँ उपलक्षणसे ( दृष्टिपूर्व न्यसेत् पादं ) इस दृष्टिके बचनका ही आशय कहा है। इस प्रकार आत्मशुद्धिका भाग बताया है, अथर्ववेदमें पूर्वस्थापनपर इसीका वर्णन अन्य रीतिसे किया है—

द्रुपदादिय मुमुक्षानः स्विधः स्नात्वा मलादिव ।  
पूर्तं पवित्रेणैवाज्यं शिष्ये शुग्मन्तु मेनसः ॥

अथर्व. १११५।१

‘जित प्रकार बचनसर्वमसे पद शुद्ध होता है और जैसे अनुप्य स्नावके द्वारा मलसे मुक्त होता है अथवा जैसे छान-गीले की पवित्र होता है, उसी प्रकार मुझे पात्रसे पवित्र करो।’ इसी मन्त्रके उपदेशके अनुसार इस सूक्तके मंत्रमें ( दुद्वेः शफैः आक्रमताम् ) अपने पाँव निमिष करके जागे बचनेको कहा है। अपना शुद्ध चालचलन रखनेका उपदेश इस आशयमें है। वेदमें ‘चरित्र’ शब्दसे ‘पाँव’ और ‘चालचलन’ ऐसे दो अर्थ हैं। अर्थात् पाव ( पाद ) वाचक शब्दोंका अर्थ चालचलन देता हो सकता है। इस प्रकार आचार्य-शुद्धिसे आत्मशुद्धि करनेका उपदेश यहाँ किया है। इस तरह आत्मशुद्धि होनेके अनंतर इसका परमस्वर्गके शिष्य समर्पण होता पादिये, यही इसका आत्मसमर्पण है। देखिये, इस विषयमें यह मंत्र विधारणीय है—

जीयता अजे ब्रह्मणे देयं आहुः । ( मं. ७ )

अह्मात्मानं दत्तः अजः तर्मांति अपहन्ति । ( मं. ७ )

‘जीयित मनुष्यको दत्तिय है कि वह अपने ( अ-ज ) आत्माका समर्पण ( दत्तिये ) परमस्वर्गके लिये करे। आत्मा परमात्मके लिये समर्पित होवे। ॥ इस प्रकार अह्मात्मा सम-र्पित हुआ यह अत्रत्या आत्मा सप्त प्रकारके महानान्धकार ॥ करता है।’ समर्पित होनेसे इसकी पाति बढती है, सम-र्पित होनेसे इसका तेज वर्धित होता है। अतः इससे पा-रम्यका क्षेत्र देखिये—

पञ्चोदमः पञ्चधा विवर्तमानः । ( मं. ८ )

‘उक्त पञ्चभोजनी मन्त्रम् आत्मा पांच प्रकारके कार्य-क्षेत्रमें पराक्रम करे ।’ कर्मविशेष, ज्ञानेन्द्रिय, मन, चित्त और बुद्धि ये इसके पांच कार्यक्षेत्र हैं, इन क्षेत्रोंमें यह जीव आत्मा कार्य करता है । इन क्षेत्रोंमें यह स्वर विकसित करे । क्योंकि इसके विकसित करनेसे ही इसकी उन्नति हो सकती है । विकसित करनेसे विना किसी भी उन्नतिकी संभावना नहीं हो सकती । विकसित करनेसे मनुष्य ( श्रीणि ज्योतीषि जायतेऽस्यमानः । मं. ८ ) सील सेवकोंकी प्राप्ति करता है । इसमें एक क्षेत्र स्फूर्तका है, दूसरा मनका है और तीसरा चेतन भाविक है । इन तीनों क्षेत्रोंमें उन्नति होती है, अर्थात् इसके ये क्षेत्र बढ़ते हैं । परंतु इसमें सेवकोंकी बुद्धि ठब होती है कि जब इसका परमात्मनो क्षेत्र समर्थ होना है । उपर्युक्त यह है कि, आत्माका समर्थन मुख्य है, यही उन्नतिकी मुख्य साधन है । इसके बिना उन्नति असंभव है । अत्र दार्शनिक दृष्टि—

त्वा इन्द्राय भार्ग परिजयामि । ( मं. २ )

पञ्चोदमः प्रकृतेः प्रथमः । ( मं. १, १० )

पञ्चोदमं अत्र प्रकृतेः प्रथमः । ( मं. ११, १२ )

यं प्रकृतेः निधेयः । ( मं. १५ )

इसमें मंत्रोंमें मन्त्रके दिये मन्त्रमा आत्मनो समर्थन करनेका वारंवार उद्देश किया है । जो बात विशेष महत्वपूर्ण होती है, वह वेदमें इस प्रकार वारंवार पुनरावृत्ति जाती है । अर्थात् वेदमें जो उपर्युक्त वारंवार आता है, वह अधिक महत्वपूर्ण है ऐसा समझना चाहिये ।

जब मनुष्य और पञ्चम मंत्रमें समितिको कर्मका उद्देश है । इसमें तत्प्राप्ति करने और जोषिक अनुसार व्यवस्था करनेका तथा पार्श्वमें भर देनेका उद्देश है । इस विचारके करनेसे यह सुनिश्चित लोगोंके सम्पत्ति आता है ऐसा कहा है । यदि इन मंत्रोंमें प्रकृते का देनेका ही उद्देश होता, तो आगे ऐसा निर्देश क्यों होता—

नास्यास्तीति भिन्नाश्रम मन्त्रो निर्धेयः ।

सर्वमनं समादायेदमिदं प्रवेशयेत् ॥ ( मं. २३ )

‘इसकी दृष्टिमें न दूटे, न इसकी मन्त्रा कोई धर्म या पूरे, इस सबको लेकर इसमें प्रवेश करावे ।’ यह इसके अन्वय ॥ काटनेकी और इच्छा है, मन्त्रा की नहीं पर ज्ञाने अर्थात् इसके काटना नहीं चाहिये । इसकी दृष्टिमें अलग नहीं करनी चाहिये । इसकी मन्त्रा भिन्नान्ती नहीं चाहिये ।

यह इच्छा स्पष्ट है । इसमें कहा है कि इसके सबके सब भावको लेकर इसमें अर्थात् मन्त्र या परमात्मनो समर्थन करो । यही आत्मा इसके सब भावोंको उसमें प्रविष्ट करा-नेका है । अपने आपको परमात्मनो तोड़ने संपन्न देना, यही भक्तिभावकी अन्तिम सीमा है ।

यदि ऐसा है तो अन्तिमका तत्प्राप्ति काटना और छोड़नेके अनुसार उसके अवयवोंको समर्थ बनानेका भार क्या है, यह भ्रम यहाँ बाधकती है । इस प्रकारके उद्देशमें विवेक यह है कि पूर्णको मंत्रोंमें जो काटना किया है, वह उसी अर्थात् अन्तर्गत है कि जिस अर्थात्में उसकी दृष्टिमें अलग न हों, मन्त्रा बाहर न पूरे और अन्वय अलग न हों, अर्थात् सब अवयव समर्थ हों । ( मा अभिद्रुहः, पदशः एनं कल्पय । मं. ५ ) इससे द्रोह ॥ करो और अन्वय शोधमें इसकी समर्थ बनाने । यह अन्तर्गत यदि मनुष्य और पञ्चम मंत्रको अभीष्ट होता, तो उससे द्रोह न करनेकी आज्ञा। इसमें क्यों आती ? यद्यपि अधिक दूसरा द्रोह और पना हो सकता है । और अन्वय अन्वयको समर्थ बनाना भी यद्यपि कैसे होगा । यह न किया तो कदाचित् किसी उपायसे उसके अवयव समर्थ बनाने में सक्षम हैं, परंतु यह करनेके पश्चात् तो समर्थ बनाना ही असंभव है । अतः यहाँ ॥ अभीष्ट नहीं है, यह निश्चय है ।

इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ चमत्कारीक साधने और जोषोंमें प्रत्यक्षियोंको सर्वोद्धार प्रकृतित करनेकी विधि इन मंत्रोंमें किसी है । जैसे एक प्रकारके संविधानसे प्रकृतित लोगोंमें सुदृढ़ के अन्तर्गत द्वारा कुछ वस्तुविस्तार बाधनेसे अन्तर्गत होता है । ये सुदृढ़ों ठीकी, चांदीकी और सोनेकी होती हैं और इसी प्रकारके कुछ पदार्थविशेष भी होते हैं । इनसे चर्च कुछ अंशसे दृष्टकर उसमें विशेष क्षीयविशेषों करनेसे अन्तर्गत अवयव समर्थ होते हैं । यह विधि अभी-तक अज्ञात है, परंतु इसका स्वरूप इस प्रकारका कुछ है इसमें संदेह नहीं है । अस्तु, यह विषय छोड़ने योग्य है ।

यदि कोई मनुष्य यहाँ इन मंत्रोंमें [ अत्र ] बचनेके चर्चका उद्देश है, ऐसा ही आग्रह करे, तो वह मं. २० और २१ देखे, इनमें ‘अत्र’ विधिरूपका वर्णन है । समुद्र जिसकी ओरमें हैं, उर पुष्पो है, जलनेक उसकी पीठ है इत्यादि वर्णन कभी बचनेका नहीं हो सकता । यदि किसीका हो सकता है तो वह ‘अत्र’ अर्थात् अन्तर्गत परमात्मनो हो सकता है । या फिर इस परमात्मनो पुत्र जीरात्मनो भी वह वर्णन हो सकता है । क्योंकि परमात्मनो गुणधर्म अंतः-



रूपसं पुत्रमें आते हैं और पुत्रके विकास होनेपर पुत्रके भी गुणधर्म वितरण समान होने संभव हैं, अर्थात् जब जीवात्मन उद्यत होता हुआ परमात्मरूप बनता है, उस समय ये ही वशेन उसमें घट सकते हैं। इसका विचार करने पर इस सूत्रमें 'राघ' शब्दका अर्थ आत्मा है, इस विषयमें सन्देह नहीं होसकता और जीवात्माका पूर्णतया समर्पण परमात्माके लिए करनेसे ही जब जीवात्मनमें परमात्म भाव आता, उस समय इसका भी घट भाग सुलोक और अन्तरिक्ष मध्यभाग और गूढी लला आता होसकता है। जैसा कि मं २० और २१ में कहा है। और इसीलिए इसको भागे—

एव वा अपरिमितो यद्यो यद्वजः पञ्चोद्गमः ॥

[ मं २१ ]

“यह अपरिमित यज्ञ है जिसका नाम मंत्र अर्थात् मन्त्रा आत्मा है।” जीवात्मा-परमात्मनमें ही यह अपरिमितता होसकती है, क्योंकि इस प्रकारकी अपरिमितताकी स्थापना करना असंभव प्रतीत होता है। जीवात्मनकी प्राप्ति और उन्नति अपरिमित है, इसीलिए—

अपरिमितं यज्ञं आप्नोति। अपरिमितं लोकं अयच्छेत् ॥

[ मं. २२ ]

“आत्माका समर्पण करनेसे अपरिमित यज्ञ होता है और आत्मसमर्पण करनेसे अपरिमित लोक प्राप्त होते हैं।” अपरिमितक दानसे ही अपरिमित यज्ञ प्राप्त हो सकता है। अन्य सब दान परिमित हैं, आत्माका दान ही अपरिमित दान है। इसीलिए अन्य पदार्थक दानसे परिमित लोक प्राप्त होता है और इस आत्माके समर्पण करनेसे अपरिमित लोककी प्राप्ति होती है।

आत्मसमर्पण राघ वक्र और मुक्तं दान भी होता है। यह, इस विषयका विधान ॥ २५, २६ और २७ में है। क्योंकि सदा दान दक्षिणाके साथ ही हुआ करता है।

दक्षिणाके बिना दान बचहीन हुआ करता है। मं. २० और २४ में “पुनर्विवाहित पतिपत्नी पञ्चोद्गम अथवा दान करने से तो विमुक्त नहीं होती” ऐसा कहा है। पाठक यहाँ देखें कि इन मन्त्रोंमें ‘ब्रह्मणे’ पद नहीं है। अर्थात् यहाँका आत्मसमर्पण ब्रह्मके लिए नहीं है। पतिकी पञ्चभोजनी आत्मा पत्नीको समर्पित होवे और पत्नीकी आत्मा पतिके लिए समर्पित होवे। पुनर्विवाहित पति हो अपना पत्नी दो, ये पूर्व पत्नी या पत्निका चिन्तन न करें, ये इस पत्नी या पत्निकी ही अपना सर्वस्व समझें। पूर्वका धारण करते रहनेसे परिवारमें छगका होसकता है और ससारका मुक्त दूर होता है, इसीलिए कहा है कि, पति पत्नीके लिए आत्मसमर्पण करे और पत्नी पतिके लिए आत्मसमर्पण करे। यहाँ कई पूर्वोंमें कि प्रथम पारके पतिपत्नीके विषयमें ऐसा आदेश क्यों नहीं दिया है? इसका कारण इतना ही है कि, प्रथमपारकी पतिपत्नीको सामने रखनेके लिए दूसरी पत्नी या दूसरा पति नहीं होता, इससे उनको परस्पर प्रेम करना क्लेशप्रदायी है। परंतु पुनर्विवाहित पतिपत्नीको पूर्वसंघर्षका कारण होता समय है, इसीलिए उस दोषका निवारण करनेके लिए यहाँ सूचना दी है। और यह निवृत्तन योग्य है।

उनतीसरे मन्त्रमें कहा है कि गौ, बक और सुवर्णका दान करनेसे स्वर्ग प्राप्ति होती है। सरपात्रमें दान करनेसे ब्रह्म प्राप्त होसकता है। इनके दानका महत्त्व अन्यान्य दानोंमें भी वर्णित है। तीसरे मन्त्रमें अपने सब संबंधियों और ब्रह्मियोंको पुकार कर कहा है कि, पूर्वाय उपदेशका मैं उत्तम प्रकार धारण रखें और उस दीक्षित अपनी उत्तमिकी प्राप्ति करा लेवे।

इस प्रकार इस सूत्रमें आत्मोपश्रितिका विषय कहा है। सन्देह इसके कुछ मन्त्रभाग कटिंग और राक्षस हैं, तथापि यहाँ वर्णन को हुई रीतिसे अनुसार विचार करनेसे पाठकोंको इसका आशय समझमें आसकता है।

## प्रजापती पुष्टि

कां. ७, सू. १९

( ऋषि - ब्रह्मा । देवता - प्रजापति । )

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्वर्मानः ।

संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु

॥ १ ॥

अर्थ— ( प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति ) प्रजापति के परमेश्वर हूँ सब प्रजामें जो उत्पन्न करता है और ( सुमनस्वर्मानः धाता दधातु ) वही उत्तम मनवाला, धारक देव इनको भाग्य करता है। इससे प्रजापति ( संजानानाः ) ज्ञान प्राप्त करके एक स्वतंत्र कार्य करनेवाली, ( संमनसः ) एक विचारवाली और ( सयोनयः ) एक उद्देश्यपते धारी रहती है। इन प्रजामें जिस देवताके ( मयि ) मुझे ( पुष्टपतिः पुष्टं दधातु ) पुष्टिको देनेवाला ईश्वर पुष्टि देवे ॥ १ ॥

प्रजापती पुष्टि कैसे होगी अर्थात् प्रजापती का कि कैसे बड़ सकती है, इसका उपाय इस सूक्तमें कहा है, इससे विषय निश्चित है—

- १ सब प्रजापति एक ईश्वरको माये और उसी एक देवको सबका उत्पादक समझे।
- २ उसी ईश्वरको कष्टोंसे सबकी वाचना होगी है ऐसा मानें और उसीको कर्मावर्त और हर्ष समझे।
- ३ ( संजानानाः ) सब प्रजापति उत्तम ज्ञानसे युक्त हो और एकमतसे अपना कार्य करें।
- ४ ( संमनसः ) उत्तम धृमसंस्कार युक्त मन करके एक विचारसे उत्पत्तिजन्य कार्य करते रहें।
- ५ ( सयोनयः ) एक उद्देश्यका ध्यान करके सबको एक कार्यमें संवर्धित करें। अपने संबंध बंधने और संरक्षके विषयोंके बाहर कोई न आवे।

इस प्रकार संघटना करनेवाले लोगोंको प्रजापति एक ईश्वर सब प्रजापती पुष्टि देता है।

## स्वेतीसे अन्न

कां. ७, सू. १८

( ऋषि - भर्गवा । देवता - पृथिवी, सूर्य । )

प्र नमस्व पृथिवी भिन्दीर्दे नमः । उद्रो दिव्यस्य नो चातुरीशानो विष्वा इतिम् ॥ १ ॥

न प्रस्तंताप न हिमो जघान प्र नमर्ता पृथिवी नीरदातुः ।

आपिदस्मै घृतमित्सरन्ति यत्र सोमः सद्गमिचक्रं भद्रम् ॥ २ ॥

अर्थ— दे पृथिवी ! तू ( प्रनमस्व ) उत्तम प्रकार चूने हो। ते ( घातः ) धारक देव ! तू ( ईशानः ) इनाम ईश्वर है इसलिये ( उद्र दिव्य नमः भिन्धि ) इस दिव्य मेखको छिन्नभिन्न कर और ( दिव्यस्य उद्रः इति विष्य ) दिव्य जलके भरे घृतनको खोल दे ॥ १ ॥

( प्र न तताप ) उष्णता देनेवाला सूर्य नहीं तपाता, ( हिमा न जघान ) हिम भी पीरित नहीं करता। ( नीरदातुः पृथिवी प्र नमर्ता ) बड़ा देनेवाली पृथ्वी चूने की आवे। ( आपः विष्वा अस्मै ) ऋत इससे लिये ( घृतं इत् श्रन्ति ) धी ही बहायें ( यत्र सोमः ) जहाँ सोमादि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, ( तत्र सद् गमिचक्रं ) वहाँ सदा दी कल्याण होता है ॥ २ ॥

भूमि हल आदि फटाकर अच्छी प्रकार तैयार की जावे । इसके बाद ईश्वरकी प्रार्थना की जावे कि, **॥** उत्तम प्रकार अच्छे वर्षोंके हमारी खेती उत्तम होनेमें सहायता देवे । बहुत गर्मी न पड़े, न बहुत पाला पड़े, भूमिको उत्तम प्रकार तैयार किया जावे, खेतीको पानी पी जैसा दिया जावे, अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत कम । इस प्रकार खेती करनेसे बहुत उत्तम वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और सब प्राणियोंका कल्याण होता है ।



## अन्नकी कृति

कां. ६, सू. १४२

( अग्नि-विश्वामित्रः । देवता-वायुः । )

उच्छ्रयस्व बहुमेव स्वेन महसा यव । मूर्णाहि विश्वा पात्राणि मा त्वां द्विष्पाशनिर्वंधीत् ॥ १ ॥  
आशुप्यन्तु यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व धीरिव समुद्र इवैष्यक्षितः ॥ २ ॥  
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राक्षयः । पुण्यन्तो अक्षिताः सन्त्वक्षरः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे वायु ! ( स्वेन महसा उच्छ्रयस्व ) अपनी महिमामें ऊपर उठ और ( बहुः अयं ) बहुत हो, ( विश्वा पात्राणि मूर्णाहि ) सब बरतोंको मर दे । ( द्विष्वा अशनिः त्वा मा यधीत् ) आकाशकी दिवली तेरा नाम न करे ॥ १ ॥

( आशुप्यन्तु देवं त्वा यवं ) हमारी बात सुननेवाले देवस्त्री तुझ यवकी ( यव अच्छावदामसि ) सदा हम उत्तम प्रशंसा किया करें, वह यव ( योः इय तत् उच्छ्रयस्व ) आकाशके समान ऊँच हो और ( समुद्रः इवैष्यक्षितः अग्नि ) समुद्रके समान अक्षय हो ॥ २ ॥

( ते उपसदः अक्षिताः ) ठेरे पाठ बैजनेवाले अक्षय हों, ( ते राक्षयः अक्षिताः सन्तु ) वेही राक्षसों अक्षय हो, ( पुण्यन्तो अक्षिताः सन्तु ) वृक्ष कानेवाले अक्षय हों और ( अक्षरः अक्षिताः सन्तु ) पानेवाले भी नक्षय हों ॥ ३ ॥  
अन्न आदि खाप पदार्थोंकी बहुत उपधि होवे । धर्ममें धान्य भरनेके पात्र भरे हुए हों और लोग उसको खाकर बल हों, कानेवाले और शिकानेवाले भी उन्नत हों । प्रति वर्ष धान्य विपुल पैदा हो और सब लोग सुखी हों ।



## अन्न

कां. ६, सू. ७१

( अग्नि-भक्षः । देवता-अग्नि, वैश्वानर, देवः । )

यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं द्विरेण्यमर्घमुत गामवामर्षिम् ।

यदेव किं च प्रतिब्रह्माहमग्निदोता सुहृतं कुणोतु

॥ १ ॥

अर्थ— ( बहुधा विरूपं यद् अग्निं अग्नि ) बहुत करके विविधरूपवाद्य जो अन्नमें खाया है, तथा ( द्विरेण्यं अर्घं वा अतां उन अग्निं ) सोना, पीता, गो, बकरी, भेड़ ( यत् यव किं च अहं प्रति उग्रहाह ) जो कुछ मैंने प्रार्थन किया है, ( होता अग्निः तद् सुहृतं कुणोतु ) होगा अग्नि उसको उत्तम करनेसे सुख करे ॥ १ ॥

मायार्थ— मैं जो कनेक प्रकारका अन्न खाया है, और सोना, पीता, गो, बकरी आदि पदार्थ स्वीकार करता हूँ, वह ठीक प्रकार पचने समर्थ होना हो ॥ १ ॥

यन्मा द्रुतमर्तुमात्रमात्रं दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उदिष्य शरणीत्यपिष्टदोषा सुदुर्तं कृणोत

॥ २ ॥

यदन्नमदुग्धमृतेन देवा दास्यन्तदास्यन्तु संमृणामि ।

वैश्वानरस्य महतो महिम्ना जिवं मृतौ मधुमदस्त्वन्नम्

॥ ३ ॥

अर्थ—(यत् हुतं अहुतं) जो दिया हुआ था न दिया हुआ (पितृभिः दत्तं) पितासे दिया हुआ, (मनुष्यैः अनुमतं) मनुष्योंसे अनुमोदित हुआ (मा आजगाम) मेरे पास आया है, (यस्मात् मे मनः उत् शरणीति इव) मिलते मेरा मन उच्चम रीतिसे प्रसन्न होता है, (होवा अग्नि तत् सुदुर्तं कृणोतु) होवा अग्नि उसे बुरा रूपसे स्वीकार करे ॥ २ ॥

हे (देवाः) देवो ! (यत् अन्नं अहुतेन जिवि) जो अन्न मैं असत्य व्यवहारसे खाता हूँ, (दास्यन् अदास्यन् कृत संमृणामि) दान करता हुआ, भक्षण न दान करता हुआ मिथका मैं संग्रह करता हूँ; यह (अन्नं) अन्न (महत्तः वैश्वानरस्य महिम्ना) बड़े वैश्वानरकी-परमात्माकी-महिमासे (मयां शिवं मधुमदं अस्तु) मेरे लिये कल्याणकारी और मीठा होवे ॥ ३ ॥

माधार्प—यहमें समर्पित भयवा असमर्पित, पितृपितामहोंसे प्रसन्न, मनुष्योंसे मित्र हुआ, जो भी मैंने पास आया है, जिसके ऊपर मेरा मन लग्य हुआ है वह उच्चम रीतिसे यन्में समर्पित हुआ हो ॥ २ ॥

जो अन्न या भोग मैं करता हूँ, वे सबसे प्रसन्न हों वा असत्यसे, उनका मैं यन्में दान करता हूँ, वे सब यन्में दिये हों वा न दिये हों, परमात्माकी कृपासे वे सब मुझे मधुमा देववाले हों ॥ ३ ॥

## अथ

### अनेक प्रकारका अन्न

मनुष्य जो अन्न खाता है वह 'वि-अन्न' अर्थात् विविध रंगरूपवाला होता है। दाढ़, पाचड़, रोटी, खीर आदिके रंग भी भक्षण और खप भी भक्षण भक्षण होते हैं। इन अनेक सिवाय दूसरे अन्नभोगके पदार्थ सोना, चाँदी, गाय, घोड़े, बैल, बकरी, भेड़ आदि बहुत हैं। सोना, चाँदी, बैल आदिके शरीरकी सजावट होती है, घोड़े दूर गमनके काम आते हैं, बैल खेतीके काम करते हैं। गाय, बकरी दुध देती हैं। इस प्रकार अनेकानेक पदार्थ मनुष्यके उपयोगमें आते हैं। ये सब यन्में समर्पित हों, अर्थात् मेरे कपड़ेके रत्नों-पमोमें ही समाप्त न हों, प्रत्युत सब जनताके कर्षमें समर्पित हों ।

### घनके चार भाग

मनुष्यके पास जो धन आया है उसके समस्त कर्म चार भाग होते हैं, इनका विवरण देखिये—

१ पितृभिः दत्तं—मातापितासे प्राप्त । अन्नके संस्कार-ले जो भाग्य है ।

२ अनुष्यैः अनुमतं—मनुष्यों द्वारा अनुमोदित अर्थात् अपने देशसे भिन्न अन्य मनुष्योंकी संमतिसे प्राप्त हुआ अन्न ।

३ हुतं आजगाम—किसीके द्वारा दानसे प्राप्त हुआ धन ।

४ अहुतं आजगाम—किसीके द्वारा दान न देते हुए अन्य रीतिसे प्राप्त ।

घन प्राप्त होनेके ये चार प्रकार हैं। इनमेंसे किसी भी रीतिसे प्राप्त हुआ धन हो और उसपर अपना मन भी रख हुआ हो, वह धन यन्में समर्पित होना चाहिये ।

जो अन्न आया जाता है, दान दिया जाता है और संग्रह किया जाता है, सब वैश्वानर हो और हमारा अन्नम कल्याण करनेवाला हो ।

## अथर्वशास्त्रम्

कां. ६, सू. ११६

(अपि- जाटिकायन. । देवता- विवस्वत् ।)

यद्यापं चकुर्निखनन्ते अग्रे कार्षीणिणा अजविदो न विधवा ।

वैवस्वते राजनि तच्छुद्धोन्मथं यज्ञियं मधुपदस्तु नोऽर्घम् ॥ १ ॥

वैवस्वतः कृणवद्भ्रातृषेधं मधुमागो गर्धना सं सृजाति ।

मातुर्यदेनं इपितं न असान्यद्वा पितापराद्धो जिहीते ॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चैर्वस एन आर्घम् ।

सार्यन्तो असान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मनुषुः ॥ ३ ॥

अर्थ— (अग्रे कार्षीणिणाः निखनन्तः) रहिते कृषि करनेवाले लोगोंने भूमिको खोदते हुए (विधवा अप्र-  
विदः न) जानते भक्त भात करनेवालोंके समान (यत् यामं यामुः) जो निबम बनाए, (तत् वैवस्वते राजनि  
शुद्धोमि) उनको वैवस्वत सर्वात् बसानेवाले राजाको समर्पित करा है। (अथ नः यज्ञियं अर्घं मधुमत् अस्तु) मधु  
हमारा पशुपीय भक्त मधुर होवे ॥ १ ॥

(वैवस्वतः भागधेयं कृणवत्) सबको बसानेवाला राजा सबको भक्तका विभाग करे, (मधुभागः मधुना सं  
सृजाति) भक्तका मधुर भाग और अधिक मीठके साथ संयुक्त होता है। (मातुः इपितं यत् एनः नः आर्घम्)  
मातासे मिलित हुआ जो पाप हमारे पास आया है, (यद् वा अपराद्धः पिता जिहीते) भक्तका जो हमारे अपराधसे  
नित्राके कोपसे हुआ है ॥ २ ॥

(यदि मातुः यदि वा पितुः) यदि मातासे और पितासे (भ्रातुः पुत्रात्) भाईसे और पुत्रसे (इदं एनः नः  
येतसः परि आर्घम्) यह वा हमारे धितके पास आया है, (यवन्तः पितरः असान् सचन्ते) जिन्होंने पितर हमसे  
सम्बन्धित हैं, (तेषां सर्वेषां मनुषुः शिवः अस्तु) उन सबका कोप हमारे लिये कल्याणकारी होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— भ्रातृभर्मे सेती करनेवाले भ्रिस्तानेने जो निबम बनावे, वेही राजाके पास समस्त हुए, उनके पाकनते सबको  
भक्त मीठा लगने लगा और चलेके लिये भी समर्पित होने लगा ॥ १ ॥

राजाने भूमिसे उत्पन्न हुए भक्तका योग्य भाग बनाया, उसको अधिक मधुर भावकर छोड़ सेवन करते हैं। उरी  
प्रकार मातासे और पितासे भी हमारे पास भक्त भाग आया है, उसका भी हम वैसा ही सेवन किया करें ॥ २ ॥

माता, पिता, भाई, पुत्र इनसे हमारे पास जो भाग आया है, यदि इनके साथ उनका कोप भी हुआ हो, तो यह  
हमारे कल्याणके लिये ही होवे ॥ ३ ॥

## प्रजाकी संमति

सेली करनेवाले सब प्रजाजन स्वसंमतिसे आपसके यथावक नियम बनाए, सब प्रजाने एकमतसे बनाये नियम राजा  
माने और उसके अनुसार राज्यशासन करे। ऐसा करनेसे राजा और प्रजाका उत्तम कल्याण होगा और राजाको सत्परा  
अधिक मिलेगा। राजा भक्तका योग्य भाग करके सबसे छोटे और प्रजाने भी योग्य भाग बांट देवे। जो जिसको प्राप्त हो  
उसमें वह समुष्ट रहकर उसका भोग आनन्दके साथ करे और कोई किसी दूसरेके गायकर अन्यायसे दण्ड न करे। माता-  
पिता आदिका जो दायभाग आता है, उसी प्रकार उनका कोप भी जाया, सब भी उससे सम्मानका कभी अहित नहीं होगा,  
क्योंकि उसमें माता पिताका प्रेम रहनेसे वास्तव उससे सम्मानका दित ही होगा।

## धान्यकी सुरक्षा

कां. ६, सू. ५०

( कृषि- मध्या ( अमरकाम. ) । देवता- अग्नि । )

हुतं तुदं सम्पद्कामासुमर्धिना छिन्तं शिरो अर्षिं पृथीः शृणीतम् ।

यवाभेददानर्षिं नक्षतं भुख्मयामयं कृषुतं धान्याय

॥ १ ॥

तदुं है पर्वत्तं है जम्भ्य हा उपकस । ब्रह्मवासस्थितं हविर्नदन्त इमान्पवानर्हिसन्तो अपोदित ॥ २ ॥

तदापते यवापते तृणजम्भा आ शृणोत मे ।

य आरण्या कपट्वरा ये के च स्थ व्यद्विरास्तान्सर्वान्ब्रम्भयामसि

॥ ३ ॥

अर्थ— हे ( अग्निनी ) अग्निदेवो ! ( तदं स्वर्गं आपुं हुतं ) भाग करनेवाले और भूमिमें बिल बनाकर रहने-  
वाले पर्वतों मारो । उसका ( शिरः छिन्तं ) गिर काटो । ( पृथीः अर्षिं शृणीतं ) उसकी रीत लोको । हे पृथे ( यवान्  
न हव् अदान् ) जोको कभी न खाते, ( भुख्मयामयं कृषुतं ) उनका मुख बंद करो ( अथ धान्याय अमयं कृषुतं )  
और धान्यके लिये निर्मयता करो ॥ १ ॥

( हे तदं ) हे हिसक ! ( हे पर्वत्तं ) हे सख्त ! ( हा जम्भ्य, उपकस ) हे जम्भ्य और हुट ! ( ब्रह्मा ह्य  
अर्हस्यितं हविः ) ब्रह्मा जिस प्रकार अर्हकृत हविको छोड़ता है, वस प्रकार ( इमान् यवान् अनदन्तः अर्हिसन्तः )  
इन लोको न खाते हुए और न नष्ट करते हुए ( अपोदित ) तुम दूर दूर जाओ अर्थात् इसको छोड़ दो ॥ २ ॥

हे ( तदापते ) महा हिसक ! हे ( यवापते ) सख्त ! हे ( तृणजम्भाः ) तीक्ष्ण इन्द्रावले ! ( मे आशृणोत )  
मेरा कहना सुनो । ( ये आरण्याः कपट्वराः ) जो लंगरी और विशेष खानेवाले हैं और ( ये के च व्यद्विराः स्थ ) जो  
कोई भक्षक है ( तान् सर्वान् ब्रम्भयामसि ) उस सबका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

### धान्यके नाशक बीज

चूहे, पतङ्गे, शकभ ( टिट्ठी ) आदि कृणु ऐसे हैं कि जो धान्यका नाश करते हैं, पौधोंको नष्ट करते हैं और शकभ लो  
ऐसे हैं कि जो करोड़ोंकी संख्यामें एकट्ठे मिलकर आते हैं, धान्यों और मूलोंपर बाधा करते हैं और उसका नाश करते हैं ।  
इससे धान्यमादिक बचाव करना चाहिये । इसलिये चूहों और शकभोंको मारना चाहिये ऐसा प्रथम प्रयत्नमें करना है ।

इस सूत्रमें इनके नाश करनेकी विधि बड़ी बताई है, येसक नाश करना चाहिये और धान्यका बचाव करना चाहिये  
इतना ही कहा है । यदि किसी स्थानपर इनके नाश करनेकी विधि मिल जाय, तो किसानोंका बहुत लाभ होगा । चूहे भी  
हजारोंकी संख्यामें नाश करनेवाले नाश करते हैं और शकभ जो करोड़ोंकी संख्यामें आते हैं । यदि कोई शोधक इनके नाशका  
उपाय निकाले, तो अत्युत्तम हो ।



## स्नानपात्र

कां. ७, सू. ७२

( अग्नि - अथवा । देवता - इन्द्र । )

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य प्रागमुत्तिष्ठेत् । यदि धातं जुहोतेन यद्यथात ममर्चन ॥ १ ॥

धात इविरो दिन्द्र प्र याहि जगाम सरो अर्च्यो वि मर्च्यम् ।

परिं त्वासते निविभिः सखायाः कुलया न ब्राह्मणं चरन्तम् ॥ २ ॥

धात मेन्य ऊर्ध्वनि धातमग्रौ सुश्रुत मन्ये वदत नवीयः ।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य दुग्धः पियेन्द्र वज्रिण्पुरुकुज्जुषाणः ॥ ३ ॥

मर्थ— ( उक् तिष्ठत ) उठो और ( इन्द्रस्य श्रुतिव्य भाग अत्रापश्यत ) प्रभुके मनुके अनुकूल भागको देखो । ( यदि धात ) यदि परिपक हुआ हो तो ( जुहोतेन ) स्वीकार करो और ( यदि अथात ममर्चन ) यदि परिपक न हुआ हो तो उसके पकनेवक भागको करो ॥ १ ॥

हे ( इन्द्र ) मनो ! ( धात हवि ओ सुप्रयाहि ) हवि सिद्ध हुआ है, उसके प्रति तू उत्तम प्रकारसे आ ( सूत अर्चन मर्च्य वि जगाम ) सूर्य अपने मार्गके मर्च्यमें गया है । ( कुलया ब्राह्मणं चरन्त न ) जैसे कुलपात्रक पुत्र संप्रति पिताके विश्वरूप हुए उसके पास जाते हैं, ( सखाय निविभि त्वा परि जासते ) समान विचारवाले लोग अपने समाजके साथ ठेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ २ ॥

( ऊर्ध्वनि धात मन्ये ) गायके स्तनमें परिपक हुआ है देता में मानता है । तत्रैवात् ( अग्नौ धात ) अग्निर परिपक हुआ है अतः ( तत् श्रुत नवीय सुश्रुत मन्ये ) वह सखा नवीन रूप उत्तम प्रकारसे परिपक हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ । हे ( पुरुषत् वज्रिण इन्द्र ) बहुत कर्म करनेवाले वज्रधारी मन्यो ! ( जुषाण ) उसका सेवन करता हुआ ( माध्य दिनस्य सवनस्य दुग्ध पिय ) माध्यदिनके सवनक दहीका पान कर ॥ ३ ॥

भाषार्थ— ठाठा और ईश्वरके द्वारा दिये गए मनुके अनुकूल अन्न भागको देखो । परिपक हुआ हो उसकी ओर और यदि कुछ अन्नभाग परिपक न हुआ हो, तो उसके परिपक होनेवक भागको देखो ॥ १ ॥

ह प्रभो ! यह अन्नभाग परिपक हुआ है, यह सिद्ध है, यहाँ प्राप्त है, सूर्य मर्च्य-हमें आ गया है । सप्त दिन अर्चन करने समाजोंको दिये हुए प्राप्त हुए हैं । जैसे पुत्र पिताके पास दृढ़ होते हैं वैसे हम सब ठेरे पास दृढ़ हुए हैं ॥ २ ॥

मैं मानता हूँ कि एक ओ गायके स्तनमें दूध परिपक होता है, पश्चात् अग्निर परिपक होता है । यत्र अन्न इस प्रकार सिद्ध होता है । हे मनो ! मध्यदिनके समय इसका सेवन करो और दही पीओ ॥ ३ ॥

## स्नानपात्र

## भोजनका समय

सूर्यके अन्धाकाराल अन्तेयर भोजन करना चाहिये, यह बात इस दृष्टस प्रतीत होती है, देखिये—

सूर्य अर्चन मर्च्य विजगाम । धात हवि सुप्रयाहि । ( अ २ )

“ सूर्य मार्गके मर्च्यमें पहुँच चुका है अतः परिपक अन्न प्रति आनन्दते आ । ” यह वाक्य साक्ष्यका समय दापहरत बाद भोजन या उससे भिन्न पश्चात्वा है, इस

वाक्य स्पष्ट करता है । हवि यत्र मर्च्यका है । यह अन्न परिपक हुआ हो । अन्न एक ओ स्वयं ( ऊर्ध्वनि धात ) गायक स्तनमें परिपक होता है, जिसको हम दूध कहते हैं, यह दूध हुँदे आगेके पश्चात् ( अग्नौ धात ) अग्निर पकाया जाता है । इसमें दूध या स्वभावतः परिपक्य होती है पश्चात् अग्निर परिपकना होती है, पश्चात् देवताओंको समर्पित करक भोजन करना होता है । दूधका उपायनेक पश्चात् उसका दही बनाया जाता है । यह दही ( माध्य

न्दिनस्य दध्नः पिव ) मध्याह्नके मोहनके समय पीना योग्य है । रात्रिके समय या सुबेरे दही पीना उचित नहीं, क्योंकि दही शीतवीर्य होता है इस कारण यह दोषहरके उष्ण समयमें ही पीना योग्य है ।

जैसे गादके स्वनमें दूध परिपक्व होता है, उसी प्रकार ' गो ' नाम भूमिके अंदर धान्य आदिकी उत्पत्ति होती है । इसको भी परिपक्व दशामें लेना चाहिये, पक्का अग्नि-पर पकाकर या भूनकर उसका सेवन करना चाहिये । वह अन्न दूध ही वा अन्न धान्यादि हो वह ( श्रुतं मवीयः ) मया लेना योग्य है । दूध भी ताजा लेना चाहिये और धान्य भी बहुत पुराना लेना योग्य नहीं । अन्न भी बकते ही लेना चाहिये अर्थात् दोषार दिवसे बासे पदार्थ लेने योग्य नहीं है । मगवाहीतमें कहा है कि—

यातयामं गतरसं पृतिपर्युरितं च यत् ।  
उच्छिष्टमपि चाभेद्यं भोजनं तामसमिषम् ॥

अ जी. १०१०

" निष्ठ अन्नकी तैयार होकर तीन घण्टे व्यतीत हो गए

हो, जो बीरस हो, जो दुर्गन्धयुक्त हो, जो उच्छिष्ट हो और अपवित्र हो वह तामस लोगोंको शिव होता है । " अर्थात् अन्न पकाकर तीन घण्टेके पश्चात् उसका सेवन करना योग्य नहीं; पकनेके तीन घंटे बाद तक उसको ( श्रुतं मवीयः ) नखा वा ताजा कहते हैं, इसी अवस्थामें उसका सेवन करना चाहिये ।

परमेश्वर ( कृत्स्नियं भागं ) कृतके योग्य अन्न भागको देता है । शिव भगुमें जो सेवन करते योग्य होता है वह अन्न, दूध, रस आदि देता है । उसको एक भरणधामे प्राप्त करना चाहिये और पश्चात् उसका सेवन करना चाहिये । यदि कहीं एक पक्का न हो तो उसकी प्रतीक्षा भाग्यके साथ करनी चाहिये ।

सप्त परिवारके तथा ( सखायः ) इष्टमित्र अपनी अपनी धार्मिक ( नियमिभिः ) अपने अन्न संस्कारों से और साथ साथ ईश्वरमें बैठें, सब अपने अन्नभागसे कुछ भाग देवता-ओंके उद्देश्यसे समर्पण करें । सब इष्टमित्र देता मार्ग की वह ईश्वर अपने बीचमें है अथवा हम उसके चारों ओर हैं और जो अन्न भाग मिले उसका आर्चनके साथ सेवन करें ।

## औषधिरसका पान

कां. ६, सू. १६

( अग्निः—सौमनः । देवता—अमुता अन्नौषधेयता । )

आर्षयो अनाययो रसंत दुग्ध औषयो । आ र्ते कर्ममर्षसि ॥ १ ॥  
विहहसो नाम ते पिता मुदावती नाम ते माता । स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥ २ ॥  
सौविलिकेऽवैलयादायमैलव ऐलवीत् । वृधुर्ध्व वृधुर्ध्वमार्षेहि निरंत ॥ ३ ॥  
अलसालासि पूर्वा सिलाजालास्युचरा । नीलगलसाला ॥ ४ ॥

अर्थ—( हे आवयो, आययो, अनाययो ) वैष्णवेयसी और न वैष्णवेयसी औषधि ! ( ते रसः उग्रः ) तेरा रस कम है । ( ते कर्मं मा अमसि ) तेरे रसका हम पेय बनाते हैं ॥ १ ॥

( ते पिता विहहसः ) तेरा पिता विहहस है और ( ते माता मुदावती नाम ) तेरी माता मुदावती है । ( सः हिन त्वं असि ) वही उनसे ही तू बनता है । ( या त्वं आत्मानं आवयः ) जो तू अपने आत्माकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

( सौविलिके अथ ईलय ) अग्निके कार्यमें हमें प्रेरित कर । ( अयं ऐलवः अथ ऐलवीत् ) यह भूमिके सर्वकार्य करनेवाला प्रेरणा करता है । हे ( आल ) समर्थ ! ( वधुः च वधुर्ध्वः च ) मूरा और धूरे कालवाय ( निः अप रहि ) हमसे दूर ॥ ३ ॥

( पूर्वा अलसाला ) यदिके तू आलसियोंको रोक्नेवाली है, ( उच्छा सिलाजाला ) दूसरी तू अशुभोंको रहुं-पने-वाली है । तथा ( नीलगलसाला ) पर धर्मों उपयोगी है ॥ ४ ॥



## रसपान

इस सूत्रमें “ फरेम ” शब्द है। दही और सत्तुका वाद्य मिश्रकर बना उद्यम पेय रस बनता है उसका यह नाम है। यह क-जीको हयनेवाग और घटी बुष्टि देनेवाला होता है। इसमें कई औषधियोंने रस मिश्रनेसे इसने गुण अधिक बढ़ जाते हैं।

“ विहृहृ ” ( विला ) वृक्षका “ मदावती ” नामक ( भावा ) औषधिपर कटम करनेसे जो औषधि बनती है ब्राह्म ( आत्मानं भावयः ) आत्माकी-अपनी-रक्षण करनेवाली होती है। यह द्वितीय अंग्रका कथन है। यह मातापिणके स्थानकी औषधियों इस समय अग्राह्य हैं।

हरी प्रकार इस सूत्रमें भावे अग्न्याग्न्य नाम किम वनस्पतियेरे हैं, इसका वला नहीं चलता। भावपु, अनापु, विहृहृ ( विला ), मदावती ( माता ), औषधिका, पैरुव, बभ्रु, बभ्रुवर्ण, बाण, मलमाळा, ( पूर्वा ) सिरामाणा, ( उत्तरा ) नीलाग्न्याना इत्यादि नाम इस सूत्रमें भावे हैं। इनका वला नहीं लगता। इसलिये इनपर अधिक शिक्षना असंभव है।

## कृणुरहित होना

कां. ६, सू. ११७ .

( कथि.- कीलिक । वेषता- भवि । )

अपमित्यमप्रतीक्षं यदस्मि यमस्म येन धलिना चरामि ।

इदं तदमे अनुणो भवामि त्वं पाश्चात्निचृत्तं येष सबीन्

॥ १ ॥

इद्वै सन्तः प्रति दध एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हिराम एनत् ।

अपमित्यं धान्यं यज्जघसाहमिदं तदमे अनुणो भवामि

॥ २ ॥

अर्थ— ( यत् अपमित्यं अप्रतीक्षं अस्मि ) जिस वापस करने योग्य पदार्थको वापस न करनेके कारण मैं मर्दा हो गया हूँ और ( यमस्य येन धलिना चरामि ) निश्चयके वसामे जिस कणके कारण पहुँचा हूँ, हे भग्न ! ( इदं तत् अनुणः भवामि ) भग्न मैं उस कणको चुकाकर कणरहित हो जाऊँ, ( त्वं सार्वात् विमृत्तं पाशान् येष ) व सव कणके सुने हुए पारोकी जानता है ॥ १ ॥

( इह ह्य सन्तः एनत् प्रति दध ) यहीं रहते हुए इस कणको चुका देने हैं, ( जीवाः जीवेभ्यः एनत् निहराम ) इसी जीवनमें कल्प जीवोंके इस कणको हम विनोष करते हैं। ( यत् धान्यं अपमित्य अहं जघसा ) जो धान्य उधार लेकर पाया है, हे भग्न ! ( इदं तत् अनुणः भवामि ) यह वह है और इस संशयों में कणरहित होना ॥ २ ॥

भाषार्थ— जो कर्मा लिया होता है उसे समयपर वापस करना चाहिये। यदि वापस न किया तो कल सेनेवाला दायी होता है। इस दोषसे मुक्त होनेके लिये धीम कणमुक्त होनेका यत्न करना चाहिये। सब अपने पास पोट कर पड़िके कणमुक्त होना चाहिये ॥ १ ॥

इस सत्यमें प्रीतिर दहकर ही कणके कर्णसे मुक्त होना चाहिये, कर्पाद् स्वयं किया हुआ कर्मा अपने धान्यकोके लिये छोड़ना उचित नहीं। धान्यका कर्मा हो अपना धन बाँटिका हो उसको धीम वापस करना चाहिये ॥ २ ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्ननृतीर्षि लोके अनृणाः स्याथ ।

ये देवयानाः पितृयाणां च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा वा श्रियेय

॥ ३ ॥

अर्थ— ( अस्मिन् लोके अनृणाः ) इस लोकमें हम ऋणरहित हो जाय, ( परस्मिन् अनृणाः ) परलोकमें ऋणरहित हो जाय और ( तृतीये लोके अनृणाः स्याथ ) तृतीयलोकमें भी हम ऋणरहित हो जायें, ( ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः ) जो देवयान और पितृयानके लोक हैं, ( सर्वान् पथो अनृणा आश्रयेयः ) इन सब मार्गोंमें हम ऋणरहित होकर चलें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस लोकका ऋण दूर करना चाहिये, परलोकमें ऋणों मुक्त होना चाहिये और अन्य लोकोंमें भी मुक्त होना चाहिये । देवयान और पितृयानके सब स्थानोंमें ऋणरहित होना योग्य है ॥ ३ ॥

मनुष्यको सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होना चाहिये । जमीन रहकर मरना योग्य नहीं है । यह मूल सुबोध है, इसलिये अधिक स्वार्थपरता की आवश्यकता नहीं है ।

## ऋणरहित होना

कां. ६ सू. ११८

( कृषि - कौशिक । देवता - अग्नि । )

यद्वास्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्णक्षणां गन्तुमुपलिप्समानाः ।

॥ १ ॥

उग्रपश्ये उग्रजितौ तदुद्याधरसावन्तु दचावृष नः

उग्रपश्ये राष्ट्रपूरिकिल्बिषाणि यदुग्रतृत्तमनु दत्तं न एतत् ।

॥ २ ॥

ऋणाशो नर्णमेत्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत्

अर्थ— ( अक्षाणां गन्तुं उप लिप्समानाः ) लड़के स्थानके प्रति जानेकी इच्छा करनेवाले हम ( यत् हस्ताभ्यां किल्बिषाणि चकृम ) जो हाथोंसे अनेक पाप करते हैं । ( तत् वाः कृणं अथ ) वह हमारा ऋण भाग ( उग्रपश्ये उग्रजितौ अप्सरसौ अनुदत्ता ) उग्रतासे देखनेवाली और उग्रतासे जीतनेवाली दोनों अप्सराएँ हमसे दियेंगी ॥ १ ॥

हे ( उग्रपश्ये राष्ट्रभुक् ) उग्रतासे देखनेवाली और हे राष्ट्रका नाशनेवाला करनेवाली ! ( यत् अक्षपूरत् ) जो उपवासकी पाप है और जो ( किल्बिषाणि ) अन्य पाप हैं, ( नः यत्तद् गन्तु दत्तं ) हमसे वह सब बड़का दिया हुआ है । ( ऋणात् ऋणं न पत्समानः ) ऋणोंसे ऋणको वापस न प्राप्त करनेपर ऋण देनेवाला ( अधिरज्जुः यमस्य लोके नः आयत् ) रस्सी लेकर यमके लोकमें हमारे पास आवेगा ॥ २ ॥

भावार्थ— लड़के स्थानपर जाकर जो पाप किया जाता है और अन्यत्र जो पाप होता है, उसी प्रकार जो हम ऋण करते हैं, उस सबको दूर करना चाहिये ॥ २ ॥

लड़का पाप, अन्य पाप और ऋण यदि दूर न किया तो हमें यमलोक जाना पड़ेगा ॥ २ ॥

यस्मां ऋणं यस्थं जापामवैमि यं याचमानो अम्यैमि देवाः ।

ते वाचं वादिपुर्मोत्तरां महेवैपत्नी अप्सरसावर्षीतम्

॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( देवा ) देवो ! ( यस्यै ऋणं ) जिसको ऋण वापस करना है, ( यस्व जायां उपैमि ) जिसकी स्त्रीके पास सहाय्य याचनाये जाता है, तथा ( यं याचमानः अम्यैमि ) जिसके पास याचना करता हुआ पहुँचता है, ( ते मत् उत्तरां पाचं ॥ वादिपुः ) वे मुझसे अधिक ऊँचे सहाय्य न करें । हे ( देवपत्नी अप्सरसी ) देवपत्नी अप्सरामो ! ( अवर्षीतं ) स्मरण रखो वह मेरी प्रार्थना ॥ ३ ॥

आचार्य— जिससे ऋण लिया है भयवा जिससे कुछ पाचना की है वह हमें दुश्चर न बोलें, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ३ ॥

[ ये मन्त्र कुछ मंत्रों में संश्लिष्ट हैं, इसलिये इनके विषयमें विशेष स्पष्टीकरण करना आवश्यक है । क्योंकि इनके कई सन्दर्भोंका सम्बन्ध स्पष्टताया प्रतीत नहीं होता । ]

## ऋणरहित होना

कां. ६, सू. ११९

( अथि.— कीर्ति । देवता- वैधानरोमि । )

यददीव्यमृणमहं कुणोम्भदास्पन्न उत संगुणामि ।

वैश्वानरो मे अभिषा वसिष्ठ उदिसपाति सुकुतस्य लोकम्

॥ १ ॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्युणं संगरो देवतासु ।

॥ एतान्पाशान्विचृतं वेदु सर्वांनयं पृक्तेन सह सं भवेम

॥ २ ॥

अर्थ— ( यत् अहं अदीव्यम् ) जो मैं तुला न लेता हुआ ( यत् ) ऋण कर ( उत अवास्पन् संगुणामि ) और उससे ॥ सुकृता हुआ सुकानेकी प्रतिष्ठा करता जाऊँ, हे अग्ने ! ( वैश्वानरः वसिष्ठः अभिषाः ) विश्वका नेता सबकी यमानेवाला अपिपति ( सः सुकुतस्य लोकं इत् उदिसपाति ) हमें पुण्यलोकमें जानेके लिए उद्यत करे ॥ १ ॥

( वैश्वानराय यत् ऋणं प्रतिवेदयामि ) विश्वके नेताओं में जो ऋण है वह कहूँगा, तथा ( देवतासु याः संगरोः ) देवताओंमें जो प्रतिष्ठा हुई है, वह भी मैं कहूँगा । ( सः एतान् सर्वांन् पाशान् विचृतं वेदु ) वह ॥ स सब पाशोंको मोलनेकी विधि जानता है । ( अथ पश्येत् सह संभवेम ) अब हम परिपक्वके साथ मिल जाय ॥ २ ॥

आचार्य— तुला न लेता हुआ ऋण कारणसे ओ ऋण मैं करता हूँ और उसको समझकर वापस न करता हुआ वापस करनेकी प्रतिष्ठा करता रहता हूँ, उस दोषसे बचने और ईश्वर मुझे ऊपर उठावे और पुण्यलोकमें पहुँचावे ॥ १ ॥

ओ ऋण मैंने किया और उस सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञाएं मैंने कीं उन सबको मैं निवेदन करता हूँ । इस प्रकारके पार्ष्णि ईश्वर मेरा बचाव करे, क्योंकि वही इन सम्बन्धोंमें दूर करने हमें ऊपर उठानेके उपाय जानता है । हम परिपक्व हुए शानिचोंके साथ रहें, जिससे हमसे दोष नहीं होंगे ॥ २ ॥

**वेधानुरः पविता मा पुनातु यत्संमरममिषावांम्वाशाप् ।**  
**अनाजान्मनसा याचमानो यच्चैनो अप यत्सुवामि**

॥ ३ ॥

अर्थ— ( पविता वैधानुरः मा पुनातु ) पवित्र करनेवाला शिवका नेत्रा मुझे पवित्र करे । ( यत् संगदं अशां अभिधावामि ) जिस प्रतिज्ञाको करके हुआ जिस आशाके पीछे मैं चौकता हूँ, ( अनाजान् मनसा याचमानः ) मैं जानता हुआ तथापि मनसे याचना करता हुआ ( तत्र यत् एवः ) वहाँ जो पाप होता है ( तत् अप सुवामि ) उसको मैं दूर करता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ— ईश्वर आपको पवित्र करनेवाला है, वह मुझे पवित्र करे । जिस आशाके पीछे पड़कर मैं बारबार प्रतिज्ञा करता हूँ और पापको न जानता हुआ जो बारबार याचना करता रहता हूँ, वह सब पाप दूर होवे ॥ ३ ॥

इस सूक्तका भाव स्पष्ट है । जल मोचनके ये सब सूक्त वही उपदेश विशेषतया करते हैं कि, कोई मनुष्य जल न को और पवित्र करे तो उसको ठीक समयपर वापस करे । पृथा अक्षय्य प्रतिज्ञार्थ करते न रहे । इत्यादि मोक्ष इन सूक्तोंसे मार्गतत्त्वसे प्राप्त होता है ।

## निष्पाप होनेकी मार्फत

कां. ७, सू. ३४

( अग्नि- अथर्वा । वेत्ता- जातवेदः । )

**अग्ने जातान्म पुंदा मे सपस्तान्प्रत्यजाताम्नातवेदो नुदस्व ।**  
**अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनांगसुरते यमर्दिष्ये स्याम**

॥ १ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( मे जातान् सपस्तान् प्रणुद ) मेरे उसका हुए शत्रुओंको दूर कर । हे ( जातवेदः ) ज्ञानके उत्पादक देव । ( अजातान् प्रति नुदस्व ) तुझे रूपसे शत्रु न बने हुए परंतु अंदर अंदरसे शत्रुता करनेवाले शत्रुओंको एकदम हटा दो । ( ये पृतन्यवः अधस्पदं कृणुष्व ) जो सेना लेकर हमपर पछाई करते हैं उनको गिरा दे । ( यमर्दिष्ये स्याम ) हम सब निष्पाप हों और ( अदितये स्याम ) अदीनताके लिये योग्य हों ॥ १ ॥

शानी, जानदाता प्रकाशमय देव हमारे सब शत्रुओंको हमसे दूर करे । शत्रु सुखी रीतिसे शत्रुता करनेवाले हों मधवा गुप्त रीतिसे धाग करनेवाले हों, हमके सब शत्रु दूर हों । जो सैन्य लेकर हमारे ऊपर पछाई करते हैं, वे भी सब अपने स्थानसे गिर गये । हम निष्पाप बनें और दीनता हमसे दूर हो जाय । अदीनता, मज्जता तथा स्वर्ध्रमः हमारे पास रहे ।

## कल्पाष्टक

कां. ७, सू. २८

( ऋषि- मेधागिरि । देवता- वेद । )

वेदः स्वस्तिर्होषणः स्वस्तिः परशुवेदिः परशुर्वेदः स्तुति ।

हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्वाम्

॥ १ ॥

अर्थ— ( वेदः स्वस्ति ) ज्ञान कल्याण करनेवाला है । ( होषणः स्वस्ति ) लकड़ी काटनेका हुड़डाशा कल्याण करनेवाला है । ( परशुः ) पाशु कल्याण करनेवाला है । ( वेदिः ) यज्ञकी वेदि कल्याण करती है । ( नः परशुः स्वस्ति ) हमारा राक्ष कल्याण करनेवाला है । ( हविष्कृतः यज्ञियाः यज्ञकामाः ) हवि बनानेवाले, यज्ञीय और माग करनेवाले हविष् करनेवाले ( ते देवासः ) वे याज्ञक ( हमें यज्ञं जुषन्तां ) इस यज्ञका श्रेयसे सेवन करें ॥ १ ॥

ज्ञान, सुतारके हविषार, लकड़ी काटनेके हुड़डादे, पाश कल्याण इतिहा, समिधा यज्ञ करनेका परमा, वेदी, हवि, हवि तयार करनेवाले शेष, नष्ट करनेवाले, यज्ञकी हविष् करनेवाले वे सब करवाला करनेवाले हैं । इसलिये इनके विषयमें उचित भजना धारण करनी चाहिये ।

## विवर्तिको हटाना

कां. ७, सू. २३

( ऋषि - यम । देवता- दु सप्तवासायम् । )

दोर्लब्धं दोर्जीवित्यं रक्षो अमृतायाम् । दुर्गाम्नीः सर्वा दुर्वाचसा असन्नाशयामसि ॥ १ ॥

अर्थ— ( दोर्लब्धं ) दुष्ट दृष्टिको भाग, ( दोर्जीवित्यं ) दु गम्य जीवन होना, ( रक्ष ) हिंसकोंका उपद्रव, ( अ-ध्वं ) अमृति, अमृतता, ( अमृत्यः ) निषिद्धि कष्ट, ( दुर्गाम्नीः ) बुरे नामोंका उच्चार करना, ( सर्वा दुर्वाचः ) सब प्रकारके दुष्ट भाषण ( ताः असन्नाशयामसि ) उन सबको हम अपने स्वागतो नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— बुरे स्वप्न, कष्टका जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विषमि, दारिद्र्य, दुष्ट भाषण, गालिबी देना आदि जो जो बुराईया हममें हैं, उनको हम दूर करते हैं ॥ १ ॥

विषयिकां अनेक प्रकारकी हैं, उनमें कुछ विषयिकांकी गलती इस ग्यानपर की है । बुरे स्वप्न भाग्य तथा दुःखपूर्ण जीवनका अनुभव होता आदि विषयिकां आरोग्य न रहनेके होती हैं । आरोग्य उत्तम रीतिसे रखनेके लिये व्यायाम, योगा-सर्वाका अनुष्ठान, यमनियमपाठन, प्राणायाम, योग्य आहारविहार आदि उपाय हैं । इनको योग्य रीतिसे करनेसे ये दो विषयिकां दूर होती हैं । हिंसकोंका उपद्रव दूर करनेके लिये अपने अंदर गुरुवीरता उत्पन्न करना और उस कार्यके लिये दसक प्रयोग करना चाहिये । इससे राक्षसोंके आक्रमणसे हम अपना बचाव कर सकते हैं । ( अ-ध्वं ) अमृति और अमृत्यः ) निषेधता ये दो आर्थिक विषयिकां उद्योगशुद्धि करने और बेकारी दूर करनेसे दूर होती हैं । मनुष्य हर एक प्रकार आसानी न रहे, कुछ न कुछ उपायक काम पैदा करें और अपनी धन संपत्ति सुखोप उपोपसे बचावे । इस प्रकार उद्योगशुद्धि करनेसे ये आर्थिक विषयिकां दूर हो जाती हैं । गाली देना, बुरे भाषण करना, बुरे वाक्य उच्चारण करना आदि जो विषयिकां हैं, उनको दूर करनेके लिये अपनी बानीकी शुद्धि करना चाहिये । निम्नपूर्वक व्यवहारोंका उच्चार न करनेसे कुछ दिनोंक पश्चात् ये वाक्य अपनी बानीसे स्वयं दूर हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मशुद्धि करनेका मार्ग इस रूपसे बताया है ।

## भाग्यकी प्राप्ति

कां. ६, सू. १२९

( कवि-अपवादिरा । देवता-अन । )

भगेन मा शांशयेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृषोर्भि भूमिं मापं द्रान्तरातयः ॥ १ ॥

येन वृक्षो अश्वमेवो भगेन वचसा सह । तेन मा भूमिं कृषयं द्रान्तरातयः ॥ २ ॥

यो अन्धो यः पुनःसरो मगो वृक्षेऽपार्हितः । तेन मा भूमिं कृषयं द्रान्तरातयः ॥ ३ ॥

अर्थ— ( शांशयेन भगेन मेदिना इन्द्रेण ) वेत्त वृक्षकी शोभाके समान अन्ध देनेवाले इन्द्रके ( मा भूमिं कृषोर्भि ) मैं अपने आपको भाग्यसाही करता ॥ ( अरातयः अप द्रान्तु ) बहुत दूर हो ॥ १ ॥

॥ २ ॥ ( येन वृक्षान् अश्वमेवः ) जिससे वृक्षको पचात्रित करता है, उस ( भगेन वचसा सह ) भाग्य और तेजस साथ ( मा भूमिं कृषु ) मुझे भग्यवान् कर और ( अरातयः अप द्रान्तु ) बहुत दूर भाग जाये ॥ २ ॥

( यः अन्धः ) जो अन्धवप और ( यः पुनःसरो ) जो बारबार गलितार ( मगः वृक्षेषु अपार्हितः ) भाग्यका वल दृष्टीमें रखा है ( तेन मा भूमिं कृषु ) उससे मुझे भाग्यवान् कर, ( अरातयः अप द्रान्तु ) बहुत दूर भाग जाये ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार अन्ध वृक्ष सुन्दर दीपका है, उस प्रकार ईश्वरकी कृपासे भाग्यवान् होकर मेरी सुन्दरता जाये । साथ ही साथ मेरी बहुत दूर भाग जाये ॥ १ ॥

जिस प्रकार यह वृक्ष अन्ध वृक्षोंको अपेक्षा अधिक सुन्दर दीपका है, उस प्रकार भाग्य और तेज प्राप्त होकर मेरी शोभा जाये । मेरी बहुत दूर हो जाये ॥ २ ॥

वृक्षोंमें जो अन्धका भाग और अन्ध भाग होता है, उस प्रकार मुझमें पुष्टि और वल जाये और मेरी बहुत दूर हो ॥ ३ ॥

अपने अन्ध पुष्टि, वल, अश्व, ऐश्वर्य और सौभाग्य को और अपने जो धातक बहुत है वे दूर हो जाय । इस प्रकार इस सूक्तका आशय सरल है ।

## अपकी रक्षा

कां. ७, सू. ३१

( कवि-अपवादिरा । देवता-इन्द्र । )

इन्द्रोतिमिर्बहुलार्तिनां अथ वावच्छेष्टार्तिमिर्बधन्तूर जिम्व ।

यो नो द्वेष्टधर्तुः सस्यदीष्ट वधं द्विप्सस्वधं प्राणो बहातु ॥ १ ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! ( यावत्-श्रेष्ठार्ति बहुलार्तिः ऊर्तिभिः ) अधिकतः विविध प्रकारकी रक्षाओंसे ( अथ न । जिम्व ) भाग हमें जीवित रख । हे ( भधन्तूर शूर ) हे धनवान् धरवीर ! ( यः नः द्वेष्टि ) जो हमसे द्वेष करता है ( सः अधरः पदीष्ट ) वह नीचे गिर जाये । ( यः उ द्विप्सा ) जिससे हम द्वेष करते हैं ( तं उ प्राणः जहातु ) उसको प्राण छोड़ देवे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे धनवान् और शूर प्रभो ! तुम्हारी जो अनेक प्रकारकी अधिकतः रक्षाएँ हैं, वे सब हमें प्राप्त हों और उनसे हमारी रक्षा होवे और हमारा जीवन सबकी सहायतासे सुखकर होवे । जो दुष्ट हमारी विना कारण निम्न करता है, वह गिर जाये और जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं उसका जीवन ही समाप्त हो जाये ॥ १ ॥

हम परमेश्वरकी भक्ति करें और उसकी रक्षा प्राप्त करके सुरक्षित और स्वस्थ होकर आनन्दका उपभोग करें । परन्तु जो दुष्ट भगवत् हम सबसे द्वेष करता है और उस कारण जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं, उसका नाश हो । दुष्टका और द्वेषका समूह नाश हो ॥

३२ ( अर्ध. भा ३ पृ. द्विती )

## दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४५

(अभि-प्रवेष्टा प्रवेष्टा समान। देवता-दुष्प्रत्ययान्तरम्।)

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।

परोहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः

॥ १ ॥

अपशसा निःशसा परस्पराशंसोपासि जाग्रतो परस्वपन्तः ।

अभिर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यशुष्टान्योरे अस्मदेषात्

॥ २ ॥

परिन्द प्रसपस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रवेष्टा न आक्षिप्तो दुर्वितास्वार्थदेसः

॥ ३ ॥

अर्थ—हे (मनः पाप) मनके पाप ! (परः अपशसि) दूर जा । (अशस्तानि किं शंससि) तू दुर्गति क्यों कहता है ? (परा इहि) दूर जा । (त्वा न कामये) तुझको मैं नहीं चाहता : (वृक्षान् वनानि संचर) वृक्षों और वनोंमें जाकर संचार कर । (मे मनः गृहेषु गोषु) मेरा मन मेरे घरों और गोशौमें रहे ॥ १ ॥

(यत् अशस्ता निःशस्ता पराशता) जो पाप पापको हिसासे, निन्देपापको हिसासे और दूरको हिसासे अपशसा (यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपासि) जो जागते हुए और सोते हुए हमने किया है (अभिः विश्वानि अशुष्टानि दुष्कृतानि) प्रकृतका देव सब ककारकोय दुष्कर्मोंको (अस्मत् आरे अप दधातु) हम सबसे दूर रखे ॥ २ ॥

हे (प्रसपस्पते इन्द्र) जगती प्रभु ! (यत् अपि मृषा चरामसि) जो भी कुछ पान मत्स्याचारणसे इन कों, (अंगिरसः प्रवेष्टा) सबके अंगारोंके समान व्यापक विशेष ज्ञानी देव (नः दुरितात् मंहताः पातु) हमें दुराचारके पापसे मचावे ॥ ३ ॥

## दुष्ट स्वप्न

## पापी विचार

पापी विचारोंको मनसे इतनाका उपदेश इस सूक्तमें कहा है । गृहस्थीना मन—

गृहेषु गोषु मे मनः । (मं. १)

“घरमें और अपने गौ आदिमें ही रमना चाहिये ।”

अन्य बातें और कुविचारोंमें मनके रमनेसे दुष्ट स्वप्न जाते हैं और उससे कष्ट होते हैं । इसलिये अनुपमको दत्तिल है कि ॥ अपनेको शुभ संस्कारयुक्त बनावे और अपने परिवारके हितमें दक्ष रहे । यदि कुविचार मनमें जावे भी, तो उससे कहना चाहिये कि—

मनस्पाप । परः अपेहि, किं अशस्तानि शंससि ?

परोहि, न त्वा कामये । (मं. १)

“हे पापी विचार ! दूर हट, तुझे तू दुर्गति क्यों कहता है, क्या जा, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ।”

इस प्रकार उस पापी विचारको कह कर उसको दूर करना चाहिये । पापी विचार चरंचात मनमें सुनने काते हैं, परन्तु

उनको सुनने देना उचित नहीं है । अपने अन्दर कौनसा विचार जाये और कौनसा न जाये इसका निश्चय स्वयं अपने आपको करना चाहिये और यह शरीर भगना कार्यक्षेत्र है, यह जानकर उस क्षेत्रमें शुभ विचारोंकी संस्था ही स्थिर रखनी चाहिये । सबको विचार करना चाहिये कि—

यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपासिम् । (मं. २)

“जो जागते हुए और सोते हुए ॥ करते हैं” एही स्वप्नमें परिणत होता है, इसलिये आमतारे हमारे सब व्यवहार उत्तम हुए, तो स्वप्न ॥ संदेह हीन होंगे और किसी प्रकार भुवे स्वप्न नहीं जावेगे और मनमें कभी अनुभूत संस्कार नहीं रहेगे । इसी प्रकार—

मृषा चरामसि । (मं. २)

“असत्य व्यवहार करेंगे ।” तो उसका भी भुत परिणाम होगा । सब सुसंस्कार बसकके कारण उत्पन्न होते हैं । यदि अनुपम असत्यको छोड़कर सत्यका आश्रय करेंगे तो वे निःसन्देह सदाईसे सच रहते हैं ।

## दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४६

( अग्नि - यज्ञिना यजेता यमस्य । देवता - दुष्प्राणात्मनम् । )

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतपुत्रोऽसि स्वप्न ।

वृत्तान्ती ते माता यमः पितारकृन्मासि

॥ १ ॥

विद्य ते स्वप्न जनित्रै देवजाभीनां पुत्रोऽसि यमस्य कारणः ।

अन्तकोऽसि मृतपुरसि । ते त्वां स्वप्न तथा सं विधे स नः स्वप्न दुष्प्राण्यात्पाहि

॥ २ ॥

यथा कलां यथा क्षपं यथैवं भुनर्पन्ति । एवा दुष्प्राण्यं सर्वं विपुते सं नयामसि

॥ ३ ॥

अर्थ— हे स्वप्न ! ( यः ) जो तू ( स जीवः अस्ति न मृतः ) न तो जीवित ही है और नही मरा हुआ ही है, वह तू ( देवानां अमृतपुत्रः असि ) देवोंका अमृत पुत्र है अर्थात् देवोंमें सर्वदा रहनेवाला है । ( ते ) तेरी ( वृत्तान्ती माता ) वृत्तान्ती माता है और ( यमः पितरः ) यम पिता है । ( अमृतं भाम असि ) तू अमृत नामका है ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! ( ते जनित्रै विद्यः ) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं । तू ( देवजामीनां पुत्रोऽसि ) देवोंकी पति पौका पुत्र है और ( यमस्य करणः ) यमके कारणोंका साधक है । तू ( अन्तकः अस्ति ) भग्न करनेवाला है । ( मृत्युः असि ) मरानेवाला है । हे स्वप्न ! ( तथा सं विधा ) इस प्रकारके विधातृक इस तुझसे ( सं विधा ) हम अच्छी तरह जानते हैं । ( सः ) ॥ हे स्वप्न ! ( यः दुष्प्राण्यात् ) जो स्वप्नसे हमारी ( पाहि ) रक्षा कर ॥ २ ॥

( यथा कलां यथा-क्षपं ) जिस प्रकार कल अर्थात् सोलहवीं भाग और जिस प्रकार क्षप अर्थात् षाट्ठांश भाग ( यथा भक्षणं सं नयन्ति ) भक्षणके अनुसार देते हैं ( एवा सर्वं दुष्प्राण्यं ) इस प्रकार सब दुष्ट स्वप्न ( विपुते सम-यामसि ) समुद्रके प्रति पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

## दुष्ट स्वप्न

दुष्ट-स्वप्न यमका पुत्र

देवानां—यथा देवानां का अर्थ इन्द्रियोंका है । स्वप्न इन्द्रियोंमें अमृतकल्पसे बसा हुआ है । क्योंकि यह जगत् सर्वस्थानमें इन्द्रियोंके अनुभवोंसे उत्पन्न वास्तवमें उन्नत होता है । हमारे जन्मर वास्तवों स्थानों हैं, अतः स्वप्न उन वास्तवानुसार उत्पन्न होनेसे अधिकृत है । अतएव उसे यहाँ अमृतकर्मसे उत्पन्न कहा गया है ।

अन्तकः— पीडा देनेवाला । हिंसक 'अ-गतिर्दिसमयोः' से बना है । तै मा ३।२।१४ के अनुसार अन्तरात्मवान् मरुतः ।

वृत्तान्ती— वरुण अर्थात् भयकरकी पत्नी ।

इस प्रकार इस मन्त्रमें यमको स्वप्नका पिता कहा गया है । अर्थात् स्वप्न यमका पुत्र है । अतएव कदाचित् स्वप्नसे मृत्यु भी हो जाती है ।

दुष्ट स्वप्नका शुरुआत सर्वत्र है इसलिये पूर्व सूत्रमें कहा है कि दुष्ट स्वप्नसे बचनेके लिये विचारोंकी शुद्धता करनी चाहिये ।

इस मन्त्रमें स्वप्नको देवपतिपौका पुत्र कहा गया है । पूर्व सूत्रकी टिप्पणीमें हमने स्वप्नकी उत्पत्ति द्वात्रिंशद् बह वरुणा या कि वैर अर्थात् इन्द्रियोंके विपरीत उत्पन्न भामना-मौलिक स्वप्नकी उत्पत्ति होती है । उसी वचनकी दृष्टि इस मन्त्रमें 'देवजामीनां पुत्रः असि' से भी गई है । देवों अर्थात् इन्द्रियोंकी पत्नियों इन्द्रियविपरीतत्व वालनाये है । उनका स्वप्न पुत्र है । यहाँ वर विशेष बात कही गई वह यह कि स्वप्नको यमका वरुण बताया गया है । पामिनि मुनिने ऋग्वेद स्थान महाभ्यासोंमें लिखा है कि 'साधनमम्' ( अथ १।४।४२ ) अर्थात् जो कार्य साधनेमें समीपतम साध्य है वह कर्म है । कार्यसाधक सब साधनोंमें तो मायम अधिक आवश्यक है वह कर्म ब्रह्मण है । इस लक्षणा-नुसार यमका स्वप्न कारण है, इसका अभिप्राय यह हुआ, कि



यमके मारनेके कार्वमें स्वयं सबसे अधिक आवश्यक साधन है। स्वयंके इस विरोधसे उसकी सर्वकारवाला अनुमान सहज किया जा सकता है।

इसी मन्त्रके भावको ही नीचे लिखे मन्त्रमें अव्ययेद्वये कहा गया है—

देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य कर्तृ यो भद्रः स्वप्नः ।

॥ मम यः पापस्तद्विपते प्र हिष्मः ।

मा दृष्टानामसि कृष्णशकुनेमुंलम् (अथ. १६।५०।३)

हे (देवानां पत्नीनां गर्भं) देवोंको पतिपति गर्भस्व तथा (यमस्य कर्तृ) यमके हाथ स्वयं ! (यो भद्रः) जो कल्याणकारी ठेका भेंट है (स्वः) वह भेंट (मम) मेरा होवे (यः पापः) और जो ठेका पारी अनिष्टकारी भेंट है (तत्) उस भेंटको (विपते) होप करनेपक्षके प्रति (प्रहिष्मः) हम भेजते हैं। (नृपानां) कृषियों-लौहियों श्रेणिके बोधमें तू (कृष्णशकुनेः) काले पक्षिके-होए- (मुलं) झुलकी तरह (मा असि) हमारे लिये बाधक मत हो, क्योंकि त्रिम प्रकार लौहियोंको ॥ श्रेणिके शिष्ट शोका नृप अनिष्टकारी होता है उस प्रकार तू हमारे विरुद्ध अनिष्टकारी मत हो।

विष ते स्वप्न जनित्रं प्राज्ञाः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । (अथर्व. १६।५।१)

हे स्वप्न ! (ते जनित्रं विष) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं। तू (प्राज्ञाः पुत्रः असि) प्राणीका पुत्र है और (यमस्य करणः) यमके कार्योंका साधक है।

इस मन्त्रमें स्वप्नको माईका पैदा कहा है। गठिना बाधि करीरके ककड़नेपाड़े रोग माई कहलते हैं। उन रोगोंके कारण शरीरमें पीडा बनी रहती है, जिससे निद्रा नहीं आती और बधि आई भी तो रक्तहीन अवस्था बनी रहती है। अतएव स्वप्नको प्राणीका पुत्र कहा है। यमस्य करणकी व्याख्या ऊपर कर आय है।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि । (अथर्व. १६।५।२, १६।५।३)

हे स्वप्न तू (अन्तकोऽसि) मरणात् नरनेवाला है। तू (मृत्युरसि) मारनेवाला है।

निद्रा बराबर न जानेसे न सोत्र स्वप्न जानेसे स्वास्थ्य विगडधर शत्रुमें मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है, अतएव स्वप्नको यहाँ शत्रुक य मृत्युके नामसे कहा गया है।

विष ते स्वप्न जनित्रं निद्रेत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।

तं त्वा स्वप्न तथ्य सं विष स नः स्वप्न दुःखव्यात् पाति ॥ (अथर्व. १६।५।४)

मन्त्रका अर्थ हम ऊपर दे आये हैं। यहां ॥ ऐसा ही मंत्र आया है। इस मंत्रमें स्वप्नको निर्दोषिका पुत्र कहा गया है। निर्दोषितसे स्वप्नको उत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि निर्दोषित बर्बाद कष्ट, दुःख आदिसे मनुष्यको निद्रा नहीं आती। स्वप्न वह अवस्था है जिस अवस्थामें कि गात्र भिद्राका भभाव होता है और कष्टादिको दूरमें मनुष्यको गात्र निद्रा नहीं आती। इसी अभिप्रायसे स्वप्नको निर्दोषिका पुत्र कहा है।

विष ते स्वप्न जनित्रममृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।४ एवं अथर्व. १६।५।५)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको अमृतिका अर्थात् अनैर्धर्ष-दार्ढ्यका पुत्र कहा है। दार्ढ्यताके परिणामसे भी मनुष्यको निद्रा नहीं आती। इस प्रकार शरीरसे भी स्वप्न (वाक्यिक निद्राका न भाने) की उत्पत्ति है। होप व्याख्या पूर्ववत् ही समझनी चाहिये।

विष ते स्वप्न जनित्रं निर्मृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।६)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको निर्मृतिका पुत्र कहा गया है। निर्मृतिका अर्थ है ऐर्धर्ष-सम्पत्तिका निष्कल ज्ञाना, यह हो जाना। सम्पत्तिशक्तिकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे कलै भी निद्रा नहीं आती। यह झुलकी निद्रासे नहीं सो सकता। इस प्रकार सम्पत्ति विनश्वरका भी स्वप्न पुत्र है।

विष ते स्वप्न जनित्रं परामृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।७)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको परामृतिका पुत्र कहा गया है। परामृतिका अर्थ है पराभय अर्थात् हार जाना, विरस्कारको प्राप्त होना। पराभवसे वा विरस्कारसे मनुष्यकी इतना मानसिक कष्ट होता है कि उसके लिये निद्रा हरज हो जाती है और इस प्रकार परामृतितसे स्वप्नकी उत्पत्ति होती है।

विष ते स्वप्न जनित्रं देवजातीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः । (अथर्व. १६।५।८)

हे स्वप्न तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं तू देवोंकी पतिन-यौन पुत्र है और यमके कार्योंका साधक है। इस मन्त्रका भाव इस पूर्व दर्शा आया है। देवपतियोंका पुत्र स्वप्न किस प्रकार है यह यहां विग्रहणसे दर्शा आया है।

इस प्रकार यह अपरिचिद्वं १६ के कोष्ठका ५ वा मूल मन्त्रों पर न स्वयं विपश्यते है जो कि हमने ऊपर दिया है। इस स्थिति में इससे दिए गए पहिले के मन्त्रोंसे यह न स्वयंका सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

विन नारणोते होता है तथा उससे क्या दुःखनिवारण होने है, यद्यपि स्पष्ट किस प्रकार है, इत्यादि बातोंका उल्लेख इस मूलमें स्पष्ट रूपमें हमें देखनेसे मिलता है।

यह मूल बहुतसा दुर्बोध है, तथापि अपरिचिद्वं अन्य यह अपने पिता वामके बायाँहा विकटतम मायक है।

मूलोंके साथ इसका विचार यहाँ करनेसे इसकी दुर्बोधता किंचित् कम हुई है। तथापि यह सोचना विषय है।

## दुष्ट स्क्वम न अस्मेके उपाय

कां. ७, सू. १००

(अर्थः—यमः। देवता—सुखमनापायम्।)

पर्यायैर्दुष्टस्वप्न्यात्पातस्वप्न्यादभूत्याः। नद्याहमन्तरं कृष्वे परा स्वप्नसुप्ताः शुचः ॥ १ ॥

अर्थ—मैं (पापात् दुष्टस्वप्न्यात् पर्यायनें) पापसे दुष्ट स्वप्नसे पीठे हुआ हूँ। (अभूत्याः स्वप्न्यात्) मन्त्राधिकारक स्वप्नसे पीठे रहता हूँ। (आहं अन्तरं प्राप्त कृष्वे) मैं बीचमें जागरी रहता हूँ। (स्वप्नसुप्ताः शुचः परा) मैं दुःस्वप्न आदि शोकजनक बातोंको दूर करता हूँ ॥ १ ॥

पापसे दुष्ट स्वप्न, पारितोषिक अवस्था, तथा शोकजनक स्वप्नका वर्णन है। पाप पारितोषिक, इन्द्रियविषय, मानसिक, शारीरिक, और बौद्धिक मन्त्रोंसे होता है यद्यपि पापसे इनमें मरसंचय होता है। मन्त्र पूर्वक प्रकार इन स्वप्नोंके मन्त्र दूर करने चाहिये, जिससे पापोंके कम होनेसे दुष्ट स्वप्नोंको नाश हो जेगा। पारितोषिकी शुद्धि करनेके उपाय इससे पूर्व कहे गये हैं। मन्त्र और पापके बीचमें (प्राप्त) अर्थात् ज्ञान किंवा परमेश्वरका भजन करना चाहिये। इसमें निःसन्देह पाप दूर होगा। मानसिक शारीरिक प्राप्त होकर जो स्वप्न कदापि नहीं आयेगा।

## दुष्ट स्क्वम न अस्मेके उपाय

कां. ७, सू. १०१

(अर्थः—यमः। देवता—सुखमनापायम्।)

पतस्वप्ने अर्धमशामि न प्राप्ताभिगम्यते। सत्तु वदस्तु मे शिवं नहि तदुपपत्ते दिवा ॥ १ ॥

अर्थ—(पतस्वप्ने अर्धमशामि) जो स्वप्नमें मैं मन्त्र मारता हूँ वह (प्रातः न अभिगम्यते) मेरे नहीं प्राप्त होता है। (तत् सर्वं मे दिव्यं अस्तु) वह मन्त्र मेरे लिये सुख होवे। (नत् दिव्या नहि उपपत्ते) वह दिनके मन्त्र नहीं दीजता ॥ १ ॥

स्वप्नमें ओजनादि ओज भोगनेका जो इच्छा होती है, वह छोड़े उत्तरेर या दिनमें नहीं दिग्राह देना। मन्त्र दूर मारना है। वह वेदक मन्त्री विद्वत्किं कारण दीजता है। मन्त्र देने स्वप्न न होने इसलिये उत्तम उत्तमपूर्वक मन्त्र मारना चाहिये। जिसका वर्णन इससे पूर्व किया है।

## अञ्जन

कां. ७, सू. ३०

( ऋषि - श्रुतजिग । देवता - चावापृथिवी, मित्र, मरुणास्पति, सविता च । )

स्वाक्तं मे चावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अक्रवम् । स्वाक्तं मे मरुणास्पतिः स्वाक्तं सविता कवत् ॥ १ ॥

अर्थ— ( चावापृथिवी मे सु-आक्तं ) सुलोक और पृथ्वीलोक मेरी भासोंको उत्तम अञ्जनसे युक्त करें। ( अये मित्र स्वाक्त अक्रः ) यह मित्र मुझे अञ्जनसे युक्त करता है। ( मरुणास्पतिः मे स्वाक्तं ) शतरथि देवने मुझे उत्तम अञ्जनसे युक्त किया है। ( सविता स्वाक्तं कवत् ) सगिगने भी मेरी भासोंके उत्तम अञ्जन बनाया है ॥ १ ॥

आखिरी अञ्जन बालकर भोलोंके भागोत्प बढ़ानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा मिलती है। सुलोकसे पृथ्वीतक जो जो गृहस्थार्जन सुवीदि पदार्थ है, उनका जो तेजस्वी रूप है, वैसे मेरी भासों वयें। यह इच्छा सुक्तमें स्पष्ट है। यह अञ्जनात्मिका भी युक्त आकाश सकता है। शिबसे रति शुद्ध होती है वह अञ्जन होता है, फिर साधारण अञ्जन हो, अथवा श्रावण हो।

## मधुकुशिका और गोमहिम्ना

कां. ९, सू. १

( ऋषि - अथर्व । देवता - मधु, मधिलो । )

द्वियस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकुशिका हि जवे ।

तां चाग्निस्वामृतं वसानां हृदिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य श्वेत रेत आहुः ।

यत् पेटि मधुकुशिका रराणां तत्प्राणस्तदुमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

अर्थ— ( द्वियः अन्तरिक्षात् पृथिव्याः ) सुलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, ( समुद्रात् अग्नेः वातात् ) समुद्रके अग्नि और वायुसे ( मधुकुशिका जवे ) मधुकुशिका उत्पन्न होती है। ( अमृतं वसानां तां चाग्निस्वामृतं ) अमृतको धारण करनेवाली उस मधुकुशिकाकी सुप्रति करने ( सर्वाः प्रजा हृदिः प्रतिनन्दन्ति ) सब प्रजागत हृदयसे आनन्दित होती हैं ॥ १ ॥

( अस्याः पयः ) इसका दूध ( महत् विश्वरूपं ) बड़ा विश्वरूप है। ( यत् तया समुद्रस्य रेतः आहुः ) और तुम समुद्रका गोघ कहते हैं। ( यत् मधुकुशिका रराणां पति ) जहाँसे वह मधुकुशिका उत्पन्न करती हुई जाती है, ( तत् प्राणः ) वह प्राण है, ( तत् निविष्टं अमृतं ) वह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है ॥ २ ॥

साधारण— पृथ्वी, वायु, जल, वायु, आकाश और प्रकाशसे मधुर दूध देनेवाली गौ आका उत्पन्न हुई है, इस अमृत रूपी दूध देनेवाली गोमाताकी दूध करनेसे सब प्रजाएं हृदयसे आनन्दित होती हैं ॥ १ ॥

इस गोमाताका दूध मानने सपूर्ण विश्वकी बनी शक्ति है। अथवा मानो, यह सपूर्ण अक्षय्यका धार है। जो यह अमृत करती हुई गौ है, वह सबका प्राण है और उसका दूध अमृत अमृत है ॥ २ ॥

पदपन्त्यस्याथरितं पृथिव्या पृथक्स्वरो बहुधा भीर्मांसमानाः ।  
 अग्नेर्वातांन्मधुकशा हि लुब्धे मरुतांमुप्रा नमिः ॥ ३ ॥  
 मातादित्यानां दुहिते वस्यन्ते प्राणः प्रजानांममृतस्य नामिः ।  
 हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताचीं महान्मर्गैश्चरन्ति मर्त्येषु ॥ ४ ॥  
 मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अमवद्विस्वरूपः ।  
 तं जातं तरुणं पिपतिं माता स ज्ञातो विश्वा सुर्वना वि चेटे ॥ ५ ॥  
 कस्तं प्र बेंदु क तु तं चिकेत यो अस्या हृदः क्लृप्तः सोमधानो अधितः ।  
 भ्रष्टा सुमेधाः सो अस्मिन्मदेत ॥ ६ ॥  
 स तौ प्र बेंदु स तु तौ चिकेत चारवस्याः स्तनौ सहसंधारावधितौ । ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

अर्थ— ( बहुधा पृथक् मीमांसमानाः नराः ) बहुत प्रकारके दृष्ट दृष्ट विचार करनेवाले लोग ( पृथिव्या )  
 इस पृथ्वीपर ( मध्याः चरिते पश्यन्ति ) इसके चरित्रका जसोकरन करते हैं । ( मधुकशा अग्नेः वातान् जमे ) यह  
 मधुकशा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है । यह ( मरुतां उप्ता नमिः ) मरुतोंकी उपा नमिः है ॥ ३ ॥

( मादित्यानां माता ) यह आदित्योंकी माता, ( वस्यन्ते दुहिते ) वसुओंकी दुहिता, ( प्रजानां प्राणः ) प्रजा-  
 नोंका प्राण और ( अमृतस्य नामिः ) अमृतका चंद्र है, ( हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताचीं ) सुर्णके समान वर्ण-  
 वाली यह मधुकशा पुष्पा सिंघन करनेवाली है, ( महान्मर्गैश्चरन्ति ) अस्सीमें महान् मार्ग ही मेघार  
 करती है ॥ ४ ॥

( देवाः मधोः कशां अजनयन्त ) इस मधुकी कशाकी देखें बचाया है, ( तस्याः विभ्यस्वरूपः गर्भः अमवत् )  
 इसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है । ( तं तरुणं जातं माता पिपतिं ) उग जन्मे हुए तरुणकी वही माता पाप्ती है,  
 ( सः जातः विश्वा भुवना पिचेटे ) यह होने ही तब भुवनोंका निरीक्षण करता है ॥ ५ ॥

( तं कः प्रयेद् ) उसे कौन जानका है ( तं कः उ चिकेत ) उसका कौन विचार करता है । ( अन्याः हृदः )  
 इसके हृदयके पास ( यः सोमधानः क्लृप्तः अधितः ) जो सोमरससे भर्राए हुए कलत्र विद्यमान है, ( अस्मिन् ) हममें  
 ( सः भ्रष्टा मदेत ) वह उलम मेघापाला भ्रष्टा ( मदेत ) मानव करे ॥ ६ ॥

( सः तौ प्रयेद् ) वह उनको जानका है, ( सः उ तौ चिकेत ) वह उनका विचार करता है, ( यौ अस्या मह  
 अधारावधितौ नमिः स्तनौ ) जो इसके सहसंधारायुक्त मक्षम स्तन हैं वे ( अनपस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते ) जरिचलित  
 होते हुए कलत्रान् रसका दोहन करते हैं ॥ ७ ॥

भाष्य— विचार करनेवाले मनुष्य इस पृथ्वीपर ॥ गौका चरित्र देखते हैं । यह मधुर रस देनेवाली गौ अग्नि और  
 वायुसे उत्पन्न हुई है, अतः इसको मधुर्वा-वायुओंकी प्रभारमाहिनी मानिय करते हैं ॥ ३ ॥

यह गौ आदित्योंकी माता, वसुओंकी पुत्री, प्रजानोंका प्राण है और वही अमृतका चंद्र है । यह उपाग (गार्वा),  
 मृग देनेवाली और मधुर रसका निर्माण करनेवाली गौ सब अस्सीमें एक बड़े तेजस्वी मूर्ति ही है ॥ ४ ॥  
 देखें इस गौका निर्माण किया है, इसकी सब प्रकारके रंजकता गर्भ होता है, बचा होनेके बाद यह इसका प्रेमसे  
 पाछन करती है, यह बड़ा होकर सब स्थानको देखती है ॥ ५ ॥

इस गौके मनोर सोमरससे परिपूर्ण कलत्र मक्षमरूपसे रखा हुआ है, उस कलत्रको कौन जानका है और कौन भगा  
 उसका विचार करता है । इसीके दुरवस्था रससे भरती मेघाका वृद्धि करनेवाला भ्रष्टा भर्त्सित होगा है ॥ ६ ॥

जो इस गौके दो स्तन हममें पायाजोते मधु मक्षम देते हैं उनका महान् कौल जानका है और कौल उनमें मरणा  
 विचार करता है ॥ ७ ॥

द्विहृकरिक्ती वृद्धी वयोधा उच्येर्षोषाम्येति या प्रथम् ।

त्रान्धर्मन्निभि चाग्नाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः

॥ ८ ॥

याभापीनामुपसीदन्त्यार्षः शक्ररा वृषभा ये स्वर्गाः ।

ते वर्पन्ति ते वर्पयन्ति तद्विदे काममूर्जेमार्षः

॥ ९ ॥

स्तनयिस्तुस्ते गवर्ग्रेजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।

अग्नेर्वातान्मधुक्रुशा हि ज्ञेये पृच्छतांमुप्रा नृभिः

॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसपने अधिनीर्वाति प्रियः । एवा मे अग्निना वर्षे आत्मनि प्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवने इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः । एवा मे इन्द्राग्नी वर्षे आत्मनि प्रियताम् ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवने ऋभुणां भवति प्रियः । एवा मे ऋभुणो वर्षे आत्मनि प्रियताम् ॥ १३ ॥

अर्थ— ( या द्विहृकरिक्ती ) जो द्विहृत् करनेवाली ( वयो-धा उच्येर्षोषा ) जब देनेवाली उच्य स्वरसे हृकारनेवाली ( प्रथम् अम्येति ) प्रथमे स्थानको प्राप्त होती है । ( चीन् घर्मान् अभि चाग्नाना ) वीनो यज्ञोंको वशमें रखनेवाली ( मायु मिमाति ) स्थंका मापन करती है और ( पयतिभिः पयते ) दूधकी धारामेंसे दूध देती है ॥ ८ ॥

( ये वृषभाः ) जो वर्षासे भालेपले बैठ ( स्वरराजः शक्ररा-अप्रा ) देवकी शक्तिवाली बल ( या भापीना उपसीदन्ति ) जिस बल करनेवालीके पास बहुजने हैं ( तद्विदे कामं ऊर्जे ) तत्त्वज्ञानीको वषेष्ठ बल देनेवाले बलकी ( ते वर्पन्ती ) में वृष्टि करते हैं, ( ते वर्पयन्ति ) में वृष्टि कराते हैं ॥ ९ ॥

हे ( प्रजापते ) प्रजापात्यक ! ( ते व्याक् स्तनयिरनुः ) तेरी बानी सर्वथा करनेवाला मेरा है, वृ ( वृषा ) बलवाद होकर ( भूम्या अधि क्षिपसि ) भूमिपर बलकी कृपा है । ( अग्रे वस्तात् मधुक्रुशा हि जने ) भूमि और वायुसे मधुक्रुशा उत्पन्न हुए हैं, अद ( मरुतां उग्रा नृभिः ) मरुतोंकी उग्र नातिन हैं ॥ १० ॥

( यथा-सोम-प्रातःसपने ) जैसे सोमस प्रातःसपने यज्ञमें ( अधिनी-प्रिय-भवति ) अधिनीदेवोंको प्रिय होता है, हे अधिदेवो ! ( यथा मे आत्मनि ) इसी प्रकार मेरी आत्मामें ( वर्षे-प्रियतां ) देव प्रदान करानो ॥ ११ ॥

( यथा सोम-द्वितीये सवने ) जैसे सोमस द्वितीयसपन-आग्नेदिवसपन-यज्ञमें ( इन्द्राग्न्योः प्रियः भवति ) इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि ! इसी प्रकार मेरी आत्मामें देव प्रदान करानो ॥ १२ ॥

जैसे सोम ( तृतीये सवने ) तृतीयसपन-ऋभुसपन-यज्ञमें ( ऋभुणां प्रियः भवति ) ऋभुणोंको प्रिय होगा है, हे ऋभुदेवो ! इस प्रकार मेरी आत्मामें देव प्रदान करानो ॥ १३ ॥

भाष्यार्थ—अतः देनेवाली, उच्य स्वरसे द्विहृत् करनेवाली यह वी यज्ञभूमिसे विपरीत है, वीनों यज्ञोंका पाकन करती हुई पहले द्वारा कलका घाटन करती है और पहले लिए खपना दूध देती है ॥ ८ ॥

जो बल अपने तेष और पहले पुष्ट मौलिक समीप होते हैं, वे वत्त्वज्ञानीको वषेष्ठ बल देनेवाले शक्रकी वृष्टि करते और कराते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रजापात्यक देव ! मेघपर्वना तेरी वाणा है, उसके तू भूमिक ऊपर अपना बल फैकता है, वही शाय और बलके रूपमें भूमि और वायुका सर्वांस लेकर उत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

जिस प्रकार सोम प्रातःसपनमें अधिनीदेवोंको प्रिय होता है, उसी प्रकार मेरे अन्दर तेष प्रिय होकर रहे ॥ ११ ॥

जैसे सोम माग्नेदिवसपनमें इन्द्र और अग्निको प्रिय होगा है, वैसे ही मेरे अन्दर तेष प्रिय होकर रहे ॥ १२ ॥

जिस तरह सोम ऋभुसपनमें ऋभुणोंको प्रिय होता है, उसी तरह मेरे अन्दर तेष प्रिय होकर रहे ॥ १३ ॥

मधुं जनिषीम् मधुं वैशिषीय । एवैस्तानम् आरामं तं ॥ सं संल वर्चसा ॥ १४ ॥  
 सं मधि वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मै अस्म देवा इन्द्रो विद्यात्सह प्राणिभिः ॥ १५ ॥  
 यथा मधुं मधुकृतः समरन्ति मधवाधि । एवा मे अक्षिना वर्च आत्मानं प्रियताम् ॥ १६ ॥  
 यथा मक्षा इदं मधुं न्यञ्जन्ति मधवाधि । एवा मे अक्षिना वर्चस्तेजो बलमोज्ञय प्रियताम् ॥ १७ ॥  
 यद्विरिषु पर्वतेषु गोमधेषु यन्मधु । सुराणां सिध्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मधि ॥ १८ ॥  
 अक्षिना सारथेण सा मधुनाङ्कं शुभस्पती । यथा वर्चस्वतो वार्चमावदानि जना अहु ॥ १९ ॥

अर्थ— (मधु जनिषीय) मित्रास उत्पन्न कर, (मधु वैशिषीय) मित्रास प्राप्त कर । हे भद्र ! (पदस्यान् भागमे) दूध लेकर मे भागया हूँ, (सं मा वर्चसा संसृज) उस गुणको तेजसे संयुक्त कर ॥ १४ ॥

हे भद्र ! (मा वर्चसा) तुझे तेजसे (प्रजया आयुषा) प्रजासे और आयुसे (सं सं संसृज) संयुक्त कर । (अस्म मे देवाः विद्युः) इस तुझे सब देव जानें, (प्राणिभिः सह इन्द्रः विद्यात्) अक्षियों सह इन्द्र भी तुझे जानें ॥ १५ ॥

(यथा मधुकृतः) जैसे मधुमक्खिकायां (मधौ अधि) अपने मधुसे (मधु संमरन्ति) मधु संघित करती हैं, हे भद्रिदेवो ! (एवा मे) इस प्रकार मेरा (वर्चः तेजः बलं भोज्ञय च) शान, तेज, बल और दीर्घ (प्रियतां) संधि हो, यद्यप्य जाय ॥ १६ ॥

(यथा मक्षा) जैसे मधुमक्खिकाय (इदं मधु) इस मधुको (मधौ अधि न्यञ्जन्ति) अपने पूर्वसंघित मधुसे संमहीत करती हैं, इस प्रकार हे भद्रिदेवो ! मेरा शान, तेज, बल और दीर्घ संधि हो, यद्ये ॥ १७ ॥

(यथा गिरिषु पर्वतेषु) जैसे पहाड़ों और पर्वतोंपर और (गोषु अग्नेषु यत् मधु) गोषों और अग्निमें जो मिश्रित है, (सिध्यमानायां सुराणां) सिंधित होनेवाले वृद्धिक्रममें (तत्र गत् मधु) तो मधु है । (यत् मधि) वह तुझमें हो ॥ १८ ॥

हे (शुभस्पती भद्रिदेवो) शुभके पालक भद्रिदेवो ! (सारथेण मधुना सा सं अङ्कं) मधुमक्खिकायें मधुसे तुझे युक्त करी । (यथा) जिससे (जवान् वर्चस्वतो वाच) लोगोंके प्रति तेजस्वी भावण (अनु भानदानि) मैं बोले ॥ १९ ॥

अर्थ— मधुना उत्पन्न करता हूँ, मधुना संसादन करता हूँ, हे देव ! मैं दूध समर्पण करनेके लिये आया हूँ, भद्र ! तुझे इस तेजसे युक्त कर ॥ १४ ॥

हे देव ! तुझे तेज, प्रजा और दीर्घ आयुसे युक्त कर । देव इस मेरे भद्रिदेवको जानें और अग्नि भी समझ लें ॥ १५ ॥  
 जिस प्रकार मधुमक्खिकायें अपने मधुस्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, वस्तु प्रकार मेरे भद्रर शान, तेज, बल और दीर्घ संघित हो जाये ॥ १६ ॥

जैसे मधुमक्खिकायां अपने मधुस्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे भद्रर शान, तेज, बल और दीर्घ भरता रहे ॥ १७ ॥

जैसे पहाड़ों और पर्वतों, गोषों और लोगों और वृद्धि उत्पन्न मधुना है, वही मधुना मेरे भद्रर हो जाये ॥ १८ ॥  
 हे देवो ! तुझे उस मधुमक्खिकायें मधुसे संयुक्त कीजिये । जिससे मैं भद्र मित्रासका सदैव संयुक्त रहूँगे वगैरह ॥ १९ ॥

स्तनपितुस्ते चाप्रजापते वृषा शुभ्रं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।

तां पशव उर्ध्वं जीवन्ति सर्वे तेनो सेपमूर्ध्वं पिपति ॥ २० ॥

पृथिवी दुष्णोदुन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कक्षा विद्युत्प्रकृशो हिरण्यवो बिन्दुः ॥ २१ ॥

यो वै कक्षायाः सप्त मधुनि वेद मधुमान्भवति ।

ब्राह्मणश्च राजा च धेनुयातृह्वाथं ब्रीहिय वर्षश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥

मधुमान्भवति मधुमदस्वाहायै भवति । मधुमतो लोकाज्जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥

यद्ब्रीधे स्तनपति प्रजापतिरेव तत्प्रजापत्यः प्रादुर्भवति ।

तस्मात्प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनुं पा बुध्यस्वेति ।

अन्वेनं प्रजा अनुं प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥

अर्थ— हे (प्रजापते) प्रजापालक ! तू (धृष्या) बलवान् है और (ते वाक् स्तनयितुः) तेरी वाणी मेघमाला है, तू (भूम्यां दिवि) भूमिपर और गोलोकमें (शुभ्रं क्षिपसि) बरफी वर्षा करता है, (तां सर्वे पशवः उर्ध्वं जीवन्ति) उसपर सब पशुओंकी जीविका होती है और (तेन उ खा इयं उर्ध्वं पिपति) उससे वह भक्ष और बलवर्धक रसकी पूर्णता करता है ॥ २० ॥

(पृथिवी दुष्णः) पृथिवी दुष्ट है, (अन्तरिक्षं गर्भः) अन्तरिक्ष मध्यभाग है, (द्यौः कक्षा) गोलोक समुद्र है, (विद्युत् प्रकृशः) बिजली उसके धागे हैं और (हिरण्यवः बिन्दुः) सुवर्णमय बिन्दु हैं ॥ २१ ॥

(यो वै कक्षायाः सप्त मधुनि वेद) जो इस कक्षाके सात मधु जानता है, वह (मधुमान् भवति) मधुवाता होता है । (ब्राह्मणः च राजा च) ब्राह्मण और राजा, (धेनु च अश्ववाह च) गाय और बैल, (ब्रीहिः च यवः च) चानल और जौ तथा (मधु सप्तकं) सातवें मधु है ॥ २२ ॥

(या एवं वेद) जो यह जानता है वह (मधुमान् भवति) मधुवाता होता है, (अस्य आहार्यं मधुमत् भवति) उसका सब संग्रह मधुबुद्ध होता है और (मधुमतः लोकान् जयति) मीठे लोकोंको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

(यत् ब्रीधे स्तनपति) जो बाकाशमें गर्भवा होती है, (प्रजापतिः पच तत्) प्रजापति ही ऋषि (प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति) प्रजाओंके लिये, मानो, प्रकट होता है । (तस्मात् प्राचीनोपवीतः तिष्ठे) इसलिये इतने मार्गमें बस केकर पड़ा होता हूँ, हे (प्रजापते) प्रजापालक ईश ! (मा अनु बुध्यस्व) मेरा खरब रहो । (या एवं वेद) जो यह जानता है, (यन् प्रजाः अनुं) इसके अनुबुद्ध प्रजाएं होती हैं तथा इसको (प्रजापतिः अनुबुध्यते) प्रजापति अनुबुद्ध-कृतार्थमें रहता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— हे प्रजापालक ईश ! तू बलवान् है और मेघमाला तेरी वाणी है । तू ही गोलोकमें गूढोक्तक बरफी वृष्टि करता है, सब जीव उसपर जीवित रहते हैं । यह भक्ष और बल हम सबको प्राप्त हो ॥ २० ॥

भूमि दुष्ट, अन्तरिक्ष मध्यभाग, गोलोक बड़े बाल और बिजली सूक्ष्म बाल हैं और उसपर सुवर्णका बिन्दु सूर्यके सरल है । यह गौका विद्यवरूप है ॥ २१ ॥

जो इस गौके सात मीठे रूप जानता है, वह मधुर बनता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, गाय, बैल, चानल और जौ और सब सातवें हैं । गौके ये सात मीठे रूप हैं ॥ २२ ॥

जो इस बातको जानता है, वह मधुर होता है, मधुवाता होता है और मीठे स्थान प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

जो बाकाशमें गर्भवा होती है, मानो वह परमेश्वर संपूर्ण प्रजाओंके लिये प्रकट होकर उपदेश करता है । उस समय लोग पेंसी मार्गना करें कि 'हे देव ! हे प्रजापालक ! मेरा खरब को, मुझे न सूझ जा ।' जो इस प्रकार मार्गना करना जानता है, प्रजागत उसके अनुबुद्ध होते हैं और प्रजापालक परमेश्वर भी उसका चला करता है ॥ २४ ॥

## मधुविद्या और गोमहिमा

### सात मधु

इस सूत्रमें विशेष कर गौकी महिमा वर्णित है। इस सूत्रका भाषार्थ विचारपूर्वक पढ़नेसे पात्रक स्वयं इस सूत्रमें बड़ी गोमहिमा मान सकते हैं। वेदकी दृष्टिसे गौका महत्त्व कितना है, यह बात इस सूत्रके प्रत्येक श्लोकमें सुबोध सीधेसे प्रतीति है।

यह गौ संपूर्ण जगत्का सार है, यह धृष्टी, ज्ञान, तेज, वायु, आकाश और महाकाका सार है। इस गौमें असूत रह है जिसका पान करनेसे सब प्रजाजन आप्तदित और हृद्युष्ट होते हैं। इसका दूध मानो संपूर्ण जगत्के पञ्चाणोंका बीज ही है, यही सबका प्राण और यही सर्वभूत असूत है। विशेष मतमशील मनुष्य ही इस गौके महत्त्वको जानते हैं और अनुभव कर सकते हैं। यह गौ देवीकी माता है और यही सब प्रजातोंका प्राण है, क्योंकि इसमें असूतका मधुर रस भरा है। जो इसका दूध पीते हैं वे माने अपने भंदर मधुर रस छेते हैं और इस कारण वे दीर्घायुवी होते हैं। संपूर्ण जगत् रसका केन्द्र सोत्र इस गौके भंदर है।

### अमृतका फलञ्च

यह गौ संपूर्ण देवीमें अपनी दिव्य शक्तियोंसे उपरान्नी है। उन्होंने इसके दुग्धाशयमें अमृतका प्रवाह रखा है। जो अपनी मेधाशुद्धि बढ़ाना चाहते हैं, वे इस दूधरूपी अमृतको

मदस्व पीयें। इस गौके स्तनोंसे जो दुग्धरूपी रस निकलता है, वह मानो अमृतवत् सब देनेवाला रह है।

यह अक्षरसं देवी है, यज्ञ करानी है, मत धारण करानी है और अपने दूधसे पुष्ट करती है। पैल भी इस सबको अनंत प्रकाशके मुख देता है। जिस प्रकार सोमास देवीको प्रिय होता है, उस प्रकार गावका दूध मनुष्योंको प्रिय होने और उससे मनुष्योंका लेज बढे। जिस प्रकार मधुमक्षिप्रां पीडा पीडा मधु द्रुकडा करती हैं और अपने मधुस्थानमें उसका संग्रह करती हैं, इसी प्रकार मनुष्योंको उचित है कि वे इन मधुमक्षिप्रांका अनुकरण करें और अपने अमृतज्ञान, तेज, बल, धर्म और पराक्रम बढ़ावें। शनिः शनिः प्रकलन करनेपर मनुष्य इन गावोंको अपने अमृत बडा सकता है।

पहाड़ों परवतों और संपूर्ण जगत्में सर्वत्र मधु माा है, वह मधुरता मेरे अमृत भावे। इस गौके रूपसे परमेस्वरवी मनुष्य शक्ति ही धृष्टीपर मनुष्योंकी उन्नतिके लिए लापी है। यह बात करणमें अनप्य दक्षिणे।

इस मधुरताके सात रूप इस धृष्टीपर हैं, एक मधुरता आश्रमोंमें ज्ञान रखते हैं, दूसरी मधुरता धर्मियोंमें पराक्रमके रूपसे विद्यमान है, इसी प्रकार गौ, पैल, धारल, गौ और पाहदमें भी मधुरता है। बल- ओ मनुष्य यह बात जानना है वह इन सात पदावृत्तोंसे अपनी उन्नति करता है।

## अतिथि सत्कार

कां. १, सू. ६

(अति- प्रह्लाद देवता- अतिथि, विष्णु।)

यो विद्याहस्तं प्रपश्यं परंथि यस्य संभारा श्रुचो यस्यानूक्यम्

॥ १ ॥

सामानि यस्य लोभानि धनुर्हृदयमुच्यते परितरेणमिद्विः

॥ २ ॥

अर्थ— (यः प्रत्यक्षं प्रह्लाद विद्यात्) जो प्रत्यक्ष भस्को जानता है, (यस्य परंथि संभाराः) उसके अग्रपर पशुसामग्री है, (यस्य अनुक्यं श्रुचः) उसकी तीन अक्षर्य हैं। (यस्य लोभानि सामानि) उसके पात्र साम हैं और उसका (हृदयं धनुः उच्यते) हृदय धनु है ऐसा कहा जाता है। क्या उसका (परितरेण इत् हविः) मोर-नेका सब हवि है ॥ १-२ ॥



यदा अतिथिपरितरित्वीन्द्रप्रतिपदपति देवयजनं प्रेषति	॥ १ ॥
यदभिषेदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचैत्पयः प्र णयति	॥ ४ ॥
या एव यज्ञ आर्षः प्रणीयन्ते ता एव ताः	॥ ५ ॥
यत्तर्पणमाह्रन्ति य द्माग्नीषोमीयाः पशुर्बुध्यते स एव सः	॥ ६ ॥
यदावसुथान्कृत्ययन्ति सद्योहविर्धानान्येव उत्कृत्ययन्ति	॥ ७ ॥
यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत्	॥ ८ ॥
यदुपरिश्रयनमाह्रन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमर्ब रुन्दे	॥ ९ ॥
यत्केशिपूषमह्रन्ति पश्चिम एव ते	॥ १० ॥
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाह्रन्त्यस्त्यमेव तत्	॥ ११ ॥
यत्पुरा परिषेपात्स्रादमाह्रन्ति पुरोडाशाभ्येव चो	॥ १२ ॥
यदशनुकृतं हवन्ति हविष्कृतमेव तत् स्वयन्ति	॥ १३ ॥
ये ब्रीहयो यवा निरूप्यन्तेऽश्वं एव ते	॥ १४ ॥
योन्युत्सलमुसलानि प्रावाण एव ते	॥ १५ ॥

अर्थ—( यत् ये अतिथिपति ) जो गृहस्थ ( अतिथीन् प्रतिपदपति ) अतिथियोंकी ओर देखा है, मानो वह ( देव यजन प्रेषते ) देवयज्ञो ही वृत्ता है ॥ ( यत् अभिषेदति दीक्षा उपैति ) जो अतिथिसे स्नान करा है वह पशुदीक्षा केनेक समान है ॥ ( यत् उदकं याचति ) जो नव मागवा है और ( आप प्र णयति ) नल उससे मागे भर देता है ॥ वह मानो ( या एव यज्ञे आप प्रणीयन्ते ) जो यज्ञमें नल ल गते हैं ( ता एव ता ) बरी गल हैं ॥ १-५ ॥

( यत् तर्पणमाह्रन्ति ) जो यवार्थ अतिथिकी रुति करनेके लिए के गते हैं, ( य एव अग्नीषोमीय पशु यध्यते स एव स ) यह मानो अग्नि और सोमके लिये पशु यावा चला है, बरी यह है ॥ ( यत् आपस्रथान् कृत्य यन्ति ) जो अतिथिके लिए स्नानना प्रवध करत है ( सद्योहविर्धानानि एव तत् कृत्ययन्ति ) यह मानो यज्ञमें हवि और हविर्धानकी रचना करना ही है ॥ ( यत् उपस्तृणन्ति ) जो बिजया जाता है, ( बर्हि एव तत् ) वह मानो यज्ञकी हवा मास ही है ॥ ( यत् उपरिश्रयनमाह्रन्ति ) जो उसपर पिउना आते हैं ( तेन स्वर्ग लोक भयन्दे ) उससे स्वर्ग लोक ही मानो समीप आत हैं ॥ ६-१५ ॥

( यत् पश्चिमोपपूषमह्रन्ति ) जो पश्चिम ओर पशुपूष, अतिथिके लिए के गते हैं, यह मानो यज्ञ ( के परिषेप एव ) परिषेप है ॥ ( यत् पुरा परिषेपात्स्रादमाह्रन्ति ) जो ओसके लिए नजन और शरीरके मनेके लिए स्रा रते हैं, यह मानो ( तत् आप्य एव ) यह पूष ही है ॥ १०-११ ॥

( यत् पुरोडाशाभ्येव चो ) जो भोजन पुरोडाशके पूर्व अतिथिके लिये ( खाद आह्रन्ति ) खानेके हेतुसे लाते हैं, यह मानो ( तो पुरोडाशो पय ) डूबेगा है ॥ ( यत् पुरोडाशाभ्येव चो ) जो भोजन कर्त्तव्यके लिये लाते हैं, यह मानो ( हविष्कृत एव तत् हवन्ति ) हविषी सिद्धा करनेवालेको सुजाना है ॥ १२-१३ ॥

( ये ब्रीहयो यवा निरूप्यन्ते ) जो चारु और जो देखे जात हैं ( ते अश्व एव ) वे सोमरथके समर्थ ही हैं ॥ ( योन्युत्सलमुसलानि ) जो जोषकी और मुसल अतिथिके लिए भान्न नूटनेके काम आते हैं, मानो ( ते प्रावाण एव ) वे सोमरस निकालनेके पथार ही हैं ॥ १४-१५ ॥

शूर्यः खनित्रं तृपां अजीपाभिपर्वणीरापः

11254

सुगन्धविभक्षणमायवने द्रोणफलशः कुम्भयो वासव्यानि पात्राणीवमेव कुण्डाजितम्

॥ १७ ॥

[2]

वज्रमान्त्राक्षणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाह्वार्याणि प्रेष्यत इदं भूयाः इदाःपिते

||  $\mathbb{R} \subset \mathbb{H}$  ||

बदोहि भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते

॥ ३९ ॥

उपै हरति हवींष्या सादयति

॥ २० ॥

तेषामासन्नानामसिंथिरात्मज्जुहोति

॥ ॐ ॥

सूचा हस्तेन प्राणे युते सककारेण वषट्कारेण

॥ २२ ॥

पुत्रे वै प्रियाधाम्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः

॥ २३ ॥

स.य एवं विद्वाञ्च द्विपञ्चश्रीयाञ्च द्विषतोऽस्ममश्रीयाञ्च मीमांसिवस्य न भीमांसमानस्य ॥ २४ ॥

॥ २४ ॥

**नैर्घ—**(शूर्प पवित्र) अतिथि के लिए जो छात्र बर्ता जाता है वह यज्ञ के चौराते वरुण पवित्र के समान है, इसी प्रकार (द्वय प्रतीका) धामने द्वय सोमरस प्राप्त करने बाद घर शिर रहने से सोमकन्धुअंति समान है। (अभिषेकणी। आप।) अभिषेक होने के लिए प्रयुक्त होने वाला लक्ष यज्ञ के लक्ष के समान है । (शूर्पा सुक्) कड़वी सुधा के समान है, (आद्यपन ईक्षण) पर्वत समय भद्रका हिलाता यज्ञ के ईक्षण कर्म के समान है, (कुम्भ्यः द्रोणकलहारा) पर्वत के देवपी आदि पात्र यज्ञ में द्रोणकलहारी के समान हैं, (धान्यानी वाय = इयानि) अतिथि के लिए जो अन्न पात्र लाये जाते हैं वे यज्ञ के भाग्य वाय ही हैं और (वायं यज कुष्णाजिनं) वही कुष्णाजिन है ॥ १९-२० ॥

[२] (इदं भूयाः इदं इति) यह अधिक या यह ठीक है ऐसा जो (आह्वयार्थि) प्रेरित) अतिथि को देने योग्य तथ्यों का निरीक्षण करना है, वह (अतिथिपतिः) अतिथि का पालन करनेवाला प्रभुमान (पतव्) इससे मानी (यज-मानावाक्यां) है कहते) प्रभुमानके आह्वानके समान कार्य करता है ॥ १८ ॥

३ (यत् आह) यो कहता है कि (भूपः उदर इति) अधिक परोक्ष वर अतिथिसे हो, वो (तेन) इससे वर (प्राप्ते वर्षीयांस एव कुरुते) धरने प्राप्तको निश्चयभी बनाता है ॥ यो उसके पास अन्नादि (उपहरति) है जगा है, वह पानो (हवींषि भासादयति) इविके परार्थ लाता है ॥ १५-१७ ॥

(तेषां वासधाम्नां) उन हाथे पदाओंमेंसे कुछ पदार्थोंका (अतिथिः आशमन्नुहोति) नवविधि अपने हाथपर  
 रखता है, वह भोजन स्वीकारता है॥ (हस्तेन शुचा) हाथस्त्री शुचासे, (प्राणे यूये) प्राणस्त्री यूपमें (सुक्रा-  
 रेण घपटकारेण) मोहन खानेके 'सुक्रसुक्र' ऐसे गन्धस्त्री पण्डकारसे वह अपनेमें एक एक आहुति डालता है॥ (यष्ट-  
 भतिथयः) जो ये अतिथि हैं वे (मियाः अप्रियाः च) प्रिय हैं अथवा अप्रिय हो, वे (क्षत्रियः) क्षत्रिय पण्डके  
 क्षत्रिय पण्डमानके (स्वर्गं लोकं गमयन्ति) स्वर्गलोकको पहुँचाते हैं॥ २१-२३॥

५७ (यः एवं विद्वान्) इस शब्दको ज्ञातवा हुआ (सः द्विपुत्रः न मन्त्रीयात्) ॥ किसीका द्वेप करवा हुआ न माना करे । (द्विपुत्रः अत्र न मन्त्रीयात्) द्वेप करनेवाले भोजन न खाये (न मीमांसितस्य) संपादित भाष्यप्रशङ्गे अनुपपन्ना भोजन न खाये और (न मीमांसितमानस्य) न संदेह करनेवालेका अर्थ अतिथि खाये ॥ २४ ॥

भाषार्थ—अतिथि घरमें जानेपर उसके लिये जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे मानो उसके चन्द्र प्रयुक्त होनेवाले पदार्थोंके समान ही हैं। अर्थात् अतिथिका उत्कार करना एक ब्रह्म करनेके समान ही है ॥ १-१० ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यार्जमश्रान्ति	॥ २५ ॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यार्जं नाश्रान्ति	॥ २६ ॥
सर्वदा वा एष युक्तमार्गार्द्रपवित्रो वितेताध्वर आहृतपशुकुर्व्य उंपहरति	॥ २७ ॥
प्रजापत्यो वा एतस्य यज्ञो वितेतो च उंपहरति	॥ २८ ॥
प्रजापतेर्वा एष विक्रमानेन विक्रमते य उंपहरति	॥ २९ ॥
योऽतिधीनां ॥ आहवनीयो यो वेदमनि स गार्हपत्यो यस्मिन्पचन्ति स दक्षिणाग्निः	॥ ३० ॥

## [ ३ ]

दुष्टं च वा एष पूर्वं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३१ ॥
पर्यध्वं वा एष रसं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३२ ॥
उर्जा च वा एष स्फाति च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३३ ॥
प्रजां च वा एष पशून् च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३४ ॥
कीर्तिं च वा एष यज्ञं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३५ ॥
श्रियं च वा एष सुविदं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति	॥ ३६ ॥

अर्थ—(यस्य अर्जं मश्रान्ति) जिसका अन्न अतिथि लोग खाते हैं, (सर्वो वा एष जग्धपाप्मा) उसके सब पाप जग जाते हैं। तथा (यस्य अर्जं न मश्रान्ति) जिसका अन्न अतिथि नहीं खाते (सर्वो वा एष अजग्धपाप्मा) उसके सब पाप कैसेके कैसे रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

(यः उपहरति) जो गृहस्थ अतिथिको सेवाके निम्न आवश्यक सामग्री उसके पास ले जाता है, वह मानो (सर्वदा वा एष युक्तमार्ग) वह सदासर्वदा सोमरस निकालनेके परंपरेसे रस निकालता ही रहता है, वह सर्वदा (आर्द्र पवित्र) रस छानता रहता है, जिसकी छाननी सदा नीली रहती है, वह (वितेताध्वर) सदा यज्ञ करता है, वह सदा (आहृत, यज्ञ क्रतुः) यज्ञ समझ करनेके समान रहता है ॥ २७ ॥

(यः उपहरति) जो अतिथिको सम्मान करना है, वह मानो (यतस्य प्रजापत्यः वा यज्ञः वितेता) उसके प्राजापत्य यज्ञका पैगवा हुआ है ॥ (यः उपहरति) जो अतिथिको दान देता है वह मानो (प्रजापतेः विक्रमान् अनुपिचमते) प्रजापतिके विक्रमोंका अनुचरण करता है ॥ २८-२९ ॥

(यः अनिधानां) जो अतिथियोंके शरीरमें पाचक अग्नि है (सः आहवनीयः) वह आहवनीय अग्नि है, (यः वेदमनि सः गार्हपत्यः) जो घरमें अग्नि होती है वह गार्हपत्य अग्नि है, (यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः) जिसपर अन्न पकाने हैं ॥ दक्षिणाग्नि है ॥ ३० ॥

[ ३ ] (यः अतिथेः पूर्वं मश्राति) जो अतिथिके पूर्व खाने भोजन करता है (एष) वह (ग्रहाणां हृष्टं च वै पूर्वं न मश्राति) अपने घरके पूत और पूर्वको ही खाता है ॥ जो अतिथिके भोजन करनेके पूर्व भोजन करता है, वह मानो घरके (पर्यध्वं वा रसं च) रूप और रसको, (उर्जां च स्फातिं च) अन्न और सगुदिको, (प्रजां च पशून् च) प्रजा और पशुको, (कीर्तिं च यज्ञः च) कीर्ति और यज्ञको, (श्रियं च सुविदं च) धी और संज्ञाको (मश्राति) खाता है ॥ ३१-३६ ॥

भाषार्थ—अतिथिका योग्य आदर-सत्कार करना मानो खे खे यज्ञ करनेके समान है ॥ १८-३० ॥

एव वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नार्शीपात् ॥ ३७ ॥

अशितावृत्त्यतिथारभीपाद्यन्नस्य सात्मत्वाय यद्यस्यार्विच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ३८ ॥

एतद्वा तु स्वदीपो यदधिगमं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नार्शीपात् ॥ ३९ ॥

[ ४ ]

स य एवं विद्वान्क्षीरमुपसिच्योपहरति । पार्वदप्रियोमेनेष्टा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४० ॥

त य एवं विद्वान्सूपिरुपसिच्योपहरति । पार्वदतिरात्रेनेष्टा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४१ ॥

स य एवं विद्वान्मधूपसिच्योपहरति । पार्वत्सत्रसर्धेनेष्टा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४२ ॥

स य एवं विद्वान्मांसमुपसिच्योपहरति । पार्वद् द्रावद्याहेनेष्टा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४३ ॥

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ।

प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ४४ ॥

अर्थ— ( एष वै भतिथिः यस् धोत्रियः ) यह भतिथि निश्चयसे धोत्रिय है ( तस्मात् पूर्वः न भक्षीयात् ) इसलिये वस्त्रसे पूर्व स्वयं भोजन करना उचित नहीं है ॥ ३७ ॥

( भतिथौ अशितायति भक्षीपात् ) भतिथिके भोजन करनेके पश्चात् गृहस्थ स्वयं भोजन करे । ( यद्यस्य सात्मत्वाय ) यद्यकी पूर्णताके लिये ( यद्यस्य अविच्छेदाय ) यद्यका भग्न न होनेके लिये ( तद् व्रतं ) यह व्रत पालन करना गृहस्थीको योग्य है ॥ ३८ ॥

( एतद् वा तु स्वादीयः ) यह जो स्वादुक्त है ( यत् अधिगमं क्षीरं वा मांसं वा ) जो गौसे प्राप्त होनेवाले दूध वा अन्य मांसादि पदार्थ हैं ( तत् एष न भक्षीयात् ) उसमेंसे कोई पदार्थ भतिथिके पूर्व भी न खाये ॥ ३९ ॥

[ ४ ] ( यः एवं विद्वान् ) जो इस बातको जानता हुआ भतिथिके लिये ( क्षीरं उपसिच्य उपहरति ) दूध कण्ठे पात्रमें रखकर ले जाता है, उसको ( यावत् सुसमृद्धेन यक्षिणोमेन इष्ट्या अवरुन्धे ) त्रितना उचम समृद्ध क्षीरसोम पशुका पजन करनेसे फल मिलता है, ( तावत् एतेन अवरुन्धे ) उतना इससे मिलता है ॥ ४० ॥

( यः एवं विद्वान् ) जो इस बातको जानता हुआ भतिथिके लिये ( सर्पिः उपसिच्य उपहरति ) घो बर्तनमें रख कर ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि त्रितना किसीको उचम ( सुसमृद्धेन अतिरात्रेण ) समृद्ध अतिरात्र नामक पशु करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४१ ॥

जो इस बातको जानता हुआ समुष्य भतिथिकी देनेके लिये ( मधु उपसिच्य उपहरति ) मधु मर्पाय वाह्य उचम पात्रमें रखकर भतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि त्रितना किसीको ( सुसमृद्धेन सत्रसर्धेन इष्ट्या ) उचम समृद्ध सत्रसर्ध नामक पशुके करनेसे मिलता है ॥ ४२ ॥

जो इस बातको जानता हुआ ( मांसं उपसिच्य ) मांसको पात्रमें रखकर भतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है त्रितना उचम समृद्ध ( द्रावद्याहेन इष्ट्या ) द्रावद्याह नामके करनेसे किसीको प्राप्त हो सकता है ॥ ४३ ॥

जो इस बातको जानता हुआ ( उदकं उपसिच्य ) उदक उचम पात्रमें रखकर भतिथिके पास ले जाता है, यह ( प्रजानां प्रजननाय प्रतिष्ठां गच्छति ) प्रजाओंके प्रजनन कर्षाद् उपसिच्ये लिये स्थिरताको प्राप्त होता है और ( प्रजानां प्रियः भवति ) प्रजाओंके लिये प्रिय होता है ॥ ४४ ॥

भाष्यार्थ— भतिथिका भोजन पठिके होने, पश्चात् जो अवशिष्ट बचा हो वह घरके मनुष्य खाये । कमी किसी भव-स्पर्शसे भतिथिके भोजन करनेके पूर्व घरका कोई मनुष्य भोजन न करे । ऐसा करनेसे गृहस्थ-पशुकी पूर्णता होती है । प्रत्येक गृहस्थ इस व्रतका पालन करे ॥ ३७-३९ ॥

जो गृहस्थी उचम भक्षते दुग्धादि पदार्थ उचम रखकर पात्रमें रखकर भतिथिकी समर्पण करनेकी इष्टिसे पशुके पास ले जाता है, पशुको बड़े बड़े पशु पचासर्ग करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ४०-४२ ॥

[ ५ ]

तस्मां उवा हिङ्कुणोति सविता प्र स्तौति ।

मृदस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्टा अति हरति विश्वे देवा निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद

॥ ४५ ॥

तस्मां उच्यन्त्ययो हिङ्कुणोति संग्रहः प्र स्तौति ।

अभ्यन्दिन् उद्गायत्यपराहः प्रति हस्त्यस्तं पशुनिधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद

॥ ४६ ॥

तस्मां अन्नो मयन्दिङ्कुणोति स्तनयन् प्र स्तौति ।

विधोतमानः प्रति हरति वर्षश्रुद्गायत्युद्गायन् निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ।

अतिधीम्रति पश्यति हिङ्कुणोत्यमि र्दति प्र स्तौत्युद्गं याचत्युद्गायति

॥ ४७ ॥

उप हरति प्रति हस्त्युच्छिष्टं निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥

अर्थ—[ ५ ] (य. एव वेद) जो इस अतिथिस्तकारके मन्त्रको जानता है (तस्मै) उस मनुष्यके लिये (उवा हिङ्कुणोति) क्या आनन्द-सन्देश देती है, (सविता प्र स्तौति) एवं विशेष प्रशंसा करता है, (मृदस्पतिः ऊर्जया उद्गायति) मृदस्पति बहुत साध उसके गुणोंका गान करता है, (त्वष्टा पुष्टा प्रतिहरति) त्वष्टा उसको इति मरण करता है, (विश्वे देवा निधनं) सब अन्ध देव उसको आश्रय प्रदान करते हैं। अब यह (भूत्याः प्रजायाः पशूनां निधनं भवति) उपरि, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४५ ॥

तो इस अतिथि स्तकारके मन्त्रको जानता है, (तस्मै उच्यन् सूर्यः हिङ्कुणोति) उसके लिये उदय होता हुआ सूर्य आनन्दका सन्देश देता है, (स्तनयन् प्र स्तौति) प्रभाव समग्र प्रशंसा करता है, (अभ्यन्दिन् उद्गायति) अभ्यन्दिन उसका गुण गान करता है, (अपराह प्रति हरति) अपराह समग्र पुष्टि देता है, (अस्त यत् निधनं) अस्त जात हुआ सूर्य आश्रय देता है। इस प्रकार उपरि, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४६ ॥

जो इस अतिथिस्तकारके मन्त्रको जानता है, (तस्मै अन्नं भयन् हिङ्कुणोति) उसके लिये उपरि होनेवाला भेष आनन्द सन्देश देता है, (स्तनयन् प्र स्तौति) गौरव करनेवाला भेष मन्त्रोक्त करता है, (विधोतमानः प्रतिहरति) मन्त्रोक्तवाला पुष्टि देता है, (उप हरति उद्गायति) पुष्टि करता हुआ भेष इसका गुणगान करता है (उधृगृह्णन् निधनं) उपरि लेनेवाला आश्रय देता है। इस प्रकार यह उपरि, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४७ ॥

जो इस अतिथिस्तकारके मन्त्रको जानता है वह जब (अतिधीम्रं पश्यति) अतिथिस्तकार दर्शन करता है तो मानो यह (हिङ्कुणोति) आनन्दका आनन्द करता है, अब यह अतिथिस्तकार (अभिचरति) नमस्कार करता है, तो यह हाथ उसके (प्र स्तौति) प्रभाव करनेके समान होता है। अब यह (उद्गं याचति) उद्ग मांगता है तो मानो यह (उद्गायति) मन्त्रके उद्गायका कार्य करता है। (उप हरति प्रतिहरति) अब ॥ पश्यन् अतिथि के पास जाता है, तो वह उसके प्रतिदर्शका कार्य करता है। (उच्छिष्टं निधनं) जो अन्नादिक अतिथि के भोजन करनेके पश्चात् अवशिष्ट रहता है उसको यज्ञका अन्तिम भक्षण समझो। इस प्रकार अतिथिस्तकार करनेवाला उपरि, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४८ ॥

भावार्थ— हिंकार, प्रशंसा, उद्गान, मन्त्रोक्त और निधन से पांच अंग सम्पन्न हैं। अतिथिस्तकार करनेवालेको ये पांचों इस प्रकार सिद्ध होते हैं। अर्थात् अतिथिस्तकार एक केवल यज्ञका पूरा भाग है। अतिथिस्तकार ही मृदस्पतिके परम पवित्र और मेघ कर्म है ॥ ४५-४८ ॥

[ ६ ]

यत्प्रवृत्तार ह्यस्या भावयत्येव तत्	॥ ४९ ॥
यत्प्रतिश्रुणोति प्रत्याभावयत्येव तत्	॥ ५० ॥
यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वं चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्षेव एव ते	॥ ५१ ॥
तेषां न कश्चनाहोता	॥ ५२ ॥
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्परिविष्य गृहानुषोदैत्यशुभ्यमेव तदुपायैति	॥ ५३ ॥
यत्संभाषयति दक्षिणाः सभाषयति यदेनूतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्	॥ ५४ ॥
स उपहृतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्वस्यत्यिष्या विश्वरूपम्	॥ ५५ ॥
स उपहृतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पदन्तारिषि विश्वरूपम्	॥ ५६ ॥
स उपहृतो दिवि भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्वाहिवि विश्वरूपम्	॥ ५७ ॥
स उपहृतो देवेषु भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्देवेषु विश्वरूपम्	॥ ५८ ॥
स उपहृतो लोकेषु भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्लोकेषु विश्वरूपम्	॥ ५९ ॥
स उपहृत उपहृतः	॥ ६० ॥
आमोतीमं लोकामोत्युद्यम्	॥ ६१ ॥
ज्योतिष्मतो लोकाम्ब्रजयति य एव वेदे	॥ ६२ ॥

अर्थ— [ ६ ] ( यत् प्रवृत्तार ह्यस्या ) जब वह हातवाकको बुझता है, मानो ( तत् आभावयति एव ) वह अभिभवन करता है । ( यत् प्रतिश्रुणोति ) जब वह सुनता है, मानो ( तत् प्रत्याभावयति एव ) वह प्रत्याभवन करता है । जब अतिथिके लिए ( पूर्वं च अपरे च परिवेष्टार पात्रहस्ता प्रपद्यन्ते ) पहिले और बादमें परासनेवाले सेवक पात्र हाथोंमें लेकर उसका पास आते हैं, मानो ( ते चमसाध्वर्षेव एव ) यज्ञके चमसाध्वर्षु हैं ॥ ( तेषां न कश्चनाहोता ) उनमें कोई भी अयागक नहीं होता है ॥ ४९-५२ ॥

( यत् वै अतिथिपति अतिथीन् परिविष्य ) जो गृहस्थी अतिथियोंको भोजन देकर ( गृहान् उप उद्यति ) अपने घरके प्रति जाता है, मानो ( तत् अशुभ्य एव उप अयैति ) वह अशुभ स्वामके लिये ही जाता है । ( यत् सभाषयति ) जो भेद करता है, मानो वह ( दक्षिणा सभाषयति ) दक्षिणा प्रदान करता है । ( यत् अनुतिष्ठते ) जो उसके लिये अनुष्ठान करता है मानो ( तत् उदवस्यति एव ) वह वज्र बघाताएव करता है ॥ ५३-५४ ॥

( सः पृथिव्या उपहृत ) वह इस पृथ्वीपर किसी देशमें आदरसे बुझने अतिथि ( यत् पृथिव्या विभ्रजयति ) जो कुछ इस पृथ्वीपर अनेक स्वरूपवाला भज है ( तस्मिन् उपहृत भक्षयति ) उसको वहा निमज्जित होकर खाता है । वह आदरसे बुझता हुआ अतिथि ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्षमें, ( दिवि ) बुल्लोकमें, ( देवेषु ) देवताओंमें और ( लोकेषु ) सब लोकोंमें तो ( विश्वरूप ) अनेक स्वरूपवाला भज होता है, उसको वहा बैठा हुआ ( भक्षयति ) भक्षण करता है ॥ ५५-५९ ॥

( स उपहृत ) वह आदरसे निमज्जित किया हुआ अतिथि बहुत जग्य देता है ॥ अतिथिको आदरसे साथ बुझाने वाला गृहस्थी ( इमं लोक आमोति ) इस लोकको ग्रहण करता है और ( अमुं आमोति ) उस लोकको भी प्राप्त करता है । ( य एव वेदे ) जो इस अतिथिसारकार श्रवको जानता है वह ( ज्योतिष्मत लोकां जयति ) तत्सर्वी लोकोंका भाग करता है ॥ ६०-६२ ॥

## अतिथिका आदर

अतिथिका आदरसत्कार केमके साम करनेका उपदेश करनेके लिये वे ६२ मंत्र इस सूक्तके छ पर्यायमें दिये हैं। ये मंत्र सरल होतेसे इनकी व्याख्या विशेष करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतिथिसत्कारसे विविध प्रकारके यज्ञ तथा सत्कार करनेका छल प्राप्त होता है अर्थात् जो अतिथिसत्कार उचयन कहासे होगा, उसको अन्वयार्थ यज्ञयाग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ-धर्मका यह प्रधान भाग अतिथिसत्कार है।

इन मंत्रोंमें 'मास' शब्द आया है। इस मास शब्दके अन्वय अर्थ भी होते हैं, परन्तु यहाँ 'मास' अर्थ अवशित है ऐसा हमारा मत है और यह केनेपर भी कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि मासमोची मनुष्यक घरमें कोई अतिथि आवे, तो अतिथिके पूरे यद् मास भी न खावे, इत्यादि भाव यहाँ लेना योग्य है। अन्वये ऐसे निमासमोची मनुष्योंका वर्णन है ऐसे ही मासमोत्रियोंका भी वर्णन है।

## ब्राह्मणको कष्ट

कां ५, सू. ११

( अति - मयोज् । वैष्णव - मङ्गली । )

अतिमाश्रमवर्धन्त नोर्ध्व दिग्मस्पर्धन् । भूर्गु हिंस्त्रिा सृज्जया चैतद्वृत्ताः पराभवन् ॥ १ ॥  
ये पुहस्तामानमाङ्गिरसमावर्धन्माङ्गणं जनाः । येवृत्तेषामुमयादुमर्षिस्तोकान्प्रापयत् ॥ २ ॥  
ये माङ्गणं प्रत्यष्टीवन्धे चोत्तिमन्नुत्कर्मीषिरे । अस्नस्ते मर्षे कुल्यायाः केशान्खादन्त आसते ॥ ३ ॥  
जह्मगवी पच्यमाना यावत्क्षामि भिज्जदे । तेजो राष्ट्रस्य निर्हेन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

अर्थ— ( पुज्या ) हमका करने अथ प्राप्त करनेवाले वीर ( अतिमान अवर्धन्त ) अस्नस्त बड़े, ( न दिव इव उत्सृष्टम् ) इतने कि मुलोककी सत्ता करने लगे। परन्तु वे ( चैत-हृदया ) वैतेक नष्ट सब भोगने लगे तब ( भूर्गु हिंस्त्रिा ) भृगुगणिकी हिंसा कर ( सृज्जया ) पराभव होय ॥ १ ॥

( ये जना पुहस्तामान ) जो लोग बड़े सामगायक ( आगिरस माङ्गण अवर्धन् ) आगिरस माङ्गणकी सहायते हैं, ( तेषां तोकानि ) उनकी सत्ताओंकी ( येवृत्तेषामुमयादुमर्षिस्तोकान्प्रापयत् ) हिंसक ( उमयादुमर्षिस्तोकान्प्रापयत् ) दोनों शत्रुओं कीचमें शङ्का रहा ॥ २ ॥

( ये माङ्गणं प्रत्यष्टीवन्धे ) जो माङ्गणका अवग्रह करते हैं, ( अस्नस्ते मर्षे कुल्यायाः ) मर्षा जो हमसे धन छीनना चाहते हैं, ( ते अस्न कुल्यायाः मर्षे ) ये रक्षिकी नदीकी बीच ( केशान्खादन्त आसते ) कर्माकी खाते हुए बैठते हैं ॥ ३ ॥

( सा पच्यमाना माङ्गगवी ) वह हृदय की गई माङ्गणकी मौ ( यावत् क्षामि भिज्जदे ) तिम काल तकपडा रहती है, उस कारण उस ( राष्ट्रस्य तेज निर्हेन्ति ) राष्ट्रका तेज जाता है और वडा ( वृषा वीर न जायते ) यत्नान् वीर भी उत्पन्न नहीं होय ॥ ४ ॥

भावार्थ— विन्वी क्षत्रिय बहुत बड़ मने थे, परन्तु अब वे माङ्गणकी सहायते लगे और देवोंके लिये दिया रूप रज्य भोगने लगे, तब शान्तपट होय ॥ १ ॥

विहोने सामगायक आगिरस माङ्गणकी सहायता या, उनके शालवर्षोंकी हिंसा पशुजाने दांतोंसे पीसा या ॥ २ ॥

माङ्गणका अपमान करते हैं और उससे धन छीनते हैं, वे रक्षिकी नदीमें बाजोंकी खाते रहते हैं ॥ ३ ॥

जो माङ्गणकी माय रूप काल है, तब क्षत्रियों राष्ट्रका तेज नष्ट होता है और उसमें बलवान् वीर नहीं उत्पन्न होते ॥ ४ ॥

कूरमस्या आश्रयं तृष्टं विहितमस्यते । क्षीरं पदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किंस्वियम् ॥ ५ ॥  
उग्रो राज्ञा गन्धर्मानो ब्राह्मण यो विपत्तसि । परा तर्तिस्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥  
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्दन्तः । इष्टास्या द्विविद्धा मृत्या सा राष्ट्रमव धृनुते ब्रह्मण्यस्य ॥ ७ ॥  
तद्वै राष्ट्रमा संयति नावै भिन्नाभिर्वोदकम् । ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति राष्ट्राष्टं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥  
तं वृक्षा अपं सेधन्ति छायां नो मोषणा इति । यो ब्राह्मणस्य सद्गनं वभि नारद मन्पते ॥ ९ ॥  
विप्रेतदेवकृतं राजा वरुणोऽजवीत् । न ब्राह्मणस्य मां जग्धा राष्ट्रे जागार कञ्चन ॥ १० ॥  
नूनं वा नवुतयो वा भूमिर्न्यधृनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभ्रवं परामवन् ॥ ११ ॥

अर्थ— ( मर्यादा आश्रयन कर ) इसको कष्ट देना यथा ब्रह्मका कार्य है, ( पिशित तृष्ट मस्यते ) मास तो तुम बर्तानेवाला होनेके कारण देहने योग्य है । ( यत् अस्या क्षीर पीयते ) जो इस ब्राह्मणकी गौका दूध पीया जाता है ( तत् वे पितृषु किंस्वियं ) वह नि संदेह पितरोंमें पार कहा जाता है ॥ ५ ॥

( यः राजा उग्र गन्धर्मान ) जो राजा अपने बराबर उग्र मानवा हुआ ( ब्राह्मण जिघत्सति ) ब्राह्मणको सताता है और ( यन् ब्राह्मण जीयते ) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचता है ( तत् राष्ट्र परासिच्यते ) वह राष्ट्र बहुत गिर जाता है ॥ ६ ॥

( अष्टापदी चतुरक्षी ) आठ पंक्चाली, चार मासोंवाली, ( चतु श्रोत्रा चतुर्दन्त ) चार कानोंवाली और चार हड्डीवाली ( इष्टास्या द्विविद्धा मृत्या ) दो सुखवासी और दो शिखावासी होकर ( ब्रह्मण्यस्य राष्ट्रं सा अवधृनुते ) ब्राह्मणको सतानेवाले राजाके राष्ट्रको यह क्षिप्त होती है ॥ ७ ॥

( यन् ब्राह्मण हिंसन्ति ) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचे है ( तत् राष्ट्र दुच्छुना हन्ति ) वह राष्ट्र विपत्तिसे भरता है और ( तत् ये राष्ट्र ) वह राष्ट्रके वसी प्रकार ( आ रूपति ) गिरा देता है, ( उदक भिन्ना नाच इध ) जैसे जल टूटी हुई नीकासे बहा देता है ॥ ८ ॥

( न छायां मा उपमा इति ) हमारी छायामें वह न आवे, इस रूपसे ( तं वृक्षा मपसेधन्ति ) वृक्षको घुस कर हटा देते हैं । ' हे नारद ' ( य ब्राह्मणस्य धन सत् अभिमन्यते ) जो ब्राह्मणका धन बचने भयना जाता है ॥ ९ ॥

( या नय मपतय ) जो निम्नजने वक्त्रकी प्रणर्ण है ( ता भूमि एव वि अधृनुत ) उनको भूमिसे ही हटा दिया है । वे ( कत्याणी ब्राह्मण्यं प्रजा हिंसित्वा ) कल्याण करनेवाली ब्राह्मण प्रजाको कष्ट देकर ( असंभ्रव्य परामवन् ) असंभवनीय सीधिते पराजित हुए ॥ ११ ॥

( राजा वरुण अवधीत् ) वरुण राजाने कहा है कि ( यत्तत् देवकृत विप ) यह देवोंका बनाया विप है । ( ब्राह्मणस्य मां जग्धा ) ब्राह्मणकी भावकी हत्या कर ( कञ्चन राष्ट्रे न जागार ) कोई भी राष्ट्रम नहीं सताता ॥ १० ॥

भाषार्थ— गादको कष्ट देना यथा ब्रह्मका कार्य है । दूसरेकी व्यापका दूध पीना भी विपत्ति समान ही है ॥ ५ ॥

अपने भावकी बलवाद् मानता हुआ जो राजा ब्राह्मणको सताता है, उसका राष्ट्र गिर जाता है ॥ ६ ॥

ब्राह्मणको गाव दु क्षी होनेपर द्विगुणित मात्रक सींग आदिसे युक्त होकर उसके राष्ट्रका नाश करती है ॥ ७ ॥

जहां ब्राह्मण सताया जाता है वह राष्ट्र विपत्तिसे गिरता है । टूटी नीकाके समान यह पीचमें ही डूब जाता है ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणता धन छीनता है उसको वृक्ष भी अपनी छायामें जाने नहीं देते ॥ ९ ॥

राजा वरुणने कहा है कि ब्राह्मणकी गोको हत्या करना विपत्ति के समान हानिकारक है, वस्त्रों की रीकार करनेसे काढ़ी भी पीतिल नहीं गूह सकता ॥ १० ॥

निम्नजने वीर किन्हीं सब भूमिपर विजय प्राप्त भी की वे अब ब्राह्मणोंको सताने छोड़ कर राजा होगये ॥ ११ ॥



यां मृतायां अनुवधन्ति कृयां पदयोपनीम् । तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उं पस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥  
 अथूणि कृपमाणस्य यानि जीवस्य वायुतुः । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥  
 येन मृतं स्नपयन्ति इमथूणि येनोन्दते । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥  
 न चपे मेशावरुणं ब्रह्मज्यमग्निं वर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नैवते वर्षम् ॥ १५ ॥

अर्थ— ( यां पदयोपनीं कृयां ) जिस पदचिन्हको हटानेवाली पाँडियाही ब्राह्मणे ( मृताय अनुवधन्ति ) मृतों  
 साथ धावते हैं, हे ( ब्रह्म-ज्य ) ब्राह्मणको सतानेवाले ! ( देवाः तत् ते उपस्तरणं अभ्रुवन् ) देवोंने कहा है कि यह  
 ठेरा थिरवर है ॥ १२ ॥

हे ( ब्रह्म-ज्य ) ब्राह्मणको सतानेवाले ! ( यानि अथूणि ) जो आत्मा ( कृपमाणस्य जीवस्य वायुतुः ) निर्बल  
 और जीते गये मनुष्यक बहते हैं। ( देवाः तं वै ते अपां भागं आधारयन् ) देवोंने उसको ही ठेरा जलका भाग  
 निश्चय दिया है ॥ १३ ॥

हे ( ब्रह्मज्य ) ब्राह्मणको सतानेवाले ! ( येन मृतं स्नपयन्ति ) जिससे मृतको स्नान कराते हैं, ( येन इमथूणि  
 च उन्दते ) जिस पानीसे मृत शरीरों का बाल भिगोये जात है, ( तं वै देवाः ते अपां भागं आधारयन् ) उसको ही देवोंने  
 ठेरा जलभाग निश्चय दिया है ॥ १४ ॥

( मेशावरुणं चपे ) मिश्रारक्तसे प्राप्त होनेवाली वृष्टि ( ब्रह्मज्यं न अभिवर्षन्ति ) ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले  
 ऊपर नहीं गिरते और ( नास्मै समितिः न कल्पते ) इसको सभा सम्मति नहीं है। ( न मित्रं नैवते वर्षम् ) और  
 न मित्र इससे वर्षमें रहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— कठिनी ब्राह्मण को सतानेवाली ब्राह्मणों के काममें आती है, उसपर यह अनुपम सीता है कि जो ब्राह्मणों  
 सताना है ॥ १२ ॥

निर्बल होनेसे काय पराजित हुए मनुष्यकी आँखमें जो आंसू आते हैं, उन आँसूओंका जल उसकी पीनेके लिये दिया  
 जाता है, जो ब्राह्मणको सताना है ॥ १३ ॥

जिस जलसे मृतोंको स्नान कराते हैं और जो जल इनमेंसे करनेसे सबब वाली सूख भिगोवैके काम आता है, वह जल  
 उसको मिलता है, कि जो ब्राह्मणको कष्ट देता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके राष्ट्र पर अच्छी वृष्टि नहीं होती, राष्ट्रसभा बैठे रागके लिये अनुद्वग नहीं होती और बैठे  
 क्षत्रियता कोई मित्र नहीं रहता ॥ १५ ॥

## ब्राह्मणको कष्ट

### शान्तीका कष्ट

शान्ती मनुष्यको दिया हुआ कष्ट शम्भुका बाध करता है।  
 जिस राज्य शासनमें शान्ती समझनेको कष्ट आयेने पड़ते हैं  
 यह राज्य शासन भट हो जाता है। जिस राज्यशासनमें शान्ती  
 होगोर्न। जागीपर रोक लगाया जाता है, उसको उत्तम उप-  
 देव देनेसे रोक जाता है, अर्थात् सुविष्ट शान्ती पुरखोंकी धन  
 संपत्ति सुरक्षित नहीं होती, अर्थात् अन्ध प्रवृत्तसे शान्ती सम-  
 झनेको बहेल पड़चुते हैं, यह राष्ट्र अयोग्यिको प्राप्त होता है।

यह भातय इस सूक्त का है। राष्ट्रमें शान्ती और शान्ती  
 की पूजा होती रहे। क्योंकि शान्तिपदेवसे ही राष्ट्रका सत्ता  
 बढ़ता ही सचता है। इसलिये हरद्वार राष्ट्रके अंग शान्तीका  
 सरकार कर और अपनी उत्तरिके शान्ती करें।

### अभ्युदयिकी छठ पाठें

इस सूक्तका विचार करनेसे कुछ बातोंका पता लगता है,  
 देखिये—

( १ ) मृत स्नपयन्ति— मृत मनुष्यके सबको स्नान  
 करते हैं।

( २ ) मृताय पदयोपनीं कृयां अनुवधन्ति— मृतके  
 पाँवका चिह्न हटानेवाली ब्राह्मणसे जयपा किती कल्प चीनसे  
 बांधे हैं। ( इसमें 'कृया' का अर्थ दीक प्रकार समझमें नहीं  
 आता है। यह खोजना विषय है। )

### हजामत

( ३ ) इमथूणि उन्दते—इनमेंसे बलवाने समय बाल  
 भिगोये जाते हैं।

इस सूक्तमें कुछ कथनोंका दीक दीक भाग समझमें नहीं  
 आता है, इस कारण यह सूक्त किष्टमा प्रतीत होता है। उन  
 मशकका अधिक विचार पाठक करें।

## पशुको कृषि कनाना

कां. ६, सू. १३८

( कृषि - अर्थार्थ । देवता - वनस्पति । )

एवं वृक्षान् श्रेष्ठतमामिश्रतास्योपधे । इमं मे अद्य पूरुं कृषिर्मापृश्निं कृषि ॥ १ ॥

कृषिं कृष्योपशिनमर्थो कुरीत्ति कृषि । अथास्येन्द्रो वारंम्यामुमे भिनन्नापृश्नी ॥ २ ॥

कृषिं कृषिं स्वाकरं वध्रे वधिं स्वाकरमरसारं स्वाकरम् ।  
कुरीरमस्य क्षीर्पणिं कुर्म्यं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये ते नाहवौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्णम् । ते ते भिनन्ति श्रम्ययामुप्या अधि मुक्तयोः ॥ ४ ॥

यथा नहं कृषिपुने क्षियौ भिन्दन्त्वधर्मान् । एवा भिनन्ति ते श्रेयोऽमुप्या अधि मुक्तयोः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे ओषधे ! ( एवं वृक्षान् श्रेष्ठतमा मिश्रता ) वृक्षोपधिपाने सचले अधिक भेद सर्वत्र प्रसिद्ध है ।  
( अथ इमं मे पूरुं ) आज इस मेरे पुत्रपशुको ( कुरीरं ओपदिनं कृषि ) वहीव और खीरदाता कर ॥ १ ॥

( कृषिं ओपदिनं कृषि ) वहीव और खीरदाता कर । ( अथ कुरीरिण कृषि ) और सिरपर बाह रखनेवाला कर । ( अथ इन्द्रः प्रापृश्या ) और इन्द्र दो पक्षयोले ( अस्य उमे मापृश्या भिनन्तु ) इनके दोनों भगवन्तोप  
धिकार कर ॥ २ ॥

हे वहीव ! ( स्वा कृषिं भकरं ) तुझे वहीव बना दिया है । हे ( वध्रे ) लिंबे ! ( स्वा वधिं भकरं )  
तुझे लिंबे बना दिया है । हे ( अरख ) रसहीन ! ( स्वा अरखे भकरं ) तुझे रसहीन बना दिया है । ( अस्य क्षीर्पणि  
कुरीरं ) इसके सिरपर बाह और कण्ठ ( कुर्म्यं च अधिनिदध्मसि ) आभूषण भी कर देते हैं ॥ ३ ॥

( ये ते देवकृते नाहवौ ) जो तेरी देवों द्वारा बनाई गई हैं, ( ययोः वृष्णं तिष्ठति ) जिनमें वीर्य रहता है,  
( ते ते अधिमुक्तयोः अधि ) वे तेरे लोगों भगवन्तोषोंको ( अमुप्या श्रम्यया भिनन्ति ) इस इन्द्रसे तोड़ देता हूँ ॥ ४ ॥

( यथा क्षियः कृषिपुने नहं अदमना भिन्दन्ति ) जिन प्रकार क्षियों चढ़ाई बनानेके लिये पशुदेवों ( पास )  
पक्षयोले दृष्टी है । ( एवा अमुप्य ते श्रेयः ) इसी प्रकार तेरी इन्द्रिय ( ते श्रेयस्योः अधि भिनन्ति ) घेरे भगवन्-  
तोषोंके उपर कूटता हूँ ॥ ५ ॥

बैद पौडा आदि पुरा वस्तुओंको पुरुषको हीन बनानेके लिये वीर्यकी वादियोंको तोड़ना, धर्मोंको दटना, जन्मक  
बनाना आदिकी विधि इसमें लिखी है । किसी औषधिका प्रयोग भी कहा है, परंतु उस औषधिरे नामका पता नहीं लगता  
है । वीर्य नादियों काटना, भगवन्तोषोंको तोड़ना, इत्यादि बातें आज भी प्रसिद्ध हैं ।







## अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद

‘ गृह स्था श्रम ’

## सुभाषित

दम्पती—१२वधूके कर्तव्य ( कां. ६; सू. १२२ )

१. दम्पती ! अनु सारभेषां, अनु संरभेषां तस्य  
शुभे भयेधाम् ( १ )—दे खीदुलो ! अनुदुल्लोसे शुभ-  
कार्यका प्रारंभ करो, अनुदुल्लोसे कष्ट करो और बड़े हुए  
पत्नी रक्षा करनेके लिए एक दूसरेका सहाय हो ।

### कन्यादान

२. इमाः पशियाः दुःखाः पूताः योयितः प्रहृष्टा  
हस्तेषु प्रपृष्टा सादयानि ( ५ )—इस गृह्य भीर पशिय  
कियाँको हानियेके हाथों पृथक् पृथक् रूपसे देता हूँ ।

( कां. १; सू. १४ )

३. धृष्टात् अधिजनं ह्य मर्याः भर्ग्यं यथैः आदिपि  
( १ )—जिस प्रकार धृष्टसे माता जननेके लिए पूत लोभते हैं,  
वसी प्रकार इस कन्यासे भाग्य भीर तेज में प्राप्त करता हूँ ।

४. आ दीर्घाः समोप्यात् पितृषु उपोष् आरुणम्  
( १ )—सिर सतने कर्पात् विवाहके समयतक कन्या माता  
पितासे घर चिरकालतक रहे ।

( कां. २; सू. ३३ )

५. अस्य पत्या सौभाग्यं भस्नु ( १ )—उसको पतिके  
साथ सौभाग्य प्राप्त हो ।

६. श्रेषु जुष्टा समनेषु यन्तु ( १ )—बड़ पृष्ठज्योमें  
निय और उष्म मनवालेमें मनोरम हो ।

७. इयं नारी पतिं विरेष्ट ( १ )—बड़ की पति  
प्राप्त करे ।

८. सोमः राजा सुमगां कृणोति ( १ )—सोमराज उन्ने  
सौभाग्यवादी करे ।

९. पुत्रान् सुयामा मतिर्ग्री भयाति ( १ )—पुत्रोंको  
वत्सल कर बड़ पाखी रानी होगी है ।

१०. सुभाग्यं पतिं गृहं विराजतु ( १ )—सौभाग्य  
वसी होकर पतिके साथ साकर विराते ।

११. पत्या यविराधयन्ती भगस्य जुष्टा इयं नारी  
संप्रिया भस्नु ( ४ )—पतिसे विरोध न करती हुई बड़  
भाग्यवादी की पतिको दिए हो ।

१२. भगस्य मायं आरोह तथा उप प्रताप्य, यः पति  
प्रतिकार्यः ( ५ )—देखतेरुही भाग पर चढ़ और अपने  
लायक पतिके पास जा ।

( कां. ६; सू. ६० )

१३. धाता अस्य अयुष्यं प्रतिकार्यं पतिं दधानु  
( १ )—सबको धाधार देवेवाला देव इस कन्याके लिए  
इच्छा करनेवाला पति देवे ।

( कां. १४; सू. १ )

१४. नवित्ता मनसा शंसन्ती सूर्यां पतिं भवन्तु  
( १ )—सविनारे जलते की प्रिय मयवी कन्या पतिको हो ।

१५. इतः कन्धनात् प्रमुंचामि न भमुनः ( १० )—  
इतः प्रमुंचामि न भमुनः सुयतां कर्तुम् ( १४ )—पिता  
के घरसे मुझे मुक्त करता हूँ, पर पतिके कृपामें ऐसी मजबूती  
से बांधऊँ कि तु बहाते कभी छूट न लगे ।

१६. प्रातः पौर्वा सुकृतस्य लोके स्थोनम् ( ११ )—  
सम्भके भीर पुण्यकालियेके स्थानमें जो मुक्त प्राप्त हो लकड़ा  
है, वह उसे पत्नीपूजमें प्राप्त हो ।

१७. शुद्धान् गच्छ, शृण्वन्ती ययातां पाणिनी त्वं  
( १० )—पतिके घरमें बड़ लजबप साकर बड़ी मजबूती बनने  
करनेवाली होकर रहे ।

१८. अथ जिहिः विदुष्यं प्रापदामि ( २१ )—इस  
प्रकार जनेक वर्ष पर्यन्त जीवित रहकर शृण्वन्ती बननेके  
बाद अपने अनुभव वृत्तियों उपदेष्टा करमें है ।

६ इह ते प्रजायै प्रियै समृध्यतां ( २१ )- इस परम तेरो सम्प्रतिरे लिए प्रिय पदार्थोंकी समृद्धि हो ।

७ अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जाग्रहि ( २१ )- इस परम गृहस्थाध्यायमें के पालनके लिए जाग्रत रहो ।

८ एना पत्या तन्यं संस्पृशस्व ( २१ )- इस पतिके शरीरमें अपने शरीरका स्पर्श कर ।

९ इह एव स्नेः मा वि यौष्टे ( २२ )- यही रहो, कभी भी एक दूसरेसे अलग मत होओ ।

१० पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ, मोक्षमानौ स्वस्त्वो विधिं भायुः व्यदन्तं ( २० )- तुम दोनों पुत्रों और नातिबेटों साथ खेलते हुए, सुख होते हुए तथा चरबारसे पुन होने हुए सम्पूर्ण भायुका उपभोग करो ।

११, शामुन्य पच देहि ( २५ )- उष्ण बखोंका दान करो ।

१२ ब्रह्मभ्याः पशु विभज ( २५ )- ब्राह्मणोंको धनका दान कर ।

१३ पुष्यं ऋण-उपेयुं श्रद्धं यदम्बो ( २१ )- तुम दोनों पतिपत्नी सदा व्यवहार करो श्रद्धा साथ बोधो ।

१४ सख्यं भर्गं सं भरतं ( २१ )- सपत्ति पुन भाग तुम्हें प्राप्त हो ।

१५ संभलः एतां चारु पाथं यदनु ( २१ )- पति पत्नीसे सुन्दर और सुहृदायें बोले ।

१६ एतथाना अनुक्षराः क्रजयः सन्तु ( २४ )- मार्ग कांटे रक्षित और सरल व संधि हो ।

१७, धावा भोगेन दयैसा सं खजानु ( २४ )- परमेश्वर इस लोको भाग्य और वेकसे पुन करे ।

१८, दयैसा हमां दयतं ( २५ )- वेकसे इस लो की रक्षा करो ।

१९, भद्रः रोचनः तं उद्यामि ( २० )- जो कल्याणमय और उत्तरो है उद्योग अपने पास लाता है ।

२०, अवीरणी मापः उदजन्तु ( २९ )- पुत्रोंका भाग न करनेवाले उठ उसे मिलते रहे ।

२१, हिरण्यं शं आपा शं सन्तु ( ४० )- सुवर्ण वस्त्रका कल्याण करनेवाला हो और उठ भी सुखदायक हो ।

२२, सौमनसं प्रजां सौमार्ग्यं रयिं आशासाना पत्युः धनुवताः भूया अमृताय कं सं नहस्व ( ३२ )- उत्तम मन, सौमि, सौभाग्य और धनकी इच्छा करनेवाले २ पतिके अनुग्रह माचरण करनेवाली होकर अमृतत्वकी प्राप्तिरे लिए तैयार हो ।

२३, त्वं पत्युः अस्तं परेस्य साम्राज्ञी पथि ( ४३ )- तू पतिके घर जाकर वहां साम्राज्ञी होकर रह ।

२४, भ्यगुरेसु देवेषु ननान्दुः उत भ्यश्वाः साम्राज्ञी पथि ( ४४ )- समुद्र, देव, वनं और सात इन सबमें साम्राज्ञी होकर रह ।

२५, याः देवीः अरुन्तन् याः च अवयन् या च सल्लिरे या च अन्तान् कथितः अददन्त, ताः त्वा अरसे सं वयन्तु, आयुष्मतीं दं यासः परिधत्स्व ( ४५ )- निज देवीने स्वयं तूत काता हैं, जिसने पुत्रा है, किमने जाने जाने वाले हैं, जिसने किमने बीक किए हैं, वे सब तुम्हें वृद्धावस्थाक वस्त्र मिलते रहे, इसलिये पुनते रहे, अपनी आयुको दीर्घ करते हुए तू इन वस्त्रोंको पहन ।

२६, सयिता ते भायुः दीर्घं कृणोतु ( ४० )- सवित्रा मेरी आयु दीर्घ करें ।

२७, ते हस्तं गृह्णामि, मा व्यधिष्टाः मया सह प्रजया धनेन च ( ४८ )- मेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, तू दुःखी मत हो, मेरे साथ प्रजा और धनसे पुन होकर रह ।

२८, सोमा राजा सुप्रजसं कृणोतु ( ४९ )- सोम राजा तुम्हें उत्तम सम्भावसे पुन करे ।

२९, जातवेदाः अग्निः पत्ये क्षुमगां पत्नीं जरदाई कृणोतु ( ४९ )- जातवेद अग्नि पतिके लिए इस लोको वृद्धावस्थाक जीवित रसे ।

३०, ते हस्तं सौमगराज गृह्णामि ( ५० )- मेरा हाथ सौभाग्यके लिए पकड़ता हूँ ।

३१, मया पत्या जरदृष्टिः असाः ( ५० )- मुझ पतिके साथ तू वृद्धावस्थाक जीवित ॥

३२, त्वा ममो गार्हपत्याय धनुः ( ५० )- तू तुम्हें गृहस्थाध्याय पालनके लिए दो गई है ।

३३, त्वं धर्मज्ञः परस्मि अस्मि ( ५१ )- तू धर्मके मेरी पत्नी हो गई है ।

३४, अहं तव गृहपतिः ( ५१ )- मैं तेरे घरका स्वामी हूँ ।

३५, ह्यं मम पोष्या अस्तु ( ५२ )- यह मेरे द्वारा पोषणके योग्य है ।

३६, गृहस्थातिः त्वा ममो अदात् ( ५२ )- गृहस्थतिने तुम्हें मेरे लिए दिया है ।

३७, हे प्रजावति । मया पत्या शरदः शतं संजीय ( ५२ )- हे प्रजासे पुन लो ! मुझ पतिके साथ लो वर्ष-वक तू अग्नीवद जीवित रह ।

३८. इमां मार्गां प्रजया वर्धयन्तु ( ५४ )- इस छोटी प्रजाते बड़ा हो ।

३९. इमां मार्गां पत्ये संशोभयामसि ( ५५ )- मैं पति के इस मार्ग से अपने को सज्जित करने में हूँ ।

४०. अस्याः रूपे मयि ( ५६ )- इसका रूप मेरे लिए ही है ।

४१. न स्तेपे भ्रात्रि ( ५७ )- मैं भोरीका अन्न नहीं खाता ।

४२. स्वयं पराशान् अध्वानः मनसा उद् अमुच्ये ( ५८ )- मैं स्वयं पराशान् तोड़कर मनसे मुक्त होऊँ ।

४३. अथ उरुं लोकं सुगं पंधां हृणोमि ( ५९ )- मैं विशुद्ध कार्यक्षेत्र और अच्छी जगह आने के लक्ष्य मार्ग तैयार करता हूँ ।

४४. उद्यच्छ्रव्यं रक्षः अपहृताथ ( ६० )- शत्रुओं को हरा बहाकर राक्षसों को मारो ।

४५. इमां मार्गां सुकृते दृष्ट्वात् ( ६१ )- इस छोटी प्रजापति के लिए स्वीकार करो ।

४६. सा नः सुमंगली अस्तु ( ६२ )- वह हमारा कल्याण करनेवाली हो ।

४७. सुकिंशुर्वा विभ्यरूपे हिरण्यवर्णे सुव्रतं सुचक्रं यदहं मारोह ( ६३ )- उत्तम सुन्दर फूलों से सज्जण गण, सोने के समान चमकनेवाले, उत्तम कपड़ों से सज्जण वह मैं ऊँचके तथा उत्तम पहिनेवाले वर्णों में बैठ ।

४८. अध्यातृष्णीं अपतिष्णीं अपशुष्णीं पुभिर्वा अस्मभ्यं वह ( ६४ )- भारीवैका, पतिवः और पशुवैका माता व करनेवाली तथा पुत्रों की अभिप्रेतावाली श्री हमें दाता हो ।

४९. देव्याः शालायाः द्वारं यमुपयं स्वोने कृण्व ( ६५ )- पूज्यरी देवता के द्वार पर वपुका मर्मा सुखमय करवा हूँ ।

५०. पतिलोके शिवा स्थोना विराज ( ६६ )- अपने पति के घर कल्याण और सुख देनेवाली होकर रह ।

( कां. १४; सू. २ )

१. सः नः पतिभ्यः प्रजया सह जायां दाः ( १ ) परतु ॥ सबको प्रजा के साथ वनिषी मिले ऐसा कर ।

२. आयुषा वर्धसा पत्नीं अमिः वदात् ( २ ) जीवन और तेजसे मुक्त पत्नी अमिने दी है ।

३. अस्याः पतिः दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति ( ३ ) इसका पति दीर्घायुवाला होकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ।

३६ ( अथर्व. भा. ३ गृ. द्विती )

४. सा मन्दसाना शिवेन मनसा सर्ववीरं पचम्यं ययिं घोहि ( ४ )- मानन्दसे रहनेवाली वह श्री सुभक्तिपर मुक्त मनसे सब वीर पुत्रों के साथ रहती है । वह हमें प्रसन्नगीय घन देवे ।

५. पयिष्ठां स्थापुं दुर्मतिं हतं ( ५ )- मार्गों से रहनेवाले और विप्लवकारी दुष्टों को मार ।

६. प्रजावर्ति स्वा पत्ये रक्षसः रक्षन्तु ( ६ )- संतान वरदाय करनेवाली प्रजा छोटी पति के लिए राक्षसों से सुरक्षित रखे ।

७. इमं सुगं स्वस्तिवाहनं पंधां वाकभ्राम ( ७ )- इस सुगम और कल्याण करनेवाले मार्ग पर हम चलें ।

८. यस्मिन् वरतः न रिच्यति अम्येषां वसु शिन्त्ये ( ८ )- जिसमें वृद्ध मरता नहीं और हस्तों की अवस्था पन अधिक मिलता है ।

९. सुगेन दुर्गे अर्वाणां ( ९ )- मातावाले संघर्षों को धन कर जा ।

१०. अयतयः अप द्रान्तु ( १० )- शत्रु वृत्त भाग जाँरे ।

११. सयिता पतिभ्याः स्वोने हृणोतु ( ११ )- ईश्वर पति के लिए सुखदायी करे ।

१२. अयतयः सुयतीं अयत् ( १२ )- भाग्यदेवकी सम्पत्ति में रहे ।

१३. वशुना सा भारतां ( १३ )- वज्रनकी ओर हम न जाँरे ।

१४. पूरेभ्यः अयोरपशुः अपतिष्णीं स्थोना, शरमा, सुशोभा, सुयमा, वीरसा, देवकाया, सुमनस्वना स्वायः अयिषीमाहि ( १४ )- यह श्री पति के घर भावर मानन्दसे रहे, प्रीति व करे, पतिवः हिंस करनेवाली हो, धर्म निवमका पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी सन्तानको वीरता की शिक्षा देवे, देवकोने सम्पुट रखे, जगत् कालमें उत्तम भावनायें रखे और ऐसी श्री के कल्याण हमारा घर सुसम्पन्न हो ।

१५. अवेष्टृष्णी, अपतिष्णी, पशुभ्यः शिवा सुयमा सुवर्वाः प्रजावती वीरसाः देवकाया स्थोना इमे मार्गः पत्यं ऊर्षिं सपर्य ( १५ )- देवकाया माता व करनेवाली, पतिवः दाता व करनेवाली, पशुओं का यथायोग्य पालन करनेवाली, उत्तम निमेषों में करनेवाली, तेजस्वी, वीरपुत्रोंवाली देवता के सुखकी इच्छा करनेवाली ऐसी सुखदायिनी व मार्ग-फल धामिनी प्रजा कर ।

१६. अथैव नार्यं उपस्तरे पतत् धर्मं धर्मं ( १६ )- ॥ श्री के सोने एवं विद्या के कपडे सुख और संरक्षण देनेवाले हैं ।

१७. भगस्य सुमती असत् (२१)- परमेश्वरी सम्मतिमे र्हे ।

१८. एषा देवाः सर्वे रक्षांसि हन्ति (२४)- यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है ।

१९. सुमंगली सप्तमी इमे आँसि उपसीद् (२५)- वचन मंगल कामना करनेवाली और उत्तम पक्षिके साथ यह स्त्री अग्निकी उपासना करे ।

२०. सुमंगली गृहाणां प्रतरणां पत्ये सुसेवा श्वशुराद्य बाभुः स्वधैर्ये स्योना इमान् गृहान् प्रविश (२६)- उत्तम और मंगल स्त्रियों पर धारण करनेवाली, घरके दुख दूर करनेवाली पतिकी सखी प्रकारसे सेवा करनेवाली ससुरर को मुख देनेवाली, सासुको आनन्द देनेवाली स्त्री इस धर्ममें प्रवेश करे ।

२१. एषगुरुभ्यः स्वोन्मा पत्ये गृहेभ्यः स्वोन्मा अस्यै सर्वस्यै विशो स्योना एषां पुष्टाय भव (२७)- ससुरर, पति और कुटुम्बमें सबका हित करनेवाली, सब प्रभावोंको मुख देनेवाली होकर इन सबकी पुष्टि कर ।

२२. इयं सुमंगली यद् दौर्मार्गै विपरेतन (२८)- इस मंगलशुभ दृष्टे दुष्ट मार्गको दूर करके तुम वासि जाओ ।

२३. सर्वा सावित्री गृहते सौभाग्याय आरोहत् (३०)- सर्वा सावित्री महान् सौभाग्यके लिए उन्नत हुई है ।

२४. ज्योतिः अग्राः उपसः बुध्यमन्ता (३१)- धूर्तकी ज्योतिसे पूर्व मानेवाली उपरके जानेसे पहले ही स्त्री उदजोड ।

२५. ययं रापा सुमनसः स्याम (३६)- हम धनके साथ वचन मनसे मुख हो ।

२६. सविता वा दीर्घं भायुः कुर्वोतु (३१)- सविता तुम दोनोंको भायु लम्बी करे ।

२७ न त्रिपदे चतुष्पदे शो भव ( ४० )- हमारे कुटुम्बीर्ग, तीकरवर्ग और गानधर्मेके लिए कल्याणकारक हो ।

२८. यत् पत्नीभिः उतै वासः तत् नः स्योनं उप- स्तृशात् ( ५१ )- जो वस्त्र हमारी पत्नियोंके पुना है, वे हमें मुख धर्म देनेवाले हैं ।

२९. मे मतिः दीर्घायुः अस्तु शरदः शत जीवाति ( ६३ )- मेरी पति दीर्घायु हो और सौ वर्षक जीवे ।

३०. शीर्षं च मलं अप अप पिच्छात् ( ६८ )- सिरके मलको दूर करो ।

३१. अरिष्टासू गृहते वाजसातये सखेवाहि ( ७२ )- प्रातः जब तक है, तबतक हम दोनों महान् सखी प्रातःके लिए साथ-साथ रहें ।

( कां. २; सू. ३० )

१. मां धामिनी असः यथा मत् अप-गाः न असः ( १ )- पत्नी पतिकी हृष्टा करनेवाली हो, उससे यह स्त्री दूर न जावे ।

२. यत् अन्तरं तत् वाहं, यत् बाह्यं तत् अन्तरम् ( ४ )- जो बाहर हो, वही अन्दर हो और जो अन्दर हो वही बाहर हो ऐसा सरल व्यवहार दोनोंका होना चाहिए ।

३. विश्वरूपाणां कन्यानां मनः शृण्व ( ४ )- विश्वरूपोंवाली कन्याओंके मन इस प्रकार आकांक्षित करें ।

( कां. ६; सू. ८ )

१. यथा वृक्षं लिपुजा समस्तं परिप्लवजे, यथा मां परिव्यजस्य, यथा मां कामिनीं भक्षः यथा मन्त्राणां मसः ( १ )- जिस प्रकार वेल वृक्षसे लिपटी रहती है, ऐ स्त्री! उसी प्रकार तू मेरे आभयसे रह, मेरी हृष्टा करनेवाली हो और तू मुझसे दूर जानेवाली न हो ।

२. यथा इमे घायापृथिवीं सूर्यः सद्यः पर्वेति ( १ )- जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश दुलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है ।

( कां. ७; सू. ३६ )

१. हवि मां अन्तः कुशुप्य मनः सह अन्ति ( १ )- पतिरत्नीके भव एक दूसरेसे इस प्रकार मिल जाने चाहिए, कि मानों एक ही मन दोनोंमें कार्य रह रहा हो ।

( कां. ९; सू. ८९ )

१. ते सध्यह्न मनः मां एष अम्यं ( २ )- देवता मन मेरे अनुकूल हो कर रहे ।

( कां. १०; सू. ३ )

१. देवाः परणेन असुराणां अभ्याषाट् अभ्यास्यस्य ( २ )- देवोंने वरधमनिकी सदाचरता राक्षसोंकी पीडा दूर की ।

२. यथा मे वरुणोमणिः तेजसा समुक्षुतु यशासां सा समनक्तु ( २५ )- इस प्रकार वह वरधमनि मुझे कीर्ति और तेज देने ।

( कां. ७; सू. ३७ )

१. यथा केवलः मम मसः अन्यासां न चन कीर्तयाः ( १ )- तूकेवल मेरा ही पति होकर रह दूसरी स्त्रीका नाम भी न ले ।

२. मम मनुजातेन चाससा त्वा अभि वधामि ( १ )- अपने विचारोंसे साथ हुने हुए वधमे मैं तुझे बांध देती हूँ ।

( कां. १; घ. १८ )

१. या भद्रा तानि नः प्रजयै ( १ )— जो सुन्दर वस्त्र है, वे सब हमारी सन्तानोंको प्रजय हो।

२. सर्वं तद्वाचाय हम्मो धर्य ( २ )— वे सब इस-क्षण वाणीसे हम दूर करते हैं।

३. देवस्या सविता सुदयतु ( ३ )— सविता तुम्हें सुलभणी करे।

( कां. ६; घ. १२९ )

१. समानं हृदयं कृधि ( १ )— हमारे मन एक समान हों।

( कां. ७; घ. १६ )

१. विभ्येदेया। एनं अनुमन्तु ( १ )— सब देवता वसुधा समर्पण करें।

( कां. ६; घ. १३३ )

१. देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योपधे। तां स्या नितसि केरोभ्यो दंष्ट्रणाय क्षमासि ( १ )— देवी देवि ! मैं दिव्य गुणोंसे युक्त होकर पृथिवी पर उतरी है, हे तमोनिवर कैलनेवासी ओपधे। वस्त्रोंको बलवान् और सुख करनेके लिए मैं तुम्हें छोड़ता हूँ।

( कां. ६; घ. १३७ )

१. केशाः नडाः इयं वर्धस्तां शीर्ष्णाः ते अक्षिताः परि ( २-३ )— धीरे सिरपर नाख घासके समान बँडे, वे कभी सकेद न हो, हमेशा काँके ही रहे।

( कां. ६; घ. ५९ )

१. प्रथमं धर्मं यच्छ ( १ )— पहले सुख दे।

( कां. ९; घ. ७८ )

१. राष्ट्रेण अभिवर्धता सहस्रयचसा रथ्या पयसा अभिवर्धता ( २ )— ये दोनों दम्पतीराष्ट्रकी शक्तिसे बढ़ें, व हमारी लेख, देवर्ष और वृष आदिसे भी सम्पन्न हों।

( कां. ९; घ. ३५ )

१. इदं राष्ट्रं सोमगाय विमुदि ( १ )— हम राष्ट्रको सुख, समृद्धि और देवर्ष होनेसे भर दें।

२. प्रजा मा भविभूत् ( २ )— सन्तान मातापिताका कभी विरसकार न करे।

( कां. ४; घ. ३८ )

१. स्यंस्य रदमीन् अनुया। संघयन्ति मयीषिवां

या अनुसंघयन्ति ( ५ )— शर्तस्त्रिणोमे—प्रकाम और ममीं— अनुसंघयाने प्रमोसे फिरें।

२. कर्त्तुं यत्तुं इदं रक्ष पाजिन् ( ६ )— कर्त्तुं-शक्तिसे युक्त पुत्रीकी दृष्टि अनुरूप रक्षा कर।

( कां. ५; घ. १७ )

१. ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा ( ६ )— ब्राह्मण की भगाई गई स्त्री बड़ी भयकर होती है।

( कां. ९; घ. २ )

१. सपत्न्यमं व्रणमं कामं हविषा दित्तामि ( १ )— वस्तुका नाश करनेवाले कामको मैं यज्ञ द्वारा निक्षिप्त करता हूँ।

२. दुरितं अप्रजस्तां भयमतां अवर्तिं सुघ ( २ )— पाप, सम्पन्न न होना, विध्वंसता और विपत्ति इसको दूर कर।

३. सा धेनुः दुहिता उच्यते या कपपो वाध बाटुः ( ५ )— वाध कपपोके समान है, वसुधा क्षानी वर्णन करते हैं।

४. सर्वं देवाः मम इयं हव्यं आयन्तु ( ७ )— सब देव मेरे हवनमें वारें।

५. उग्रः याजी कामः मम अभ्यस्त महं भस्- यन्तः ह्येषो ( ७ )— प्रतापी बलवान् काम मेरा मज्जता है, वह मुझे सन्तुष्टोंसे युक्त करे।

६. महं भस्वन्तं एष कृषन्तः ( ८ )— तुम्हें शत्रु रहित करे।

७. अवर्धन्तु कामो मम ये सपत्न्याः। उरुं लोकम- कर्तुं महामेषतु। महं तमस्तां प्रदिशाध्वतजो, महं यदुर्वीर्णतमा यन्तु ( ११ )— सकल शत्रुओंका नाश करवा दे, सकल वृद्धि करनेके लिए कार्यक्षेत्र है सकलक क्षात्र चक्षो दिशार्थ अनुपक के आगे मुक्तरी हैं और सकल के कलम ही सब जोसे पूत आदि उपभोगों परार्थ मिलते हैं।

८. यत्ते काम धर्मं विवर्धय उद्भु महाधर्मं वितत अन्तर्ध्याय्यं कृतम् ( १६ )— हे सकल ! जो तेरा धर्मो जोसे रक्षक उद्भुत शक्तिवला, पैदा हुआ ज्ञानका करण, जलसे न वेधने योग्य और सुखदायक स्थान है, उसमें हमें स्थापित कर।

९. कामो जने प्रथमो नैनं देवाः आपु पितरो न मर्याः, सप्त त्वमसि ज्यायान् विभ्रहा महान्,



( १९ )- सवसे पहले काम उत्पन्न हुआ इसलिये उसे देव, पितर और मनुष्य वा नहीं सके । इसलिये काम सवको भेषा श्रेष्ठ और समर्थ है ।

२०. यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः यामिः सत्यं भवति, यद्वृणापे तामिद्रुमसौं ध्वनिं संविश स्वाव्यत्र पापीरपयेसाया धियः ( १५ )- कामसे सुख और कल्याण-कारक भाग है, जिसके कारण सच सत्यकी सिद्धि होती है, वह सुख भाग मुझे प्राप्त हो और पापका भाग दूर हो ।

( फां. ३; घ. २१ )

१. यो देवो विभ्यान् यं व कामं आहुः ( ४ )- जो भक्ति सब जगत्को रहनेवाला है और जिसको ' काम ' के नामसे पहचाना जाता है ।

२. यास्ते अग्निः कव्यत् ज्ञान्तः, दुर्वरेदयः शोधो यो विभ्वाव्यस्ते मय्याश्मदीशामम् ( १ )- यह मांसभक्षक कामरूप भक्ति ज्ञान्त हो गया है । यह मनुष्यका नाश करनेवाला कामरूप भक्ति ज्ञान्त हो गया है । यह स्वयंको ज्ञानेबद्धता अग्नि है, उसे मैंने ज्ञान्त किया है ।

( फां. ३; घ. २२ )

१. मृधु निमन्युः केवली प्रियवादिनी अनुग्रहा भक्तुं चित्तं उपायसि कर्तुं भक्तः ( ११ )- धर्मकरी शासन, कोष न करनेवाली, पतिव्रता, मोटा सोलनेवाली, पतिरी लहायवा करनेवाली, उसके विरुद्ध कुछ भी न करने वाली और पतिसे ही सब लक्षण रखनेवाली हो ।

( फां. ३; घ. २३ )

१. आ वीरो जायतां पुनस्ते दशमास्यः ( २ )- तेरा पुत्र दसवें महीने जन्मे और और हो ।

२. विन्दस्व पुंर्य नारि यः तुभ्यं दी अस्तु दी उ तस्मै रय भव ( ५ )- दे की । इस प्रकार दू पुत्रोंको प्राप्त कर । यह पुत्र तुझे सुखदायक हो और दू भी उम पुत्रको सुख दे ।

( फां. ८; घ. ६ )

१. सूर्यः क्षान् ( रोगपीजानि ) अनीवशात् ( ८ )- जो रोगपीज हैं, उनका नाश सूर्य करता है ।

२. ये सूर्यं न तितिक्षन्ते ( क्षान् ) क्षान्तायामसि ( १२ )- जो सूर्य प्रहास सहन नहीं कर सकते, उनका मैं नाश करता हूँ ।

३. तं पिपाः इन्द्रयाविषं रुणोतु ( १८ )- उनका विग्नवर्ण सूर्य दूरकरे दीव की ।

( फां. ६; घ. ११ )

१. दामिं अध्याथ आरुहः तत्र पुंर्यवत् कृतम् । तद् वै पुत्रस्य वेदनम् ( १ )- पत्नीभूतपर पत्नी दीपक उगता है, वही पुत्रप्राप्तिसे औपची होती है, पुत्रप्राप्ति का वह उत्तम साधन है ।

२. सौप्यमन्यत्र द्रष्टुं पुमांसं व दधत् दह ( २ )- कन्या उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो, वही इस बातसे पुत्रका ही जन्म हो ।

( फां. ६; घ. ११० )

१. ( मग्ने ) विभ्वा दुरितानि यमं अति नेपत् ( २ )- हे मग्ने ! तू सब दुःखोंसे बसकी ( मेरी ) रक्षा कर ।

२. नक्षत्र-जा जायमाना सुवीरः स यर्धमातः पितरं मा यर्धीत्, जनिनीं मातरं च मा प्रमिनीत् ( १ )- उनका नक्षत्रमें जन्मा हुआ यह बालक उत्तम वीर हो और मातापिताको दुःख न दे, न मारे ।

( फां. ७; घ. ८१ )

१. एतौ शिष्यः कीदृन्तौ मायया पूर्वापरं श्रतः मर्त्ये परिपतः अन्यः विभ्वा भुपमानि विष्टे, अन्यः क्षान् पिदपत् नवः जायसे ( १ )- ये दो बालक ( स्वर्ग और परम ) देखते देखते अपनी शक्तिसे समुद्र-रूप चहुँपके हैं, उनमें एक सब सुखोंको प्रकाशित करता है और दूसरा अनुभोंका विनाश करते हुए रोग नया होता है ।

२. जायमानः मयः नवः भवति ( १ )- प्रकट होते हुए दू हमेशा नया ही प्रतीत होता है ।

३. अग्नां केतुः उपसां अग्ने एपि ( १ )- दिवसे सूचक सूर्यके क्षामनकी सूचना देनेवाली उपाके भी पहले दू जाता है ।

४. चन्द्रमः दीर्घं माधुः प्रतिरसे ( १ )- चन्द्रमा चायु दीर्घ करता है ।

५. मा प्रजया घनेन च अनूतं रुधि ( १ )- मुझे प्रजा और धनसे परिपूर्ण कर ।

६. योऽस्मान् द्वेष्टि यं च यथं द्विपाः तस्य माणेष आभ्यायस्व ( ५ )- जो हुए इससे द्वेष करते हैं और जिससे डर द्वेष करते हैं, उनके माणसे दू हत हो ।

७. देवाः जंतुं आप्यायन्ति धाशितः अशितं भक्षयन्ति ( १ )- देव सोमको दह करते हैं फिर उसको खाकर बचते हैं ।

( कां. ६; सू. १३३ )

१. यस्य प्रशिक्षा चरात्मः, स पात्रं दुच्छात् सः नः विमुञ्चतु ( १ )— जिस गुरुज भातीर्वादिसे हम कर्म करते हैं, वह हमें दुःख और बंधनसे मुक्त करे ।

२. वीरघ्नी भव मेखले ( २ )— हे मेखले ! तू कतु भोंकी मारनेवाली हो ।

३. अहं मृत्योः ग्रहाचारी आस्मि ( ३ )— मैं मृत्युको समर्पित हुआ हूँ ग्रहाचारी हूँ ।

४. भूतान् यमाय पुनये निर्याचतु ( ४ )— जन्मवांसे बाधसे लिपु एक दुष्टकी बाधना करना हूँ ।

५. मेखलेया ग्रहाया तपसा भ्रमेण ( ५ )— मेखला बोवनेसे ज्ञान, तप जर्पात् शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति परीक्षम करनेके लिपु बल मिश्रता है और दीर्घायु भी मिश्रणी है ।

६. यां त्वा पूर्वं भूतकृतः क्षपयः परियेधिरै । सा ख्य परियवहस्य मां दीर्घायुवाय मेखले ( ६ )— हे मेखले ! तुम प्राचीन कालमें पराक्रम करनेवाले ऋषिकोसे बोधी श्री । इसलिपु मुझे दीर्घायुवाय करनेके लिपु मेरे शरीरसे विमोही रह ।

( कां. ६; सू. १२० )

१. मयं गार्हपत्यः भग्निः तस्मात् इत् रुकृतस्य लोकं उपव्यासि ( १ )— यह हमारा गार्हपत्य घरमें सुस्थित भग्नि हमें इस प्राणसे मुक्त करने कुम्परोकमें पहुँचाता है ।

( कां. ७; सू. १७ )

१. ईशासः जगताः पतिः सा रयिं दधातु ( १ )— गणपत्या स्वामी ईश्वर हमें धन देवे ।

२. तस्यै अमृतं संस्पयन्तु ( २ )— उनसे लिपु अमृत का पान करो ।

( कां. ८; सू. १२ )

१. महते सौभाग्य उच्छपस्य ( २ )— महान् सुखमगली प्राप्तिके लिपु यह घर छोडा हो ।

२. धेनवः आ स्पन्दमानाः साय जा ( ३ )— संख्या काक राधे माधवी दुर्द भावें ।

३. इमां शालां सयिता पासुरिन्द्रो गृहस्थतिः निधि मोतु प्रजानन् । उक्षन्तुद्रा मरतो घृतेन मयों उ राजा नि कृषिं तनोतु ( ४ )— सुर्व, बायु, इन्द्र गृहस्थति इस वामे मद्रद-कर, मरत नामका मानमूल पानीसे सदा-पना करे और भागाजा सेतीक कामसे सदापता करे ।

४. अस्मभ्यं सह्यारिः रयि वाः ( ५ )— हमे वीरता पुक्त मन हो ।

५. शरणा स्योना देवी ( शाला ) देवोभिर्मिमिता अग्नि अग्रे वृष वसाना सुमनाः ( ५ )— अमर शरण सेनेखोव सुमदायक धामपुसने क्षण, पर उत्तम विचारोंसे युक्त दिग्ध घर प्रत्यभमे देवोंने तैय्यार दिया ।

६. ( शाला ) मानस्य पत्नी ( ५ )— गृहस्थति लिपु बचन सम्मानका कारण होता है ।

७. दन्तं जीवेम शरदः सर्ववीराः ( ६ )— सब प्रकारके वीर धर्मकी रक्षा करनेके लिपु तैय्यार रहनेवाले वीर होकर सौ धर्मक जीव ।

८. पूर्वं नारि प्रभर कुम्भमेतं पृथस्य धाराममृ- तेन संमृताम् । इमान् पतन् अमृतेना समदः धीष्ठा- पूर्वमभि रक्षात्येनाम् ( ८ )— गृहस्थनी महिलायोंको पौसनेके लिपु चौक घडा लावे, मरत मधुरासने भाग हुआ बडा रहते और वीरगलोंको मधेय विगावे, सब प्रकार मद्रदानसे परका संरक्षण होता है ।

९. अयह्मा यदमनाशानीः आपः ( ९ )— शिरोनी और रोग दूर करनेवाले पानीसे मेरे रूप घने घरमें रहे धार् ।

१०. गृहान् उप प्रसीदामि ( १० )— मैं परिश्रम करके घरको प्रगत और समधीय सान बनाऊँगा ।

( कां. ९; सू. ३ )

१. दाते देवि ! त्वं देवानां सदा अग्नि ( १ )— हे गृहस्थी देवते ! तू देवताओंका स्वाग है ।

२. मानस्य पत्नी उज्जिता ( शाला ) नः तन्ने विधा भय ( २ )— मानसे बोधा गया कंचा पर हमारे शरीरके लिपु सुखसपक हो ।

३. यः रया प्रतिगृह्णाति येन खं मिना आसि तां प्रदृष्टी जीवताम् ( ३ )— परमेश्वरवाले और उस धरकी माधसे बांधनेवाले दोनो वृद्धारत्नाक जीवित रहे ।

४. पत्येष्टी प्रजापतिः रया प्रजायि भक्ते ( ४ )— परमेश्वरी प्रजापतिने तुम प्रजाके लिपु बनावा है ।

५. अग्निः हन्तव्यपद्यतस्य प्रथमा द्वाः ( ५ )— बलमें अग्नि वीर जब बलद रहें, क्योंकि उनसे हर तरहके यज्ञ होते हैं ।

६. अयह्मा यदमनाशानीः अपः प्रददामि । गृहान् उप प्रसीदामि ( ६ )— मैं परमेश्वर देना उक्त मरता है, कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करनेवाले न होकर रोगोंका निश- रण करनेवाले हो । इसप्रकार मैं बरनी प्रपकता बनाता हूँ ।

( कां. ६; सू. १०६ )

१. आयमे पराधमे पुत्रिण्याः दूयाः रोहन्तु ( १ )— बरने भागे पीठे आयवमें पुत्रोंसे बलसे दूते और पात बः ।

२. तत्र चा उरसः जल्यतां चा पुण्डरीकयान् हृद्भिः  
(१) - उरों पाखीको एक टंकी और बिस्ते हुए कमरोंमें  
युक्त एक छोटा सा तालाब हो।

३ मुखो पराधीना रुधि (२) - घरमें दरवाजे  
परस्पर बिम्ब दिशामें हों।

( कां. ७; सू. ६० )

१ अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा सुमनाः धन्वमानः  
सुहृन् गेमि (१) - शान्त और मित्रकी दृष्टिसे और उत्तम  
मनसे युक्त होकर श्रेष्ठ पुरोहितों का सहकार कर मैं घरमें प्रवेश  
करता हूँ।

२. मयोभुधः कर्जस्वन्तः पयस्वन्तः घामेन पूर्णाः  
तिष्ठन्तः ते नः आयतः जानन्तु (१) - मुखदायक,  
बलदायक, धान्य और दूधसे युक्त मुखसे बढ़ कर भरपूर  
हैं, ऐसा भालेवालोंकी प्रतीति हो।

( कां. ७; सू. ८२ )

१. अस्मान्नु भद्रा द्रुषिषामि धस (१) - हम  
सबमें कल्याणकारक धर्मोंकी स्थापित कर।

२. नः इमं देवता तघत (१) - हमारा यह पत्न  
देवताओंकी पशुषा।

३. अग्रे मयि ह्यग्रेण वर्धन्मा सह अग्निं वृण्मामि  
(२) - प्रथम मैं अपनेमें धान्य, वर्षा-ताने तेज और  
बलसे युक्त अग्निको धारण करता हूँ।

४. उपसत्ताः अनिष्टृतः वर्धतां (१) - ते लोचक  
अहितक होकर वृद्धिकी प्राप्त हो।

( कां. ४; सू. ६१ )

१. गावः भद्रं भनन् (१) गावः भद्रं गृहं वृणुय  
(१) - गाव घरकी कल्याणका काल बनावे।

२. गावः अस्मे रणयन् (१) - गाव हमें रत्नकी  
रक्षाएं।

३. तस्य यजन्तः सर्वस्य उरगायं जमयं ताः गावः  
अनु विचरन्ति (४) - शान्त अनुष्णकी प्रशस्तनीय  
निर्मयतासे गावें घूमती हैं।

४. ना गावः संस्तुतर्षं न अभि उपसन्ति (४) -  
वे गावें मात्र संस्कार करनेवालेके प्राप्त कर्मा नहीं आती।

५. इमाः याः गावः स इन्द्रः (५) - जो गावें हैं,  
वही इन्द्र है।

६. गावः सूर्यं कदां वित् मेदयथ, अधीरं वित्  
सुप्रतीकं वृणुय (१) - शिबेईको वे गावें पुष्ट करती  
हैं, शिबेईको देखी बनाती हैं।

७. गावः सूर्यवसे ग्गन्तीः सुप्रपाणे शुद्धाः अपः  
पिउन्ति (७) - गावें उत्तम प्राप्त खाद और उत्तम जल-  
स्नानमें शुद्ध पानी पियें। इससे गावोंका उत्तम पावन  
होता है।

( कां. १२; सू. ४ )

१. ददामि इति धूयात् (१) - मैं दान देता हूँ,  
युष्माकं यजमान कहें।

२. तत् प्रज्ञावत् अपत्यवत् (१) - वह दान प्रज्ञा  
और सन्तान देनेवाला है।

३. जायमाना बशः स प्राज्ञानां देवान् अभि जायते  
(१०) - उत्तम होनेके साथ ही गाव माझणों और देवोंकी  
हो जाती हैं।

४. अथैनां देवाः अनुबभूव ह विवृषो घरा (२२) -  
गावका राज देवका विद्वान् माझणको ही दिया जाय, ऐसा  
देवोंने कहा है।

५. वशा राजग्यस्य माता (३३) - गाव हविषोंकी  
माता है।

( कां. ५; सू. १८ )

१. ते देवाः एतां तुभ्यं अक्षये न भवतुः (१) -  
वेदेोंने यह गाव तुझे क्षायेके लिए नहीं दी हैं।

२. प्राज्ञणस्य अवायां गां मा जिघरसः (१) -  
प्राज्ञणकी गाव खाने लोभ नहीं है।

( कां. १०; सू. ९ )

१. दात्रे आमिषां क्षीरं सर्पिः मयो मधु दुहतां  
(११) - दाताको यहीं दही, दूध, घी और साद देवे।

२. होता अग्निः सुहृत् वृणोतु (२९) - होता  
अग्निको उत्तम आहुतिर्षा दाले।

३. सयं रयीणां पतयः स्वाम (२०) - इन सब धन  
के माली हों।

( कां. ९; सू. ४ )

१. साहस्ररूपेणः श्रवभः पयस्यान् (१) - हजारों  
रूपियोंमें युक्त ऐसा बड़ बैल देनेवाला है।

२. वध्नणान्नु विभ्या रूपानि विभ्रत् (१) - नदी  
क निर्मा बड़ बैल गावने विविध रूप धारण करता है।

३. उखियाः तन्तुं वातान् (१) - अपने प्रजा तन्तुओं  
को पैदाता है।

४. दात्रे भद्रं शिञ्जन् (१) - दाताका कल्याण  
करवा है।

५. अर्जं यो भग्रे प्रतिमा वभूयः प्रभुः सर्वस्यै  
पृथिवीय देवी (२) - बैलकी उपमा मेघके साथ है।

वह सबका प्रभु है और पृथ्वी देवीके सवाग सबका उपकारक है।

६. साहज्ये पोषे अथि नः कृणोतु (२)-हजारों प्रकारकी पुष्टि वह हमें देवे।

७ सोमेन पूर्ण कलशं विभर्षि (१)-सोमरससे भरा हुआ कलश वह धारण करता है।

८ इन्द्रस्य रूपं वसानः (०)-इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।

९. आज्यं विभर्षि पुनस्तस्य रेतः साहज्यः पोषः तमु पशमाहुः (०)-वी धारण करनेवाला, पीर्यका स्थान और हजारों तरहकी पुष्टि देनेवाला, कहा जाता है।

१०. साहज्यं स परमुखा ददाति यो ब्राह्मणः क्षपभमाहुहोति (१)- जो ब्राह्मणको बैल देता है वह उसके रूपसे हजारों दान करता है।

११. शिपयति यिध्ये तं देवाः यो ब्राह्मणः क्षपभमाहुहोति (१८)- जो ब्राह्मणको बैलका दान देता है, उसके सब देव समुद्र होते हैं।

१२. ब्राह्मणेभ्यः क्षपभं दत्वा घरीयः कृणुते ममः (१९)- ब्राह्मणको बैल दान करनेवालेका, मम भेद होता है।

१३. तत्सपथं अनुमन्वतां देवा क्षपभदायिने (२०)- जो बैलका दान करता है, उसके सब समुद्र होते हैं।

(कां. ३; सू. १४)

१. यत्-अर्हजातस्य माम तेन यः ससृजामासि (१)-दिनभरने जो अर्हवस्तु प्राप्त होती है, उसे तुम्हारे किए सब छोड़ता है।

(कां. ७, सू. ७५)

१. स्तेनः यः मा ईशत मा अपशंसः (१)-चोर तुम्हारे ऊपर अधिकार न करता, कोई शक्ति भी तुमपर शासन न करे।

(कां. ७; सू. १०४)

१. यथावशं तन्यः का=प्रजापति कल्पयाति (१)-इच्छानुसार शरीरके विषयमें प्रजापति कहने वाला समर्थ हो।

(कां. ६; सू. १४१)

१. त्वया पोषाय श्रियतां (१)-तुम्हारा पुष्टि करे।

२. यद्रः भूमे चिकित्सतु (१)-रुग् वृद्धिने चिकित्सा करे।

३. यथा सहस्रपोषाय नमः, कृणुते (२)-इत प्रभु हजरो तरहकी पुष्टि किए बिना करे।

(कां. ६; सू. ७०)

१. यथा वृषण्यत पुंसः मनः त्रियां निहन्पते (१)-जि प्रकार बलवान् पुरुषका मन खीमे रमता है।

(कां. ९; सू. २६)

१. येना सहचारं घायुः जुजोष (१)-बापु जिसके सङ्गाममें रहता है।

२. ये पञ्चव पग ईयुः ते इह आयन्तु (१)-जो पशु चार पिरने गये हो, वे यहाँ वापस लाए जायें।

३. त्वया कर्णं रूपधेयानि देव (१)-कुशल शक्ति पर पशुकोका भावना जनता है।

४. सविता अस्मिन् गोष्ठे ताम् नियच्छतु (१)-देवता कलेशा उन्हे बीमारतामें निपटने रथे।

५. बृहस्पतिः प्रजान् आनयतु (१)-सब पशुओंको बह्मणदेवता उन्हे बोले इकट्ठा करे।

६. सिर्नायाली एषां ममं आनयतु (२)-उन पशुओंको दानपात्री देनेवाली स्त्री उनके नामे लहे।

७. अनुमते मातृगुपः नियच्छ (१)-मनुष्य कार्य करनेवाली स्त्री उनके साथ लहे।

८. पशवः अथ्याः उ पूरुणाः सं खयन्तु (१)-पशु, घोड़े, मनुष्य सब मिल मिलकर रहें।

९. ससिका. अस्माकं घीराः (४)-अपने बन्धो-को हम उनके रूपसे पारके है।

(कां. ७; सू. ७३)

१. तसि घर्म विरते (४)-गायका दूध गर्म करके लिये।

२. तनाया उत्रियायाः मघो दुग्धस्य पयस। यीत पय (५)-दूधदूध गायका मधुर दूध प्राप्त करी और लिये।

३. सुहस्तः गोधुक्पूर्णां दोहन् (०)-मण्डे हाथों-वाला खाला गायको दुधे।

४. गोधुक् पयसा उपद्रव, उत्रियायाः पयः घर्मं सिव (१)-गायको दुध कर खाला बीज बोने और उस दूधको मजि पर गर्म करे।

५. सा महते सौभगाय वर्षतां (८)-पात्री दुध गाय अपने स्वामीका सौभाग्य बढ़ावे।

६. विभवादां तृणं अदि (११)-गाय हमेशा चाम ही खाती है।

( कां. ९; सू. ५ )

१. सुकृतां लोकं गच्छतु प्रजानम् ( १ )-यह मार्ग जानकर पुण्यशालियों के लोकों को प्राप्त कर ।

२. तीर्थां तमांसि अजः तृतीयं नाकं आक्रमताम् ( १, ३ )-अश्वमा अश्वकारको दूर करके तिसरे स्वर्ग-मांसको प्राप्त हो ।

३. एषं अजय, आरभस्व, प्रजानम् सुकृतां लोकं गच्छतु ( १ )-उसको उत्तम मार्गसे चलाओ, शुभ कार्य-का शारंग करो, उद्यतिका मार्ग जानकर पुण्यलोक प्राप्त करो ।

४. एवा इन्द्राय धामं परिमयासि ( २ )-मैं तुझे इन्द्रका भाग समझकर अर्पण करता हूँ ।

५. अज विषद्वन् तमांसि बहुधा तीर्थां ( ३ )-अश्वमा उस अश्वकारको अनेक प्रकारसे बार-बार जाता है ।

६. यत् दुर्धरितं चचार, पदः प्र शफनेनिगिच, प्रजानम् शुद्धैः शकैः आक्रमताम् ( ३ )-जो दुराचार होगया है और जिससे पैर मलिन होगया है, उन पैंतोंको पोंकर शुद्ध और पवित्र पैंतोंसे जागे जा ।

७. तृतीये नाके अपि विषयिनाम् ( ४ )-परिपक्व होकर पुण्यवात् लोकोंमें जा ।

८. शूतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ( ५ )-परिपक्व होकर तत्काल करनेवासीके स्वर्गमें ।

९. तृतीये नाके अपि विषयस्य ( ६ )-तीसरे स्वर्ग धामका आश्रय के ।

१०. अग्नेः शशिः मे यभुविध ( ६ )-अग्निसे शशि वरपत्र दुई है ।

११. अजो अग्निः उ ज्योतिः आहुः अजः तमांसि अपहन्ति ( ६ )-मणिका नाम अज है, ज्योतिका नाम अज है, यह अश्व अश्वकारको दूर करता है ।

१२. अजः तमांसि अपहन्ति ( ७, ११ )-अश्वमा अश्वकारको दूर करता है ।

१३. जीयता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः ( ७ )-जीयत मनुष्य अपना आत्मसमर्थन ब्रह्मण्यको करवा उपास सम-रणा है ।

१४. अर्धधानेन दत्ता अजः तमांसि अपहन्ति ( ७ )-अर्धपूर्वक समर्पित हुई हुई अश्वमा सब प्रकारके शत्रुओंको हरा देता है ।

१५. पंचौदनः पंचधा विषमताम् ( ८ )-अश्वमा आत्मा पांच प्रकारके क्षेत्रोंमें पराक्रम करे ।

१६. त्रीणि ज्योतीषि आक्रमस्थमानः ( ८ )-तीन वेदोंको प्राप्त करता है ।

१७. पंचौदनः ब्रह्मणे दीयमानः ( ९, १० )-अश्वमाको ब्रह्मण्य ज्ञानोंके लिए समर्पण करना उत्तम है ।

१८. पंचौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति ( ११, १२ )-अश्वमाको ब्रह्मणे लिए समर्पित किया जाता है ।

१९. अजः हि अग्नेः शाकात् विद्यः अजमिह ( १३ ) अग्निसे घृतो अज उत्पन्न हुआ । ज्ञानोंके महासाग से आनी विद्वान् उत्पन्न होता है ।

२०. अजोऽसि अज स्वर्गोऽसि ( १६ )-तू अश्व-रहित है, तू स्वर्ग स्वर्ग है ।

२१. अजः पयसः स्वर्गे लोके दधाति, निर्मलं वाधमलः ( १८ )-यह अश्वमा आत्मा परिवर्तित होकर अश्वमतिके दूर करके स्वर्ग जाता है ।

२२. यं ब्रह्मणे निदधे ( १९ )-जो ब्रह्मको सम-र्पित करनेके लिए निमित्त किया है ।

२३. अजो वा इदमग्ने व्यक्रमत ( २० )-तू अश्वमा अश्वमके लक्ष्मणसे पराक्रम करता है ।

२४. एष वा अपरिमितो यज्ञः यदजः पंचौदनः ( २१ )-पंचौदन यज्ञ अपरिमित है ।

२५. अपरिमितं यज्ञं आप्नोति अपरिमिते कान्ते अवरन्ध्रे ( २२ )-आत्माके समर्पणसे अपरिमित लोक प्राप्त होता है ।

२६. नैदाघं, कुर्वन्तं, संपतं, पिपन्तं, उद्यन्तं, अभिभुवं नाम कर्तुं येदग्निं भावते धामना भवति ( २३-२६ )-उपपत्ता कर्तव्य, मयस, पोषण, उद्यम और सयुज्य ये आत्माके कर्तु हैं । जो इन कर्तुओंमें काम लेना जानता है, वह भी प्राप्त करता है और आत्माकी दक्षिसे लुक होता है ।

( कां. ७; सू. १९ )

१. प्रजापतिः इमाः प्रजाः जययति ( १ )-प्रजा-पातक परमेश्वर सब प्राणियोंको जयप करता है ।

( कां. ७; सू. १८ )

१. दिव्यस्य उहः दति विष्य ( १ )-दिव्य अस्त्रसे भरे हुए बल्लेन सोलकर पत ।

२. जीरादानुः पृथिवीं प्रजभनां ( २ )-अज क्षेत्रोंकी उपपत्ता बनावट आत्मा ।

( कां. ७; सू. ७२ )

१. सूरः अमृतः मर्त्यं विजगाम आते हविः सुप्र-  
पाहि ( १ )- सूर्य मरणादप्ये बहुष वावा है, मरु मर-  
पकाय मरुको खाओ ।

२. माध्यंदिनस्य क्षणः पिव ( १ )- दोपहरके  
भोजनके पाय रही खावें ।

( कां. ६; सू. ११७ )

१. अनुणाः अस्मिन् अनुणाः परस्मिन् तृतीये लोके  
अनुणाः रूपम् । ये देवयानाः पितृयानाश्च लोकः  
सर्गोत्तरयो अनुणा आक्षिप्येम् ( १ )- इस लोक और  
परलोकमें हम अनुजी हों, तीसरे लोकमें भी हम कण्वहित  
हों । जो देवयान और पितृयानमार्ग हैं, उनमें भी हम कण्व-  
हित होकर रहें ।

( कां. ७; सू. २३ )

१. दौष्यन्त्यं दौर्जीचित्यं रक्षो अर्थ्य अराध्याः  
दुर्गाम्नीः सर्वाः दुर्घायाः ता अस्मभ्यांशयामसि ( १ )-  
[ १ ] काम, दुःखमय जीवन शत्रुओंका भय, पीडा, उन्नतिमें  
रक्षावर्द्धे निर्धनता, बुरे हान्य योद्धेका लक्षण ये सब विप-  
त्तिर्वा हमसे दूर हों ।

( कां. ६; सू. १२९ )

१. अरातयः अपव्राण्णु ( १, २, ३ )- छुज भाग जावें ।

( कां. ७; सू. ३१ )

१. यो नो द्रष्टि अघटाः सस्पदीष्ट यं उ क्षिप्सः तं  
ए प्राणो जहातु ( १ )- जो भरोछा ही हम सबसे द्वेष  
करवा है, वह नीचे गिरे, वही प्रकार जिस चक्रेसे हम लगी  
द्वेष करते हैं, उसे डारके प्राण छोड़कर चले जायें ।

( कां. ६; सू. ४५ )

१. गृहेषु गोपु मनः ( १ )- गृहस्थका मन अपने और  
गाय आदि पशुओंमें रमना चाहिये ।

२. मनस्पाप परा अपेहि किं अशस्तानि शंससि,  
परोहि न त्वा कामये ( १ )- हे पापी विचार ! बुरे जा,  
कुसे तू बुरी बातें सिलसला है, दूर जाऊ जा, मैं तुझे  
वही चाहता ।

३. यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम ( १ )- जो  
जाग्रतस्वप्ना वा सज्जाग्रतस्वप्नमें हम करते हैं ।

४. सृषा चरामसि ( १ )- यदि मलमलम्वद्वार हम  
करेंगे तो उसका परिणाम बुरा होगा ।

( कां. ७; सू. १०० )

१. अहं अन्तरं ब्राह्म कृण्वे ( १ )- मैं ज्ञानको अपने  
हृदयमें रखता हूँ ।

-( कां. ७; सू. १०१ )

१. तत् सर्वे मे शिवं अस्तु ( १ )- वह सब मेरे  
लिए शुभ हो ।

( कां. ९; सू. १ )

१. सर्वाः प्रजाः ह्यग्निः प्रतियमन्ति ( १ )- सब  
लोक हृदयसे आगन्धित होते हैं ।

२. मर्त्येषु महान् भर्गः चरति ( ४ )- मर्गोंमें महान्  
तेज ही संभार करता है ।

३. यो अस्याः सत्त्वधातौ अक्षितौ सप्तौ अन-  
पस्तुरन्तौ ऊर्ध्वं दुहाते ( ४ )- जो उसके सहस्र धार  
पुनः भस्मपतन हैं, वे अक्षितकित होकर बरनाद उसका  
दोहन करता है ।

४. एषा मे यर्चः तेजः यच्छं भोजः य ध्रियतां  
( १० )- मेरा तेज, ज्ञान, बल और पीढ़े संघित हो,  
बढ़ता रहे ।

( कां. ५; सू. १८ )

१. यत्र ब्राह्मणं हिसन्ति, तत् राष्ट्रं दुष्पुत्रा हन्ति  
( ४ )- जहाँ ब्राह्मणको दुःख दिया जाता है, वह राष्ट्र  
विपत्तिमें फँसता है ।

२. ब्राह्मणस्य यो जग्ध्वा कश्चन राष्ट्रं न जगार  
( १० )- ब्राह्मणकी गाव खाकर कोई राष्ट्रमें शक्ति नहीं  
रह सकता ।

३. कर्षं ब्राह्मण्य न अभिचरन्ति ( १५ )- ब्राह्मणको  
कष्ट देनेवाले या वृष्टि नहीं होती ।

४. न मिथं यशः नयते ( १५ )- मित्र भी उसके  
यशमें नहीं रहते ।

# अथर्ववेद- [ भाग तीसरा ]

‘ गृह स्था श्रम ’

काण्ड-सूक्त-विषय-मंत्रसंख्या-ऋषि-देवताओंकी

## अनुक्रमणिका

काण्ड	सूक्त	विषय	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	पृ.
६	१११	१ अथिम गृहस्थाश्रम	५	सुगु	विष्णुकर्मा	११
१	१४	२ कुलवधू-सूक्त	४	सुमन्त्रिराः	वह्नी नमो वा	११
६	८१	३ अगस्त्ये त्रिवे वर	३	भगः	इन्द्रा	१०
२	१६	४ विशादका मंगल कार्य	८	पतिदेवः	अग्निवैभो	१८
३	१०	५ विशाद	३	अथर्व	अर्यमा	२१
१४	१	६ विशाद-प्रकरण	६४	सूर्यवशिषी	अर्यमा	१४
१४	२	७ विशाद-प्रकरण	७५	सूर्यवशिषी	अर्यमा	१७
२	३०	८ अति और बलीका मेम	५	प्रजापतिः	अग्नि	७१
६	८	९ अगस्त्यका वरद्वार मेम	३	अथर्व	वामदेवता	४८
६	९	१० अगस्त्यका वरद्वार मेम	३	अथर्व	वामदेवता	७८
७	११	११ अतिवर्तीका अर्यमा मेम	१	अथर्व	अग्नि	७९
७	१८	१२ अतिवर्तीका सुवर्त	५	अथर्व	वन्दवतिः	८०
६	७३	१३ एक विशादके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता, माया देवता	८१
६	८२	१४ वरद्वार मेम	३	अथर्व	वदः, मन्त्रोक्तः	८१
६	१०१	१५ वरद्वार मेम	३	अथर्व	अग्नि	८२
१०	१	१६ अथर्वनामक अथर्व	२२	अथर्व	वामदेवता, वन्दवति, वन्दमा	८३
७	१७	१७ वानी पतिके त्रिवे वरद्वार	१	अथर्व	वदः	८७
१	२६	१८ वरद्वारके दिवा	६	अथर्व	अग्नि	८७
६	७४	१९ वामदेवता	३	अथर्व	वामदेवता, वानादेवता, त्रिपदा	८८
१	१८	२० वामदेवता-वर्धन-सूक्त	४	अग्निवैभो	वैश्वदेव वामदेवता	८९
६	१२९	२१ वामदेवता-वर्धन	५	अथर्व	वामदेवता	९२
७	१३	२२ वामदेवताके त्रिवे वरद्वार	१	सुगु	अग्नि	९३
८	१४०	२३ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता, वन्दवति, वन्दमा	९३
६	१३१	२४ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९४
६	१३२	२५ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९५
६	१३३	२६ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९५
६	५९	२७ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९६
६	७२	२८ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९७
६	७८	२९ वरद्वारके वरद्वार	३	अथर्व	वामदेवता	९७

क्र.सं.	सू.	अ. विवरण	मंत्रसंख्या	प्रति	वेद्यता	पृष्ठ
७	३५	३० श्री-विस्तार	३	अथर्व	वास्तवेद्य	९८
८	३८	३१ उत्तम महिनी का	७	अथर्वमणि	अथर्वमणि, अथर्वमः	९९
५	१७	३२ कावे पातिमलकी रखा	१८	मयोमू	मन्त्रावध	१०४
९	९	३३ नाम	२५	अथर्व	अथर्व	१०९
३	२१	३४ नामाभिध नामन	१०	वशिष्ठ	अभिध	११३
३	२५	३५ नामका भाष	६	सुगु	मिनावली, कमेयुः	११४
३	२३	३६ नीर पुत्रकी उत्पत्ति	६	मन्त्रा	अथर्वमणि, वेदि, वातावृत्ति	१२८
५	३५	३७ गर्भवर्णा	१३	मन्त्र	वेदिनिर्गम पुष्टिमाद्यो देवता	१३०
६	१७	३८ गर्भवर्णा	६	अथर्व	मर्मद्वयम्, पुष्टिमा	१३९
८	६	३९ गर्भवर्णा-विशरण	२६	वातुवर्णा	वेद्योक्तः	१३९
६	११	४० सुचरक	२	प्रमाणति	वेत्ता, मन्त्रोक्तदेवता	१४२
१	११	४१ सुच-प्रमाण सुच	६	अथर्व	पुष्टिमाद्यो, वातावृत्ति	१४३
१	१७	४२ रक्तप्राय वद करना	८	मन्त्र	वेदिनि अथर्वमणि	१४७
६	३४	४३ रक्तप्राय वद करनेकी औषधि	३	विश्वामित्रः	वनस्पति	१४८
६	११०	४४ नवत्रय नामन	३	अथर्व	अभिध	१४९
७	१११	४५ सप्तमका सुच	१	मन्त्रा	अथर्व	१५०
७	८१	४६ चरके यो सप्तक	६	अथर्व	अथर्व	१५०
६	६८	४७ सुचन	६	अथर्व	अथर्व	१५४
६	१३३	४८ मेखला नामन	५	अथर्व	वेद्यता	१५४
६	१३०	४९ कामकी काष्ठ मेखो	८	अथर्व	वेद्यता	१५४
६	१३१	५० कामकी काष्ठ मेखो	३	अथर्व	वेद्यता	१५४
६	१३३	५१ कामकी काष्ठ मेखो	५	अथर्व	वेद्यता	१५४
६	८१	५२ ककमल नामन	३	अथर्व	वेद्यता	१५४
६	१२०	५३ माताविद्याकी सेवा करो	३	वेद्यता	वेद्यता	१५४
७	१७	५४ वन और वृक्षकी आर्चना	८	मन्त्र	वेद्यता	१५४
३	१९	५५ गृहनिर्माण	९	मन्त्र	वेद्यता	१५५
६	३	५६ गृहनिर्माण	३१	अथर्व	वेद्यता	१५५
६	१०६	५७ चरक की भाषा	३	अथर्व	वेद्यता	१५५
७	६०	५८ रक्तप्राय वद	७	मन्त्र	वेद्यता	१५५
७	८१	५९ नाम	६	वेद्यता (अथर्वमणि)	वेद्यता	१५५
४	३१	६० नाम	७	मन्त्र	वेद्यता	१५५
१२	४	६१ नाम	५३	अथर्व	वेद्यता	१५५
१०	१०	६२ वधवर्ती नाम	३४	अथर्व	वेद्यता	१५५
११	५	६३ वधवर्ती नाम	७३	अथर्व	वेद्यता	१५५
५	१८	६४ वधवर्ती नाम	१५	मयोमू	वेद्यता	१५५
१०	९	६५ वधवर्ती नाम	२७	अथर्व	वेद्यता	१५५
९	७	६६ वधवर्ती नाम	२६	मन्त्र	वेद्यता	१५५
९	४	६७ वधवर्ती नाम	२४	मन्त्र	वेद्यता	१५५



क्रां	सू	स विषय	मंत्रसंख्या	शक्ति	देवता	पृष्ठ
२	१४	६८ गोपाका	६	महा	मानदेवता, गोपदेवता	२१२
३	३५	६९ गायत्री आत्मना	२	उपरिव्रज	आत्मना	२११
३	१०४	७० गो को हृदय बनाना	१	महा	आत्मना	२११
६	१४१	७१ गोवेंपर चिन्द	३	विश्वामित्र	अग्निनी	२११
॥	७०	७२ गो-सुधार	३	अष्टावक्र	आत्मना	२११
२	२६	७३ गो-रथ	५	राजिता	पारम	२११
३	७१	७४ गाय और कृषा	११	अथर्व	धर्म, अग्निनी	२११
९	५	७५ चंभोरन अन्न	३८	सुगुह	पंचायनेऽम्, मंदिता	२१०
३	१९	७६ प्रतापी पुष्टि	१	महा	प्रभावति	२१५
३	१८	७७ केतोपे अन्न	२	अथर्व	शुचिर्धन, पञ्चमः	२१५
६	१४२	७८ अन्नही रुद्धि	३	विश्वामित्र	वायु	२१६
६	७१	७९ अन्न	३	महा	अग्निः, वैष्णवः, देवाः	२१६
६	१११	८० अन्नमात्र	३	आटिछावन	विषलान्	२१८
६	५०	८१ धान्यकी ह्रास	३	अथर्व (अन्नवर्धनः)	अग्निनी	२१९
३	७०	८२ धान्यमात्र	३	अथर्व	ईश	२५०
६	१६	८३ औषधिरसका कल	४	शैब्य	अथर्व, गयोक्तदेवता	२५१
६	११७	८४ अन्नरहित होना	३	कौशिक	अग्नि	२५३
६	११८	८५ अन्नरहित होना	३	कौशिक	अग्नि	२५३
६	११९	८६ अन्नरहित होना	३	कौशिक	वैष्णवीऽग्निः	२५४
३	३४	८७ विष्णु रूपाय प्रार्थना	१	अथर्व	आतोदेव	२५५
३	५८	८८ वनवास	३	येषातिनिः	देव	२५५
३	७३	८९ विराटिको ह्रास	१	अथर्व	सुखप्रसादनम्	२५६
६	११९	९० मानवकी-शक्ति	३	अथर्वहिरा	अथर्व	२५७
६	३१	९१ अन्नही रक्षा	१	सुगुह	ईश	२५७
६	४५	९२ सुख स्वप्न	३	अग्निः प्रवेताः अथर्व	सुखस्वप्नमात्रम्	२५८
६	४६	९३ सुख स्वप्न	३	अग्निः प्रवेताः अथर्व	सुखस्वप्नमात्रम्	२५८
३	१००	९४ सुख स्वप्न न आनेक स्वप्न	१	अथर्व	सुखस्वप्नमात्रम्	२५९
३	१०१	९५ सुख स्वप्न न आनेक स्वप्न	१	अथर्व	सुखस्वप्नमात्रम्	२६१
३	३०	९६ अन्न	१	सुगुह	सुखस्वप्नमात्रम्	२६१
९	१	९७ स्यादेता और गोमहिमा	२४	अथर्व	प्रभावप्रति, राजिता अ	२६२
९	६	९८ कति ये ह्रास	३९	महा	अथर्व, अग्निनी	२६२
५	११	९९ प्राप्ति को वृद्ध	१५	अथर्व	अग्निवि, विद्या	२६३
६	११८	१०० पशुको ह्रास बनाना	५	अथर्व	महापत्नी	२७४
					वन्धनः	२७३



# अथर्ववेद-- [ भाग तीसरा ]

‘ गृहस्थाश्रम ’

काण्ड-क्रमानुसार सूक्तोंकी

## अनुक्रमणिका

काण्ड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ	काण्ड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ
१	११	६	१४३	६	४४	३	१४८
	१४	४	१५		४५	३	१५८
	१७	४	१४७		४६	३	१५९
	१८	४	८९		५०	३	१४९
२	२६	५	२२३	७	५९	३	९६
	१०	५	७५		६०	३	२३
	१४	८	१८		६८	३	१५३
३	१९	९	१६३	८	७७	३	१२९
	१४	६	११९		७१	३	१४६
	२१	१०	११७		७३	३	९७
	२३	६	१३८		७३	३	८१
	१५	६	१२४		७४	३	८८
	१६	६	८७		७८	३	९७
	२१	७	१७७		८१	३	१५९
	१८	७	९९		८२	३	१७
४	१७	१८	१०४	९	८९	३	८९
	१८	१५	२०९		१०१	३	८३
	१८	१५	२०४		१०६	३	१७३
	१३	१५	२०४		११०	३	१४९
५	२५	१३	१३०	१०	११६	३	१४८
	८	२	७८		११७	३	१५७
	९	३	७८		११७	३	१५३
	११	३	१४३		११८	३	१५४
	१६	४	१५१		११९	३	१६०
	१७	४	१३१		१२०	३	११
	२१	३	९५		१२२	५	

कांठ	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ	कांठ	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ
६	१३९	३	१५७	७	६०	७	१७४
	१३०	४	१५६		७१	३	१५०
	१३१	५	१५७		७३	११	२१६
	१३२	५	१५८		७५	२	२०१
	१३३	५	१५७		८१	३	१५०
	१३४	५	१५७		८९	४	१७१
	१३५	५	१५५		१००	१	१६१
	१३६	५	१७७		१०१	१	१६१
	१३७	५	१७३		१०४	१	१७१
	१३८	५	१७३		१११	१	१५०
	१३९	५	१७४	८	१	२६	१७३
	१४०	५	१७५	९	१	२४	१६१
	१४१	५	१७५		२	२५	१०९
	१४२	५	१७५		३	३१	१६६
	१४३	५	१७५		४	२४	१७१
	१४४	५	१७५		५	१८	१७०
	१४५	५	१७५		६	२३ (१)	१६७
	१४६	५	१७५		७	२६	१०९
	१४७	५	१७५	१०	३	२५	८१
	१४८	५	१७५		४	२७	१०५
	१४९	५	१७५		५	२४	१८१
	१५०	५	१७५	११	४	५३	१८१
	१५१	५	१७५		५	७३ (७)	१९४
	१५२	५	१७५	१२	१	६४	२४
	१५३	५	१७५		२	७१	१७

‘गृहस्थाश्रम’

\_\_\_\_\_

[illegible]





मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ
तेजस्वरः प्रथमा	१०४	दीप्यन् दीप्यन्ति	२५६	वीर्योहिर्देवमिति	१९
ते कुष्ठिहाः सरमाये	११४	हे ते चक्षुर्देवे	१७	मुदस्य काम प्र	११०
तेन भूतेन इविषा०	९७	हृषास्वाह चतुरक्षान्	१६७	नेव माधि य पोषधि	१४४
तेषामाजहाया	२६९	अस्त्वधि यामे	१६९	नैता ते देवा अग्न्युः	१०१
तेषां न कथना०	२०३	वातः संवित्र कृषेण	१३१	न्यस्तिया इरोहिष	२१
तौविन्देऽनघ	२५१	मातृ च सविता च	२०९	एवम रुक्मा इयोति	२१६
शिशु पामेदु तं	१९०	धाता दधामु दाहये	१६१	यज्य रुक्मा यज्य	२१५
जीवि वे वराजानामि	१८७	धाता दधातु मो	१६१	यज्योदनः यज्यया	२३९
तं वीरवा भेदुतमा०	२७७	वाता काचार पुष्टिर्वा	२३	यज्या ॥ एतत्तम	२११
एवम प्रमूर्त्तं सुवितं	१९९	वाता एतिः भवितेद	१६१	यदोरस्ता अग्नि ०	१८१
एवम भेदुत हरेण	१३१	वाता मिथा वावाः	१६१	यज्य रक्षार्थ	१९४
इवहा आत्मानजनवत्	९८	गृध्रवा दिताः	१७१	यज्य वा दध रक्ष	२७०
इवहा वातो अयदवात्	३४	न प्रेतावाप न हिमो	२४५	यर् योगेवरं ते	९८
सुविजाया दिताः	१७१	न ता ज्यो रेणु	१७७	यस वेदि छागुर्दे	२९
वदामीदेव मूवाह	१८१	न ता नवन्ति य	१७७	यदि यः विभक्तान्वी	१४७
यद्योऽधि वक्षोऽधि	१५१	गरी सुवी वरैरय	२१०	यदिहृष्टे भारकपु	१३३
दिवस्पृथिव्याः	२६१	न आदन्ती द्विजिह्वी	१०३	यदिहृष्ट रि भार	१५९
मि सुविदी अगु	११८	नमस्तस्मै यमो	१६८	यदोऽग्नेहि मनस्वाय	२५८
दिद्योदिताः धानायाः	१७१	नमस्ते जस्तु नस्तु	१८७	यमेकाश्वा अमवच्छा	१३५
दुरदभेगमा यमे	१८३	नमस्ते आयमानवे	१८९	यर्वायते दुधमपाह	२६१
दुर्गाया च दुर्गाया	११३	गमो यज्यवर्ह	३३	यर्वातद विदो वीतिः	१३०
दुधमर्ष काम दुर्गिर्	११०	गर्भ वधामः सुभिः	४६	यलात्तुवलावो	१३३
दद प्रभान् जनदा०	९४	न गर्भ मैत्रावरुण	१७६	यवीनवा तिम्रवा०	१३७
इह मूकमार्ष यज्य	९५	य विद्युः	१०६	यदभक्तास्वाधरितं	२६३
इवमना गुहा	११०	यैव ता य	२७१	यामाधिपोषमाभा	१९६
देवपृथिवरिति	२०४	य वै वातयज्य	११४	यथे आस्तामदु	२१४
देवते सविता	१३	यवीनवो यजधि	२९, १५१	यिष्ट इष्ट आयमान	१३७
देवदेतिहिमवाणा	१९६	यार्ये वृद्धि वि दुहन्ति	१०६	यिता वाघानां पतिः	१११
देवा जमे मयधन्त	४३	नास्व ह्यथा मिच्छन्ति	१०६	यिष्टकृणो नमो	२१५
देवतां वार्याः वृधय	१०९	नास्व सेते पुष्करिणी	१०६	युधि मे रेणो भवति	१४१
देवतां माता सवदाह	२१९	नास्व यथा कतवाहो	१०६	युनः वरुणाभिः	३७
देवा यथायथाय	१८९, १८४	नास्व जेदुः यत्नाभा	१०७	युनर्वाव अष्टागवा	१०६
देवा वरा पर्वददन्	१८८	नास्व नैता कुम्भ	१०६	युनर्वा देश यज्युः	१०६
देवा वा दत्तरवा	१०५	नास्वास्यानि	२३५	युनर्वा युनं यज्य	११८
देवाः पिदो	२०६	निररणि यविता	८९	युनानमन्तिस्त्वविदः	११२
देशो देश्यामधि	९४	निर्कर्म्यं उज्जम्यं	८९	पुरोधावावधा	१८६
देवेर्देतं मथुरा	६५	निर्देयं भवति	२०३	सुरो नारि य नर	१६३
देवार्देयः पयश्वाना	२३३	वि योर्वीतो नि यता	१५७	पूर्वावरं वरयो मायवा	२८, १५०









श्रुत	पृष्ठ	श्रुत	पृष्ठ	श्रुत	पृष्ठ
रक्षां से कोदितं	२१०	विध्वंसरी सुगमा	९६	शुद्धांशं रक्ष भवति	२१४
रथमिता राधाभिते	१५६	विध्वंसचापयो	११०	कोचयामसि ते हविर्	८९
राधा यथं सुमनसः	४४	विध्वंसोत्पलतं	१०५	श्वेतः कोदोनाभिर्	१०३
रिप्यवशो २५८री	९०	निर्ध्वं प्रवसन्तो	११६	अद्यापि दुहित्वा तपती	१५५
रत्नमप्रस्तारय वर्यं	४३	निधुर्धोनि कथयन्तु	११७	अमेघ तपसा सदा	१९४
रत्नर मृगमयः	१४८	विद्वो नाम ते विता	१५१	ध्यातं मन्य ऊचनि	१५०
रैवतीरनाध्वः	९६	रुघ व सुव र्	११९	आतं हविरो भिन्द	२५०
रैवतीरनुदेयी	२५	वेदः स्वरितदुष्पणा	१५६	धियो य हा एव	२४०
लोमाम्बल छं छिन्धि	१९९	वेदाई सा प्रवतः	१८९	लोमसि मेवतानो	९५
लोहितं रवधितिना	१३१	वेदिष्टं चर्वं भवतु	१०५	स इत् तद् रवोर्न हति	३०
लज्जित शशरक्षण	१५९	वेरं विह्वयामा	१९६	य उपहृत उपहृतः	१०३
लज्जो घामन्ती वैशाल	१९५	वेवसताः दुष्कवद्	२४८	य उपहृतोऽन्तरिक्षे	१७३
लरणेन प्रमथिता	८०	वेधदेवी हृत्पुत्रये	१९८	य उपहृतः पृथिव्या	१७३
लसो वाटपला	८४	वेद्यानरः पवित	१५५	य उपहृतो दिवि	१७३
लसानी ते लङ्गल	१९७	वेद्यानराय प्रति	१५४	य उपहृतो देवेषु	२७३
लसा चान्ती बहुव	१८५	व्यसि नित्रावहणी	१९५	य उपहृतो सोमेषु	१७३
लसा चोर्लसा इमिनी	१९९	व्यातोऽद्भुतमिन्द्रो रोरी	१५०	यं यः प्रवपन्ता	८८
लसा वेधा कवलीभित	१९९	मोक्षिमा प्रवपन्तं	९७	यं यः सुमरुर्द्विमा	११९
लसा माता वाजमयस्य तथा	१८५	मातं कंशा कतं दोषता	१८९	यवननी सप्तगत्वा	२३
लसा माता वाजमयस्य लसा	१९९	मातं या मेवतानि	१४८	यं यो लोकेन सुदया	२१९
लसामिवाद्युतम्	१९९	मातयामं स मरते	२१४	यं यो अदन्तु पचया	२१४
लसा वर्यं हावः	१९१	मातस्य धमनीनां	१४७	यं यिधमि यार्	१२४
लसावा दुर्धमं योवा	१९९	मातप्राप्तिं विरति	१०३	यं यि वतिनागत	११०
लसद् ते पुष्पमिम	१४३	यं ते द्विरन्वं सप्त	३३	यं यि सुधैवागत	१९०
लसवस्वा दधिगत	१०३	यामीमकंय वासुदः	१४२	यं यि लोमेनागत	१९०
लसत् मे लस्यं पादौ	७८	यदध्या मुखेऽग्नि	१९३	यं यदध्याग्नि परदु	३२
लसुरेताः समीकर	२२२	यन्मं यदध्याग्नि	९३	यं योपयाधो अधिवा	७५
लसिन्वलीमाहिरनी	९५	यन्मं योत्तरा दुराक्षे	४१	यं यद्वारा अचमुवीः	२२०
लसिन्धिन्व वाईरसमि	१३१	यन्मं पुत्रः विद्वमाना	१९७	यं यद्वारं यो मन्वी	९१
लसि लोन्वां मज्जः	४९	यान्तो यन्धिः कवशाद्	११९	यं योत्तोरान्ध	१०३
लसि ते विन्दो मेहनं	१४४	यिवा योत्तोरान्ध	३९	यं यो प्र वेद छ ऊधे	१६३
लसि ते रथभ्य जनिमे देव	२५९	यिधो यो योत्तो मधु	११०	यन्मं यन्मं यं यद्वी	२३५
लसुजिगता मरुतो	२०५	युवा विद्या व्योमना	११५	यन्मोवाहता यिवा	१९४
लसिनी वा सुदहते	१८७	युवी ते यन्मं वात्सा	२३	यन्मोवाहता यिवा	१९४
लसिपया सुदहते	१८७	युवाः युवा योपितो	१२	यन्मोवाहता यिवा	१९४
लसिपिनी आधि	१८१	युग्मनी वाद्ययुधिनी	४६	यं यद्वारा यन्मोवा	५०
लसिनी शतान्धरी	१९७	युग्मन्तु मनि ते हवर्	९९	यं यद्वारा यन्मोवा	१६७
लसं वातुः सगो	१०३	यन्मं यन्मं हवा	१६९	यन्मोवाहता यिवा	१०३



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
४७ स्पन्दना गौः स्थालीं इव ( ८११३० )- उलबनेवाली गाय जिस प्रकार दूधके बूँतोंको उलट देती है ।	१३६	५९. तुष्टा घृदाकूः इव अघविषा ( ५११८३ )- प्याही और भूखी नागिन जिस प्रकार विषसे भरी हुई होती है ।	२०
४८. घातः अश्रे इव ( ८१११९ )- बावु बाद- लोंको जैसे बड़ा ले जाती है ।	१३६	६०. आरन्धः अग्निः इव सर्वं विदुनोति ( ५१ १८४ )- जलाई गई अग्निके समान सबका नाश करती है ।	२०
४९. स्नुपेय श्वशुरादधि ( ८११२४ )- शिम प्रकार वह समुद्रमें दूर रहती है, उसका आदर करती है ।	१३७	६१. दिग्धा इषुः इव ( ५११८१५ )- विपने उठे तीरके समान ।	२०
५०. वृक्षान् स्रजं इव ( ८११२९ )- देहसे मुझाये कुछ शिम प्रकार मयें म्रष्ट जायें है ।	१३७	६२. घृदाकूः इव सः पीयतः विध्यति ( ५१ १८१५ )- साँके समान वह दितकको भीषती है ।	२०
५१. अभ्रातः जामयः हतवर्चसः इव ( ११ १७१ )- जिस प्रकार भाईरहित अग्निने निरुतेज होती है ।	१३७	६३. इहो शत्रव इव घुष्यत ( १११७४ )- यहाँ जायेंगे समान घुट हो ।	२२
५२. वृहस्पतिः पाप्मा वले इव ( ९११२ )- बृहस्पति भयवी वाणीसे जिस प्रकार शत्रुसेनाका नाश करता है ।	१६७	६४. शारि-शाका इव घुष्यत ( १११७५ )- चावड़की फलटक समान वलित हो ।	२२
५३. कुलाये अधि कुलाये ( ९११२० )- पत्नी घोलना बगाने हुए शिम प्रकार घालका बूक ठिनका दूसरे ठिनके पर रखते है ।	१७०	६५. यथा घुष्यतः पुंसः मनः स्त्रियां निह- न्यने- ( ९१०७१ )- शिम प्रकार वह सार, वृक्षका मग छिपेमें समा रहता है ।	२२
५४. कोये कोजः ( ९११२० )- कोयपर कोज मण्डी तरह रखा जाय ।	१७०	६६. यथा नम्यं प्रधौ अधि ( ११०७३ )- जिस प्रकार चक्की घाँभि अटोके मध्यमें रहती है ।	२२
५५. गर्भः अग्निः इव ( ९११२१ )- गुल्लानमें रखी हुई अग्निके समान ।	१७०	६७. यौः इव तत् उच्छ्रयस्य ( १११४१२ )- आकाशके समान वह ऊँचा है ।	२४
५६. यथा निहितः श्रेयधिः ( १११७१४ )- शिम प्रकार स्रजाना मुखित रखा जाना है ।	१८३	६८. समुद्रः इव अक्षितः पधि ( १११४१२ )- समुद्रके समान मध्य हो ।	२४
५७. यथा अग्नये प्रवृद्धीतं आज्यं सुखः आलुपेत् ( १११३४५ ) जिस प्रकार अग्निसे तम- रित किया हुआ घी घनघसे गिरता है ।	१८६	६९. यथा मधुकुलः मधौ अधि मधु संभरन्ति ( ११११९ )- शिम प्रकार मधुमक्खिलवाँ भगने वाद- दके स्थानोंमें सहद एकट्ठा करती है ।	२६
५८. यथा यमनदनात् परावतः पापलो- कान् अयात् ( १११४१४ )- शिम प्रकार घापीलोक यमनदमन से भाग जाते हैं ।	१९९	७०. यथा मधुः इदं मधु मधौ अधि न्येज- न्ति ( ११११० )- शिम प्रकार मधुमक्खिलवाँ वह- ठेसे इकट्ठे किए गए शहरमें और सहद भरती है ।	२६
		७१. उदकं मित्रां मापे इव ( ५११८८ )- जिस प्रकार घानी टूटी हुई भाँकी बहा ले जाता है ।	२७

